# बीसवीं शताब्दी के उर्दू और हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्बन

(एक तुलनात्मक अध्ययन)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका

डॉ० मालती तिवारी

प्रस्तुतकर्त्री

रेहाना परवीन

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९८७

## प्राक्कथन

प्राचीन काल से ही भारत सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र रहा है। इसके पास अपनी एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा है किन्तु फिर भी वह नितान्त परिवर्तनशील नहीं हो सकी, बल्कि इसमें ग्रहण और त्याग की अपूर्व शक्ति बराबर बनी रही है जिससे यह संस्कृति सदैव प्राणवान रही। अपनी उदारता के कारण इसने समय - समय पर आने वाले विदेशियों के लिये अपने द्वार खोले और उन विदेशी संस्कृतियों के प्रमुख तत्वों को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया। भारतीय संस्कृति की यह समन्वयवादिता इतनी बढ़ी कि भारत में आने वाली बहुत - सी जातियां ( शक, हूण आदि ) और उनकी संस्कृतियां घुल मिलकर भारतीय संस्कृति का ही अंग बन गयी। इसी सांस्कृतिक समन्वय के क्रम में एक मोड़ मध्यकाल में भी आया जबकि इसका सम्पर्क इस्लाम और मुस्लिम संस्कृति से स्थापित हुआ। प्रारम्भ में भारतीय संस्कृति को इस्लाम और उसके दृढ़ एकेश्वरवाद से सामंजस्य स्थापित करने में बहुत कठिनाई हुई, क्योंकि ये दोनों संस्कृतियां एक दूसरे से सर्वथा विपरीत थी किन्तु यह एक प्राकृतिक सत्य है कि जब भी दो संस्कृतियां एक दूसरे के निकट दीर्घकाल तक रहती हैं तो उनके समन्वय से एक नवीन संस्कृति का जन्म होता है। इसी प्रकार हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के समन्वय से एक मिश्रित संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। परिणामतः पूरा मध्यकालीन साहित्य, धर्म, दर्शन, पूजा, पद्धति, समाज, रहन - सहन, खान - पान, आचार - विचार, रीति - रिवाज, खेल - तमाशे, वस्त्राभूषण, आर्थिक व्यवस्था तथा राजनीति आदि इन दोनों संस्कृतियों से प्रभावित हुए तथा भारतीय संस्कृति समृद्ध से समृद्धतर होती चली गयी। हिन्दी साहित्य में भी अनेक रूपों में यह प्रभाव दृष्टिगत होता है। भक्ति - कालीन संत और सूफी सम्प्रदायों पर मुस्लिम धर्म दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा। इन दोनों संस्कृतियों के साहित्यिक समन्वय का फल उर्दू भाषा के रूप में आया, जिसकी व्याकरण हिन्दी की है और लिपि फारसी। इस भाषा ने अपनी मिठास और कोमलता के कारण शीघ्र ही साहित्यिक रूप ले लिया। भारत की

धरती पर जन्मी और विकसित हुई इस भाषा पर प्रारम्भ में फारसी का प्रभाव ही अधिक रहा। यह ईरानी वैभव समृद्धि शान शौकत में ही डूबी रही जिससे इसकी पकड़ अपने देश पर कम होती चली गयी किन्तु कालान्तर में कुछ कवियों के प्रयास से एवं देश की विषम परिस्थितियों के कारण यह पुन: अपनी धरती और उसके निवासियों की संवेदनाओं से जुड़ गयी। फलत: दोनों ही काव्यों में तत्कालीन सांस्कृतिक प्रतिबिम्बन दृष्टिगोचर होता है।

इस दिशा में अभी तक पर्याप्त अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है और जो हुआ भी है वह आंग्ल भाषाओं में हुआ है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में जो कार्य हुआ है वह संस्कृति के एक पक्ष को लेकर हुआ है या फिर हिन्दी उर्दू किसी एक भाषा के प्रभाव को काव्य में देखा गया है। जब देश में दोनों जातियां रह रही हैं, हर गतिविधि से समान स्तर पर प्रभावित हो रही हैं तो इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है फलत: इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य की आवश्यकता बनी रही। आदरणीय डा० मालती तिवारी जी ने इस ओर मेरी रुचि को देखते हुए इस दिशा में कार्य करने के लिये प्रेरित किया। अपने विषय को नवीन सन्दर्भों में प्रस्तुत करने के लिये मैंने बीसवीं शताब्दी को अपने अध्ययन का आधार बनाया। यह समय विश्व इतिहास और हमारे देश के इतिहास में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक उथल - पुथल का युग है। जहां नये मूल्यों का निर्माण हो रहा था वहीं भारत अपनी पूर्व परम्परा को भी बनाये रखना चाहता है। अत: जीवन के हर क्षेत्र में संक्रमण की स्थिति पैदा हुई। ऐसे संक्रमणकारी युग में जबकि संस्कृति का रूप स्थिर नहीं हो पा रहा उनमें स्वरूप तत्वों को ढूंढना तथा बिखरे हुए ढांचे को एक रूप देना मुझे अधिक रुचिकर लगा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य बीसवीं शताब्दी के उर्दू हिन्दी काव्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति का तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करना है तथा उसमें से ऐसे तत्वों की खोज करना है जो विश्व की वर्तमान चुनौतियों को स्वीकार कर

सके। अध्ययन की गम्भीरता तथा सामग्री के बिखरे होने के कारण प्रबन्ध को अन्तिम रूप देने में मुझे पर्याप्त समय लगा। इस शोध प्रबन्ध का समय बहुत लम्बा है और कवियों की संख्या कल्पनातीत है। इस कारण सभी को प्रबन्ध में स्थान नहीं दिया जा सका। शोध प्रबन्ध में स्थान देने या न देने के पीछे मेरा उद्देश्य कवियों के स्तर का निर्णय करना नहीं है बल्कि अपेक्षित सूत्रों को पकड़ना ही मेरा मूल उद्देश्य रहा है।

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध पांच अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय एक प्रकार से पीठिका के रूप में लिखा गया है जिसमें प्रतिबिम्बन तथा संस्कृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भारतीय संस्कृति की प्रकृति का संक्षिप्त मूल्यांकन किया गया है।

दूसरे अध्याय में काल क्रमानुसार भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त विकासात्मक इतिहास प्रस्तुत करने के साथ - साथ उसकी परम्परा को धर्म, दर्शन, समाज और राजनीति शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्यायित किया गया है। इसी अध्याय में शोध प्रबन्ध की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

अध्याय तीन आधुनिक भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित है। जिसमें पाश्चात्य प्रभाव का मूल भारतीय संस्कृति से संघर्ष, स्वतन्त्रता के लिए भारतीय मानस की छटपटाहट तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उत्पन्न परिस्थितियों का सिंहावलोकन किया गया है। स्वतन्त्रता के बाद देश की जो संक्रमण की स्थिति हुई उसमें पाश्चात्य प्रभाव से आई आधुनिकता हमारी संस्कृति के लिये एक समस्या बन गयी। फलतः इस संक्रमणकारी युग में मानवता का प्रश्न भी किस प्रकार एक सांस्कृतिक प्रश्न बन गया। इन तथ्यों को भी देखने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

चौथे अध्याय में पुनर्जागरण से उत्पन्न जातीय स्वाभिमान का साहित्य

में प्रतिफलन दर्शाने के साथ ही हिन्दी उर्दू काव्यधारा में सांस्कृतिक प्रतिबिम्बन को विविध आयामों में देखने की चेष्टा की गयी है—यथा- राजनीतिक,सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक पक्षों में।

पांचवें अध्याय में स्वतन्त्रता के बाद की बदलती परिस्थितियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन किया गया है।

छठा अध्याय हिन्दी उर्दू काव्य की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में काव्य-भाषा की भूमिका से सम्बन्धित है। सामाजिक स्थितियों के साथ वैयक्तिक अनुभूतियों को भी काव्य में चित्रित किया गया है। काव्य भाषा के द्वारा विभिन्न मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी गयी। इन परिस्थितियों के वर्णन के साथ ही भाषा की वैचारिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिये बदलते हुए बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान तथा सपाटबयानी के तेवर या स्वरूप पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

यह पूरा युग किसी न किसी प्रकार के संघर्ष का रहा। कभी स्वतन्त्रता पाने के लिये संघर्ष तो कभी समाज की विषमताओं के प्रति संघर्ष होता रहा। इसलिये बीसवीं शताब्दी में संस्कृति का कोई संवरा स्थाई रूप नहीं दिखाई देता वरन् नित्य प्रति परिवर्तन ही दिखाई देता है। कवि अपने धर्म के अनुसार इन तमाम संघर्षों के लिये जन मानस को तैयार करने में लगा रहा। वह समाज के हर वर्ग को जागरूक कर देना चाहता है। सामाजिक परम्पराओं तथा व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के तीव्र स्वर इस युग में सुनाई देते हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। देश का समस्त जीवन क्रम विच्छिन्न हो गया। वैसे तो बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सम्पूर्ण विश्व में सांस्कृतिक संक्रमण का युग था

किन्तु हमारे देश में यह स्थिति कुछ अधिक ही रही । क्योंकि हमारे सामने एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा भी थी जिसे हम छोड़ने को तैयार नहीं थे और न ही पाश्चात्य प्रभाव को छोड़ना चाह रहे थे । दूसरे विज्ञान ने मानव को जो बौद्धिक दृष्टि दी उससे वह नाश और निर्माण के कगार पर एक साथ जा खड़ा हुआ । जहां से जीवन और मृत्यु में कुछ ही क्षणों का फासला रह गया । इस अतिशय बौद्धिकता ने सारे मानवतावादी मूल्यों को जड़ से काट दिया । विश्व की यह परिस्थितियां भारतीय संस्कृति के लिये एक चुनौती बन गयी । इस चुनौती को स्वीकारना तथा पौर्वात्य संस्कारों में उसका रूपांतरण आज इसलिये आवश्यक हो गया कि विज्ञान के प्रसार ने विश्व के समस्त राष्ट्रों की दूरी को मिटा कर एक दूसरे के बहुत निकट ला दिया लेकिन आत्मिक एवं वैचारिक दृष्टि से सब एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं जिससे विश्व शान्ति संकट में पड़ गयी है । ऐसे विषम समय में प्रश्न इस बात का है कि क्या भारत का " वसुधैवकुटुम्बकम् " का आदर्श विश्व को इस संकट से उबार सकेगा ? स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में परम्परा के इसी दबाव को झेलने तथा इस दबाव को झेलने के बाद टूटने और पुनः बनने का एक सांस्कृतिक क्रम स्पष्ट दिखाई देता है । नयी कविता आज के संघर्ष एवं संस्कारों का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि आज साहित्य स्वयं को जीवन की समग्रता से जोड़कर चला है, इसलिये संक्रमण के विविध रूप एक साथ काव्य में देखे जा सकते हैं । इस शोध प्रबन्ध में इस सारे सांस्कृतिक मंथन में से उन तत्वों को खोजा गया है जिनसे नयी सांस्कृतिक दिशा को रूप देने में हिन्दी उर्दू काव्य लगा हुआ है । किन्तु लेखन अभी अपने यात्रा के दौर में चल रहा है एवं अनेक कवि सृजनरत हैं इसलिये इसकी दिशा को अन्तिम रूप नहीं दिया जा सकता फिर भी इसका एक खाका खींचने का मेरा यह छोटा-सा प्रयास है । मेरे इस प्रयास का पूरा श्रेय मेरी निर्देशिका डा० मालती तिवारी जी को जाता है, जिनके शिष्यत्व का सुअवसर मुझे मिला । उन्होंने अपनी व्यस्तता तथा अस्वस्थता के बाद भी मुझे इस कार्य को पूरा करने में पूर्ण सहयोग दिया । शोध कार्य के बीच में उठने वाली सभी समस्याओं का उन्होंने समाधान किया और

मुझे दिशा निर्देश दिया। इस पूरे समय में जो उनका स्नेहपूर्ण सहयोग मुझे मिला उसके लिये मैं आजीवन उनकी आभारी रहूँगी। बहुत बार मेरी गलतियों को उनके सौम्य शालीन व्यवहार ने नज़र अन्दाज़ किया। इन उपकारों के लिये मैं सदैव उनकी ऋणी रहूँगी क्योंकि उनके स्नेह का परिणाम ही मुझे यहां तक लाया।

श्रद्धेय डा० अकील रिज़वी अध्यक्ष उर्दू विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति भी आभार प्रकट करती हूं जिनके विद्वतापूर्ण सुझावों ने सदैव मेरा मार्गदर्शन किया और विषय को समझाने की दृष्टि दी।

सामग्री संकलन के लिये मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय इलाहाबाद, भारती भवन पुस्तकालय इलाहाबाद और विशेषकर साहित्य सम्मेलन संग्रहालय एवं पुस्तकालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभारी हूं जिन्होंने किसी न किसी रूप में मुझे सहयोग दिया।

इसके अतिरिक्त मैं अपने परिवार के प्रति भी आभारी हूं। विशेषकर अपनी बड़ी बहन तौकीर जहां इतिहास प्रवक्ता क्रिश्चियन इण्टर कालेज के प्रति आजीवन आभारी रहूँगी जिनकी उदारता और स्नेह ने मेरा मनोबल बढ़ाया।

मैं अपने इस शोध कार्य में सहायक अतीत एवं वर्तमान के सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञ हूं जिनकी विद्वतापूर्ण रचनाएं मेरे लिये सहायक सिद्ध हुईं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपर्युक्त अधिकांश सामग्री, विभिन्न अध्यायों में की गयी स्थापनाएं मौलिक अध्ययन का परिणाम है। यदि इस प्रयास में कहीं कोई त्रुटि रह गयी हो तो मनुष्य से त्रुटि होना स्वाभाविक है यही समझा जाय। यह मेरा इस शोध प्रबन्ध के निर्णायकों से निवेदन है।

मेरा यह प्रयास अपनी इष्ट सिद्धि में सफल हो यही खुदा से मेरी प्रार्थना है और इस शोध कार्य के निर्णायकों से प्रार्थना है।

रेहाना परवीन

— रेहाना परवीन

# विषय - सूची

तृतीय अध्याय :



चतुर्थ अध्याय :

पंचम अध्याय :



षष्टम अध्याय :

# प्रथम अध्याय

कलाकार जगत के सौन्दर्य को अपने अन्तस् की मधुर कल्पनाओं से और भी अधिक सुन्दर बनाने की क्षमता रखता है। जिस के लिये वह वस्तु अथवा भाव जगत के सूक्ष्म अंशों को प्रभावशाली बनाने के लिये गोचर रूप का सृजन करता है। जिसका परिणाम चित्र, मूर्ति, संगीत और साहित्य के रूप में हमारे समक्ष आता है। संसार की विभिन्न कलाओं में साहित्य और साहित्य में भी कविता को भावाभिव्यक्ति का सबसे शक्तिशाली साधन माना गया है। कारण कि कवि अपनी कल्पना से पत्थर को भी सजीव बनाने में समर्थ होता है। वह जटिल से जटिल भाव को सुन्दर शब्दों में बांधकर मूर्त रूप प्रदान करता है। शब्द की इसी चित्रमयी शक्ति ने काव्य में बिम्ब को जन्म दिया है। फिर हुए शोध विषय पर अध्ययन करने से पूर्व कुछ शब्दों के अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। उदाहरण के लिये प्रतिबिम्बन, इसी प्रसंग में बिम्ब शब्द की भी व्याख्या जरूरी हो जाती है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बिम्ब के स्वरूप, संस्कृति और सभ्यता शब्द और उनकी पृष्ठभूमि पर थोड़ा विस्तार के साथ विवेचन किया गया है।

## १- प्रतिबिम्बन का तात्पर्य :

प्रतिबिम्ब - रिफलेक्शन ( **Reflection** )

जल में चांद का - **of moon in the water**

शीशे। आईने में आपका - **Your is the mirror**[1]

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में ` इमेज ` शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है।

१- **Image- Likeness or copy of the shape.**

२- **Close likeness, counterpart.**

३- **Reflection seen in a mirror or through the lense of a Camera.**

४- **Reflect, Symbolize.**

५- Figures of speech that bring pictures to the mind.[2]

अर्थात् - १- किसी वस्तु की समानता या प्रतिलिपि

२- किसी वस्तु का तुल्य रूप, उपमा, प्रतिरूप

३- दर्पण में प्रतिबिम्ब या कैमरे के लेन्स से प्राप्त प्रतिबिम्ब

४- प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छाया, प्रतीक

५- किसी वस्तु का मानसिक प्रतिरूप, धारणा या अलंकारिक चित्रण

इस प्रकार 'Image' या बिम्ब का ही एक उत्कृष्ट रूप प्रतिबिम्ब है। काव्य बिम्ब पाश्चात्य काव्य शास्त्र की देन है और हिन्दी आलोचना में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सर्वप्रथम इसका प्रयोग हुआ एवम् काव्य में प्राकृतिक दृश्य के अन्तर्गत ही इसकी विवेचना की गई। हिन्दी में सर्वप्रथम यह रूप विधान और चित्र विधान की समकक्षता में रखा गया, किन्तु नयी कविता में सर्वत्र इसे स्वतन्त्र रूप में स्वीकार किया गया।

बिम्ब के स्वरूप के विषय में स्टेफेन जे ब्राउन का कथन है कि " साहित्य में बिम्ब से तात्पर्य कलाकार की उस क्षमता से है जिसके सहारे वह बीती हुई घटनाओं और विषयवस्तु का रंग, ध्वनि, गति, आकार, प्रकार सहित देश, काल परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द चित्रों में वर्णित कर देता है और यह शब्द चित्र ठीक उसी प्रकार का होता है जैसा की उस घटना या वस्तु का स्वरूप था[3]।

बिम्ब इन्द्रियग्राह्य अनुभूतियों की कल्पनात्मक अभिव्यक्ति है इसी लिये वह मूर्त या अमूर्त किसी भी प्रकार की हो सकती है। अनुभव की इन्द्रीय चेतना जितनी मुखर होगी उस इन्द्री का बिम्ब भी उतना ही सशक्त होगा। भावों की अभिव्यक्ति और ग्रहण में अभिधा से सम्बन्धित बिम्ब ही अधिक सफल होते हैं किन्तु जैसे - जैसे हम लक्षणा और ध्वनि की ओर बढ़ते जायेंगे वैसे - वैसे अमूर्त तत्व प्रतीक आदि के

प्रयोग की बहुलता बढ़ती जायगी और बिम्ब उतना ही संश्लिष्ट होता जायगा। इस प्रकार बिम्ब पदार्थ, गुण, वस्तु, प्रभाव सभी का हो सकता है। बिम्ब इन्द्रियग्राह्य संवेदनाओं में अप्रत्यक्ष रूप से छिपा रहता है इसीलिये शुक्ल जी ने लिखा है कि- " काव्य का काम है बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार ( Concept ) लाना नहीं। बिम्ब जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा। सामान्य या जाति का नहीं।[४] हिन्दी काव्यशास्त्र में बिम्ब की परिभाषा प्रस्तुत और अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत ही की गयी थी, किन्तु कहीं - कहीं शुद्ध प्राकृतिक चित्रण में इनका स्वतन्त्र रूप में प्रयोग भी मिलता है जिसका सम्बन्ध किसी भी प्रकार किसी दूसरी योजना से नहीं होता। इस प्रकार काव्य बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है। जो मानसिक पृष्ठभूमि में वैसे ही शब्दचित्रों की कल्पना करता है जैसी मूर्ति विधायनी मूर्त या अमूर्त क्षमता होती है, तब उसे बिम्ब की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है।

## २- काव्यबिम्ब शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा :

'Image ' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के इमेगो ( Image ) अथवा ( Imaginum ) इमेजिनम से हुई है।[५] विश्वकोश के अनुसार- Image are conscious memories which reproduce a previous perception in whole or in part, in the obsence of original stimulus to the perception.[6]

अर्थात् - [८]बिम्ब वह चेतना स्मरण शक्ति है जो मूल उद्दीपन की अनुपस्थिति में पूर्वानुभूति का पूर्ण या आंशिक प्रतिरूप प्रस्तुत करती है। " मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान अथवा कल्पना का बड़ा महत्व है। प्रस्तुत संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की कांस्य प्रतिमायें भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमा का पर्याय है।[७]"

आलोचकों में सी० डे० लुइस " " इमेज " को शब्दों में विन्यस्त ऐसा चित्र मानते हैं जो हमारी कल्पना द्वारा बाह्य वास्तविकता के प्रतिरूप को कहीं अधिक सुस्पष्टता देता है[८]।"

" जो मूलवस्तु प्रतिबिम्ब या छाया फेंकती है शास्त्रीय भाषा में वही बिम्ब कहलाती है[९]।"

" बिम्ब पदार्थ नहीं, परन्तु उसकी प्रतिकृति या प्रतिछवि है, मूल सृष्टि नहीं पुनः सृष्टि है------ बिम्ब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्भुत होता है[१०]।" एज़रा पाउण्ड--
" बिम्ब में एक ही समय पर भावात्मक तथा बौद्धिक मिश्रण उद्घाटित किया जा सकता है[११]।" कविता सामान्य अर्थ में भावनाओं या मन की कल्पनाओं की अभिव्यक्ति है[१२]।"

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में बिम्ब विधान को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। बिम्बों की दृष्टि से छायावादी काव्य अत्यन्त समृद्ध है। छायावादी कवि बिम्ब विधान के प्रति सजग है, इन कवियों ने बिम्ब को ठोस एवं स्पष्ट आधार प्रदान किया है। महादेवी वर्मा ने काव्य बिम्ब के सम्बन्ध में लिखा है कि " शब्द के विस्तार में कला सृजन को पाषाण की मूर्तिमत्ता, रंगरेखा की सजीवता, स्वर का माधुर्य सब कुछ एकत्र कर लेने की सुविधा प्राप्त हो गई है[१३]।" दिनकर के अनुसार चित्रमयता काव्य का एक शाश्वत गुण है[१४]। इसी प्रकार नई कविता में भी बिम्ब विधान का महत्वपूर्ण स्थान है। यहां तक कि बिम्ब कवि के व्यक्तित्व का एक अंश है जिसके सहारे वह अपने भावों को प्रतिबिम्बित करता है। केदारनाथ सिंह के अनुसार " बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व ही असम्भव है[१५]।" इस प्रकार विभिन्न विचारकों के मतों के आलोक में निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बिम्ब

काव्य की वह शक्ति है जो पाठक के मानस में काव्यगत भाव का प्रतिबिम्बात्मक रूप प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि बिम्ब कवि की कल्पना का मानसिक रूप प्रत्यांकन है। जहां तक काव्य सृजन की प्रतिक्रिया का सम्बन्ध वहां तक रूप और व्यापार कल्पित ही होते हैं।

" कवि जिन वस्तुओं या व्यापारों का वर्णन् करने बैठता है वे उस समय उसके सामने नहीं होते, कल्पना में होते हैं। इस कल्पना का अनुमानिक सम्बन्ध दृश्य संवेदना से अधिक है और यह दृष्टि ग्रहण का व्यापार कल्पना का आश्रय है कल्पित रूप विधान कविता में करता है और उन्हीं का दृश्य ग्रहण अभिधा द्वारा काव्य में होता है। पर अभिधा द्वारा ग्रहण एक ही प्रकार का नहीं होता अभिधा द्वारा ग्रहण दो प्रकार का होता है। बिम्ब ग्रहण और अर्थ ग्रहण[१६]।"

हिन्दी साहित्य कोश में बिम्ब विधान के सम्बन्ध में लिखा गया है कि " व्यक्तियों की बिम्ब विधान सम्बन्धी क्षमता में बड़ा अन्तर होता है। दृष्टि सम्बन्धी बिम्ब विधान या कल्पना की क्षमता प्राय: सभी व्यक्तियों में मिलती है। दूसरा स्थान शाब्दिक बिम्ब विधान की क्षमता का है। गन्ध, रस, स्पर्श सम्बन्धी कल्पना की क्षमता अपेक्षा कृत कम लोगों में मिलती है[१७]।"

३- काव्य बिम्ब के भेद :

बिम्ब का सम्बन्ध केवल कविता से ही नहीं मनोविज्ञान से भी है। यों तो बिम्ब के भेद करना उसके सौन्दर्य को नष्ट करना है फिर भी कुछ विद्वानों ने इसका वर्गीकरण करने की चेष्टा की है। बिम्ब आधुनिक काव्य का आवश्यक अंग है और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत इसे काव्य प्रतिमान के रूप में ग्रहण किया गया है। किन्तु हिन्दी में इसे रूपविधान का ही तत्व माना गया है। हमारे प्राचीन काव्यशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं मिलता किन्तु आधुनिक समीक्षा में सौन्दर्य

तत्वों के अन्तर्गत बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये इसके वर्गीकरण के सम्बन्ध में हमें पाश्चात्य विचारकों तथा आधुनिक हिन्दी के आलोचकों पर निर्भर रहना पड़ता है।

यद्यपि पाश्चात्य विचारकों ने काव्य बिम्ब की विस्तृत विवेचना की है किन्तु इसके स्पष्ट भेद निश्चित नहीं किये। कुछ विचारकों ने प्रकारान्तर से ऐन्द्रिय भेदों की भी चर्चा की है। आई० ए० रिचर्ड्स ने दृश्य बिम्ब के साथ स्पर्श बिम्ब को भी स्वीकार किया है[१८]।

सी० डे० लुइस ने दृश्य बिम्ब, स्पर्श बिम्ब के अतिरिक्त गति बिम्ब का भी संकेत दिया है[१९]। अतः पाश्चात्य "आलोचकों" ने अधिकांशतः काव्य बिम्ब के सभी उपादानों को सामने रखकर एकांगी वर्गीकरण किया है। बिम्ब के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक युंग का वर्गीकरण श्रेष्ठ है और उनकी सम्पूर्ण विचारधारा आद्य-बिम्ब सिद्धान्त के ऊपर आधारित है। "युंग" की मान्यता है कि "सांस्कृतिक कार्यकलाप और कला विधान में आद्यबिम्बों का पर्याप्त महत्व है। ये बिम्ब वंशानुक्रम के आधार पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संकलित होते हैं। किन्तु ये आद्यबिम्ब बड़े सशक्त होते हैं और हमारी सुप्त सांस्कृतिक वासनाओं को जगाने में पर्याप्त सहायक होते हैं[२०]।"

डा० नगेन्द्र हिन्दी के पहले समीक्षक हैं, जिन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार पर बिम्ब का विभाजन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार ये वर्गीकरण दो प्रकार का है। "पहला प्रत्यक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब (अर्थात् रूप, नाद, गन्ध, स्वाद, स्पर्श) दूसरा परोक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब। इसी तालिका द्वारा उन्होंने स्पष्ट किया है। आगे उन्होंने अनुभव बिम्ब, कल्पना बिम्ब, चेतन मन के बिम्ब, अचेतन मन के बिम्ब, सामूहिक अचेतना के आद्यबिम्ब, स्वप्न बिम्ब, तन्द्रा बिम्ब, मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्ब आदि कई भेद किये हैं[२१]।"

डा० सुधा सक्सेना ने जायसी की बिम्ब योजना की विवेचना करते समय

बिम्बों को उपादान वस्तु, संवेदना, भाव बिम्ब, प्रकृति तथा अभिव्यक्ति के आधार पर विभाजित किया है[22]। डा० बच्चन सिंह ने बिम्ब के उदात्त और उपलक्षित दो भेद निर्धारित की है[23]।

इस प्रकार प्रतिबिम्ब ` बिम्ब ` का ही एक उत्कृष्ट रूप है। बाह्य जगत के सौन्दर्य को कम या अधिक मात्रा में प्रत्येक प्राणी अनुभव करता है और उसका उपभोग भी करता है। किन्तु कलाकार ( चाहे वह कवि हो, चित्रकार हो, या कोई मूर्तिकार ) उसी को अपनी विशिष्ट दृष्टि से देखता है और उस बाह्य सौन्दर्य को अपने अन्तर की मधुर कल्पनाओं से जोड़कर उसे और अधिक सुन्दर बनाता है। कवि या कलाकार की यही विशिष्ट दृष्टि या संवेदनशीलता उसे समाज से जोड़े रखती है। जहां एक साधारण व्यक्ति समाज में घटित घटनाओं तथा परिवर्तनों को साधारण घटना समझ कर भूल जाते हैं,वहीं कलाकार उस घटना तथा परिवर्तन से तादात्म्य स्थापित करता है। कभी वह समाज को दिशा प्रदान करता है जैसे भक्तिकालीन साहित्य या स्वयं ही कभी समाज के प्रवाह में बह जाता है जैसे रीति कालीन साहित्य। इस प्रकार हर रूप में वह समाज की घटनाओं को अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित करता रहता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हम प्रतिबिम्बन को ( जो कि ` बिम्ब ` या ( Image ) इमेज का ही एक विशिष्ट रूप है ) इसी अर्थ में लेंगे अर्थात् कवि किस प्रकार अपने समय की छाया अपनी रचनाओं में उतारता है या अपने युग से वह जो कुछ ग्रहण करता है उसे अपनी रचनाओं में किस रूप में प्रतिबिम्बित करता है। किस प्रकार वह समय के परिवर्तनों को साहित्य में प्रस्तुत करता है।

## ४- <u>संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति,अर्थ एवं संस्कृति सम्बन्धी विविध परिभाषाएं :</u>

` संस्कृति ` शब्द ` सम् ` उपसर्ग के साथ संस्कृत की ` कृ ` धातु को जोड़ने से बना है। जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है[24]। ` संस्कृत का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना,परिष्कृत करना

संस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है। संस्कार जाति के भी होते हैं और व्यक्ति के भी। जातीय संस्कारों को भी संस्कृति कहते हैं[25]।"

वास्तव में "संस्कृति" शब्द अंग्रेजी शब्द (कल्चर) का पर्यायवाची है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कल्चर और कल्टीवेशन दोनों में समानता है। कल्टीवेशन का अर्थ है कृषि करना। भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्देश्य है। भूमि की तरह ही मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, प्राकृतिक शक्तियों और उसके परिष्कार का द्योतक कल्चर अथवा संस्कृति शब्द है। इस प्रकार कल्चर में वही धातु है जो एग्रीकल्चर में, इसका अर्थ भी पैदा करना या सुधारना है। अतः मनुष्य की नैसर्गिक वृत्तियों के परिष्कार का द्योतक "संस्कृति" शब्द है।[26] आक्सफोर्ड डिक्शनरी में संस्कृति ( कल्चर ) शब्द का अर्थ है-

१- The training and refinement of mind, taste and manners.

२- The condition of being thus trained and refined.

३- The intellectual side of civilization.

४- The acqvainting of our selves with the best that has been known and said in the world.[27]

अर्थात्

१- विचार, रुचि और आचार का संशोधन

२- विचार, रुचि और आचार की संशोधन की अवस्था

३- सभ्यता का बौद्धिक पक्ष

४- विश्व में जो कुछ श्रेष्ठ ज्ञात और कथित हो चुका हो उससे परिचय

संस्कृति शब्द को पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाओं में बांधा है जिनमें से कुछ के मत इस प्रकार हैं। संस्कृति को परिभाषा में बांधने का प्रयत्न सर्वप्रथम प्रसिद्ध नरविज्ञानी ई० बी० टायलर ने किया। टायलर के अनुसार संस्कृति

वह जटिल तत्व है जिसमें समाविष्ट ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, कानून तथा लोगों की सभी प्रकार की क्षमताएं तथा आदतें सम्मिलित रहती हैं[28]।

मैकाइवर के मत से " संस्कृति " हमारे दैनिक व्यवहार में कला साहित्य, धर्म मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले रहन - सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है[29]।" लिन्टन के अनुसार " संस्कृति सामाजिक विरासत है[30]।" लावी ने संस्कृति को समस्त सामाजिक अनुवांशिकता या समस्त सामाजिक परम्परा कहा है[31]।" मैलिनोवस्की के अनुसार " संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परम्परा से पाया हुआ कला कौशल, वस्तु सामग्री यांत्रिक क्रियाएं, विचार, आदतें और मूल्य समाहित हैं[32]।"

हमारे यहां संस्कृति शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही रहा है। ऋग्वेद में संस्कृत[33] तथा यजुर्वेद[34] और ऐतरेय ब्राह्मण[35] में संस्कृति शब्द का प्रयोग मिलता है। आज अर्थ विस्तार के द्वारा संस्कृति शब्द से पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर तथा व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। जैसे - जैसे मानव ने उन्नति की उसका सम्पर्क बढ़ा वैसे ही समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन आया और संस्कृति की धारणा, अर्थ, क्षेत्र सब परिवर्तित व विकसित होता गया। विभिन्न भारतीय विद्वानों ने भी संस्कृति को अपने - अपने दृष्टिकोण से देखा और संस्कृति शब्द के अर्थ को व्याख्यायित करने का प्रयास किया। यद्यपि वे आपस में एकमत नहीं हैं फिर भी वे संस्कृति को कुछ पहलुओं में अवश्य बांध सके हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री का मत है कि " किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिये[36]।

डा० देवराज के अनुसार " संस्कृति उन क्रियाओं का समुदाय है जिनके द्वारा मनुष्य के आत्मिक जीवन में विस्तार और समृद्धि आती है,सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव जाति के सर्वोत्कृष्ट आत्मिक जीवन रूपों की दृष्टि

और उनका उपयोग है[३७]।

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि " संस्कृति को जीवन शोधन की कला अथवा मानव जीवन का संशोधित ढंग कह सकते हैं[३८]।" मंजी संवारी जीवन वृत्ति तथा जीवनचर्या का ही नाम संस्कृति है[३९]।

डा० गौरीशंकर भट्ट के अनुसार- " मनुष्य के लौकिक पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार - विचार ही संस्कृति है। मानव व्यवहार और उसका प्रत्येक पक्ष संस्कृति से इस प्रकार परिवेष्ठित है कि संस्कृति के माध्यम से मानव के लौकिक, पारलौकिक, स्वत्व और अस्तित्व को संपूर्ण अभिव्यक्ति और मान्यता मिलती है[४०]।"

डा० मदन गोपाल गुप्त " मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन अन्तर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं[४१]।"

डा० प्रेमदत्त शर्मा के मतानुसार " संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक है, जिसका विकास संस्कारों में होता है[४२]।"

डा० विश्वनाथ पुरी का मत है कि " वास्तव में संस्कृति मनुष्य और उसकी कृतियों के प्रत्येक अंग और स्वरूप का ही संतुलन है[४३]" गुलाब राय का मत है कि " संस्कृति अर्जित विशेषताओं एवं व्यवहार के प्रतिमानों का योग है जो व्यक्ति एवं संस्था द्वारा आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है[४४]।" डा० असद अली के मतानुसार " संस्कृति से तात्पर्य समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार सुधार और विकास से है[४५]।"

श्री रामधारी सिंह दिनकर का मत है कि " संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है,

जिसमें हम जन्म लेते हैं। यह हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है[56]।"
डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक, कलात्मक आदि सभी प्रकार के महत्वपूर्ण विकासों एवं जीवन के विविध पहलुओं से है[57]।"

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार " संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नाना विध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है[58]।" डा० सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है कि " मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं[59]।" डा० रामजी उपाध्याय ने लिखा है कि " प्राकृतिक जीवन को व्यवस्थित और शालीन बनाकर संवारना तथा जीवन में आध्यात्मिक, कलात्मक और सेवात्मक सत्ता की प्रतिष्ठा और विकास करना संस्कृति है। संस्कृति का मौलिक अर्थ सुधारना अथवा सुन्दर या पूर्ण बनाना है[60]।"

इस प्रकार हम मनुष्य की राजनैतिक, सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों, दार्शनिक विचारों तथा सुन्दर कृतियों, सूक्ष्म एवं स्थूल के विकास एवं समष्टि चिन्तन की अभिव्यक्ति का नाम संस्कृति मान सकते हैं।

संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करने तथा उसे परिभाषित करने के लिये विश्व के अनेक विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से अपने - अपने मत प्रकट किये हैं। मत मतान्तरों का यह वैविध्य इस लिये भी सम्भव व स्वाभाविक दिखाई देता है क्योंकि संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और गहन है। संस्कृति की इस व्यापकता को देखते हुए उसे किसी सीमा में बांधना अत्यन्त कठिन है। सामान्य रूप से हम यही कह सकते हैं कि मानव समाज के विकास की सम्पूर्ण उपलब्धियां ही संस्कृति है। इस दृष्टि से हमारी श्रेष्ठ उपलब्धियां वेद, पुराण, श्रुति - स्मृति आदि ही सिद्ध होती हैं। अतः वे उत्तम अभिव्यक्तियां ही संस्कृति हैं,जिनके द्वारा मान्यता को

सतत ही विशिष्टता प्राप्त होती रही है— भौतिक भी अधिभौतिक भी और आध्यात्मिक भी। विशिष्टता प्रदान करने के कारण संस्कृति आचार विचार मूलक सिद्ध होती है। शुद्ध आचार शुद्ध विचारों को जन्म देते हैं,साहित्य और उसकी समस्त विधायें तथा काव्य नाटक, संगीत, नृत्य, कला आदि की विविध धारायें शुद्धाचार के ही प्रतिफल हैं। इस दृष्टि से समस्त ज्ञान - विज्ञान और कला-कौशल संस्कृति के व्यापक अन्तराल में समाहित हो जाते हैं। विचारों की इसी शुद्धिकरण की क्रिया को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति से मानवता का संस्कार होता है। संस्कृति एक ऐसी सामाजिक विरासत है जो संचय से विकसित होती है।

विभिन्न विद्वानों के मतों को ध्यान में रखकर संस्कृति से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। जैसे कि सभी प्रकार की मानवीय क्षमताओं का सम्मिलित रूप संस्कृति है, संस्कृति मानव प्रकृति की अभिव्यक्ति है,मानव की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों की समष्टि संस्कृति है, संस्कृति जीवन शोधन की कला है,संस्कृति का विकास संस्कारों में होता है,मनुष्य वृत्तियों का संतुलन, सम्पूर्ण संस्कारों का सुधार और विकास संस्कृति है। संस्कृति जिन्दगी का तरीका है, प्राकृतिक जीवन को सुधारने तथा सुन्दर बनाने की प्रक्रिया ही संस्कृति है।

इसी सन्दर्भ में आगे सभ्यता का अर्थ और संस्कृति से उसका अन्तर स्पष्ट करना भी आवश्यक हो जाता है।

५- <u>संस्कृति और सभ्यता :</u>

सभ्यता का अर्थ है सभा में बैठने की योग्यता। सभ्यता सामाजिक विधि तथा निषेध पर जोर देती है। सभा में शिष्टाचार के नियमों का पालन किया जाता है, सामाजिक भावना का अनुभव किया जाता है। अतएव सभ्यता शब्द शिष्टाचार के नियमों के साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व, सामाजिक प्रतिबन्ध, सामाजिक आचरण का भी निर्देश करती है।"[51]

ईश्वर की बनाई हुई सृष्टि के अन्तर्गत प्राणधारी जीवों का उच्च स्थान है। उन प्राणधारियों के बीच में भी मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। वेद में मनुष्य को " अमृतस्य पुत्रा: " और कुरान में अशरफुल मख़लूकात " कहकर उसकी श्रेष्ठता को पुष्ट किया है। वास्तव में बुद्धि एवं विवेकपूर्ण होने के कारण मनुष्य ही श्रेष्ठ विचारों को धारण करने की क्षमता रखता है। मनुष्य के द्वारा उपार्जित यही आचार-विचारों की परम्परा,सभ्यता और संस्कृति को जन्म देती है। इसी आचार परम्परा से संस्कृति और विचार परम्परा से सभ्यता का जन्म होता है।

सभ्यता मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखती है और संस्कृति आत्मा से। अत: जितना ही सभ्यता मनुष्य को सात्विक बनाने का प्रयत्न करती है उतना ही वह संस्कृति के क्षेत्र में आगे बढ़ता है। संस्कृति की ही भांति विद्वानों ने सभ्यता को भी परिभाषित करने का प्रयास किया है।

अंग्रेजी साहित्य में "संस्कृति " शब्द का पर्यायवाची " सभ्यता " शब्द माना गया है। यह कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कुलतुरा ( Cultura ) शब्द से निकला है और कल्चर में भी वही धातु है जो एग्रीकल्चर में। अत: इसका भी अर्थ पैदा करना या सुधारना है।[52]

समाज विज्ञान के विश्वकोश में कल्चर (Culture ) की परिभाषा इस प्रकार है-" इसमें पैतृक निपुणताएं, श्रेष्ठताएं, क्रमागत प्रक्रिया, आदर्श, विशेषताएं सम्मिलित रहती हैं[53]।

श्री रामचन्द्र वर्मा के अनुसार " सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक सिद्धियों का मापदण्ड है और संस्कृति उसकी आन्तरिक तथा मानसिक सिद्धियों का[54]। डा० देवराज ने " कला-कौशल के तन्त्रों और तरीकों जिनके द्वारा मनुष्य अपनी मूल इच्छाओं तथा जरूरतों को सरलतापूर्वक पूरा करता है कि समष्टि को सभ्यता कहा है[55]।

डा० द्वारका प्रसाद सक्सेना के मतानुसार सभ्यता को मानव के विकास की

समस्त चेष्टाओं का बाह्य रूप कहा जा सकता है और संस्कृति उनका आन्तरिक रूप है[५६]। डा० प्रसन्नकुमार आचार्य संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से और सभ्यता का सम्बन्ध मानवीय कार्यकलापों से मानते हैं। उनके अनुसार सभ्यता शब्द भौतिक विकास का समानार्थक है, सभ्यता, सांस्कृतिक विचारधारा का बाह्य क्रियात्मक रूप है[५७]। डा० कमला प्रसाद पाण्डेय का मत है कि " संस्कृति जीवन बोध का पर्याय है और सभ्यता उसको कार्यरूप में परिणत करने का माध्यम है[५८]। डा० रामरतन भटनागर के अनुसार " संस्कृति भावमय और ज्ञानमय है, सभ्यता कर्ममय[५९]।"

सभ्यता का सम्बन्ध सामाजिक शिष्ट विचारों से है। इस प्रकार मनुष्य की भौतिक उन्नति ही सभ्यता है तथा आत्मिक उन्नति संस्कृति है। मनुष्य के बोलचाल का तरीका, वेश-भूषा, खान - पान, रहन - सहन का ढंग ही सभ्यता है। सभ्यता किसी भी समाज के जीवन जीने की विशिष्ट कला को कहते हैं। सभ्यता नष्ट हो जाती है केवल उसका नाम रह जाता है लेकिन संस्कृति निरन्तर विकास करती रहती है।

संस्कृति और सभ्यता की पारस्परिक एकता तथा भिन्नता के प्रश्न को लेकर विद्वानों में मतमतान्तर रहे हैं। किसी ने दोनों में भिन्नता और किसी ने समानता दिखाने का प्रयास किया है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। और कुछ भिन्नता होने की स्थिति में भी उनमें परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि ऐसा आभास होता है जैसे एक दूसरे के बिना उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उनके विकास क्रम का इतिहास भी इसी रूप में आगे बढ़ा।

आरम्भ में मनुष्य कबीलों में रहा करता था। यही कबीले पहले जंगलों तथा गांवों फिर राज्यों और तदनन्तर राष्ट्रों के रूप में विकसित हुए। जिन कबीलों ने सर्वप्रथम जंगलों को साफ करके उन्हें कृषि योग्य बनाया, वे उसके स्वामी कहे गये और जो उनके भौगोलिक प्रदेश में बाद में आये वे दास कहलाये। कृषि के

बाद मनुष्य की प्रवृत्ति पशुपालन की ओर हुई और उसने उपयोगी पशुओं का पालन शुरू किया और अन्य मानव समूहों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने मिलकर अपना एक शक्तिशाली संगठन बनाया और आत्म रक्षा के लिये नए यन्त्रों तथा औजारों का आविष्कार कर सभ्यता को जन्म दिया।

इस प्रकार मनुष्य ने अपने आखेट कुलीन जीवन से क्रमशः कृषि, पशुपालन फिर यांत्रिक जीवन में प्रवेश किया। फिर समाज में सद्भाव की प्रवृत्ति के कारण उसने आग, पानी और भूमि की उपयोगिता की खोज करके अपना आर्थिक विकास किया तथा व्यवहारोपयोगी उपकरणों की किस्मों में सुधार किया। साथ ही कृषि तथा पशुपालन के पुराने साधनों को उन्नत किया। बुद्धि प्रवण होने के कारण मनुष्य ने अपने जीवन क्रम के इतिहास में जो कुछ खोजा उपलब्ध किया और आविष्कार तथा निर्माण किया। वही उसकी सभ्यता हुई। मनुष्य में इस सभ्यता का उदय तब हुआ जब वह अपने यान्त्रिक जीवन से उभर कर समाज सापेक्ष हुआ और सोचने - विचारने के योग्य बना। व्यक्ति की इस सामूहिक विचार चेतना ने सभा को जन्म दिया और इस सभा में बैठने की समझ रखने के कारण उसे सभ्य कहा गया।

इस प्रकार धीरे - धीरे जंगलों तथा पर्वतों में बिखरे कबीले अपने-अपने समुदायों के रूप में विकसित हुए और मैदानी भागों की ओर बढ़े। वहां उनका पारस्परिक सम्मिश्रण हुआ और उन्होंने जीवन के लिये अधिक सुकर कला-कौशल का निर्माण किया और उनका आदान - प्रदान किया।

इन कबीलों ने एक भाषा और नैतिक आदर्शों का निर्माण कर अपने सांस्कृतिक जीवन में प्रवेश किया। इस प्रकार अपने आर्थिक और सामाजिक विकास क्रम में मनुष्य में सुरुचि, सद्भाव, अनुराग, सौन्दर्य, नैसर्गिक प्रवृत्तियों का निरन्तर परिष्कार तथा प्रसार किया। उसकी यही परिष्कृत अभिरुचि संस्कृति है। इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति का साथ - साथ निर्माण कर मनुष्य ने अपने अस्तित्व

के इतिहास का निर्माण किया।

5- भारतीय संस्कृति का अर्थ एवं विशेषताएं अथवा तत्व :

भारतीय संस्कृति की युक्ति- युक्त परिभाषा देना बहुत कठिन है। सामान्यतः भारत में रहने वालों के सर्वांगीण संस्कार सुधार और विकास की प्रक्रिया को भारतीय संस्कृति कह सकते हैं। जिसकी सीमा में रहन - सहन, खान - पान, वेश - भूषा, साहित्य कला, दर्शन, राजनीति, धर्म, आचार-व्यवहार, नीति-रीति, रुचि, अर्थ आदि व्यक्ति से सम्बद्ध सभी तत्व आते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार " संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुन्दर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है[50]। "

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है कि जो न तो एक काल में विकसित हुई और न रूढ़िवादी ही बनी रही। बल्कि यह एक रुपीली शिला के समान खड़ी रही अन्य संस्कृतियां लहरों के रूप में इससे टकराती रहीं और अपने प्रभाव के कुछ अंश इस पर छोड़ती चली गयीं जिसको इसने आत्मसात कर लिया। भिन्न - भिन्न समय पर भारत ने विदेशियों के लिये अपने दरवाजे खोले और उन्हें आश्रय दिया। अपना कुछ विशेष अंश उन्हें दिया और कुछ तत्व उनसे ग्रहण किया। हमारी संस्कृति ने दूसरों की दी हुई विशेषताओं को अपना ही अंग बना लिया तथा उन्हें इस हद तक अपने दामन में समेटा कि वे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर इसी का अंग बन गये। इस विकसित भारतीय संस्कृति को हम काल विशेष की सीमा में नहीं बांध सकते क्योंकि इसका विभाजन ऐतिहासिक दृष्टि से तो फिर भी ठीक मालूम होता है लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से हम इसे विभाजित नहीं कर सकते कि अमुक समय हिन्दू संस्कृति का है अमुक इस्लाम से सम्बन्धित है और यूरोप से सम्बन्धित है। बल्कि यह तो एक नदी है जो अपने उद्गम स्थान से चली तो उसका रूप कुछ और था

किन्तु जैसे - जैसे वह आगे बढ़ती गयी उसमें छोटी - बड़ी धारायें मिलती रहीं और वह एक विशाल सागर में परिवर्तित हो गयी । इसका मूल रूप आज भी वही है । हां धार्मिक विचारों के समन्वय, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों के फल-स्वरूप रूप पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है । भारतीय संस्कृति की धारा में सहायक छोटी - छोटी धाराओं के रूप में द्रविड़, शक, पठान, मुगलों और अंग्रेजों ने अपना योग प्रदान किया । भारतीय संस्कृति की कुछ ऐसी विशेषतायें या तत्व हैं जिनके कारण विभिन्न विरोधी धर्मों को भी इसने अपना अंग बना लिया । अतः उन विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है ।

भारतीय संस्कृति के तत्व :

भारतीय संस्कृति पर जिन विद्वानों ने विचार किया है उन्होंने इसके प्रमुख तत्वों का उल्लेख भी भिन्न - भिन्न रूपों में किया है । यहां कुछ विद्वानों के मत के आलोक में भारतीय संस्कृति के तत्वों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है । बाबू गुलाब राय ने भारतीय संस्कृति के जिन तत्वों को स्वीकारा है उनमें मुख्य रूप से— आध्यात्मिकता, परलोक और आवागमन में विश्वास, समन्वय बुद्धि, वर्णाश्रम विभाग, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि, अहिंसा, करुणा, मैत्री और विनय, प्रकृति प्रेम, उत्सव प्रियता, विश्व बन्धुत्व, सनातनता आदि तत्व हैं[६१]।

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार भी संस्कृति चिरन्तर जीवन वाली है, बुद्धि मूलक है, आध्यात्मिकता प्रधान है, सर्वांगीण पुरुषार्थ की कल्याण साधिका है[६२]।

डा० रामजी उपाध्याय के अनुसार संस्कृति के प्रमुख तत्वों में सर्वजनीनता, सर्वांगीणता, देव परायणता, धर्मपरता, आश्रम व्यवस्था, आध्यात्मिकता, कर्मफल और जन्म - जन्मान्तरवाद, सर्वे सुखिनः सन्तु, निःसीमता, सनातनता, कृषि एवं ग्राम की प्रधानता उपरिस्थायिता आदि गुणों की आवश्यकता पर बल है[६३]।

डा० मंगलदेव शास्त्री ने वैदिक संस्कृति का विवेचन करते हुए समष्टि भावना, चातुर्वर्ण्यव्यवस्था, चातुराश्रमव्यवस्था, राजनीतिक आदर्श, वैयक्तिक जीवन, संस्कार, धर्म को उसका आधार माना है[६४]। डा० देवराज ने भारतीय संस्कृति के तत्वों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि किसी साहित्यिक कृति की सांस्कृतिक समीक्षा उसके साहित्यिक मूल्यांकन का ही एक अंग है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण और महाभारत का सांस्कृतिक अनुशीलन कुछ प्रमुख तत्वों के आधार पर किया है। जो नीतिबोधआचार, नैतिक आदर्श, धर्म, राज धर्म, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति सौन्दर्य, शरीर सौन्दर्य, कला विवेचन पुरुषार्थ, आध्यात्मिक समन्वय आदि हैं[६५]।

डा० मुंशीराम शर्मा ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए उसमें संस्कार, योग, चतुर्वर्ण तथा उसकी विकास पद्धति की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है[६६]।

डा० सत्यनारायण पाण्डेय के अनुसार भारतीय संस्कृति की विशेषतायें समन्वयवादिता, उदारता, एकात्मकता, अनेकता, संश्लिष्टता, अवसरानुकूलता तथा गतिशीलता पारमार्थिकता तथा सूक्ष्मता आदि है[६७]।

डा० मदनगोपाल गुप्त के अनुसार भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में ये तत्व सन्निहित हैं—अमृतत्व, आध्यात्मिकता, लक्ष्ययुक्त जीवन, शाश्वत जीवन का चतुस्सूत्रीय जीवन क्रम, सार्वभौम सिद्धान्तों पर आधारित समाज व्यवस्था, कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त, समस्त जड़ चेतन प्रकृति के प्रति एकात्मकता की भावना, लोक मंगल अथवा लोक कल्याण की भावना आदि[६८]।

विभिन्न मतों के आलोक में निष्कर्षतः हम प्रमुख रूप से उन तत्वों को स्वीकार कर सकते हैं जिन्हें सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है जैसे—प्राचीनता, धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वयवादिता, आध्यात्मिकता, पुरुषार्थ एवं वर्णाश्रम

व्यवस्था, अनेकत्व में एकत्व ।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है तथा संसार की उपलब्ध पुस्तकों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। पूर्व वैदिक संस्कृति भी भारत में रही जिसका प्रमाण मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में प्राप्त सिन्धु घाटी की सभ्यता है। द्रविण संस्कृति नागों की संस्कृति थी। उनका अपना दर्शन था। मिस्र, सीरिया, चीन और रोम की संस्कृतियां भी प्राचीन हैं किन्तु सबसे प्राचीन संस्कृति भारतीय संस्कृति ही है क्योंकि वे संस्कृतियां या तो नष्ट हो गयीं जैसे– ग्रीक संस्कृति या वे अन्य संस्कृतियों द्वारा आच्छादित कर ली गईं जैसे– मिस्र, अरबी और अंग्रेजी संस्कृतियों से। किन्तु इनकी तुलना में भारतीय संस्कृति की परम्परा अविच्छिन्न है। इसके सारे संस्कार, अनुष्ठान आज भी वैदिक आधार पर होते हैं।

इसकी दूसरी विशेषता है समन्वय की भावना। भारतीय संस्कृति ने अपनी मान्यता मूल रूप में रखते हुए भी अन्य धर्मों की मान्यताओं का खण्डन नहीं किया। इस संस्कृति में सर्वग्राह्यता रही है। इसने बौद्ध धर्म से समन्वय स्थापित करने के लिये बुद्ध को अवतार मान लिया। बौद्ध अहिंसा को स्वीकृति प्रदान की। भारतीय समन्वयवादिता ने इस्लाम के दृढ़ एकेश्वरवाद तक को आत्मसात करने की चेष्टा की। भले ही उसे वह सफलता नहीं मिली जो अन्य धर्मों के समन्वय में मिली। कबीर और सूफी कवियों पर इसका प्रभाव पड़ा और उन्होंने निराकार ब्रह्म को अपना लिया। परिणाम स्वरूप भक्ति आन्दोलन की वह सन्तुलित दृष्टि आज भी हमारे लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहां जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग और भाषा के विवाद से ऊपर उठकर हमारे सन्त एकजुट होकर मनुष्य मात्र के कल्याण और उसके उन्नयन की चेष्टा में लग गये थे। इसी प्रकार ईसाइयों के इतवार को आर्य समाज ने अपनी पूजा का दिन बनाया। इसी समन्वय की भावना के तहत समय-समय पर आने वाले धर्मों से भारत ने उनके रहन - सहन, वेशभूषा और सभ्यता से समन्वय स्थापित किया। इस प्रकार हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के

मनीषियों की दृष्टि समन्वयात्मक रही । जिस सत्य को उन्होंने प्राप्त किया उसे तो ग्रहण किया ही उसके अतिरिक्त दूसरे देशों या सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को भी आदर की दृष्टि से देखा । उसमें जो सत्य ग्रहणशील था उसे अपनाया और अपनी संस्कृति में उसका समावेश किया । इसी भावना के कारण भारत में मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है । शंकराचार्य ने दार्शनिक दृष्टि से पुरुष प्रकृति के समन्वय की कल्पना अर्धनारीश्वर में की । विष्णु दक्षिण के देवता थे तथा शिव उत्तरी पर्वतों के देवता माने जाते थे । दोनों को त्रिमूर्ति में स्थान दिया गया ।

भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता उसकी धार्मिक सहिष्णुता है । ये प्रवृत्ति इतनी प्रबल रही कि सबको धार्मिक विश्वास और पूजा विधि की स्वतन्त्रता दी गयी । ऋग्वेद में ही कहा गया " एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति " अर्थात् एक सत्य है जिसका विद्वान् अनेक रूपों में वर्णन करते हैं । इसी सहिष्णुता के कारण यह संस्कृति सामासिक हो गयी । आर्यों ने अपने से भिन्न अनार्यों और विधर्मियों की उपासना विधियां भी अपनाईं । प्राचीन काल में उसने ईरानी, यूनानी, शक, यहूदी, कुषाण, हूण आदि जातियों को आत्मसात कर लिया इसके अतिरिक्त उसने दूसरी संस्कृतियों के सुन्दर तत्वों को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया । इसी दृष्टि से भारतीय ज्योतिष ने यूनानी प्रभाव को स्वीकार किया और उससे सीखा[६६]।

परमात्मा के अद्वैत स्वरूप को मानकर भिन्न - भिन्न देवी - देवताओं तथा धार्मिक विचारों को भारत ने अपनाया । भिन्न - भिन्न शासकों ने भी धार्मिक सहिष्णुता को अपनी नीति का प्रमुख अंग बनाया । " कलिंग युद्ध के पूर्व अशोक ब्राह्मण मतावलम्बी था । आखेट और पशु वध में उसे विशेष रुचि थी । परन्तु कलिंग युद्ध के पश्चात् अपने राज्याभिषेक के नवें वर्ष उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था । उसने इस धर्म का प्रचार भी करवाया था[७०]।" इसी धार्मिक एकता और उदारता की भावना को लेकर उसने देश - विदेशों में अपने दूतों को भेजा ।

" कनिष्क की मुद्राओं पर ईरानी, यूनानी और भारतीय देवताओं के चित्रांकन इस बात के द्योतक हैं कि कनिष्क में धार्मिक सहिष्णुता थी ।[71]" कनिष्क की इस नीति ने उस वैदिक भावना को प्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित कर दिया जिसके अन्तर्गत विभिन्न स्वरूप एक ही शक्ति के रूप हैं। गुप्त राजाओं ने भी वैष्णव, शैव, बौद्ध मतों को अपनाया। " सम्राट स्कन्द गुप्त वैष्णव धर्म का अनुयायी होते हुए भी उसने अपने राजकुमारों की शिक्षा - दीक्षा के लिये बौद्ध आचार्य वसुबन्धु को नियुक्त किया था। तत्कालीन अभिलेखों और साहित्य में इस आशय के स्पष्ट संकेत हैं कि गुप्त सम्राट वैष्णव होने पर भी अन्य धर्मों के प्रति उदार और सहिष्णु थे। वे बौद्ध मठों, विहारों, जैन मन्दिरों, ब्राह्मण तथा हिन्दू देवस्थानों को बिना भेदभाव के दान देते थे।[72]" हर्षवर्द्धन ने भी इसी सहिष्णुता को अपनाया। मध्यकाल में भी इस भावना का तिरस्कार नहीं किया गया। पूरा भक्ति आन्दोलन धार्मिक सहिष्णुता के कारण ही सफल हो सका। अकबर का 'दीन-ए-इलाही' धर्म उसकी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देता है। आज भी भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है।

इसकी चौथी विशेषता है आध्यात्मिकता— इसके अन्तर्गत जीव, ईश्वर, जगत् और माया पर विचार किया गया। आत्मा को सर्वव्यापक माना गया। भारतीय संस्कृति की दृष्टि स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता की ओर विशेष रही है। इसी लिए असत् से सत्, तम से ज्योति और मृत्यु से अमृतत्व की ओर गमन करने की प्रार्थना की गई है। हमारे यहां आध्यात्मिकता मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से परे हैं। यह आत्मा का साक्षात् अनुभव करना चाहती है, हमारे यहां दर्शन का अर्थ आत्मा का दर्शन है[73]। भारतीय संस्कृति में धर्म और आध्यात्मिकता विशिष्ट स्थान रखती हैं। " वास्तव में धर्म सांस्कृतिक उत्तराधिकार के रूप में वह अमूल्य निधि है जिसके सहारे कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठतम ऊंचाई तक अपने व्यक्तित्व का सफल विकास कर सकता है[74]। भारतीय संस्कृति ने मनुष्य की भौतिक प्राप्ति के साथ ही आध्यात्मिक प्राप्ति पर भी बल दिया गया। धार्मिक ग्रन्थों में इसी

प्रणालियों सिद्धान्तों पर स्पष्ट प्रकाश डाला गया और बताया गया कि मानव संस्कारों के द्वारा अपने को उत्तम बना सकता है। इसी आध्यात्मिकता की भावना ने अर्थ को जीवन मूल्य नहीं बनने दिया और काम को अपनी मर्यादा से बहुत आगे बढ़ने नहीं दिया। इसी कारण आज पश्चिम का अस्तित्ववाद हमारी संस्कृति की आस्था से पराजित हो जाता है।

भारतीय संस्कृति की पांचवीं विशेषता पुरुषार्थ एवं वर्णाश्रम व्यवस्था है। शारीरिक मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार की शक्तियों पर समान बल दिया गया। हमारे मनीषियों ने कार्य विभाजन को बड़ा महत्व दिया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण बनाये गये। जिस प्रकार शरीर के अंगों में ऊंचाई - नीचाई नहीं होती उसी प्रकार इन वर्णों में भी कोई अन्तर नहीं था। ये विभाजन कार्य के आधार पर किया गया था। किन्तु कालान्तर में यह जाति विशेष के लिये रूढ़ हो गया। जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माने गये। मन शरीर और आत्मिक विकास के लिये जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया था जिसकी महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। मनुष्य पहले ब्रह्मचारी रहकर धर्म शक्तियों का संचय करे, फिर गृहस्थ होकर अर्थ, काम को चरितार्थ करने में संलग्न रहे, इसके बाद वह वानप्रस्थी और संन्यासी होकर लोकसेवा करते हुए मोक्ष प्राप्त करे, यही आश्रम धर्म का अभिप्राय था। कर्मों की व्यापकता इतनी थी कि आचार संस्कार निष्काम - सकाम सभी इसके भीतर समा जाते थे।

हमारी संस्कृति की छठी विशेषता है अनेकत्व में एकत्व की भावना। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति एक है। बाह्य रूप में चाहे अन्तर हो किन्तु कश्मीर से कन्याकुमारी तक संस्कार एक ही है। वेद, पुराण देवताओं के सम्बन्ध में आधार एक है। अनेकता में एकता की उपलब्धि इसकी अपनी विशेषता है। भारत के अधिकतम मनीषियों और कलाकारों ने अपने कार्यों में अविच्छिन्न सांस्कृतिक एकता की भावना को प्रश्रय दिया। राम - कृष्ण के चरित्र और उनकी मान्यता भी

देश की एकता का परिचायक बन गयी । " आत्मा की एकता के आधार पर हमारे यहां अनेकता में एकता देखी गयी । हमारे विचारकों ने सभी वस्तुओं में सत्य के दर्शन किये हैं । भारतीय संस्कृति की प्रवृत्ति सब धर्मों को समान रूप से आदर देने की रही है । सब देवताओं को किया गया नमस्कार केशव के प्रति ही जाता है । भिन्न - भिन्न दृष्टि से देखकर मूल्यांकन करना हमको एकता की ओर ले जाता है[24]।

संस्कृति की सातवीं विशेषता उसका बुद्धिमूलक होना है । परिवर्तित समय के अनुसार भारतीय संस्कृति ने बुद्धि, विवेक के बल पर अपनी मान्यताओं में परिवर्तन स्वीकार किया । " भारत का बौद्धिक तथा सांस्कृतिक वाङ्मय इतना व्यापक है कि उसमें सभी प्रकार के वाक्य मिल सकते हैं । किस परिस्थिति में किस वाक्य की आवश्यकता है यह रूढ़िवादी नहीं वरन् बुद्धिवादी ही समझ सकता है । मनु ऐसे ही बुद्धिवादी को धर्मवेत्ता कहते हैं[25]। इस बौद्धिकता के बल पर ही विभिन्न धर्मों को एकता के सूत्र में बांधने में यह संस्कृति सफल हो सकी । हमारे समाज की जटिलताओं चाहे वे खान - पान से सम्बन्धित हों चाहे रहन - सहन से चाहे रीति-रिवाज से उन्हें बुद्धिवाद से ही सुलझाया गया । समाज के धर्म के नियम इसी बुद्धिवाद की कसौटी पर कसे गये ।

भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है परलोक आवागमन और अवतारवाद में विश्वास । भारत के सभी धर्मों चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक, अथवा सगुण ईश्वर के उपासक हों, या निर्गुण ईश्वर के,सभी ने परलोक आवागमन में विश्वास प्रकट किया है । इसी कारण वह जीवन की विषमताओं से परेशान होकर जीवन से भागने की बात नहीं सोचता बल्कि वह उसे पूर्व जन्म के कर्मों का फल मानता है । भारतीय संस्कृति सृष्टि को अनादि और ईश्वर की विभूति बतलाती है । संसार में मनुष्य कर्मबद्ध होता है । मनुष्य को कर्मों का भोग करना आवश्यक बतलाया गया है । मनुष्य अपने जीवन में कुछ कर्मों का भोग करता है और कुछ कर्म संचित रह जाते हैं । जिनका भोग करने के लिये उसे फिर जन्म लेना पड़ता है । और कुछ फिर

भी संचित रह जाता है तो उसे फिर संसार में आना पड़ता है। संचित कर्मों के समाप्त होने के बाद ही जीव ( मनुष्य ) को मुक्ति मिलती है। हमारे यहां इस आवागमन से मुक्ति का साधन निष्काम कर्म भाव को माना गया है। गीता में इसीलिये कृष्ण ने भी बिना फल की चिन्ता किये कर्म करने का उपदेश दिया है। ईश्वर की भक्ति द्वारा उसकी अनुकम्पा प्राप्त करके मुक्ति की बात भी हमारे यहां कही गयी है। भक्तिकालीन साहित्य की प्रत्येक धारा ने इसे ग्रहण किया। चाहे कबीर हों चाहे सूर, तुलसी सभी ने एक स्वर में ईश्वर भक्ति के माध्यम को मुक्ति का साधन बताया है। अवतारवाद भी भारतीय संस्कृति की मान्यता है। ऐसा सभी धर्मों में माना गया है कि ईश्वर अपने बन्दों से प्रेम भावना रखता है। और जब - जब वे अपने मार्ग से हटने लगते हैं, तब वह एक - न - एक अवतार, देवता, पैगम्बर भेजता है। इसी परम्परा के अन्तर्गत राम के आदर्श चरित्र की सृष्टि की गयी। राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया और यहां तक कि इसकी समन्वयात्मकता ने बुद्ध को भी अवतार मान लिया।

भारतीय संस्कृति जब से जन्मी है तब से आज तक संस्कार पालन उसकी विशेषता रही है। प्राचीन आर्यों ने सारा जीवन धर्म में बांध रखा था। जिस प्रकार जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया था उसी प्रकार उसको शरीर और मन के पूर्ण विकास और शुद्धि के लिये सोलह संस्कार बताए गये। मनुष्य का प्रारम्भ गर्भाधान से होता है और अन्त मृत्यु से। अतः गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कार समय - समय पर पूरे करना आवश्यक है।

सौन्दर्यप्रियता भी भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। इसके अन्तर्गत प्रकृति सौन्दर्य और कलात्मक सौन्दर्य की विवेचना की जाती है। भारत पर प्रकृति की कुछ विशेष कृपा रही है। सारी ऋतुएं अपने समय पर आती जाती हैं। मुनि, ऋषि वनों में रहकर प्रकृति के विस्तृत वातावरण में शिक्षा - दीक्षा का कार्य सम्पन्न करते थे। प्रकृति कवियों को सदा से प्रेरणा देती आई है। प्रकृति सौन्दर्य भारतीय साहित्य का विशेष अंग है। शारीरिक सौन्दर्य भी

शारीरिक सौन्दर्य भी प्राचीन काल से चलता आया है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में प्राप्त अवशेष इसके साक्षी हैं। स्त्रियाँ सदा सौन्दर्य प्रिय रही हैं। भारतीय कलाओं में भी उसकी सौन्दर्यप्रियता झलकती है। प्राचीन मन्दिर, गुफाएं आदि सौन्दर्यप्रियता के प्रमाण हैं।

भारतीय संस्कृति उपरोक्त विशेषताओं के कारण ही विचारणा और चैतन्यता को प्रस्फुटित कर सकी है। भारत का विश्वास "सर्वे सुखिन: सन्तु" में रहा है, जो कुछ सत्य, शिव और सुन्दर हो वह सबके लिये हो। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वह आज भी संसार में विद्यमान है जबकि अनेक संस्कृतियां विलुप्त हो गयीं। इस देश पर अधिकार करने के उद्देश्य से आने वाले विदेशियों के साथ संघर्षों के बीच भी भारतीय संस्कृति की विशेषता पूर्ववत् बनी रही, सम्भवत: इसी कारण संघर्ष की चुनौतियों को स्वीकार कर सकी। यह विशिष्ट संस्कृति परिस्थिति परम्परा और जातीयता की सम्मिलित शक्तियों का प्रतिफलन है। भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता तथा आत्मा की अखण्डता एवं एकत्व की धारणा मतों, सम्प्रदायों तथा विभिन्न धर्मों की सार्वभौमिकता, सार्वभौमिक धर्म की समर्थक, सार्वभौम सत्ता की राजनीतिक धारणा तथा विश्व बन्धुत्व की परिकल्पना इस संस्कृति की आधार शिला है। इस संस्कृति की गोद में पलकर एक आदर्श मानवता का विकास हुआ जिसमें अहं तथा जातीयता का लेशमात्र भी नहीं है। उसके आदर्श हैं विष्णु, राम, बुद्ध, सीता, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि। इन सारे आदर्शों की अभिव्यक्ति समय - समय पर विद्वानों ने कलाओं और साहित्य में की है। यह सभी विचार, विश्वास वास्तव में विभिन्नताओं से भरे देश में एकता और अखण्डता बनाये रखने में सहायक हुए हैं।

"एकाकी मनुष्य में स्वभाव से जो भाव उठते हैं उनके मूल में अहं की – स्वार्थ की प्रेरणा होना अनिवार्य है। अत: उनकी परिधि आत्मा, साधना तक ही सीमित रहती है स्वतन्त्र नहीं। इसीलिये उसे अपने राग - विरागों में संयम और समन्वय की आवश्यकता पड़ती है, उनको व्यष्टि के तल से उठाकर समष्टि तक

पर उठाना पड़ता है। अपने को दूसरे की आकांक्षा में देखना पड़ता है। यहीं संस्कृति का जन्म होता है।[77] इस प्रकार सामाजिक जीवन में मनुष्य केवल उपयोगी वस्तुओं से ही सम्बन्ध नहीं रखता, वह अपने को ऐसी अर्थपूर्ण चीजों से भी सम्बद्ध करता है जो सीधे उसके अस्तित्व की पशु सुलभ आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती। इसके अतिरिक्त मनुष्य " अशरफुल मखलूकात " ( उत्तम प्राणी ) होने के नाते अपने चारों ओर के वातावरण तथा दृष्टि के सम्मुख फैले हुए समस्त ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझ लेना चाहता है और उससे सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहता है। यानी " मनुष्य केवल उपयोगिता की परिधि में जीवित नहीं रहता। उसमें कुछ ऐसी रुचियां भी पायी जाती हैं जो उपयोगिता का अतिक्रमण करती हैं। वह बौद्धिक जिज्ञासा तथा सौन्दर्य की भूख से भी पीड़ित होता है और इस प्रकार एक सांस्कृतिक प्राणी के रूप में जन्म लेता है।[78]

मनुष्य द्वारा ही संस्कृति का निर्माण होता है। आज " कल्चर्ड " शब्द सामान्यतः आधुनिक सुख - सुविधाओं से सम्पन्न ठाट - बाट और वैभवपूर्ण जीवन बिताने वाले मनुष्य के लिये प्रयुक्त होता है। किन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि शान - शौकत का जीवन ही सुसंस्कृत कहलाता है तो वे आदिवासी जन - जातियां क्या असभ्य कहलायेंगी जिनके पास आधुनिक प्रगति का प्रकाश नहीं पहुंचा है? यदि यह मापदण्ड है तो हमारे वे मनीषी जो आध्यात्म की खोज में एकांतवासी बने वनों में ही रहने लगे और हमें एक विराट सांस्कृतिक परम्परा दी, वे सब भी क्या अनकल्चर्ड ही थे? जिन व्यक्तियों के पास खाने को नहीं, वस्त्र नहीं जो अभावों में जीते हैं, सहज ही उन्हें असंस्कृत कह दिया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में जहां आधुनिकता का प्रकाश अभी नहीं पहुंचा है क्या उनकी अपनी कोई संस्कृति नहीं? कोई पहचान नहीं? या कि मात्र जंगलों में रहने के कारण ही वे असंस्कृत हैं? यथार्थ तो यह है कि आधुनिक वेशभूषा धारण करने वाले, यूरोपिय ढंग को जीवन बिताने वाले भी मन और विचारों से असंस्कृत हो सकते हैं। वास्तव में वे सभ्य तो माने जा सकते हैं लेकिन सुसंस्कृत नहीं कहला सकते।

वास्तव में जिस व्यक्ति के अन्दर दया, माया, प्रेम, सौम्यता, विनम्रता एवं सहनशीलता आदि गुण हों वही सुसंस्कृत कहलाने का अधिकारी है।

वस्तुतः संस्कृति उन गुणों का सामूहिक रूप है जिन्हें मनुष्य अपनी बुद्धि, स्वभाव, मनोवृत्तियों को परिमार्जित कर अर्जित करता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य सुसंस्कृत होता है। उस हद तक जहां तक वह पशु सुलभ जीवन से ऊपर उठता है। वह व्यक्ति उतना ही अधिक सुसंस्कृत होगा जो उन सभी वस्तुओं से कम - से- कम प्रभावित होगा जिनका सम्बन्ध उसके अस्तित्व से होगा। अतः हमें कह सकते हैं कि सुसंस्कृत मनुष्य वह है जो मन - वचन, आचार - विचार, बुद्धि, कर्म, व्यवहार से परिष्कृत हो चुका हो।

संस्कृति शब्द से उन सभी मानवीय चेष्टाओं की अभिव्यक्ति होती है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक गतिविधियों का आधार पाकर एक सुस्पष्ट परम्परा का निर्माण करती है। किसी भी देश की संस्कृति के निर्माण में उस देश की सामाजिक व्यवस्था, भौगोलिक स्थितियां, प्राकृतिक प्रभाव, नैसर्गिक नियम आदि गुण मुख्य रूप से सहायक होते हैं। इन गुणों का मानवीय मन पर पड़ा प्रभाव ही व्यक्ति का संस्कार बन जाता है। यही संस्कार जाति विशेष के रहन - सहन, बोल - चाल, व्यवहार, आचार - विचार में यहाँ तक कि साहित्य और कला के विभिन्न रूपों में प्रतिबिम्बित होते हैं। मानवीय संस्कार यथार्थ की टकराहट और संघर्ष के माध्यम से ही अधिक परिष्कृत होते हैं और मूर्त रूप में अभिव्यक्त होते हैं। मनुष्य के इन संस्कारों की बाहरी सीमा है ' अर्थ ' जिसके अन्तर्गत राजनीति और समाज आते हैं तथा आन्तरिक सीमा क्षेत्र है ' काम ' जिसमें सौन्दर्य बोध और बौद्धिक प्रज्ञा जन्म लेती है जो उसे विराटता प्रदान करती है। इसीलिये संस्कृति व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में क्रियाशील होती हुई किसी भी समाज में मूलतः चार स्तरों पर एक साथ अभिव्यक्त होती है—समाज, राजनीति, कला एवं बौद्धिकता। इस सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त साधन है साहित्य। आज का साहित्य जीवन की समग्रता से जुड़ा रहने के कारण अपने को मध्य कुलीन

साहित्य की भांति राजनीति और समाज से कटता नहीं । मध्ययुग तक साहित्य सामन्तवाद, धर्म, वीरता और श्रृंगार के इर्द - गिर्द ही चक्कर लगाता था । किन्तु समकालीन साहित्य जीवन के उन स्तरों के महत्व को पहचानता है । उसकी स्थापना करता है इसीलिये बीसवीं शताब्दी का पूरा साहित्य विशेषकर भारतीय समाज के संघर्ष और परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है । साहित्य में इस सांस्कृतिक प्रतिबिम्बन के द्वारा ही हम देश के बदलते परिवेश, उसके संघर्ष, उसकी समस्याओं के व्यापक होते संस्कारों का निर्माण, सृजन प्रक्रिया का ज्ञान बहुत स्पष्ट और सहज रूप में प्राप्त करते हैं । चूंकि बीसवीं शताब्दी संक्रमण का काल है विशेष कर उसका उत्तरार्द्ध अर्थात् महायुद्धों के बाद का । इसीलिए युगीन संस्कृति का बना बनाया साफ़ सुथरा रूप हमें इस युग की कविता में नहीं मिलता लेकिन सांस्कृतिक जागरण का वह सारा संघर्ष अवश्य मिलता है जो वैज्ञानिक युग की अधिक जागृत प्रज्ञा ने किया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय परिवेश में वह संघर्ष अपनी विशिष्टता के साथ प्रकट हुआ है । इस संघर्ष को स्वतन्त्रता के बाद की कविता ने बड़ी सजगता के साथ पकड़ा और उसे सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की । हमारी संस्कृति की यह एक बहुत पुरानी परम्परा रही है कि किसी बदलती परिस्थितियों के थपेड़ों को सहते हुए भी वह अपना अस्तित्व बनाए हुए है । बीसवीं शताब्दी में भी पाश्चात्यीकरण एक चुनौती बनकर उसके सामने उपस्थित हुआ । पाश्चात्य संस्कारों के साथ अपने आदर्शों और संस्कारों के समीकरण की समस्या आजादी से पूर्व इतनी नहीं थी जितनी स्वतन्त्रता के बाद हो गयी । जब हम आजादी के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में संलग्न थे तो प्रकारान्तर से हम यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति से भी लड़ रहे थे । किन्तु अंग्रेज जाते - जाते जो पाश्चात्य संस्कार छोड़ गये हैं या जिनका प्रभाव विज्ञान के कारण आ गया है उन्हें आज हमारे लिये तिरस्कृत करना असम्भव हो गया है । वे हमारे व्यक्तित्व में इतने रच बस गये हैं कि हम उन्हें आसानी से छोड़ ही नहीं सकते । स्वतन्त्रता के बाद का काव्य इन्हीं परिस्थितियों को समेट कर सांस्कृतिक विकास क्रम को प्रतिबिम्बित करता है ।

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

१- हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश : डा० हरदेव बाहरी, पृष्ठ- ४०८

२- आक्सफोर्ड शब्दकोश : पृष्ठ - ४३०

३- स्टैफेन जे ब्राउन : वर्ल्ड आफ इमेजरी, पृष्ठ- १-२

४- रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा, पृष्ठ- ३५२

५- डा० उमा अष्टवंश : छायावादोत्तर काव्य में बिम्ब विधान, पृष्ठ-२

६- Encyclopaedia Britannica- Vol. XII, Page 103.

७- डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृष्ठ-५५८

८- It is a picture made out of words .... it conveys to our imagination more than the accurate reflection of our external reality. C. Day Leues. 'The poetic image', Page 18.

९- रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-२, पृष्ठ- १

१०- नगेन्द्र : काव्यबिम्ब, पृष्ठ- ५

११- "An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time". Ezra Pound 'Make it new', Page 33.

१२- 'Poetry in a general sense may be defined to be expression of imagination." Shelly 'A defence of poetry'. Page 161.

१३- महादेवी वर्मा : दीपशिखा की भूमिका, पृष्ठ-७

१४- रामधारी सिंह दिनकर : चक्रवाल की भूमिका, पृष्ठ-७३

१५- केदारनाथ सिंह : तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १८४

१६- रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग -२, पृष्ठ-१

१७- धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ- ५१४

१८- आई० ए० रिचर्ड्स - प्रिन्सिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटीसीज़्म, पृष्ठ- १५२

१९- सी० डे० लुइस : द पोएटिक इमेज, पृष्ठ- ५५

२०- डा० ओमप्रकाश अवस्थी : नई कविता रचना प्रक्रिया, पृष्ठ- ११४

२१- डा० नगेन्द्र : काव्य बिम्ब, पृष्ठ- २६, २७, ३३

२२- डा० सुधा सक्सेना : जायसी की बिम्ब योजना, पृष्ठ- १७५

२३- डा० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृष्ठ- ३८४

२४- धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश भाग-१, पृष्ठ- ८६८

२५- गुलाब राय : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- ३

२६- आद अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ- १३

२७- आक्सफोर्ड शब्दकोश

२८- Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, Art, Morals, law, custom and any other copabilitie s and habits acquired by man as a member of society.
ई०बी० टायलर - प्रिमिटिव कल्चर भाग-१, पृष्ठ- १

२९- उद्धृत - डा० प्रेमदत्त शर्मा : प्रसाद काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ- ३

३०- ई० ए० एडम्बेवर : एन्थ्रोपालाजी, पृष्ठ- २५२

३१- - वही -

३२- इन्साइक्लोपीडिया आफ द सोशल साइंसेज, पृष्ठ- ६२१

३३- ऋग्वेद - ५।७६।२

३४- यजुर्वेद ७।१४

३५- ऐतरेय ब्राह्मण ६।५।१

३६- डा० मंगलदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का विकास, भाग-१, पृष्ठ- ४

३७- डा० देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ- २६

३८- डा० बलदेव प्रसाद मिश्र : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- ४

३९- - वही - पृष्ठ- ५

४०- डा० गौरीशंकर भट्ट : संस्कृति एक समाज शास्त्रीय ----- समीक्षा, पृष्ठ- ११

४१- डा० मदन गोपाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ०-१

४२- प्रेमदत्त शर्मा : प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ- ४

४३- बैजनाथ पुरी : भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृष्ठ- १

४४- गुलाब राय : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- ४

४५- डा० आजम अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ - १४

४६- रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ- ६५३

४७- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना : कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ०-२८१

४८- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, पृष्ठ- १

४९- डा० सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृष्ठ- २०

५०- डा० रामजी उपाध्याय : भारतीय संस्कृति का उत्थान, पृष्ठ- ४

५१- डा० प्रसन्नकुमार आचार्य : भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, पृष्ठ- ३

५२- डा० आजम अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ- १३

५३- इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंस : भाग-३,४, पृष्ठ- ६२१

५४- रामचन्द्र वर्मा : शब्द साधना, पृष्ठ- ३४३

५५- देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ- १६७

५६- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना : कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ०-३०७

५७- डा० प्रसन्न कुमार आचार्य : भारतीय संस्कृति और सभ्यता, पृष्ठ- ३,४

५८- डा० कमला प्रसाद पाण्डेय : छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ- ४२

५९- डा० रामरतन भटनागर : सामयिक जीवन और साहित्य, पृष्ठ- ३४१

६०- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृष्ठ- ६३

६१- बाबू गुलाब राय - भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १६ - १८

६२- डा० बलदेव प्रसाद मिश्र : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १२७ - १४६

६३- रामजी उपाध्याय : भारतीय संस्कृति का उत्थान, पृष्ठ- ११ - १३

६४- मंगलदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का विकास भाग-१, पृष्ठ- १२५

६५- देवराज : भारतीय संस्कृति महाकाव्यों के आलोक में, पृष्ठ- ९५

६६- डा० मुंशीराम शर्मा; वैदिक संस्कृति और सभ्यता, पृष्ठ- ४६ - २३५

६७- डा० सत्यनारायण पाण्डेय : भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृष्ठ- ५ - ६

६८ - डा० मदन गोपाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृष्ठ-७२-७४

६९- बी० एन० लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति ; पृष्ठ- ३८२

७०- - वही - पृष्ठ- ४२६

७१- - वही - ,, ४६२

७२- - वही - पृष्ठ- ५४२

७३- गुलाब राय : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १६

७४- बी० एन० लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १४

७५- गुलाब राय : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १७-१८

७६- डा० बलदेव प्रसाद मिश्र : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १३०

७७- डा० नगेन्द्र : साकेत एक अध्ययन, पृष्ठ- ७०

७८- डा० देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ- १०२

# द्वितीय अध्याय

## भारतीय संस्कृति का विकास

मानव अपने जीवन को सरल, सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए मस्तिष्क चिन्तन द्वारा प्रयास करता है, उसका परिणाम संस्कृति के स्वरूप में मिलता है, संस्कृति का अर्थ है सामाजिक मस्तिष्क की चेतना। मानव में व्याप्त शील का व्यापक रूप ही सामाजिक संस्कृति है, मानवीय व्यक्तित्व की तुलना सामाजिक सभ्यता से भी की जा सकती है।

प्रकृति के अविरल गतिक्रम में मनुष्य द्वारा प्राप्त संस्कृति का विजय लाभ प्रकृति को एक चुनौती है। विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अत्याधिक प्राचीन और श्रेष्ठ है। पूर्व-पाषाण काल तथा उत्तर-पाषाण काल में मिले ऐतिहासिक अवशेष सम्पूर्ण देश में यत्र - यत्र प्राप्त होते हैं, परन्तु उनसे संस्कृति का कोई सही निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता।

### १- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर- इमारतों के खण्डहर, सोने - चांदी और तांबे के आभूषण, मूर्तियां, मोहरें, घरों के विभिन्न उपकरण तत्कालीन नागरिकों के सभ्यता के ज्ञान का आभास देते हैं। परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है कि उस युग की संस्कृति अधिक विकसित रही होगी।

डा० बलदेव प्रसाद के कथनानुसार " भारतीय संस्कृति न तो व्यक्ति विशेष द्वारा चलाये गये धर्म पर आधारित थी ( जैसी बात इस्लामी संस्कृति के विषय में कही जा सकती है ) न किसी एकांगी आर्थिक सिद्धान्त पर ही आधारित हुई ( जैसी रूसी संस्कृति ) और न वह किसी जाति विशेष आर्य अथवा अनार्य की संस्कृति रही ( जैसी मंगोल या नीग्रो संस्कृति ) वरन् समूचे भारत में भिन्न - भिन्न स्थानों पर बसे हुए विचारशील तथा क्रियाशील युगद्रष्टा महात्माओं द्वारा प्रसारित समन्वय भावना युक्त अखिल मानवीय संस्कृति हुई, जो अपनी इसी विशेषता के कारण अपनी अद्वितीयता लिये हुये आज तक अमर - अमर बनी, जीती - जागती, फूलती - फलती चली आ रही है[१]।"

अत: हमारी संस्कृति धीरे - धीरे विकसित समाज की सम्पूर्ण गतिविधियों का फल है। वैदिक संस्कृति से ही भारतीय संस्कृति का प्रारम्भ माना जाता है।[1] जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं। वह न तो आर्यों की रचना है, न द्रविड़ों की प्रत्युत उसके भीतर अनेक जातियों का अंशदान है। यह संस्कृति रसायन की प्रक्रिया से तैयार हुई,एवं उसके भीतर अनेक औषधियों का रस है।[2]

भारत में सभ्यता तथा संस्कृति का आरम्भ आर्यों के आगमन से ही नहीं हुआ बल्कि उससे भी पहले एक सभ्य समाज तथा संस्कृति का प्रारम्भ हो चुका था और वह किसी भी तरह आर्यों की संस्कृति से कम नहीं थी। वेदों में भी आर्येतर संस्कृति का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है,उन वर्णनों से भी यह मालूम होता है कि यह एक पर्याप्त समृद्ध संस्कृति थी,यद्यपि उसमें आर्यों जैसी आध्यात्मिकता की भावना का अभाव था।

वैदिक काल हमारे देश की समस्त संस्कृति का मूलाधार है,वेदव्यास तक का पूरा काल वैदिक काल कहलाता है। वास्तव में यही हमारी संस्कृति का प्रारम्भिक काल है,क्योंकि इसी काल में हमारी संस्कृति का क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होता है,संस्कृति के जिन मूल आधारों और लक्षणों का निर्माण इस काल में हुआ वे आज भी हमारे संस्कारों में विद्यमान हैं। इनकी समानता और स्थायित्व का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज तक जितने भी परिवर्तन हुए,चाहे वे धार्मिक क्रान्तियां हों, या सामाजिक परिवर्तनों का युग रहा हो,हमारी परम्परा का स्रोत यही वेद प्रमाणित होते हैं।

इसी काल में भारतीय धर्म, दर्शन, राजनीति और सामाजिक संगठन का रूप उभर कर सामने आया। वैदिक काल में अभ्युदय और निःश्रेयस् के साधक को धर्म कहा गया। वैदिक धर्म की परिभाषा व्यापक और सार्वभौम थी,देवताओं के मन्दिर और मूर्तियां नहीं थीं,वैदिक आर्यों का मुख्य कर्मकाण्ड यज्ञ था। आत्मा की अमरता पर विश्वास किया जाता था। वैदिक दर्शन बहुदेववाद था। वैदिक आर्यों की राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था का आधार पितृ सत्ता थी,आर्य अपने सामाजिक जीवन के उषाकाल में केवल दो वर्गों में विभक्त थे,आर्य और अनार्य दोनों में युद्ध होता था, युद्धों में संलग्न होने के कारण उन्हें सामाजिक आवश्यकताओं के कारण अन्य कर्म करने वालों

की आवश्यकता हुई,और इस प्रकार चार वर्णों में समाज बंट गया ।

शेष तीनों वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों का जन्म इसी काल में हुआ,और यहीं से प्रारम्भ हुआ सांस्कृतिक समन्वय का युग । यह समन्वय था द्रविड़ और आर्य संस्कृति का । कालान्तर में वर्ण व्यवस्था जटिल हो गयी । यज्ञ पद्धति और चिन्तन परम्परा का विकास हुआ । राजनीति, धर्म और समाज से सम्बन्धित विभिन्न क्रान्तियां हुईं । प्रत्येक दृष्टि से मानव का सम्पूर्ण विकास इसी काल में सम्भव हो सका । वैदिक काल में जीवन के लिये चार पुरुषार्थ माने गये—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों का निर्वाह चार आश्रमों की व्यवस्था द्वारा सम्पन्न किया गया । व्यष्टि-निष्ठ समाज-निष्ठ धर्म की समझ ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर अध्ययन मनन से प्राप्त कर गृहस्थ जीवन में उन्हें व्यावहारिक रूप देते हुए,वानप्रस्थ में अर्थ और काम का शमन कर मोक्ष प्राप्त करना ही मानव का कर्तव्य था । समाज में महिलाओं की महान प्रतिष्ठा थी, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक जीवन में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिये गये थे । पर्दा और सती प्रथा न थी । आर्यों का आर्थिक जीवन कृषि और पशुपालन पर निर्भर था । शिल्पियों में बढ़ई, लोहार, जुलाहा, चर्मकार का वर्णन मिलता है । भोजन सादा था, पहनावे में सिला कपड़ा पहना जाता था, आभूषणों का शौक स्त्री - पुरुष दोनों को था, मनोरंजन में रथों की दौड़, संगीत, नृत्य, वाद्य का प्रचलन था ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतीय आर्य संस्कृति का मूलाधार वैदिक संस्कृति है,जिसमें जीवन प्रवृत्ति प्रधान, संतुलित, प्रकृति के अधिक निकट और आध्यात्मिक था । वैदिक काल के उपरान्त वेदों की व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थों का काल आता है,साक्ष्यों के अनुसार वैदिक संहिताओं और उपनिषदों की रचना इसी काल में मानी जाती है,धर्म के क्षेत्र में इस काल में द्वैतवाद चलता रहा,कर्मकाण्ड को प्रमुख स्थान दिया गया । अब धर्म का अभिप्राय यज्ञ से न होकर कर्मकाण्ड, अन्धविश्वासों जैसे—कृत्यों से हो गया,जन्म जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद इसी युग में पूर्णतया स्थापित हो गये थे । दर्शन के क्षेत्र में जीवन मृत्यु की गहन समस्याओं पर चिन्तन - मनन के मंथन से तत्व-ज्ञान सम्बन्धी नवीन दार्शनिक विचारों का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार

इस समय दो परस्पर धारायें प्रवाहित हुई, एक वैदिक कर्मकाण्ड की तथा दूसरी उपनिषदों की। अद्वैतवादी धारा जिसमें देवताओं से ध्यान हटाकर निराकार की कल्पना की गयी, और स्वर्ग के स्थान पर मोक्ष को सर्वोच्च लक्ष्य घोषित किया गया। ब्राह्मण काल में आर्यों ने शक्तिशाली राज्यों की स्थापना की, और वे अपने राज्यों का विकास तथा विस्तार करने में संलग्न हो गये। राज्य पद का स्थान महाजनपद ने ले लिया, उनके शासन में राज्य प्रणाली और गणप्रणाली दोनों परम्परायें थीं, प्रशासन में ब्राह्मणों का विशेष अधिकार था, राज पुरोहित राजा का प्रमुख परामर्श दाता था। इस युग की सबसे प्रमुख समस्या आर्य - अनार्य की थी, जो वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी, उसका रूप परिवर्तित हो गया तथा उनके पृथक - पृथक नियम बना दिये गये, आश्रम व्यवस्था पूर्ववत् थी, वानप्रस्थ तथा सन्यास की प्रमुखता होने लगी, स्त्रियों को वैदिक काल की अपेक्षा कुछ कम महत्व दिया जाने लगा, कई धार्मिक संस्कार जो पहले पत्नी करती थी, अब पुरोहित करने लगा। बहुपत्नी विवाह की प्रथा चलने लगी थी, आर्यों के भोजन तथा वस्त्रों में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, मनोरंजन के साधन रथों की दौड़, घुड़दौड़, जुआ चौपड़ आदि थे, नाटक भी मनोरंजन का साधन था, वाद्ययंत्रों में वीणा, शंख, मृदंग प्रमुख थे। कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त उद्योग धन्धों की बहुलता थी। विभिन्न धातुओं से मुद्रायें, आभूषण बनने लगे थे। इस काल में आर्य संस्कृति समस्त उत्तर भारत में फैल गयी, दक्षिण भारत में इसका प्रवेश हो गया था।

इतिहास काल या महाकाव्य काल का प्रारम्भ उत्तर वैदिक काल के बाद माना जाता है। रामायण को आदि- काव्य, तथा महाभारत को इतिहास-पुराण माना गया है। इन ग्रन्थों का रचना-काल बहुत निश्चित नहीं है, जहां तक भाषा का प्रश्न है उत्तर वैदिक काल के बाद बोली जाने वाली आर्य संस्कृति है। जहां वेद हमारी संस्कृति के स्रोत हैं, वहां इन दो महाकाव्यों ने भी हमारी संस्कृति को एक नवीन मोड़ दिया है। यह दोनों ग्रन्थ, दो महान पुरुषों राम और कृष्ण के चरित्रों को लेकर चले हैं इसलिये प्रधानत: यह इतिहास कहलाये हैं।

सूर्यवंशी राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम गुरु के यज्ञ की रक्षा करने के लिये लक्ष्मण

के साथ वन गये। अपनी वीरता और पौरुष से राक्षसों पर विजय प्राप्त करके लौटते समय सीता के स्वयंवर में सम्मिलित हुये। वीरों से परिपूर्ण सभास्थल में शिव - धनुष तोड़ना तो दूर कोई खिसका भी न सका, और राम गुरु की आज्ञा पाते ही धनुष के दो टुकड़े कर देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उस समय गुरु श्रेष्ठ माने जाते थे। सौतेली मां की आज्ञा शिरोधार्य करके अयोध्या के राज्य का परित्याग राम के चरित्र का अनासक्ति पक्ष दृढ़ करता है, पंचवटी में भरत राज्य वापस देना चाहते हैं किन्तु राम राज्य लेना नहीं चाहते। इस स्थान पर भरत के चरित्र की अनासक्ति राम से भी ऊंची उठ जाती है। वनवास काल में सुग्रीव की मित्रता और बालि का वध, राम की न्यायप्रियता और धर्म की आस्था को प्रकट करता है। शबरी के जूठे बेर प्रेम से खा लेना समानता की भावना को उद्घाटित करते हैं। सर्वप्रथम सीता का पता बताने वाले आहत जटायु को भी पितृवत स्थान देना, राम का आदर्शवाद का गुण स्पष्ट करता है। बन्दर और भालुओं की सेना एकत्रित करना, प्राणी मात्र के प्रेम तथा नेतृत्व एवं संगठन कुशलता का स्पष्ट उदाहरण है। सेतुबंध की रचना के पूर्व समुद्र से विनय प्रकृति की आस्था तथा शिवलिंग की स्थापना दक्षिण की धार्मिक भावना को आत्मसात करने का प्रमाण है। अंगद को दूत बनाकर भेजना, रावण के भाई विभीषण का मिलना, उनके शान्ति और भाईचारे का प्रतीक है, लंका विजित करके सम्पूर्ण राज्य विभीषण को निःस्पृह भाव से दे देना उनकी अनासक्ति दिखाती है। अयोध्या लौटने पर भी विस्तृत राज्य के शासक न बनकर मात्र प्रबन्धक बने, राजतिलक के अवसर पर राम ने उपस्थित प्रजा जन के समक्ष यह घोषणा की थी कि मेरे किसी भी अनुचित कार्य की प्रजा आलोचना कर सकती है, राम की इस भावना में आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था के बीज निहित दिखाई देते हैं तथा लोकनिन्दा के भय से ही राम ने सीता का पुनः त्याग कर दिया था।

रामायण के अन्य पात्रों ने भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा आदर्श की स्थापना की, गद्दी पर खड़ाऊं रखकर चौदह वर्षों तक सेवक की भांति कार्य करना, सन्यासियों के समान जीवन बिताना, भरत की अनासक्ति है। लक्ष्मण का जीवन निःस्वार्थ प्रेम से ओत - प्रोत था, इसी प्रकार सीता का पतिव्रत धर्म आज भी भारतीय

नारी के लिये आदर्श है। हनुमान में एक आदर्श सेवक के सभी गुण विद्यमान हैं।

इस युग का दूसरा " महाकाव्य " महाभारत है जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। वैदिक काल के अन्तिम चरण में शान्तनु के बड़े पुत्र धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने से पाण्डु राजा बने, पाण्डु की मृत्यु हो जाने के पश्चात् धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा पाण्डु के पुत्रों में राज्य के लिये कलह होने लगी, और पाण्डवों ने हस्तिनापुर के राज्य का त्याग करके इन्द्रप्रस्थ में कृष्ण की सहायता से अपने नवीन राज्य की स्थापना की, कुशल शासन प्रबन्ध जन कल्याण की भावना से उनका राज्य विस्तृत होता गया, ईर्ष्यालु दुर्योधन ने छल से निष्कपट युधिष्ठिर का राज्य छीन लिया। परिणाम स्वरूप तेरह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण करने के बाद भी पाण्डवों को राज्य वापस न मिला और इसी पृष्ठभूमि में कुरुक्षेत्र युद्धस्थली बन गया। युद्धस्थल में दोनों सेनाओं में अपने स्वजन, सम्बन्धी, इष्टमित्रों को खड़ा देखकर अर्जुन के मन में वैराग्य की भावना उदय हो गई और उसने युद्ध से इन्कार कर दिया। कर्तव्य मार्ग से हटे अर्जुन को कृष्ण ने उपदेश दिया, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग और सांख्ययोग की विवेचना इस उपदेश में की। कृष्ण के इस उपदेश में सभी दार्शनिक विचारधाराओं पर प्रकाश पड़ता है और उनका सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। तपस्या और वैराग्य ही आवश्यक नहीं है, स्वधर्म पालन आवश्यक है, मानव की मुक्ति, नैतिक आचरण से नहीं भक्ति में है चाहे वह ईश्वर की हो या स्वधर्म की। मानव का लक्ष्य कर्म है, फल नहीं। निष्काम कर्म ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। गीता ने आत्मा की अमरता का सन्देश देकर मानव को शरीर की आसक्ति से मुक्त कराया। गीता ने तत्कालीन धर्म को जाति, देश और साम्प्रदायिकता के बन्धनों से ऊपर उठाया। इस प्रकार गीता धर्म काव्य ही नहीं, अपितु जीवन का उपदेश ग्रन्थ है इसमें जिन समस्याओं का विवेचन किया गया है, वे सार्वजनिक तथा चिरन्तन हैं, जब - जब मानव हृदय में स्वार्थ, धर्म व कर्तव्य का संघर्ष होता है गीता उसका निराकरण प्रस्तुत करती है।

इन दोनों महाकाव्यों ने हमारी संस्कृति को कई प्रकार से प्रभावित किया, इनमें पूरा भारतीय समाज प्रतिबिम्बित हो उठा है। विशेषकर महाभारत भारतीय नीति और दर्शन का दर्पण है साधारण मनुष्य के लिये धर्म के मूल स्रोत ये ही ग्रन्थ हैं।

" भारतीय संस्कृत साहित्य की ये सर्वोत्कृष्ट कृतियां हैं । इनकी भाषा, शैली और कथाओं ने भारतीय भाषाओं को बहुत ही प्रभावित किया है[3]।" महाभारत समस्त भारतीय दर्शनों का सार है। इस प्रकार इन दोनों महाकाव्यों ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने में योग दिया है।

महाकाव्य काल में वैदिक काल की अपेक्षा राजतन्त्र अधिक प्रबल था, सम्राट की शक्ति तथा अधिकार खूब बढ़ गये थे।[4] वैदिक काल की सेना इतनी विशाल अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित और दृढ़ नहीं थी, जितनी महाकाव्य काल में। गदा, बाण, चक्र जैसे शस्त्रों का जन्म हो गया था। " महाकाव्य काल का जीवन नागरीय जीवन था "।[5] महाकाव्य काल में वेशभूषा व आभूषणों में अधिक सौन्दर्य, विविधता और आकर्षण आ गया था, साड़ी का उपयोग होने लगा था। वैदिक वर्ण व्यवस्था इस काल में दृढ़ रूप से स्थापित हो गयी थी, तथा इस व्यवस्था के अन्तर्गत जातियां भी निर्दिष्ट हो गयी थीं, जन्म से वर्ण और जाति निश्चित होने लगी थी। वर्णाश्रम धर्म समाज में पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। वैदिक काल की अपेक्षा इस काल में ब्राह्मणों की सत्ता और महत्ता बहुत बढ़ गयी थी। समाज और राज्य की ओर से उन्हें कई सुविधायें प्राप्त थी। इस समय तक स्त्रियों का सम्मान समाप्त हो चुका था, द्रौपदी-चीर-हरण इस बात का प्रमाण है किन्तु महाकाव्य काल में स्त्रियों की नैतिकता उनके सतीत्व और पतिव्रत धर्म तथा त्याग व सेवा का आदर्श बड़ा ही श्रेष्ठ और उच्च था। वैदिक काल में सती प्रथा और स्वयंवर प्रथा नहीं थी, लेकिन महाकाव्य काल में इनका प्रचलन था। शिक्षा की प्रणालियों, पाठ्य विषयों आदि में अधिक व्यापकता आ गयी। क्षत्रियों की शिक्षा और उनके पाठ्य - विषय अलग हो चले थे। इस काल में वैदिक काल की अपेक्षा विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य चिकित्सा, ज्योतिष की खूब उन्नति हुई।[6] वैदिक काल में ग्रामीण जीवन और ग्रामीण व्यवसाय थे, किन्तु अब बड़े - बड़े नगरों का निर्माण और विस्तार होने से व्यवसायों की विविधता बढ़ी, नागरीय जीवन लोकप्रिय हो गया, मनोरंजन के साधनों में विभिन्नता आ गयी थी, लोगों में वैभव और विलासिता की रुचि बढ़ने लगी थी। धर्म के क्षेत्र में इस काल में प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक देवी, देवताओं का लोप हो गया और गणेश, पार्वती, ब्रह्मा, विष्णु, महेश

आदि देवताओं ने इनका स्थान ले लिया। इस काल में ईश्वर की तीन शक्तियों को प्रश्रय दिया गया—सृष्टि का सृजन करने वाले ब्रह्मा, भरण-पोषण करने वाले विष्णु, और संहारक शिव के रूप में त्रिमूर्तिवाद का उत्कर्ष हुआ। अवतारवाद की भावना तेजी से बढ़ी लेकिन वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञों में कमी आई, इसका स्थान सत्य, अहिंसा, संयम, तृष्णा, क्रोध, माया-मोह के त्याग ने ले लिया।

पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, कर्मवाद आदि जिन धार्मिक सिद्धान्तों का प्रारम्भ उत्तर वैदिक काल में हुआ था, उनकी जड़ें यहां तक आते - आते समाज में मजबूती से जम गयी थी[7]। उपनिषदों में जिस ब्रह्मज्ञान की महत्ता बताई गई थी, वह भी महाकाव्य काल में विकसित हुआ। ब्राह्मणों की सर्वोपरिता से वेदाध्ययन, यज्ञज्ञान द्विजों तक ही सीमित हो गये, शूद्रों और अनार्यों को इससे वंचित किया गया, लेकिन महाभारत काल में गीता के द्वारा ज्ञान, भक्ति और मोक्ष के द्वार सबके लिये खोल दिये गये।

कुछ समय बाद वर्णव्यवस्था के जटिल हो जाने से समाज में, राजनीति में अनेक क्रान्तियां हुई, और जन - जीवन के बीच एक नया बौद्धिक तथा धार्मिक आन्दोलन प्रकाश में आया। आर्य और आर्येतर धार्मिक विश्वासों के संघर्ष में श्रमण संस्कृति ने आहुति का कार्य किया, फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी आन्दोलन की लहर दौड़ गयी। वैदिक संस्कृति की असहिष्णुता ने वेदों को सुनने वाले शूद्रों के कानों में रांगा घोलकर डालने का विधान किया तो अनेकान्तवादी सहिष्णु श्रमण संस्कृति ने जैन, बौद्ध और अन्य सम्प्रदायों को जन्म दिया, जिनमें " जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।" का स्वर मुख्य था। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में वैदिक और लौकिक धाराओं का समन्वित रूप स्पष्ट दृष्टिगत होता है। जैन धर्म में प्रकारान्तर से श्रमण संस्कृति के प्राचीन तत्वों का ही विकास मिलता है। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करता है, इसके द्वारा मानवता और अहिंसा के आदर्श भारत की सीमाओं को भी पार कर गये। यह काल सांस्कृतिक उथल - पुथल का काल रहा, फलतः परिवर्तन के अनेक चिन्ह प्राप्त होते हैं। " बुद्ध ने आस्तिकता की उपेक्षा की, वेदों के कर्मकाण्ड को निषिद्ध किया। बुद्ध ने वैदिक

दर्शन में प्रतिष्ठित आत्मा को नहीं माना, वे साधारणतः आत्मा के सम्बन्ध में मौन रहे, उन्होंने पंच स्कन्ध के तत्व, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के संसार की प्रतिष्ठा की थी, यही उनका व्यावहारिक आत्म दर्शन था[८]।" बुद्ध ने संसार को दुखमय माना, एवं उससे निवृत्ति का उपाय भी बताया। वे जन्मजात वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध थे, मनुष्य की एकता व मूल समता के विश्वासी थे। आगे चलकर बौद्ध धर्म की हीनयान तथा महायान शाखा हो गयी और पुनः वे विकृतियां उसमें आ गयीं, जिनके विरुद्ध यह धर्म उठा था।

जैन धर्म यद्यपि बौद्ध धर्म से प्राचीन था, लेकिन उसका समुचित विकास इसी काल में हुआ। महावीर ने भी परम्परागत वैदिक धर्म का विरोध किया। बुद्ध ने जिस प्रकार जनभाषा पालि को माध्यम बनाया, उसी प्रकार महावीर ने अर्धमागधी प्राकृत को अपने प्रचार का माध्यम बनाया। जैन धर्म ने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह पर बल दिया। मोक्ष प्राप्ति के लिये तीन रत्नों को अपनाने का विधान बताया। वे थे— सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र तथा सम्यक् दर्शन। इन तीनों में कर्म का महत्व अत्याधिक है।

बौद्ध तथा जैन काल में जनपद के स्थान पर साम्राज्यवादी भावना का विकास हुआ। "राजा सर्वोच्च शक्ति होता था और वही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था[९]।" बुद्ध और महावीर के प्रादुर्भाव के बाद समाज में ब्राह्मणों के प्रभुत्व में कमी आयी। समाज में वैश्य वर्ग अधिक था। दासों के साथ अमानुषिक व्यवहार में कमी आई थी। संयुक्त परिवार धीरे - धीरे शिथिल होने लगे। प्रायः लोग एक पत्नी व्रत का पालन करते थे, सामन्तों में कई पत्नियों के दृष्टान्त मिलते हैं, इस युग में भी गृहस्थ आश्रम का महत्व था। स्त्रियों की दशा में कोई सुधार न हुआ। बौद्ध मठों में स्त्रियों का प्रवेश निषेध था, बहुसंख्यक लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन ही था। बौद्ध धर्म के विहार जहां बौद्ध संघ और भिक्षु रहते थे इस युग की शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे। बौद्ध भिक्षुक आचार्य तथा गुरु का कार्य करते थे, वे शिष्यों के बौद्धिक, शारीरिक व आध्यात्मिक विकास के लिये उत्तरदायी होते थे। बौद्ध विहारों

के अतिरिक्त वाराणसी, तक्षशिला, नालन्दा तथा अन्य बड़े नगर शिक्षा के केन्द्र थे। कुछ शिक्षण संस्थायें केवल धर्म विशेष के लिये होती थीं। इन शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों का जीवन सरल, सादा और अनुशासनबद्ध था, यहां शिल्प शिक्षा तथा यांत्रिक कलाओं की शिक्षा भी दी जाती थी। कलाशिल्पें, चिकित्साशास्त्र, शल्य-शास्त्र, राजनीति, आखेट धनुर्विद्या की शिक्षा भी दी जाती थी। प्राकृत अपभ्रंश का विकास इसी काल में हुआ। कला के क्षेत्र में मूर्तिकला का विशेष विकास हुआ। बौद्ध धर्म के विकास का सबसे बड़ा कारण था, उसे राजाश्रय प्राप्त होना किन्तु धीरे-धीरे बौद्ध भिक्षुओं में मतभेद होने लगा और उसकी कई शाखायें हो गयीं, इन शाखाओं ने हिन्दू धर्म की कई विशेषताओं को अपना लिया, जिसका परिणाम कनिष्क के समय "महायान" मत के रूप में प्रकट हुआ। इन्होंने भक्ति मार्ग का सहारा लिया, और बुद्ध की मूर्तियां बनाकर पूजने लगे, दूसरी ओर राजाश्रय के अभाव में बौद्ध धर्म अपने मूल स्वरूप से हटने लगा, और हिन्दू धर्म जो कुछ समय के लिये क्षीण तो हो गया था, किन्तु नष्ट नहीं हुआ था, पुनः जागृत हो गया और उसने जागृत होते ही बौद्ध धर्म को आत्मसात करना शुरू किया। बुद्ध को विष्णु का नवां अवतार मानकर बहुत से बौद्ध भक्तों का ध्यान अपनी ओर खींचा।

चन्द्रगुप्त तथा अशोक के राजनैतिक एकीकरण से देश की पर्याप्त उन्नति हुई थी, किन्तु दूसरी शताब्दी से तीसरी शताब्दी के अन्त तक का काल राजनैतिक उथल-पुथल का काल रहा, इस समय देश के भीतर ही क्रान्तियां हुईं ही साथ ही बाहरी आक्रमण भी हुए। बौद्ध मत की अवनति तथा वैष्णव और शैव धर्मों का विकास हुआ, पौराणिक और महायान धर्म भी बढ़ा और विदेशी आक्रमणकारियों ने इन्हें ग्रहण किया। इससे कला को प्रेरणा मिली और भारतीय संस्कृति के निर्माण में इनका महान् योगदान रहा, दूसरी ओर विदेशियों के आने से सामाजिक व्यवस्था की समस्या फिर सामने आई। इसी युग में मनुस्मृति की रचना हुई, जिसमें तत्कालीन सामाजिक विभिन्नताओं को चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था में स्थान दिया गया। शकों और यवनों को क्षत्रिय रूप में ग्रहण किया गया। भारतीय समाज और धर्म ने विदेशी संस्कृति को आत्मसात् कर ग्रहणशीलता का परिचय दिया।

में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इनके समय में साम्राज्य का वैभव चरम उत्कर्ष पर पहुंच गया। इस काल को भारतीय संस्कृति का स्वर्ण युग कहा जाता है। देश में सांस्कृतिक एकता की भावना दृढ़ हुई। किसी भी देश की संस्कृति के उतार - चढ़ाव में राजनीतिक गतिविधियों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। अशोक के बाद छिन्न - भिन्न देश को पुनः एक छत्रछाया में संगठित करने का श्रेय गुप्त वंश को ही है। "विद्यानुरागी विद्वान् गुप्त सम्राटों ने संस्कृत को राज्याश्रय देकर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त किया।[10]" संस्कृत भाषा को राज्य-भाषा बनाया गया, परिणाम स्वरूप संस्कृत ही साहित्यिक भाषा बनी। छन्दशास्त्र, बृहत्संहिता, अग्निपुराण, "मृच्छकटिकम्" के रूप में फलीभूत हुई।

गुप्त काल के दोनों महान् सम्राटों समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के संरक्षण में भारतीय संस्कृति का रूप अधिक निखरा। विद्यानुरागी ये सम्राट मेधावी और प्रतिभाशाली विद्वानों के संरक्षक थे, इसीलिये महाकवि कालिदास वसुबंधु जैसे दार्शनिक आर्य भट्ट और वाराहमिहिर जैसे गणितज्ञ एवं ज्योतिषी इस काल की देन हैं। अजन्ता की भित्ति चित्र इस युग की उत्कृष्ट संस्कृति के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

गुप्त काल की यह विशिष्टता रही कि इस युग में धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और स्वतन्त्रता पराकाष्ठा को पहुंच गई। गुप्त राजाओं के आश्रय में विभिन्न धर्मावलम्बियों को अपने धार्मिक विश्वास, पूजा, उपासना तथा अनुष्ठान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। सम्राट समुद्रगुप्त ने राजकुमारों की शिक्षा के लिये बौद्ध आचार्यों को नियुक्त किया, गुप्त राजा वैष्णव होने पर भी अन्य धर्मों के प्रति उदार सहिष्णु रहे। वे बौद्ध मठों, विहारों, जैन मन्दिरों, ब्राह्मणों तथा हिन्दू देव-स्थानों को समान रूप से दान देते थे। राजाओं के समान ही जन साधारण भी बौद्ध विहार तथा ब्राह्मण धर्म के स्थानों को दान देते थे। उधर मौर्य काल में प्राचीन वैदिक धर्म के पुनरोद्धार की जो प्रतिक्रिया शुरू हुई, उसे शुंग, कण्व, आन्ध्र, नाग, वाकाटक राजाओं ने प्रोत्साहन दिया और गुप्त सम्राटों ने राजाश्रय। गुप्त सम्राटों ने ब्राह्मण धर्म के अनुष्ठान, क्रिया, विधि और वैदिक परम्पराओं के अनुसार अश्वमेध यज्ञ किये।

अश्वमेध यज्ञ के अतिरिक्त अग्निष्टोम,वाजपेय, वाजसनेय, अतिरात्र आदि प्राचीन वैदिक यज्ञ के अनुष्ठान प्रारम्भ हुए । सम्राटों ने अपनी आस्था प्रकट करने के लिए वैदिक देवी - देवताओं की पूजा और स्तुति शुरू की । इन देवी - देवताओं को मानवीय रूप प्रदान करके ब्राह्मण धर्म को लोकप्रिय बनाया । वैदिक धर्म की परम्परा और पुनरुद्धार में वैष्णव और शाक्त प्रकार आदि सम्प्रदाय विकसित हुए । समन्वय और एकीकरण की शक्ति के कारण बौद्ध धर्म के लोकप्रिय सिद्धान्त वैदिक धर्म में सम्मिलित कर लिये गये । महायान शाखा ने बौद्ध धर्म को वैदिक धर्म के और निकट ला दिया । संस्कृत की लोकप्रियता से वैदिक धर्म की प्रगति हुई । वैदिक धर्म नवीन मान्यताओं सहित कालान्तर में हिन्दू धर्म कहलाया । वैष्णव धर्म के समान शैव धर्म भी लोकप्रिय हुआ । प्रसिद्ध सम्राट स्कन्दगुप्त शैव मतावलम्बी था । बहुदेववाद का सिद्धान्त प्रतिपादित होने से भक्ति भावना का पर्याप्त विकास हुआ । सन् तीन सौ ईसवी के लगभग मीमांसा दर्शन पर शबर - भाष्य लिखा गया । इसमें यज्ञ के अनुष्ठानों के साथ आत्मा, ईश्वर, सृष्टि आदि की समीक्षा के साथ प्राचीन, मीमांसा सूत्रों का विकास किया गया । सांख्य दर्शन का भी विकास इसी काल में हुआ । " तीसरी शती के अन्त में योग दर्शन पर आचार्य व्यास ने तथा न्याय दर्शन पर वात्स्यायन ने ग्रन्थों की रचना की । न्यायदर्शन के अन्तर्गत बौद्धों के माध्यमिक और योगाचार सम्प्रदायों के मन्तव्यों और दार्शनिक विचारों का खण्डन किया गया और न्याय सूत्रों की विशद समीक्षा की गयी "[११] ।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बाद गुप्त साम्राज्य आपसी कलह, शक और हूणों के आक्रमणों के कारण छिन्न - भिन्न होने लगा, और छठी शताब्दी तक गुप्त काल का पतन हो गया, और सत्ता वर्धन सम्राटों के हाथ आ गयी । वर्ध वंश के सम्राट हर्षवर्धन ने भारत को पुनः एक सूत्र में बांधने की चेष्टा की । हर्ष कर्तव्य परायण प्रजा वत्सल और दयालु राजा था । उसके शासन में प्रजा सुखी और सम्पन्न थी । गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र का वैभव समाप्त होकर हर्ष की राजधानी कन्नौज पर आ चुका था । राजा ज्ञान और कला का प्रेमी था, जाति प्रथा समाज का आधार थी, जाति प्रथा के बन्धन कठोर अपरिवर्तनशील थे । ब्राह्मण ही धर्म - कर्म करते थे, और समाज

में उन्हें ही श्रेष्ठता प्राप्त थी । क्षत्रिय शासक और अधिकारी थे, वैश्य समृद्धिशाली थे, और व्यापार करते थे, शूद्र समाज का निम्न अंग था, जो कृषि और परिचर्या का कार्य करता था । इसके अतिरिक्त पांचवां वर्ग मिश्रित जातियों का था, जो अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न हुई थी । इस प्रकार पुन: वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था समाज में समाश्रित हो गयी । पर्दा प्रथा नहीं थी, किन्तु सती प्रथा का प्रचलन था । अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा कम थी, बहु पत्नित्व का प्रचार बहुत अधिक था । बाल-विवाह होते थे । जनता का जीवन स्तर ऊंचा था । इस युग में ब्राह्मण धर्म व्यापक और उन्नत हो चुका था । मन्दिरों में देवी - देवताओं की प्रतिमायें प्रतिष्ठित करके पूजा करने की प्रथा थी । ब्राह्मण धर्म के सन्यासी और तपस्वी एकाकी जीवन बिताते थे । समाज में उन्हें अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से देखा जाता था । कर्मवाद के कारण भारतीय जनता निवृत्ति मार्गी हो गयी थी । बौद्ध धर्म अठारह शाखाओं में विभक्त होकर अवनति के मार्ग पर जा चुका था । महायान अधिक लोकप्रिय और उन्नत दशा में था, क्योंकि हर्ष स्वयं इस धर्म का अनुयायी था । बुद्ध को ईश्वर का अवतार माना गया, और उनकी मूर्तियां बनाकर पूजा - उपासना की जाती थी । हर्ष स्वयं बुद्ध की प्रतिमा की । पूजा बड़े शान और वैभव से करता था । छ: सौ तैतालिस ईस्वी में हर्ष ने कन्नौज में महायान सम्प्रदाय के प्रचार के लिये धार्मिक सम्मेलन किया । तेईस दिनों तक चलने वाले इस धार्मिक सम्मेलन में महायान पर वाद - विवाद और प्रवचन हुआ । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने महायान मत का असाधारण प्रतिपादन किया । इसमें बौद्ध धर्म के ब्राह्मण प्रतिद्वन्द्वियों को स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित होने और वाद - विवाद में सक्रिय भाग लेने से वंचित किया गया था[67]। परिणाम स्वरूप हर्ष ने महायान धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया । सम्राट हर्ष निरन्तर तीस वर्षों तक प्रयाग में पंचवर्षीय धार्मिक महोत्सव का आयोजन करता रहा । इस महोत्सव में विभिन्न सम्प्रदायों के मेल से एक सांस्कृतिक समन्वय का प्रारम्भ हुआ ।

हर्ष के उपरान्त देश को एक सूत्रता में बांधने वाली शक्ति का अभाव हो गया और सामाजिक व्यवस्था जर्जर हो गयी । इसके साथ ही चौहान, परमार, चन्देल आदि राजपूत वंशों का उदय हुआ । इस समय सामन्तवाद की बेल खूब पनपी । इन राजपूत सम्राटों के लिये राष्ट्रीयता का अर्थ मात्र अपने राज्य की सीमा था । वे

राजवंश आपसी लड़ाई में ही उलझे रहे, और देश अवनति की ओर जाता रहा। किन्तु इस काल में भी कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। अपनी परम्परा का अन्तिम " महाकाव्य " नैषधीय चरित्र " तथा " कल्हण " की " राजतरंगिणी " जैसी ऐतिहासिक ग्रन्थ इसी युग की निधियां हैं। स्मृतियों के अनेक भाष्य लिखे गये जो आज भी हिन्दू जीवन को अनुप्राणित किये हुए हैं। बौद्ध धर्म का ह्रास और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हुआ। तन्त्रों - मन्त्रों की भी वृद्धि हुई।

बारहवीं शताब्दी में निम्बार्क, जयदेव और रामानुज द्वारा वैष्णव भक्ति को जन आन्दोलन का रूप मिला। गुजरात और राजपूताने में जैन धर्म तथा दक्षिण में शैव धर्म ने पुनः करवट बदली, दर्शन के क्षेत्र में नूतन क्रान्ति का उद्भव हुआ। दक्षिण में शंकराचार्य का उदय हुआ, जिन्होंने निर्विशिष्ट वेदान्त परम्परा को पराकाष्ठा पर पहुंचाया, और इस समय तक इस्लाम का भारत में पूर्ण रूप से प्रवेश हो चुका था। और इसी के साथ भारतीय संस्कृति में पुनः एक क्रान्तिकारी अध्याय जुड़ा।

<u>मध्यकाल :</u>

इस काल में हिन्दू - मुस्लिम समाज में काफी संघर्ष चला, क्योंकि दोनों के मूलभूत सिद्धान्तों और आदर्शों में पर्याप्त अन्तर था। अब तक भारत में जो भी धार्मिक आन्दोलन उठे, वे किसी मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं थे। बल्कि मूल वैदिक धर्म से ही किसी - न - किसी रूप में जुड़े थे। इसी कारण हमारी संस्कृति में वे घुल - मिलकर अपना मूलरूप पुनः खो देते थे, किन्तु इस्लाम जो निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित था, तथा एकेश्वरवाद जिसका मूल था, उसे सहज ही भारतीय संस्कृति आत्मसात न कर सकी। धर्म के क्षेत्र में आज भी यह दूरी काफी हद तक बनी हुई है किन्तु लम्बे समय तक साथ रहते - रहते कालान्तर में यह संघर्ष यथासम्भव सामन्जस्य सहयोग और सहिष्णुता में परिवर्तित हो गया। सामाजिक जीवन-कला और साहित्य के क्षेत्र में इस समन्वय का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। दोनों समाजों ने एक दूसरे को बहुत हद तक प्रभावित किया। कबीर, नानक, नामदेव, दादू पर इस्लाम का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। दूसरी ओर रामानन्द, वल्लभाचार्य और चैतन्य द्वारा

भक्ति का विकास हुआ । और इस प्रकार यह भक्ति और साधना का युग बन गया ।

मध्ययुग के उत्तरार्द्ध तक मुगलों का शासन जम चुका था । अकबर से लेकर शाहजहां के शासन काल तक का समय सांस्कृतिक दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है । इसी बीच साथ रहते - रहते हिन्दू - मुसलमान दोनों एक दूसरे के निकट आये । दोनों संस्कृतियों ने एक दूसरे को प्रभावित किया । इसी युग में सूर, तुलसी जैसी विभूतियां प्रकाश में आई,जिन्होंने पुन: सांस्कृतिक परम्परा को आधारशिला प्रदान की । कला का विभिन्न क्षेत्रों में विकास हुआ । अनेक भवनों का निर्माण हुआ । संगीत, कला और चित्रकला को उच्चस्तरीय प्रोत्साहन मिला । औद्योगिक उन्नति हुई । विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ । सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में काफी निखार आया, और वे अधिकाधिक पूर्णता की ओर बढ़ी ।

साहित्यिक क्षेत्र में भक्ति आन्दोलन को वाणी मिली,जिसकी परिधि में अति उत्तम कोटि के काव्य का सृजन हुआ । संस्कृत भाषा के क्षेत्र में भी अच्छा कार्य हुआ । इसके साथ ही प्रान्तीय भाषा का साहित्य भी समृद्ध हुआ । इस प्रकार ६०० वर्षों के मुस्लिम शासन काल का हमारी संस्कृति और साहित्य पर अमिट प्रभाव पड़ा । विशेषत: मुगलकाल के अकबर से शाहजहां तक का काल अपना निजी सांस्कृतिक महत्व रखता है,क्योंकि राजनीतिक उथल - पुथल और कलहों की अपेक्षा इस काल में कम रही । इस काल में हिन्दुओं और मुसलमानों का एक - दूसरे के समाज, धर्म, दर्शन, आचार - व्यवहार - रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा । इस काल में पूर्वार्द्ध में आध्यात्मिक चेतना को काव्य के सहारे मुखरित होने का अवसर मिला । काव्य और संगीत का अद्भुत समन्वय हुआ । किन्तु उत्तरार्द्ध में राजाश्रित कवियों ने अश्लील और निकृष्ट कोटि के काव्य का सृजन किया, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि काव्य का कलापक्ष अपने प्रौढ़तम रूप में इस युग में सामने आया ।

<u>आधुनिक युग :</u>

मुगलकाल के अन्तिम प्रतिभाशाली सम्राट औरंगजेब के शासन से ही उसकी धार्मिक

कट्टरता और संकुचित दृष्टि के कारण मध्ययुगीन सांस्कृतिक ह्रास होना शुरू हो जाता है। राजनीतिक क्षेत्र में काफी उथल - पुथल रही। परिणामस्वरूप जनता की स्थिति खराब होती गयी। बाहरी रूप से शान्त और समृद्ध दिखने वाला जन-जीवन भीतर से एकदम जर्जर और दु:ख संत्रस्त हो चुका था। इसके बाद जीवन के विविध क्षेत्रों में शीघ्रता से परिवर्तन चक्र घूमने लगा और अठारहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध तक आते - आते मध्ययुगीन संस्कृति निष्प्राण-सी हो चली।

इसी समय देश के राजनीतिक क्षितिज पर अंग्रेजी सत्ता का उदय हुआ। और फिर उसी क्रम में नये युग का सूत्रपात भी शासन के साथ पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति भी धीरे - धीरे भारत में प्रवेश पाने लगी, जिसकी विशिष्टताओं की छाप विभिन्न क्षेत्रों में अंकित हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी में यह नूतन युग अधिक स्पष्ट हो गया। लेकिन इसके साथ ही देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ गया। राष्ट्रीय चेतना इसी युग की देन है। वैज्ञानिक विकास से लोगों की धार्मिक आस्था कम होती जा रही है किन्तु इसके साथ ही हमारी संस्कृति के वे तत्व भी जाग रहे हैं जो वैदिक काल से ही अपनी विशेषताओं के कारण अबाध रूप में चले आ रहे हैं और अनन्त काल तक चलते जायेंगे। विज्ञान के चरम उत्कर्ष में भी भारतीय संस्कृति के मूलतत्व विनष्ट नहीं हो पायेंगे।

## २- <u>भारतीय संस्कृति की पूर्व परम्परा :</u>

किसी भी देश का साहित्य वहां के निवासियों की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है इसी कारण चित्तवृत्तियों में परिवर्तन के साथ देश विशेष का साहित्यिक स्वरूप भी बदलता जाता है। जनता की यह चित्तवृत्तियां बहुत कुछ देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दार्शनिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती है और एक स्वस्थ सांस्कृतिक परम्परा को जन्म देती है। किसी भी देश की संस्कृति पर उस देश के भौगोलिक वातावरण का प्रभाव भी रहता है। इसी कारण दो देशों की संस्कृति में अन्तर होता है। संस्कृति के विकास में आदान - प्रदान का स्वभाव होता है, व्यक्तियों के पारस्परिक सम्पर्क से ही संस्कृति का विकास होता है। भारतीय संस्कृति इसका प्रमाण है।

भारत एक विशाल देश है। इसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों के लोग बसते हैं, जिनके रहन - सहन, खान - पान, भाषा धार्मिक विश्वासों रीति -रिवाजों में बहुत अन्तर है, किन्तु बाह्य रूप से इन विभिन्नताओं के होते हुए भी हम भारतीयों के विचार, भावना और जीवन में एक गहरी एकता पायी जाती है। यद्यपि यह एकता उन्नति के युग में बढ़ जाती है और अवनति के युग में घट जाती है लेकिन फिर भी मिटने नहीं पाती। जिस प्रकार विभिन्न नदियां अलग - अलग होते हुए भी सागर की गोद में जाकर एक रूप हो जाती हैं वैसे ही इस देश के निवासियों में सांस्कृतिक एकता है। वैसे तो प्रत्येक क्षेत्र में उस क्षेत्र की स्थानीय संस्कृति का प्रभाव भी दिखाई देता है लेकिन मूलरूप में भारतीय संस्कृति की आत्मा इन सभी जातियों, सम्प्रदायों में एक है। भारत संसार में एक स्वतन्त्र भू - भाग के रूप में अपनी अखण्डता बनाये हुए है। भारत की इस सांस्कृतिक एकता का सबसे बड़ा कारण उसकी भौगोलिक स्थिति है। इस भौगोलिक एकता में हमारे दार्शनिकों, मनीषियों का महत्वपूर्ण योग रहा है जिन्होंने दया, स्नेह, ममता, श्रद्धा की प्रतिमूर्ति नारी के रूप में भारत की परिकल्पना कर अपने मौलिक चिन्तन का परिचय दिया। संसार के किसी भी देश के सम्बन्ध में हम ऐसी कल्पना नहीं पाते। अज्ञात काल से ही इस देश में अनेक जातियां आकर बसती रहीं, उन्होंने कभी अपने पदचिन्ह छोड़े तो कभी अपनी सर्वस्व समर्पित करके उसी में खो गयीं। जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि " ईरानी और यूनानी लोग पार्थियन और बैक्ट्रियन लोग, सीथियन और हूण लोग, मुसलमानों से पहले आने वाले तुर्क और ईसा की आरम्भिक सदियों में आने वाले ईसाई, यहूदी, पारसी ये सबके सब एक के बाद एक भारत में आये और उनके आने से समाज ने हल्के कंपन का भी अनुभव किया, मगर अन्त में वे सब भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में विलीन हो गये। उनका कहीं कोई अलग अस्तित्व नहीं बचा।[13] इस प्रकार जब कोई नयी जाति कोई नया दार्शनिक मत भारत में प्रविष्ट हुआ तब - तब भारत में सांस्कृतिक क्रान्तियां हुई हैं। यदि भारतीय इतिहास के कालक्रमानुसार विचार करें तो हम पायेंगे कि भारत में कई सांस्कृतिक क्रान्तियां उद्भूत हुईं। पहली क्रान्ति तो तब हुई जब आर्यों के आगमन से द्रविड़ आर्य संस्कृति का समन्वय हुआ। इसके पश्चात् धार्मिक क्रान्ति ( बौद्ध धर्म ) जो वैदिक धर्म के दूषित कर्मकाण्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्मी थी किन्तु कुछ समय बाद यह हिन्दू संस्कृति द्वारा आत्मसात कर ली गयी और

उसका अस्तित्व हिन्दू संस्कृति में खो गया, और एक नवीन संस्कृति का जन्म हुआ जो पौराणिक संस्कृति कहलायी । भारतीय संस्कृति में सबसे बड़ी क्रान्ति मध्यकाल में आई जब मुसलमानों का आगमन हुआ जिसका परिणाम कबीर, नानक, अमीर खुसरो, दादू और जायसी के रूप में सामने आया, जिन्होंने दो अलग - अलग धाराओं को समन्वित रूप में प्रवाहित होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । चौथी क्रान्ति यूरोपीय जातियों के आगमन से हुई जिससे कोई नया सांस्कृतिक मोड़ तो नहीं आया लेकिन यह जरूर है कि हमें नवीन विचारधाराओं और वैज्ञानिक प्रगति का प्रकाश मिला लेकिन विकास में हम अन्य देशों से बहुत पीछे रह गये । इसका एक दुष्परिणाम और हुआ वह यह कि जो हिन्दू - मुसलमान सदियों से एक ही देश का अंग बन कर रहे थे अपने - अपने अतीत की ओर लौटे अपनी - अपनी भाषा अपनी संस्कृति की महत्ता प्रदर्शित करने में लग गये जिसका परिणाम देश के विभाजन के रूप में सामने आया और वे विदेशी हमारे बीच नफरत का ऐसा बीज बो गये जिसकी जड़ें आज भी समाज को खोखला कर रही है । विभाजन के बाद भी अधिकांश मुसलमान यहीं रह गये और आज भी उनकी संख्या अन्य जातियों की अपेक्षा सबसे अधिक है । पाकिस्तान बन जाने के बाद भी यहां के मुसलमान भारत और भारतीयता के बहुत अधिक निकट हैं । धर्म के सम्बन्ध में कुछ विशेष अन्तरों को छोड़कर प्रायः हिन्दू - मुसलमानों का खान - पान, रहन - सहन, पहनावा, रीति - रिवाज काफी हद तक मेल खाते हैं ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय संस्कृति का कोई स्पष्ट रूप सामने नहीं आया । जैसा कि हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के मेल से हुआ था वैसी कोई संस्कृति भारत और यूरोपीय संस्कृति के मिलन से सामने नहीं आयी । आज विज्ञान ने सभी देशों की दूरी को इस हद तक कम कर दिया है कि संसार एक परिवार जैसा बन गया है जिससे विश्व की विभिन्न जातियों और देशों के बीच एक व्यापक संस्कृति की समन्वयात्मकता एक समस्या बन गयी है । यह भारत के लिये एक चुनौती है कि क्या भारतीय संस्कृति जो स्वयं विभिन्नताओं में एकता की परिचायक है क्या ऐसा कोई समाधान विश्व को दे सकेगी ? जब कि आज की घोर विषमताओं से संसार के प्राणी क्षुब्ध हैं । युद्ध की विभीषिका निरन्तर उन्हें त्रस्त और भयभीत बनाये हुए है । यद्यपि तृतीय विश्व युद्ध

की सम्भावना टलती जा रही है तो देखना यह है कि क्या ऐसी विषम परिस्थितियों में भारत कोई हल पेश करेगा ? या नहीं, क्योंकि विश्व युद्ध की समस्या मानवीय समस्या बन गई है। भविष्य की अनिश्चितता जीवन को लक्ष्यहीन बनाती जा रही है। आज संसार के प्राणियों का जीवन उद्देश्यहीन भूलभुलैया में भटक रहा जीवन की निराशा मानव को कुण्ठाओं का शिकार बनाती जा रही है। जीवन का ध्येय क्या है यह आज के सांस्कृतिक मानव की समस्या बन गई है। विज्ञान के अत्याधिक प्रसार, औद्योगीकरण और चमक - दमक के कारण मनुष्य की आत्मा किन्हीं अज्ञात लोकों में खो गयी है, उस खोई हुई आत्मा की खोज आज के मनुष्य की व्यथा और पीड़ा का कारण बन गई है। तो क्या संसार की इस पीड़ा का हल हमारे पास कुछ है ? क्या हमारी संस्कृति में आज भी ऐसे कुछ गुण शेष हैं ? जो विश्व संस्कृति को एक निश्चित स्वरूप प्रदान कर सके।

चूंकि कवि युगद्रष्टा होता है और एक विशिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी होता है। वह युग चित्रण के समय भावी भविष्य के प्रति मौलिक दृष्टिकोण रखता है। वैसे भी इतिहास साक्षी है कि साहित्यकार और उसके साहित्य ने समाज की धारा को परिवर्तित कर दिया है, उसे एक दिशा प्रदान की है। आज पुनः सांस्कृतिक समन्वय की समस्या साहित्यकार के सम्मुख एक चुनौती बनकर आ गई है। देखना यह है कि आज का कवि ( हिन्दी, उर्दू कवि ) ऐसी विषम परिस्थितियों के बीच से सुनहरा भविष्य किस प्रकार निर्मित करता है। आज विश्व की समस्त जातियों के मेल से एक सर्वथा नवीन संस्कृति के निर्माण का काम उसके सम्मुख है और वह भी ऐसी संस्कृति जो रंग, वर्ण, जाति प्रथा के बन्धनों से मुक्त हो। विज्ञान के प्रसार ने हमें इतने निकट ला दिया है कि किसी भी घटना का प्रभाव चाहे वह विश्व में कहीं भी घटी हो संसार के हर देश पर समान रूप से पड़ता है किन्तु भौतिक दृष्टि से एक कुटुम्ब के होते हुए भी वैचारिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हम सर्वथा अलग रहने वाले हैं 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की पोषक भारतीय संस्कृति क्या इन बिखरे हुए प्राणियों को एक परिवार का सदस्य बना सकने में समर्थ है ? या नहीं। यह प्रश्न आज कवि के सम्मुख है।

(ब) धर्म और दर्शन :

" व्यापक मानों में धर्म संस्कृति का समानार्थी है बल्कि उसका विस्तार संस्कृति से भी अधिक है और संकीर्ण अर्थ में वह संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। यही अनुभूति का धोतक होता है जिसके द्वारा मन जीवन के सहज प्रयोजन और अर्थ को जान लेता है, वहां वह संस्कृति का प्राण कहा जा सकता है।[२४] " अत: हमारी संस्कृति में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि भारतीय संस्कृति ने आत्मोपलब्धि को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हुए समस्त जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ने का प्रयास किया। इस कार्य के लिये यह आवश्यक था कि सम्पूर्ण जीवन को एक निश्चित रूपाकार प्रदान किया जाय जीवन चिन्तन एवं कर्म को एक सांचे में ढालकर सम्पूर्ण जीवन को सुव्यवस्थित स्वरूप देने के लिये एक विस्तृत धर्म और दर्शन की आवश्यकता हुई, क्योंकि आध्यात्मिक चेतना का मनुष्य के मन में प्रथम रूप धर्म ही होता है। इसलिये आध्यात्मिक भावना की सफलता के लिये धर्म पहली सीढ़ी बन गया, क्योंकि आध्यात्मिक धरातल पर मनुष्य तुरन्त नहीं पहुंच सकता था। इसके लिये किसी सिद्धान्त, रूपक, पूजा पद्धति, अथवा प्रतीक की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति धर्म के माध्यम से की गई। किन्तु " भारतीय धार्मिक मानस के लिये धर्म सिद्धान्तों का उतना महत्व नहीं जितना कि धार्मिक भावना का, क्योंकि उसके लिये आत्मोपलब्धि ही जीवन का महान् लक्ष्य रहा है। धर्म के मार्ग भले ही अलग - अलग हों किन्तु सब का लक्ष्य अन्तत: एक ही रहा—आत्मसाक्षात्कार अर्थात् अपने अन्तस् को परमात्मा की ओर खोलना, अनन्त में निवास करना, सनातन को खोजना और उपलब्ध करना यही धर्म का सर्वमान्य विचार और लक्ष्य है। यही आध्यात्मिक मोक्ष का अभिप्राय है। यही जीवन का सत्य है जो पूर्णता और मुक्ति प्रदान करता है। उच्चतम आध्यात्मिक सत्य और उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य का यह क्रियात्मक अनुसरण ही भारतीय धर्म का एकीकारक सूत्र रहा है।[२५] " धर्म के सहस्त्रों रूपों के पीछे उसका एक अभिन्न आरतत्व है कि आत्मा में परमात्मा और परमात्मा में आत्मा निहित है। इसी परमतत्व को खोजना और प्राप्त करना ही जीवन की महान् उपलब्धि है।

संसार में आत्मा प्रकृति और जीव यही तीन सत्य हैं जिन्हें भारत के सभी धर्मों, दर्शनों और सम्प्रदायों ने माना है, इसके साथ ही सभी मत यह भी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य में निहित दिव्य ज्योति का उदय परमसत्ता की खोज और उसके साथ पूर्ण एकीकरण एवं तादात्म्य ही आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करना है। सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन के मूल में एक ही भावना कार्यरत रही है कि— इस लोक से परे एक परमात् पुरुष है जो सत्, चित् और आनन्दमय है। प्राण और शरीर से परे एक आध्यात्मिक सत्ता एवं परमात्मा है जो सभी सान्त एवं अनन्त वस्तुओं को अपने अन्दर धारण किये हुए है। सभी सापेक्ष वस्तुओं से अतीत एक निरपेक्ष सत्ता है जो सभी नश्वर पदार्थों को उत्पन्न और धारण करती है। एक विश्वव्यापी शाश्वत् परमात्मा है जो अजर-अमर है। जो सभी वस्तुओं में आदि स्रोत और अन्त है। जो कुछ भी सृष्टि में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है वह उसी की अभिव्यक्ति अथवा अंशमात्र है। वह दिव्य सत्ता स्वयं को प्रकृति और जीव के नानाविध रूपों में प्रकट करती है। जगत् को धारण करने वाली शक्ति एक सचेतन संकल्प शक्ति है और प्रकृति उसकी कार्यात्मक शक्ति है। जड़ जगत् आत्मा का बाह्य रूप और क्रिया व्यापार है। स्वयं मनुष्य कोई ऐसा प्राण और मन नहीं जो जड़ तत्व से उत्पन्न हुआ और न भौतिक प्रकृति के अधीन है, बल्कि वह आत्मा है, जो प्राण और शरीर का उपयोग करता है। भारतीय विचारधारा के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक अर्थ पशु रूपी प्राणी न होकर आध्यात्म सत्ता से युक्त एक सचेतन प्राणी है जो अपनी शक्ति के माध्यम से आत्मोपलब्धि को प्राप्त करता हुआ देवतत्व के पद तक पहुंच सकता है। यहां तक की अपनी सर्वोच्च स्थिति में वह परम सत्ता से भी अभिन्न है जिससे वह स्वयं उत्पन्न हुआ है। मनुष्य के भीतर जो अन्तरात्मा है वह ईश्वर या परमसत्ता का ही अंश है जिसके कारण वह अन्य पार्थिव जीवों में श्रेष्ठ है। बाह्य प्रत्यक्ष प्राकृत सत्ता का अतिक्रमण कर मानवता के उच्च शिखर तक पहुंचने के लिये आध्यात्मिक क्षमता उसके भीतर विद्यमान है जिसके आधार पर वह ईश्वर या परम् सत्ता से तादात्म्य स्थापित कर सकता है " एकमेवाद्वितीयम् " की अनुभूति को प्राप्त हो सकता है, क्योंकि मानव की अन्तिम पूर्णता अहं में लीन रहने में नहीं बल्कि अपने अहं का विस्तार करते हुए विश्व प्रकृति में लीन हो जाने में ही उसकी क्षमता एवं शक्ति निहित है। अस्तु भारतीय चेतना ने अपनी [illegible] काल, नाम और रूप से अतीत

परम् सत् की परिकल्पना पर प्रतिष्ठित की किन्तु एकेश्वरवादियों के समान उस परम् सत्ता के विविध रूपों, नामों, शक्तियों का निषेध नहीं किया, वरन् उन्हें अपनी धार्मिक चेतना का एक अनिवार्य अंग मानते हुए स्वीकृति प्रदान की । फलत: भारतीय धार्मिक चेतना के मूल में द्वैतवादी भावना को प्रश्रय मिला । भारतीय द्वैतवाद में ईश्वर परम् सत् है, उसी के द्वारा प्रकृति और जीव का अस्तित्व है, इससे परे उनका कोई अर्थ नहीं यह परम् सत्ता सृष्टि के नानाविध रूपों में प्रकट होती है । अतएव प्रत्येक शान्त में उस अनन्त को खोजा जा सकता है, उसके आकारों, रूपों, प्रतीकों के माध्यम से उसके निकट पहुंचा जा सकता है । इसलिये द्वैतवादी भावना प्रकृति के कार्य-व्यापार के पीछे विद्यमान देवताओं को एक ही परम् शक्ति के विविध रूपों, नामों और व्यक्तित्वों में देखती और पूजती है यह अनन्त शक्ति सृष्टि करती है इसलिए ब्रह्मा कहलाई, प्रतिपालन करती है इसलिए विष्णु कहलाई और जब उसका विनाशकारक और संहारक रूप सामने आया तो वह शिव कहलाई । इन्हीं नामों, रूपों, गुणों के आधार पर बहुदेववाद और आगे चलकर अवतारवाद की भावना ने जन्म लिया । चूंकि एक ही परम् सत्ता सृष्टि के नानाविध रूपों में स्वयं को अभिव्यक्त करती है अतएव किसी भी रूप को आधार बनाकर ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानावस्था में भक्ति के उन्मेष द्वारा परब्रह्म परम् सत्य ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये भारतीय धर्म ने मानव जीवन के सामने चार बातें रखीं[४६]—

१- एक ही सत्ता की उच्चतम चेतना पर विश्वास ।

२- व्यष्टि जीवन के समग्र विकास और अनुभव के द्वारा स्वयं को महत्तर सत्ता के सत्य में चेतन रूप से विकसित होने का प्रयत्न ।

३- धार्मिक आध्यात्मिक साधना का बहुशाखा- प्रशाखाओं से युक्त सदा विस्तृत होने वाला मार्ग ।

४- जो लोग आध्यात्मिक सोपान तक पहुंचने में समर्थ नहीं थे उनके लिये व्यक्तिक एवं सामूहिक जीवन की एक व्यवस्था, व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुशासन, आचार व्यवहार का मानसिक, नैतिक, प्राणिक विकास का एक ढांचा प्रस्तुत करना, ताकि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीमाओं के भीतर अपनी प्रकृति और सामर्थ्य के

अनुसार स्वयं को आध्यात्मिक स्तर तक पहुंचाने के लिये तैयार कर सके। भारतीय मानस ने अन्तिम को अधिक महत्व दिया क्योंकि उसने अनुभव किया कि समाज अथवा व्यक्ति सरलता से आध्यात्मिक धरातल पर नहीं पहुंच सकते। इसके लिये प्रथम प्राकृत जीवन को अधिक से अधिक नैतिक, बौद्धिक और सुसंगत धरातल पर पहुंचा सकता है जैसे-जैसे मनुष्य की आत्मा का शुभ पक्ष विस्तृत होता जायगा वह आध्यात्मिक धरातल की ओर उन्मुख होता जायगा। मानव में निहित आत्म-शक्ति का यही अर्थ है कि वह पूर्णता को प्राप्त करने के लिये प्रयास करे, इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिये वह अपनी किसी भी स्वाभाविक शक्ति अथवा सभी शक्तियों का उपयोग कर सकता है। वह मन से, बुद्धि से, कर्म से, नैतिकता से, हृदय से, प्रेम से, सौन्दर्य बोध से सार्वभौम कल्याण की भावना से अथवा आध्यात्मिक शक्ति द्वारा पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता है।

यही वह आध्यात्मिक मुक्ति या सिद्धि है जिसके लिये भारतीय दर्शन कृत संकल्प रहा है। भारतीय दर्शन का अन्तिम उद्देश्य दुख से निवृत्ति, मृत्यु पर विजय तथा मोक्ष प्राप्त करना है। इस सिद्धि अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिये भारतीय दर्शन ने कर्म फल और पुनर्जन्म के सत्य को जीवन का आधार बनाया जिसके अनुसार जन्म - मरण का चक्र उस समय तक समाप्त नहीं होता जब तक प्राणी निःस्पृह होकर फलासक्ति से मुक्त होकर कर्म नहीं करता। जब वह फल की आकांक्षा किये बिना कर्म करता है तब वह कर्म बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने पर ही वह जन्म ग्रहण के बन्धन से मुक्त होता है यही कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म की भारतीय मान्यता है। इसी मान्यता के आधार पर भारतीय संस्कृति ने मनुष्य को सदैव सद्कर्म करने तथा दुष्कर्म से विरत होने की प्रेरणा दी, ताकि मनुष्य निर्भय होकर सदाचार तथा सद्धर्म की ओर प्रवृत्त होता रहे। इस प्रकार वह आध्यात्मिक मुक्ति अथवा मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होता है। किन्तु भारतीय दर्शन में मनुष्य की पूर्णता मोक्ष तक ही सीमित नहीं रही क्योंकि यह जानते हुए भी कि मनुष्य मरण धर्मा है। वह सदैव मृत्यु से भयभीत रहता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए भारतीय दर्शन ने मृत्यु से बचकर अमरत्व की प्राप्ति को दार्शनिक रूप प्रदान करते हुए उसकी ज्योति से जीवन को अनुप्राणित किया है। यह भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता है कि उसने मृत्यु से बचकर अमरता की प्राप्ति को मानव का लक्ष्य माना है।

## (ब) समाज :

आत्म विकास को जीवन का परम् लक्ष्य मानते हुए भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बांटकर एक विशाल सामाजिक संगठन की आयोजना की, क्योंकि भारतीयों ने सदैव परमार्थिक एवं व्यवहारिक जीवन के अन्तर्सम्बन्ध को समझा है, "मनुष्यत्व से देवत्व की ओर प्रस्थान" यही भारतीय चेतना का मूल मंत्र रहा है। यह अभ्यान्तरिक विचार इस सत्य को लेकर चला था कि व्यक्ति का बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास परम आवश्यक है। समाज इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये ढांचा है। सम्बन्धों की एक प्रणाली है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने मन्तव्य तक पहुंचने में समर्थ हो सकता है। अतः इस मूल भावना को ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का निर्माण वर्णाश्रम व्यवस्था पर किया गया वर्णाश्रम व्यवस्था अर्थात् वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था। इस योजना के अन्तर्गत व्यष्टि एवं समष्टि जीवन के कल्याण का ध्यान रखा गया था। वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक संगठन सुव्यवस्था एवं समृद्धि हेतु समाज को चार भागों में बांटना था और आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत जीवन को समुन्नत करने के लिये जीवन को चार भागों में बांटा गया था। आश्रम व्यवस्था का महत्व एवं उद्देश्य इस दृष्टि से व्यक्तिक अधिक था जबकि वर्ण व्यवस्था की आधार शिला सामाजिक थी। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया था। विभाजन का यह आधार मनोवैज्ञानिक था और साथ ही उपयोगिता की दृष्टि से भी यह विभाजन रखा गया। भेद प्रकृति का एक वास्तविक रहस्य है। मानव मस्तिष्क की रचना-प्रक्रिया में भी प्रकृति की यह भेद लीला कार्यरत है। अतः बुद्धि वैषम्य को ध्यान में रखकर समाज की आध्यात्मिक, राजनैतिक और आर्थिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए भारतीय मनीषियों ने वर्ण व्यवस्था की स्थापना की थी। और उसे एक धार्मिक आधार देने का प्रयास किया था। "ऋग्वेद" के पुरुष सूक्त के अनुसार पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजन्य, जंघा से वैश्य की और चरण से शूद्र की उत्पत्ति हुई है।[20] इस प्रकार भारतीय मनीषियों ने भारतीय समाज की कल्पना एक सम्पूर्ण पुरुष के रूप में की थी। प्रत्येक अंग की भांति प्रत्येक वर्ण के लिये कुछ

कर्तव्यों और नियमों को निर्धारित किया गया था। प्रत्येक वर्ण से यह आशा की जाती थी कि वह उन नियमों को अपना धर्म समझ कर पालन करेगा। ब्राह्मण से आशा की जाती थी कि वह धर्म एवं पठन - पाठन से पारंगत हो, संघर्षमय क्षत्रिय शासन कार्य में निपुण हो। उत्पादन समर्थ वैश्य कृषि एवं व्यापार में दक्षता प्राप्त करे तथा शिल्प निपुण शूद्र समाज की सेवा में रत हो। वर्णों के कर्तव्य जीवन के चार पुरुषार्थों– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सामूहिक संतुलन से जुड़े थे, इन पुरुषार्थों की व्यक्तिगत रूप में उपलब्धि किये बिना सामूहिक स्तर पर संचालन सम्भव नहीं है, इसलिये व्यक्ति के लिये चार आश्रमों की व्यवस्था की गई– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। व्यष्टिनिष्ट और समाजनिष्ट धर्म की समझ ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर अध्ययन - मनन से प्राप्त कर गृहस्थ जीवन में उन्हें व्यवहारिक रूप देते हुए वानप्रस्थ में अर्थ और काम से उपशमित होकर मोक्ष का संधान करने की उपयुक्त चेतना प्राप्त होती थी। सन्यास तीनों पुरुषार्थों के समुचित अर्जन के बाद आत्मा के साक्षात्कार का व्यक्तिगत प्रयास था, जिसके साथ आगे चलकर बुद्ध की करुणा का सामाजिक सन्दर्भ भी जुड़ गया।

आश्रम श्रृंखला में विद्यार्थी जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया। यहां उसे उच्चतम नियम, विधान और पूर्णत्व को प्राप्त करने की सर्वोच्च पद्धति सतर्कता पूर्वक सिखाई जाती थी। यहां आवश्यक कलाओं, विद्याओं तथा ज्ञान की नाना शाखाओं की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। किन्तु विद्यार्थी की नैतिक प्रकृति के अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता था। सादा जीवन उच्च विचार भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। अस्तु शिक्षक वही व्यक्ति हो सकता था जो अपने जीवन में इस उक्ति को चरितार्थ करने में सक्षम हो। भारतीय चिन्तकों ने शिक्षा को अत्यन्त महत्व दिया। विद्यार्थियों के चरित्र नैतिकता तथा संयम पर बल देते हुए शिक्षा की व्यवस्था शहरों के कोलाहल से दूर आश्रमों में की गयी थी, किन्तु आगे चलकर शिक्षा नगरों में निर्मित विद्यापीठों में दी जाने लगी तथा शिक्षा अधिकाधिक बौद्धिक और सांसारिक होने लगी। शिक्षा का लक्ष्य चरित्र तथा ज्ञान

की आन्तरिक तैयारी की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना हो गया। जैसे - जैसे सभ्यता समृद्ध एवं जटिल होती गयी अन्तर्ज्ञान क्षीण होता गया। वर्ण को जन्म की कसौटी नहीं स्वीकार किया गया था परन्तु मानव की नैतिक, बौद्धिक क्षमता उसकी रुचि, स्वभाव तथा आध्यात्मिक उच्चता को अधिक महत्व दिया गया था। अतएव इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कौटुम्बिक जीवन को अत्यधिक महत्व दिया गया और कुटुम्ब के लिये ऐसे नियम बनाये गये जिसमें उन मूल तत्वों को प्रकट और गठित होने का सुअवसर प्राप्त हो सके। जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक के विधि-विधानों का सूत्रपात कर कौटुम्बिक जीवन को एक शृंखला में नियमबद्ध तथा सामाजिक जीवन में नारी को प्रमुखता प्राप्त थी। किन्तु ज्यों - ज्यों पुरुषों की सत्ता का विकास होता गया नारी के अधिकार क्षीण होने लगे। यहां तक कि नारी के लिये व्यवस्था दे दी गयी—

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्च स्थविरे भारे, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

इसी प्रकार नैतिकता - अनैतिकता को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक विधानों का निर्माण किया गया और उन पर धर्मशास्त्रों की मुहर लगाकर उन्हें धार्मिक अनुमोदन प्रदान किया गया जिसका कठोरता से पालन करना आवश्यक था। यहां तक की समाज की प्रमुख सत्ता राजा तक का कार्यकलाप धर्म के द्वारा नियन्त्रित किया गया।

(स) राजनीति :

राजा की दैवी शक्ति तथा राजपद की पवित्रता को स्वीकारते हुए विधान निर्माताओं ने ऐसे विधानों का निर्माण किया था कि राजा धर्मानुमोदित और जनहित के कार्यों के लिये बाध्य था। मनु ने तो यहां तक व्यवस्था की थी कि अत्याचारी राजा को पागल कुत्ते की तरह मार डालना प्रजा का कर्तव्य है। राजा का प्रत्येक कार्य तभी स्वीकृत तथा वैध माना जाता था जब वह परिषद् द्वारा स्वीकृत धर्मानुमोदित हो " भारतीय मानस का यह एक विशेष लक्षण था कि वह अपने जीवन के सभी, यहां तक कि अत्यन्त बाह्य सामाजिक और राजनीतिक व्यापारों को भी आध्यात्मिक अर्थ

प्रदान करने और उनके लिये धर्मानुमोदन प्राप्त करने का यत्न करता था---- जो केवल कुछ प्रसंगों को छोड़कर अधिकारों और शक्तियों का नहीं बल्कि कर्तव्यों का आदर्श होता था।[६८] इसलिये राजा का प्रत्येक कार्य शास्त्र सम्मत और धर्मानुमोदित होता गया। राजा का पद और राजा के व्यक्तित्व को एक विशेष प्रकार की पवित्रता और प्रभुता से सम्पन्न माना जाता था। राज्य की समस्त शक्तियां उसी के हाथ में थी। राजा प्रशासनिक एवं न्याय सम्बन्धी कार्यों में सर्वोपरि स्थान रखता था। वह मंत्री परिषद् सहित स्वयं युद्ध और शान्ति के लिये उत्तरदायी होता था। साथ ही समाज के जीवन की सुख समृद्धि और सुव्यवस्था का भी उत्तरदायी होता था किन्तु उसकी यह शक्ति व्यक्तिगत नहीं थी। उस पर नियन्त्रण रखा गया, ताकि वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग न कर सके। राजा पर सभा-समिति यों और साथ ही उसके सार्वजनिक अधिकारियों का नियंत्रण होता था, इससे भी बढ़कर उस पर पुरोहित वर्ग का अंकुश होता था। कालान्तर में समय के साथ ही साथ शासन व्यवस्था अत्यधिक जटिल होती गई और उसके केन्द्र अधिपति और एकीकरण सत्ता के रूप में राजा के ही प्रभुत्व पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। धीरे - धीरे राजा की स्थिति दृढ़ होने लगी। प्रजा पर राजा का अधिकार और नियन्त्रण असीमित होने लगा था। ब्राह्मणों का प्रभाव भी कम होने लगा। राजा किसी को भी दण्ड दे सकता था, निर्वासित कर सकता था, अनेक प्रकार के यज्ञों का आयोजन कर सकता था। अश्वमेध और राजसूय यज्ञों द्वारा राजा अपनी शक्ति का परिचय देते थे। इस प्रकार धीरे - धीरे सामन्तवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का बीजारोपण हो रहा था किन्तु उस समय तक शक्तिशाली होने पर भी राजा निरंकुश नहीं थे। राज्याभिषेक के समय उसे राजा के नियमों के प्रति निष्ठावान रहने, ब्राह्मणों तथा धर्म की रक्षा करने की शपथ लेनी पड़ती थी। समर्पण समारोह के अवसर पर सिंहासन से उतर कर ब्राह्मणों को प्रणाम करना पड़ता था। राज्य को राजा की निजी सम्पत्ति न मानकर धरोहर माना जाता था जो इस आधार पर उसे दिया जाता था कि राजा उसका संगठन इस प्रकार करे कि सामान्य जनता की भलाई हो और सुख वैभव की व्यवस्था हो। उस समय राजसत्ता तो बढ़ रही थी लेकिन राजा पूर्णरूप से निरंकुश नहीं हो

पाये थे क्योंकि दीर्घकाल तक पौर या प्रादेशिक गणतन्त्रात्मक व्यवस्था ने इस प्रवृत्ति को रोके रखा। यहां तक कि इस समय देश में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का ही सूत्रपात हो गया। बौद्ध काल में मुख्यतः गणराज्यों की स्थापना का उल्लेख मिलता है किन्तु धीरे-धीरे यह गणतन्त्र लुप्त होते गये और उनके स्थान पर गणतन्त्रात्मक राज्य प्रणाली उत्पन्न होती गयी और एक शक्तिशाली क्षत्रिय वर्ग उत्पन्न हो गया। जिसके हाथों में शासन की बागडोर आ गयी समाज के अन्य वर्गों में व्यापारियों, शिल्पियों और कृषकों की एक पृथक श्रेणी बन गयी और श्रमिकों तथा सेवकों की एक दास या निम्न श्रेणी की स्थापना हुई। प्रारम्भ में राजा का निर्वाचन जनता की इच्छा पर होता था। बाद में आनुवांशिकता के सिद्धान्त का प्रभुत्व बढ़ने लगा, किन्तु देश में मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारतीय राजतन्त्र किसी भी प्रकार एक व्यक्ति विशेष का निरंकुश या स्वेच्छाचारी तानाशाही नहीं था क्योंकि परिषद् जैसी छोटी संस्था जो राजा तथा उनके मंत्रियों के पीछे तथा सतत प्रभाव में रहती थी। एकमात्र शासन संस्था होती थी जो अधोगति को प्राप्त होकर तानाशाही शासक के यन्त्र के रूप में परिणित हो सकती थी। किन्तु राज्य में दो अन्य शक्तिशाली सभायें भी थीं। महान् राजधानीय सभा और साधारण सभा जो समाज रूपी संस्था का वृहद पैमाने पर प्रतिनिधित्व करती थी और राजा के प्रभाव को मुक्त होकर राज्य प्रबन्ध और प्रशासनिक विधान निर्माण की व्यापक और अटल शक्तियों का प्रयोग करते हुए समाज की मनोकांक्षा का ध्यान रखती थी। किन्तु मुसलमानों के शासन स्थापना के परिणाम स्वरूप इन सभाओं का अस्तित्व समाप्त हो गया।

नये शासक अपने साथ एक निरंकुश और व्यक्तिगत शासन की परम्परा लेकर आये थे। दूसरे इस समय तक देश में निरंकुश और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति का विकास हो गया था। अतएव मुगल शासकों ने जिस शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया वह निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन व्यवस्था थी जिसका सर्वोपरि बादशाह होता था। सल्तनत कालीन शासक बगदाद के खलीफा को अपना सर्वोच्च मानते थे और स्वयं को उसका प्रतिनिधि। अतएव वह पूर्णरूप से अपने को स्वेच्छाचारी नहीं अनुभव कर पाते थे। किन्तु बाबर ने खलीफा के आधिपत्य को अस्वीकार कर स्वेच्छाचारी शासन तन्त्र की स्थापना की

और साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथों में ले ली । प्रारम्भ में उलमाओं का प्रभाव बादशाहों और सुल्तानों पर रहा । किन्तु धीरे - धीरे उनका प्रभुत्व कम होने लगा और मुगल शासक न केवल राजनीति वरन् समाज एवं धर्म के क्षेत्र में भी सर्वश्रेष्ठ बन बैठे । सम्राट स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे और सम्राट पद को दिव्य और दैवी अधिकारों से विभूषित मानते थे । प्राचीन शासन व्यवस्था भी राजपद को दैवी मानती थी किन्तु मुगल शासकों ने सम्राट के पद को देवत्व से सुशोभित किया जिस प्रकार ईश्वर की आज्ञा मानना लोग अनिवार्य समझते थे । उसी प्रकार राजा की आज्ञा मानना भी प्रजा का कर्तव्य हो गया । बादशाहों के कार्यों में दखल देना या उसका विरोध करना गलत माना जाता था । सम्राट अपनी अपार शक्ति और अधिकारों के कारण शासन की प्रत्येक गतिविधि न्याय, सेना आदि के क्षेत्र में सर्वोच्च था । वह युद्ध और शान्ति के लिये उत्तरदायी होता था । इन कार्यों के लिये उसकी सहायक मंत्री परिषद् होती थी किन्तु बादशाह का निर्णय ही सर्वमान्य होता था । सम्राट ही प्रजा की सुख-सुविधा और सुव्यवस्था का उत्तरदायी होता था । इस प्रकार मुगल साम्राज्य एक महान् ऐश्वर्यशाली साम्राज्य सिद्ध हुआ जिसके निर्माण में राजनीतिक प्रतिभा और कुशलता का पर्याप्त हाथ रहा है ।

## ३- मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति :

मुस्लिम संस्कृति की निश्चित परिभाषा देना कठिन है क्योंकि मुस्लिम संस्कृति पूर्णतया इस्लाम के अनुयायियों की बनाई हुई नहीं है और न ही यह संस्कृति अरबी लोगों की बनाई हुई है बल्कि एशिया और अफ्रीका की वे जातियां जो समय - समय पर इस्लाम धर्म ग्रहण करती गयीं उन जातियों के योग से मुस्लिम संस्कृति का निर्माण और विकास हुआ । संक्षेप में मुस्लिम संस्कृति से तात्पर्य " इस्लाम के प्रकाश में समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार सुधार और विकास से है, जिसकी सीमा में रहन - सहन, खान-पान, वेश-भूषा, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, आचार-व्यवहार, रीति - रीति, रूचि, धर्म, अर्थ आदि व्यक्ति समाज तथा जीवन से सम्बद्ध सभी तत्व आते हैं ।[२६] प्रारम्भ से ही मुस्लिम संस्कृति का झुकाव समन्वयवादिता की ओर रहा है जब इस्लाम का उदय हुआ तो उसके पास परम्परागत अरब संस्कृति ही थी

लेकिन जैसे - जैसे इस्लाम विभिन्न देशों में फैला और मुस्लिम विजेताओं ने विभिन्न देशों को विजित किया उन स्थानों के निवासियों से उनका सम्पर्क स्थापित हुआ तब मुसलमानों ने अपने विजित प्रदेशों की संस्कृति की उन स्वस्थ परम्पराओं को अपना लिया जिनका इस्लाम के मूल सिद्धान्तों से विरोध नहीं था । * जो संस्कृति अरब के लोग अपने साथ विभिन्न देशों को ले गये वह निरन्तर परिवर्तनशील और विकासवान रही क्योंकि इस पर इस्लामी नवीन विचारों की दृढ़ छाप रही । केवल इसलिये इसको पूर्णतया इस्लामी संस्कृति तो कहा नहीं जा सकता । ------ जब इसका केन्द्र दमिश्क था उस समय ही इसने अपने रहन - सहन की सादगी के स्थान पर भव्यता को अपना लिया था । इस काल को अरब-सीरिया सभ्यता काल कहा जा सकता है । इस संस्कृति पर बाइजेंटाइन प्रभाव भी पड़ा किन्तु अधिकतर उस समय जबकि मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र बगदाद बना । उन्होंने जिन प्राचीन ईरानी परम्पराओं के प्रभाव को ग्रहण किया वह आगे उन्नति करके अरब - ईरानी सभ्यता कहलाई जिसका प्रभाव बड़ा व्यापक रहा ।[20] इस प्रकार अरबों की शक्ति और ईरानियों की जीवन की भव्यता, कला और ऐशोइशरत मुस्लिम संस्कृति के अन्तर्गत एक हो गयी । मुस्लिम संस्कृति की इस प्रति-वादिता की प्रवृत्ति के कारण जहां एक तरफ अपने धर्म, दर्शन और सिद्धान्तों से अपने सम्पर्क में आने वाले देशों को प्रभावित किया । तो दूसरी ओर उस देश के उत्तम सांस्कृतिक गुणों को भी अपनाया । इस्लाम की बुनियाद ही दृढ़ एकेश्वरवाद और साम्यवाद ( मुसावात ) पर है । और कुरान हर मुसलमान के लिये पांच धार्मिक कृत्य निर्धारित करता है । कल्मा पढ़ना- जिस पर इस्लाम का एकेश्वरवाद ( तौहीद ) आधारित है, नमाज पढ़ना, रोज़ा रखना, ज़कात देना, और हज करना । इन सिद्धान्तों के ही आधार पर इस्लाम का आधुनिकतम साम्यवादी समाज स्थिर था । प्रतिदिन एक साथ नमाज पढ़ने से एक क्षेत्र के निवासियों में भ्रातृत्व की भावना बढ़ती है । रोज़ों के बाद ईद आदि की नमाज मिलकर पढ़ने से एक नगर के लोगों में सम्बन्ध तथा संगठन स्थापित होता है । और ज़कात देने से कुछ ही व्यक्तियों के पास धन एकत्र नहीं हो पाता, पूंजीवादी वर्ग के बनने का भय नहीं रहता । हज के कारण इस्लामी दुनियां के विभिन्न भागों में निकटतम सम्बन्ध स्थापित हुए जिसके द्वारा सुगमता से सांस्कृतिक आदान - प्रदान होता रहा । अपनी इस समन्वयवादिता और उदारता

के कारण " इस्लाम को जन्म लिये हुए सिर्फ अस्सी वर्ष हुए थे कि उतने ही समय में उसका झण्डा एक ओर तो भारत की सीमा पर पहुंच गया, और दूसरी ओर वह अटलांटिक महासागर के किनारे पर जा गड़ा। सात सौ ईस्वी आते - आते इस्लाम ईराक - ईरान और मध्य एशिया में फैल गया। तथा सन् ७१२ ई० में सिन्ध मुसलमानों के अधिकार में आ गया और उसी साल मुसलमान राज्य स्पेन में भी हो गया। ईस्वी सन् के सौ साल होते - होते मुसलमानों के राज्य के समान शक्तिशाली राज्य दुनियां में और नहीं रह गया था[21]।" इस प्रकार निश्चित धार्मिक सिद्धान्तों तथा समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं को विरासत में लेकर मुसलमान भारत आये। जिनकी दृष्टि से साम्राज्य और वैभव की महत्ता अधिक थी, ये मुस्लिम विजेता मूलत: आर्यों के वंशज थे, इसलिये दो विभिन्न धाराओं में बहने वाली संस्कृतियों में मूल बातों में बहुत कुछ सामान्यता भी थी, जो समय और धर्म के अन्तरावलम्ब से कुछ समय के लिये दूर हो गयी थी। जब वे पुन: एक दूसरे के निकट आईं, तो शीघ्र ही एक दूसरे से घुल - मिल गयीं और एक नवीन सांस्कृतिक परम्परा को जन्म देने में सफल हुईं।

## (ख) इस्लामी रहस्यवाद या तसव्वुफ :

इस्लाम दृढ़ एकेश्वरवाद पर आधारित है। यह एकेश्वरवाद या तौहिद अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है " खुदा को एक मानना या एक करना[22]।" इस्लाम धर्म और दर्शन, साहित्य का प्रमुख ग्रन्थ कुरान शरीफ है। धार्मिक दृष्टि से मुस्लिम संस्कृति की नींव तौहिद पर दृढ़ विश्वास रखने तथा उस पर अमल करने पर ही है। कुरान में स्थान - स्थान पर तौहिद पर बल दिया गया है। उदाहरणार्थ " तेरे रब की यही आज्ञा है कि तुम लोग उस एक खुदा के अतिरिक्त किसी दूसरे की बंदगी या पूजा न करो[23]।" " अल्लाह ही माबूद है उसके सिवा कोई माबूद नहीं[24]।" " शासन तो केवल अल्लाह का ही है उसी की आराधना करो[25]।" तौहिद के कारण मुस्लिम संस्कृति में सामाजिक सुव्यवस्था को बल मिला तथा ईश्वर और बन्दे के बीच किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं पड़ी, जैसे- हिन्दू धर्म में पुरोहितवाद और ईसाई धर्म में पादरीवाद समाज को, धर्म को, राजनीति को, अपने स्वार्थों की कठपुतली बनाते रहे

थे। रंग, नस्ल, जातीयता इस सम्बन्ध के बीच बाधा नहीं है, और न इस्लाम इस आधार पर किसी के मौलिक अधिकारों को हनन करता है। इस्लाम अल्लाह की शक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य देवी - देवताओं को नहीं मानता है और न ही यहां सामाजिक छूतछात का कोई स्थान है। इस्लाम ने जिस ईश्वर की कल्पना की, वह सर्वशक्तिमान था जिसके सामने दलील का कोई मतलब न था। कुरान में तवक्कुल करने वाले को पसन्द किया गया है। " तवक्कुल अल्लाह पर पूर्ण विश्वास रखना है[26]। " इस्लाम का अर्थ ही समर्पण है और मुसलमान वास्तव में प्रपन्ना है[27]। " लेकिन मनुष्य केवल भय और समर्पण में ही विश्वास नहीं रखता, अपितु वह प्रेम और लगाव में भी विश्वास रखता है। अनादिकाल से संसार में विभिन्न धर्म हुए हैं और सबके अलग - अलग रास्ते होते हुए भी सबकी मंजिल एक है। उस मंजिल का अधिकारी कौन है ? उसकी प्रकृति क्या है ? उसे कैसे जाना जाय ? ये प्रवृत्ति भी हर धर्म में कुछ भावुक लोगों में पायी जाती है। इस्लाम में भी कुछ ऐसे साधक हुए जिन्होंने ईश्वर की प्रकृति को जानना चाहा है ? यहीं से इस्लामी रहस्यवाद का जन्म होता है। " संसार के प्रत्येक धर्म में तसव्वुफ के तत्व मिलते हैं। यह बात दूसरी है कि समय, काल और स्थान ने उसके नाम को बदल दिया है, किन्तु प्रत्येक देश के सूफियों के मूल सिद्धान्त एक ही हैं। " उनके पथ अनेक हो सकते हैं[28]। " प्रत्येक सूफी का लक्ष्य ईश्वर की खोज उसकी अनुभूति और उससे निकटता प्राप्त कर एकाकार होना है। तसव्वुफ का आधार प्रेम है। यह पूरे संसार के हर देश और काल में व्याप्त रहा है क्योंकि हर जातियों में ईश्वर से प्रेम की हद तक लगाव रखने वालों की कमी नहीं है। तसव्वुफ या सूफी मत की कोई युक्तियुक्त परिभाषा देना इसलिये कठिन है कि यह अनुभव की चीज है अभिव्यक्ति की नहीं। अंग्रेजी भाषा में जो मिस्टिसिज़्म तथा हिन्दी में आध्यात्मवाद है वही अर्थ तसव्वुफ का भी है। फिर भी अनेक विद्वानों ने तसव्वुफ की परिभाषा अपनी - अपनी अनुसार दी है। " सूफी शब्द की उत्पत्ति सूफ ( ऊन ) से मानी गयी है[29]। " " तसव्वुफ में हृदय की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है इसलिये इसकी धातु सफ और सफा को भी माना गया है[30]। " " सूफी मत पूर्ण रूप से आत्मानुशासन है[31]। " इस्लाम केवल तौहीद का सिद्धान्त ही लेकर नहीं आया, बल्कि उसने नैतिकता और सदाचार का पाठ भी संसार

को पढ़ाया । मुहम्मद साहब के जन्म के समय अरब देश बहुत-सी बुराइयों से ग्रसित था । उस जाति नैतिकता तो समाप्त प्राय हो चुकी थी और उसके स्थान पर अत्याचार, अनैतिकता और अनाचार समाज में फैला हुआ था । कुरान की शिक्षाओं तथा अपने व्यक्तित्व की नैतिकता से मुहम्मद साहब ने उस जाति का उद्धार किया और अरब समाज को एक ऐसे धर्म और दर्शन से परिचित कराया जिसकी नींव सादगी और समानता पर थी । मुहम्मद साहब का अपना बचपन का जीवन भी बहुत दुखों से भरा था । प्रायः वे गारेहिरा में ( एक पहाड़ी खोह में ) जाकर विचारमग्न हो जाया करते थे और इस गिरती हुई कौम को सम्भालने के लिये चिन्तित रहते थे । यहीं से उनमें सूफियाना प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ । यहीं से इस्लामी रहस्यवाद का जन्म हुआ जो आगे चलकर सूफी मत के रूप में विकसित हुआ । इस प्रकार इस्लाम को लेकर ही सूफी मत विकसित हुआ । इस सम्बन्ध में निकल्सन आदि का कथन सत्य प्रतीत होता है कि तसव्वुफ़ की बुनियाद निश्चित रूप से इस्लामी है।[32] इसका उद्गम स्रोत कुरान और पैगम्बर इस्लाम का जीवन है । " मुहम्मद साहब एक सूफी थे।[33] कुरान की कई आयतों में तसव्वुफ़ की स्पष्ट रूप से आवाज सुनाई देती है।[34] इस तरह ये बात तो स्पष्ट है कि सूफी परम्परा मुहम्मद साहब से शुरू हुई और इसका सैद्धान्तिक पक्ष इस्लाम की देन है । सूफी सन्तों ने इस्लाम के प्रचार के लिये सांस्कृतिक समन्वय के मार्ग को अपनाया था । इसलिये जहां भी सूफी गये उनके मत पर उस देश की संस्कृति का प्रभाव पड़ा और सूफी मत ने भी स्थान विशेष के धर्म दर्शन को प्रभावित किया ।

जब सूफी मत सामने आया तो तसव्वुफ़ पर हिन्दू आध्यात्मवाद का भी प्रभाव पड़ा और सूफियों ने सन्तों तथा भक्ति आन्दोलन के कवियों को प्रभावित किया । यों तो सूफी मत की प्रेम वेदना की अभिव्यक्ति की भाषा फारसी थी किन्तु भारत में आकर उसका रूप बदल गया और वह भारतीय रंग में रंगने लगा । सूफी कवियों ने भारतीय भाषाओं और भारतीय कथाओं तथा चरित्रों के माध्यम से अपने विचारों को प्रतिष्ठित किया । सूफी प्रेम मार्गी सभी कवि मुसलमान थे और किसी-न-किसी प्रसिद्ध सूफी सन्त के शिष्य थे जिनमें जायसी का स्थान प्रमुख है । जायसी ने पद्मावत

में हिन्दू राजा की कथा को मसनवी शैली में अपनी भाषा अपनाकर प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रारम्भ में ईश स्तुति तथा पैगम्बरे इस्लाम की वन्दना के बाद जिस कथा का आरम्भ किया है उसकी सारी पृष्ठभूमि भारतीय है। भारतीय धर्म दर्शन, रीति - रिवाज, प्रथाओं को जायसी ने हिन्दू संस्कृति के अनुसार ही प्रस्तुत किया है और इसके माध्यम से हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध को एक नया रूप दिया है। " इन सूफी कवियों में इस्लामी तसव्वुफ़ के साथ नवअफलातूनी ईसाई बौद्ध तथा हिन्दू धर्म दर्शन के सिद्धान्तों को भी स्पष्ट देखा जा सकता है।[35] सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव मध्यकालीन साहित्य पर स्पष्ट रूप से पड़ा सन्तों के यहां इश्क मुहब्बत, दर्द, आशिक माशूक और सब कुछ निराकार ईश्वर में होना आदि से प्रकट करता है कि ज्ञानाश्रयी शाखा पर तसव्वुफ का प्रभाव था। मीरा के काव्य का दर्द, बेखुदी माधुर्यभाव की भक्ति, उनकी वाणी की वेदना स्पष्ट रूप से सूफियों से प्रभावित है। मीरा की दीवानगी और सूफियों की हाल की दशा एक समान ही है। डा० असद अली का कहना तो यहां तक है कि सूफियों का रहस्यवाद भागवत के रहस्यात्मक अर्थ छानने में सहायक हुआ है। कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में मीरा और रसखान के यहां सूफी प्रेमकी व्यंजना और दर्द स्पष्ट दिखायी पड़ता है।[36]

हिन्दी साहित्य का विरह पक्ष सूफी तसव्वुफ़ से बहुत अधिक प्रभावित है। यह सूफियाना अन्दाज़ दादू, मलूकदास, रैदास तथा नानक के काव्य में भी झलकता है। इन कवियों में तसव्वुफ़ की सभी दशाओं और शब्दावली का प्रयोग किया है। " रैदास के भजनों में दीनता और आत्मसमर्पण का भाव सूफियों का है।[37] तसव्वुफ़ की शिक्षा यह है कि साधक पूर्णरूप से गुरु और ईश्वर के प्रति समर्पित रहे इसी प्रकार सूफियों ने भी हठयोग, ब्रह्मरन्ध्र अनहदनाद आदि का जो काव्य में प्रयोग किया है वह समन्वय का ही परिणाम है। हिन्दू-मुस्लिम धर्म दर्शन का मिला - जुला रूप सूफी काव्य है। किन्तु यह विषय ( धर्म दर्शन ) इतना गहन तथा जटिल है कि इसके साथ पूरा न्याय करने के लिये इसका विस्तृत विवरण आवश्यक है और प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की कुछ सीमाओं के कारण तथा विस्तार भय के कारण इसके अधिक विस्तृत विवेचन सम्भव नहीं है। चूंकि मुस्लिम संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य का स्रोत कुरान है

और इस्लाम के जन्म से लेकर आज तक इस ग्रन्थ का प्रभाव मुस्लिम संस्कृति पर दिखायी देता है। इस कारण इसका संक्षिप्त विवरण अपेक्षित था।

(ब) इस्लाम और भारतीय संस्कृति का परस्पर आदान-प्रदान :

भारत की मिट्टी के हर कण - कण में कुछ ऐसी चुम्बकीय शक्ति है कि अनादि काल से आज तक यह देश विभिन्न विदेशी जातियों, धर्मों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। समय - समय पर आने वाली जातियों, धर्मों, मतों के सम्पर्क में आने से भारतीय संस्कृति एक ऐसी सुसरिता के समान हो गयी जिसमें देश - विदेश की अनेक संस्कृतियां आकर उसी का रूप बन गयीं। कतिपय विद्वानों का मत है कि भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि सदा से उसमें समुद्र की भांति सोखने की असीम शक्ति रही है जिसके मूल में भारतीय संस्कृति की सहनशीलता, पाचनशक्ति, उदारता, लचीलापन और समन्वयात्मकता का गुण कार्यरत रहा है। यही कारण है कि यह संसार की प्राचीन संस्कृति होते हुए भी आज तक नयी-सी लगती है। संस्कृतियों के इस मेल में कुछ संस्कृतियां तो भारतीय संस्कृति में खो गयीं लेकिन कुछ संस्कृतियां ऐसी प्रबल भी रही हैं जिनके चिन्ह स्पष्ट उभरे हुए दिखाई देते हैं। मुस्लिम संस्कृति कुछ ऐसी ही संस्कृति है। मुसलमानों के आगमन से भारत में एक सांस्कृतिक समस्या का उठना स्वाभाविक था। इस्लाम का भारतीय संस्कृति में आत्मसात न होने का मुख्य कारण इस्लाम का मूर्ति पूजा विरोध और हिन्दू धर्म का मूर्ति पूजा समर्थन था। जिसका समन्वय नहीं हो पाया। किन्तु समाजशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जब - जब दो धर्म, संस्कृतियां एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में बहुत समय तक रहती हैं तो वे एक - दूसरे को प्रभावित भी करती हैं। इसीलिए जब इस्लाम और हिन्दू धर्म एक - दूसरे के सम्पर्क में लम्बे समय तक रहे तो दोनों के सम्पर्क से एक नवीन संस्कृति का रूप सामने आया। ये दोनों धर्म ( हिन्दू, मुसलमान ) एक दूसरे को सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं कलात्मक स्तरों पर तो बहुत अधिक प्रभावित करते हैं किन्तु इसके आगे धारा प्रवाह समतल ही रहा। ये दोनों एक जाति के रूप में धुल-मिल नहीं सके। यद्यपि हिन्दू धर्म अब तक भारत में आने वाले यूनानी, हूण, शकों को आत्मसात कर चुका था लेकिन इस्लाम का

हिन्दूकरण करने में हिन्दू धर्म असफल ही रहा। हिन्दू धर्म ने उनके साथ खान-पान, विवाह आदि करने में स्वयं ही दूरी बरती क्योंकि हिन्दू धर्म खान-पान की शुद्धी तथा शाकाहारी भोजन पर बल देता था। इसके विपरीत सभी मुसलमान सामिष भोजी थे। " इसके अलावा उनको ऐसे समाज में जो जाति-पांति के बन्धनों में जकड़ा हुआ था और आन्तरिक मतभेद से ग्रस्त था। स्वयं को विलीन करने से कोई लाभ भी नहीं था"[38]। यदि हिन्दू उन्हें म्लेच्छ कहते थे तो मुसलमान हिन्दू को काफिर कहते थे। ऐसी स्थिति में आत्मघात करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। ये अवश्य हुआ कि दीर्घकालीन सम्पर्क ने दोनों संस्कृतियों को नज़दीक आने में सहायता दी। वैसे स्वयं ही आपसी लाभ के लिये एक-दूसरे से कुछ सीखने की उत्सुकता उनमें नहीं थी और आज तक दोनों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति, सौहार्द्र का अभाव है जिसके कारण आज भारत की सबसे बड़ी समस्या हिन्दू - मुस्लिम एकता की समस्या ही है। नवीं शताब्दी में अरब के लोग बड़ी संख्या में दक्षिणी - पश्चिमी समुद्र तट पर बस गये थे। यहीं हिन्दू धर्म पहली बार इस्लाम के सम्पर्क में आया। सिन्ध पर अरबों की विजय तक उत्तरी भारत इस्लाम के प्रभाव से मुक्त रहा। लेकिन जब तुर्क साम्राज्य स्थायी रूप से कायम हुआ तो दोनों में सांस्कृतिक आदान - प्रदान भी शुरू हुआ। जब दोनों संस्कृतियों का अन्तर समाप्त होने लगा और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के मुस्लिम प्रयत्न शुरू हुए तो हिन्दू समाज में रूढ़िवादिता बहुत अधिक बढ़ गयी। हिन्दू धर्म शास्त्रियों के विचार से इस्लाम के आक्रमणों से अपने धर्म और अपनी संस्कृति को बचाने का एक मात्र उपाय यही था कि धर्म के आचार-विचार को इतना कठोर बना दिया जाय कि आसानी से इन बन्धनों को तोड़ना सम्भव न हो। फलतः जाति बन्धन और कड़े किये गये। स्मृतियों की नये ढंग से व्याख्या की गयी और कठोर धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये नियम निर्धारित कर दिये गये। बाल - विवाह की प्रथा समाज में चल पड़ी। पर्दा प्रथा को समाज ने कठोरता से अपना लिया गया। इतना सब करने पर भी दीर्घकालीन सम्पर्क दोनों संस्कृतियों को समीप आने से नहीं रोक सका। प्रारम्भ में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव हिन्दू उच्च वर्ग पर पड़ा और कालान्तर में सामान्य जनता भी प्रभावित हुई। मुस्लिम खान-पान और पहनावे का प्रभाव केवल उच्चवर्गीय हिन्दुओं ने ग्रहण किया। सामान्य जनता इस प्रभाव से अछूती ही रही। मुगल काल में हिन्दू और मुसलमान

समाज के भद्र लोग लगभग एक ही से वस्त्र पहनते थे।" उनके पहनावे में केवल यही एक विशेष अन्तर था कि मुसलमान अपने कुर्ता को तनियों से दाहिनी ओर बांधते थे और हिन्दू बांयीं ओर।"[३८अ] दोनों जातियों के पुरुष वर्ग में घुटनों तक लम्बी बाहों का कुर्ता पहनने का प्रचलन था। साफा या पगड़ी दोनों ही पहनते थे जो हिन्दू शाही सेवा में थे उन्होंने मुस्लिम भोजन अर्थात् मांसाहारी भोजन प्रारम्भ कर दिया था। पुलाव, कबाब, कोफता हिन्दू सामन्तों का प्रिय खाद्य पदार्थ बन गया था। इसके अतिरिक्त उच्च हिन्दू वर्ग ने मुगल काल में मुस्लिम तौर - तरीकों, सामाजिक रीति-रिवाज, व्यवहार तथा सदाचार के नियमों को अपने जीवन का अंग बना दिया था।

उद्योग धन्धों के क्षेत्र में भी दोनों जातियां निकट आई थीं। कालीन और दरी बुनने का काम ईरान की ही देन है। चौपड़ और पोलो जो ईरानी मनोरंजन के साधन थे इन खेलों का प्रचलन हिन्दू उच्चवर्ग ने अपना लिया। सल्तनत काल तक हिन्दी, संस्कृत साहित्य पर फारसी का प्रभाव नाममात्र को ही है। लेकिन मुगल काल में शाहजहां और दारा के प्रयासों से हिन्दुओं में भी फारसी लिखने - पढ़ने का शौक पैदा हुआ। हिन्दू मुस्लिम सम्पर्क की साहित्यिक उपलब्धि उर्दू भाषा के रूप में सामने आई। भारत की विभिन्न भाषाओं पर अरबी - फारसी और तुर्की का प्रभाव पड़ा। हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती और उत्तरी भारत की अन्य भाषाओं में बहुत से शब्द अरबी - फारसी से ले लिये गये। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के प्रमुख कवियों कबीर, दादू, रैदास, नानक आदि ने तो अपने काव्य में फारसी शब्दावली का बहुत अधिक प्रयोग किया है।

मुस्लिम सम्पर्क का क्रान्तिकारी प्रभाव भारतीय युद्ध प्रणाली पर पड़ा। पहले राजा छोटी - छोटी सेनाएं रखते थे। उनके अलग - अलग सेनापति होते थे। लेकिन मुगल युद्ध प्रणाली ने राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति ला दी थी। सेना में घोड़ों और तोपों के प्रयोग ने भारतीय रक्षात्मक युद्धों के तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति ने एक महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीय ललित कलाओं पर डाला। इस्लाम में मूर्ति पूजा मना है इसलिए मूर्ति कला में तो कोई प्रभाव नहीं

दिखाई देता लेकिन चित्रकला और संगीत कला में यह समन्वय अद्भुत रूप में दृष्टिगत होता है। अकबर, शाहजहां और दारा के प्रोत्साहन से राजपूत और मुगल चित्रकला शैलि ने खूब उन्नति की। संगीत गायन के क्षेत्र में ख्याल, कव्वाली, तराना मुस्लिम सम्पर्क का परिणाम है। वाद्य यन्त्रों में तबला और सितार दोनों कलात्मक समन्वय का परिणाम है। भारतीय ललित कलाओं में मुसलमानों ने सबसे अधिक सहयोग स्थापत्य कला के क्षेत्र में दिया। इस सामासिक संस्कृति की चरम पराकाष्ठा सौन्दर्यानुभूति और कलात्मक अभिव्यक्ति में साकार हो उठी। वैसे तो इस्लाम संगीत और चित्र कला की भी आज्ञा नहीं देता है लेकिन मुस्लिम शासकों की सौन्दर्यप्रियता के कारण विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन मिला और दोनों संस्कृतियों के मेल से नवीन शैलि की रचना हुई, जो स्थापत्य कला में मुखरित हुई। इस्लाम की सादगी के कारण मुस्लिम इमारतों में सादगी बहुत थी और हिन्दी इमारतों में कलात्मकता की बहुतायत थी। फलत: दोनों के मेल से इण्डोइरानी वस्तुकला का जन्म हुआ। मुसलमानों ने यह महसूस किया यदि वे अपनी सादगी में कुछ रंगीनी भी शामिल कर लें तो कलात्मक सौन्दर्य में अधिक निखार आ जाय, परिणामत: उनकी इमारतों में धीरे - धीरे थोड़ी कलात्मकता आने लगी। ------ और हिन्दुओं ने भी महसूस किया कि उनके यहां कलात्मकता इतनी ज्यादा आ गयी है कि सौन्दर्य नष्ट होने लगा है और दृष्टि उसी कलात्मकता में उलझ कर रह जाती है। अतएव मुसलमानों की तरह हमको भी अपनी इमारतों से कलात्मकता को कम करके सादगी व सफाई लानी चाहिये ताकि सुन्दरता सार्थक हो सके।[३९] इस विचार ने एक ऐसी सुन्दर शैलि को जन्म दिया जिसने कला और सौन्दर्य को नया मोड़ प्रदान किया। कला का एक सुन्दर भव्य और शालीन रूप सामने आया। मध्ययुगीन इमारतें चाहे वे हिन्दू सामन्तों द्वारा निर्मित हो या मुस्लिम बादशाहों द्वारा सभी में कला का यह रूप स्पष्ट दिखाई देता है। यहां तक कि " हिन्दू मन्दिर तक मुगल स्थापत्य कला के ढंगों से नहीं बच सके। उदाहरण के लिये, वृन्दावन के कई मन्दिरों में मुगल स्थापत्य कला की शैलि अपनायी गयी है।[४०]

इस्लाम ने जहां एक ओर हिन्दू संस्कृति को प्रभावित किया वहीं मुसलमान भी हिन्दुओं के सामाजिक संगठन, उनकी सभ्यता और संस्कृति से अछूते न रह सके। इस्लाम

का मूल रूप जो सादगी पसन्द था वह ईरान से मिलकर तड़क - भड़क धारण कर चुका था। यही धर्म भारत आकर धीरे - धीरे अपनी मौलिक विशेषताओं को खोता गया, और हिन्दू समाज का रंग उस पर चढ़ने लगा। इस्लाम न तो मूर्ति पूजा की आज्ञा देता है न उसमें रीति - रिवाजों की परम्परा है। लेकिन हिन्दू प्रभाव के कारण मुसलमानों में भी संतों और पीरों की मज़ारों पर नियम से जाना शुरू हो गया। मज़ारों पर फूल चढ़ाना, मज़ारों की सीढ़ी आदि से धोना और प्रसाद चढ़ाने की परम्परा हिन्दुओं से सम्पर्क का ही फल है। ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से मुस्लिम विजेताओं के साथ आये हुए सूफियों पर हिन्दू धर्म का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। सूफी मत पर वेदान्त और बौद्ध तथा संत मत का प्रभाव विद्वानों ने स्वीकार भी किया है।[41] " मुस्लिम शासक राजमद में चूर होकर धार्मिक प्रभुत्व छोड़कर अन्धविश्वासों और अनभिज्ञता में डूबते चले गये।[42] " दूसरी ओर वे हिन्दू स्त्रियां जिनसे मुसलमानों ने विवाह किया था, वे यद्यपि मुसलमान तो बना ली गयी थीं, किन्तु वे अपनी पारिवारिक परम्पराओं को भी अपने घर - परिवार में ले गयीं। इसलिये देवी - देवताओं की पूजा की परम्परा एकदम नहीं भुला सकीं, और उसी का प्रतिरूप दरगाहों की पूजा बन गया। मुस्लिम त्योहार भी हिन्दू त्योहारों की तरह जोर - शोर से मनाये जाने लगे। मोहर्रम के जुलूस शबेबरात त्योहार, दशहरा और शिवरात्रि के तरह मनाया जाने लगा, विश्वकर्मा पूजा जैसा त्योहार लोहे के मुस्लिम कारीगर भी तेरातेजी या सफ़र ( इस्लामी महीना ) के अन्तिम बुधवार को मनाने लगे हैं।

वह इस्लाम धर्म जिसमें मात्र मानव का ही महत्व था जहां जाति-पांति का अस्तित्व भी न था, वहां जातिवाद ने भयंकर रूप ले लिया। मुसलमानों में शिया - सुन्नी सम्प्रदाय तो पहले ही से थे परन्तु अब उनमें भी सैय्यद, शेख, मुगल, पठान, अंसारी कई जातियां बन गयीं जो " अपनी जाति से बाहर विवाह सम्बन्ध करने की बात नहीं सोच सकते थे। जो हिन्दू प्रभाव के द्योतक हैं।[43] " मुस्लिम समाज में अक़ीक़ा और बिस्मिल्लाह के उत्सव हिन्दुओं के मुण्डन और विद्यारम्भ[44] के संस्कारों जैसे मनाये जाने लगे। राजपूतों की पगड़ी मुस्लिम समाज में प्रचलित हो गयी। " मुसलमान सुल्तान

भी हिन्दू छत्र और अन्य राजकीय चिन्ह धारण करने लगे थे।[45] इस्लाम धर्म में पुरुषों को स्वर्णाभूषण धारण करना मना है किन्तु धन सम्पन्न भारतीय मुसलमानों ने अंगूठी, कंठे तथा कान के आभूषण पहनने शुरू कर दिये थे।[46] मनोरंजन के साधनों में शतरंज का खेल खूब प्रसिद्ध हुआ। विदेशी मुसलमान जो स्थापत्य कला भारत में लाये वह हिन्दू कला के सम्पर्क से इतनी बदल गयी कि उसका शुद्ध इस्लामी रूप भारतीय स्थापत्य कला के साथ घुलमिल गया। उन्होंने हिन्दू कलाकारों से अपने भवन निर्माण में सहायता ली और दोनों कलायें (हिन्दू - मुस्लिम) अपने सर्वोच्च रूप में प्रतिष्ठित हुईं। यद्यपि मुसलमानों की साहित्यिक तथा दरबार की भाषा फारसी थी। किन्तु यहां दीर्घकाल तक रहने से उनकी भाषा पर भी प्रभाव पड़ा और उन्हें स्थानीय भाषाओं से भी सम्पर्क रखना पड़ा। सूफी सन्तों के प्रचार का क्षेत्र भी सामान्य जनता थी। अतः उन्होंने देशी बोलियों को अपने प्रचार का माध्यम बनाया। बुद्ध पाली भाषा विभिन्न प्राकृतों और अपभ्रंशों को पार करती हुई देशी बोलियों का रूप ले चुकी थी। जब इसी भाषा में सूफियों, सन्तों ने अपना प्रचार किया तो संस्कृत भाषा के सामने हेय समझी जाने वाली बोलियां भी साहित्यिक पद पर प्रतिष्ठित हुईं। जायसी, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा के काव्य में इनका साहित्यिक रूप स्पष्ट है जिसके परिणाम स्वरूप उर्दू का जन्म हुआ। मुसलमानों के राज्य स्थापना के परिणाम स्वरूप राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों के लिये एक ऐसी भाषा का अनुभव तीव्रता से होने लगा जो न हिन्दुओं के लिये अपरिचित हो और न फारसी भाषी मुस्लिम विजेताओं के लिये। इस बात को ध्यान में रखते हुए संस्कृत - फारसी स्थानीय भाषाओं और देशी बोलियों के सम्मिश्रण से एक नई भाषा का निर्माण हुआ जिसमें व्याकरण हिन्दी की और लिपि फारसी की रखी गयी। शीघ्र ही यह भाषा अपनी मिठास और लोच के कारण विकसित होकर एक साहित्यिक भाषा बन गयी। राजाश्रय पाकर वह बन-धन कर हिन्दी के समानान्तर ही इस देश के निवासियों में रच-बस गयी। इस प्रकार धर्म के मूल सिद्धान्तों को छोड़कर प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दोनों संस्कृतियां नज़दीक आ गयीं। यद्यपि अकबर का दीन-ए-इलाही इस दिशा में एक सराहनीय कदम था। किन्तु धर्म के रक्षकों के कारण यह धर्म अकबर के

जीवन के बाद ही समाप्त हो गया ।

देश की स्थायी शान्ति और ऐश्वर्य ने भोग-विलास को जन्म दिया । यह भोग - विलास ही सामन्ती संस्कृति का पर्याय बन गये और वेश्यावृत्ति सभ्यता और संस्कृति का अंग बन गयी । सामन्तों के साथ कला प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बनने के कारण नारी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची । जिस नारी को हमारी संस्कृति में वन्दनीय समझा जाता था उसका रूप मात्र भोग्या हो गया । उसकी स्वतन्त्रता छीनकर अशिक्षा के अन्धकार में ढकेल दिया गया । वह स्त्री जो कभी समाज में पुरुष के बराबर स्थान पाती थी वही घर की चार दीवारी में कैद कर दी गयी । परस्त्री सम्बन्ध को अनैतिकता मानकर उस पर धर्म की मोहर लगा दी गयी और प्रेम सम्बन्ध गुनाह माने गये । दमन की इस प्रवृत्ति ने दूसरे रूप में समाज को जकड़ लिया और समाज के रोम - रोम में वेश्यावृत्ति का जहर फैल गया । रागात्मक प्रवृत्तियों का नैतिक पतन यहां तक हुआ कि वह राधा और सीता जैसी पूजनीय स्त्री रूप में भी वासना ढूंढने लगी जिससे अन्तत: समाज का नैतिक पतन हुआ । यह गिरावट धर्म, समाज, राजनीति हर क्षेत्र में दृष्टिगत होती है । इस नैतिक पतन ने जहां जागीरदारी सामन्तों को भोगी बनाया वहीं सामान्य जनता को भाग्यवादी अन्धविश्वासी और निष्क्रिय बना दिया । परिणाम स्वरूप शासक वर्ग की विलासिता और जनता की निवृत्ति रंग लायी और देश वर्षों मुट्ठी भर विदेशियों के हाथों की कठपुतली बन गया ।

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

१- डा० बलदेव प्रसाद : भारतीय संस्कृति, पृष्ठ - ९८
२- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ- ९६
३- बी० एन० लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- १६७
४- - वही - पृष्ठ- १९४
५- - वही - पृष्ठ- १९०
६- - वही - पृष्ठ- २०१
७- - वही - पृष्ठ- १९२
८- - वही - पृष्ठ- २९४
९- - वही - पृष्ठ- ३३१
१०- - वही - पृष्ठ- ५१९
११- - वही - पृष्ठ- ५५६
१२- - वही - पृष्ठ- ५९३
१३- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय भूमिका, पृष्ठ- १५
१४- डा० आबिद हुसैन : भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, पृष्ठ- ७
१५- अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधार, पृष्ठ- १५६
१६- अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधार में वर्णित विचारों के आधार पर, पृ०-१५६
१७- ऋग्वेद : १०।९०
१८- अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधार, पृष्ठ- ३८९
१९- डा० आदवली : भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ- १४
२०- पण्डित जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृष्ठ- २०६
२१- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-२२४
२२- शार्टर इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृष्ठ- ५८६

२३- कुरान - सूरे बनी इस्राईल ( १७ ) आयत २३

२४- कुरान - सूरे बक़र ( २ ) आयत २५५

२५- कुरान - सूरे आराफ़ ( ७ ) आयत १५८

२६- डा० ताराचन्द : इन्फ़्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृष्ठ-६५

२७- - वही - - पृष्ठ -११४

२८- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-[illegible] - २०५

२९- डा० असद अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ- १२२

३०- शार्टर इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृष्ठ-३७६

३१- निकल्सन : इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृष्ठ- २१

३२- - वही - पृष्ठ- ५८

३३- डा० ताराचन्द : इन्फ़्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृष्ठ-६४

३४- कुरान - सूरे नूर ( २४ ) आयत ३५

३५- डा० असद अली : भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ- १२५

३६- - वही पृष्ठ- १३८

३७- डा० ताराचन्द : इन्फ़्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृष्ठ-१७६

३८- डा० आशीर्वादी लाल : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- २५३

३८(ब) - वही - पृष्ठ-२४६ - २४७

३९- डा० एजाज़ हुसैन : मज़हब और शायरी, पृष्ठ- २४

४०- आशीर्वादी लाल : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ-२४८

४१- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ- २६८

४२- डा- सत्यकेतु विद्यालंकार - भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास पृष्ठ -६३१

४३- डा० आशीर्वादी लाल : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ- २५०

४४- - वही - - वही -

४५- - वही - - वही -

४६- - वही - - वही -

# तृतीय अध्याय

## आधुनिक भारतीय संस्कृति : पाश्चात्य प्रभाव एवं भारतीय निवृत्तिवाद से संघर्ष

कोई भी युग अकस्मात ही परिवर्तित नहीं होता बल्कि उस बदलाव की पृष्ठभूमि बहुत पहले से तैयार होने लगती है। उसी प्रकार रीतिकाल के राजाश्रित सामन्ती और श्रृंगारी काव्य की जगह अचानक ही लोकाश्रित, सार्वजनिक, सुधारवादी साहित्य की रचना प्रारम्भ नहीं हुई वस्तुतः इस बदलाव के लिये तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियां उत्तरदायी हैं जिसकी पृष्ठभूमि उन्नीसवीं शताब्दी के भी पहले से तैयार होने लगी थी। अंग्रेज केवल व्यापारी के रूप में भारत आये थे किन्तु देश की छिन्न - भिन्न स्थिति और धर्मान्ध जनता के पिछड़ेपन ने उनका ध्यान आकर्षित किया और वे धीरे - धीरे राजनीतिक क्षेत्र में अपने कदम जमाने लगे। सन् १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध ने अंग्रेजों की नींव भारत में सुदृढ़ कर दी। सन् १७६४ ई० में मुगल बादशाह शाहआलम को और सन् १८१६ में मराठों तथा अन्त में सिक्खों को हराकर धीरे - धीरे अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत पर कब्जा कर लिया। देश की जनता शायद इसकी अभ्यस्त हो चुकी थी उसने सम्भवतः यही समझा कि फिर कोई गजनवी या नादिर शाह आया है। फलतः देशवासी अपनी ही सीमाओं में बंधे चुपचाप सब देखते रहे। इस प्रकार जिस समय भारत में यौरोपीय जातियों का आगमन हुआ उस समय देश की जनता में निवृत्तिवाद की भावना भयंकर रूप से घर कर चुकी थी। जीवन को निस्सार मान कर सन्तुष्ट रहना ही उनका दृष्टिकोण था। पाश्चात्य प्रभाव से पूर्व सम्पूर्ण देश मध्यकालीन रूढ़िवादी मान्यताओं तथा विचारधाराओं से जकड़ा हुआ था। भारत के निवासियों को निवृत्तिवादी बनाने की प्रक्रिया उपनिषदों से प्रारम्भ हुई। बुद्ध के वैराग्य और जैनियों की अहिंसा व त्याग में इसकी जड़ें समाज में मजबूती से फैलने लगीं और बैठते - बैठते शंकर के मायावाद में अपने उत्कर्ष को पहुंच गयीं। इस्लाम के आगमन से इस प्रवृत्ति को समाप्त होना चाहिये था क्योंकि इस्लाम प्रवृत्तिमार्गी था। किन्तु हुआ इसके विपरीत यहां आकर मुसलमान भी निवृत्तिवादिता के रंग में रंग गये। उनके यहां भी जाति - पांति, अशिक्षा, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास घर करता

चला गया । इस सन्दर्भ में यद्यपि भक्ति आन्दोलन ने सामाजिक सन्दर्भों को उभारने की कोशिश की, लेकिन भक्ति में वैयक्तिक भावना प्रधान होने के कारण समाज ने उनसे इस भावना को ही अधिक ग्रहण किया । वस्तुतः निवृत्तिवाद की एक दीर्घकालीन परम्परा थी जो निरन्तर चलती आ रही थी । यद्यपि समय समय पर प्रतिक्रिया स्वरूप चार्वाक दर्शन, सिद्ध वामपंथी, नाथसम्प्रदाय उठे लेकिन किसी में अतिशय भोगवादिता थी तो किसी में कापालिक क्रियाओं की प्रधानता थी, तो कहीं असामाजिक मुद्राओं को अपनाने के कारण समाज ने इन्हें ग्रहण नहीं किया । फलतः ये समाज पर व्यापक प्रभाव डालने में असमर्थ रहे किन्तु इनके द्वारा उत्पन्न अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को समाज में ज़रूर अपना लिया गया । वास्तविकता तो यह है कि ब्राह्मणों ने अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये कर्मफल और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को लोगों के दिमाग में इस तरह भर दिया कि उसके सामने कोई भी बड़े से बड़ा तर्क टिकने में समर्थ न हो सका । उनके दिमागों में ये बात बैठा दी गई थी कि " क्या पता अगले जन्म में तुम्हारे अच्छे कर्मों से प्रसन्न होकर ईश्वर तुम्हें ब्राह्मण बना दे । इसलिये अपने निर्धारित कर्म का बिना विरोध किये पालन करो । अन्यथा इससे भी निम्न योनी में गिराये जा सकते हो । " इस मान्यता ने सामाजिक चिन्तन को कभी भी परिवर्तित न होने दिया और आज इतनी प्रगति कर लेने के उपरान्त भी भारतीय अपनी प्रत्येक होनी को कर्म का फल ही मानते हैं । सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत देश की सभ्यता और संस्कृति एक ही ढर्रे पर चलते - चलते शिथिल अंगों के समान निष्प्राण हो चुकी थी । बदली हुई स्थितियों को स्वीकार करने की क्षमता उन मूल्यों में नहीं थी । इसके विपरीत यूरोप पुनर्जागरण से लाभान्वित होकर एक नये जीवन के स्वामी हो चुके थे । उनके चारों ओर सब कुछ नया ही नया था । भारत जब इस नवीन प्रकाश के सम्पर्क में आया तो सदियों से सोते हुए समाज की तन्द्रा टूटी, और उसने अनुभव किया कि वह नयी शिक्षा एवं आविष्कारों से कोसों दूर है । जीवन किसी पिटी परिपाटी में जकड़ा है । उसमें इतनी शक्ति नहीं कि आशावान भविष्य का निर्माण हो सके । अस्तु समाज को " अतीत की परम्पराओं, साहित्यिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं ने इतना वशीभूत कर लिया था कि जैसे सम्पूर्ण भारत यह सोच रहा था कि जो दैविक,

राजनैतिक, साहित्यिक और सामाजिक मान्यतायें अब तक यहां धर्म निर्धारित कर चुका है वह पूर्ण है, उसमें वृद्धि असम्भव है। जो प्रगति होनी थी वह हो चुकी, जो साहित्य पुराने मनीषी दे गये हैं वही सब कुछ है। इससे हटकर कोई नई दृष्टि उत्पन्न नहीं की जा सकती। हमें केवल उस मार्ग का अनुसरण करना है। इनको यह खबर नहीं थी कि भारत से बाहर यूरोप कितनी उन्नति कर रहा है। आधुनिक शिक्षा और विज्ञान ने उन्हें कितनी शक्ति प्रदान की है[1]। प्राचीन भारत का सामाजिक संगठन वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। प्रत्येक वर्ण अपने निर्धारित कर्म का पालन करना अपना धर्म समझता था। मुसलमानों के आगमन से इस ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि मुसलमानों में जाति भेद भी आ गया। मुस्लिम शासन काल में शिल्प और व्यापार के क्षेत्र में जो प्रगति हुई उससे शिल्पियों और व्यापारियों की अनेक जातियों, उपजातियों का निर्माण हुआ। वस्तुत: भारतीय सभ्यता शताब्दियों के बोझ से स्थिर और शिथिल हो चुकी थी[2]। ऐसे ही समय में भारत एक यंत्र सज्जित, औद्योगिक प्रगति से सम्पन्न जाति के सम्पर्क में आ गया। अंग्रेजी राज्य स्थापित होने से अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा मिला और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी स्वीकार कर ली गयी। इस अंग्रेजी शिक्षा और विज्ञान के बढ़ते हुए प्रसार ने निवृत्ति के मोह को भंग किया। इस सम्बन्ध में प्रो० एहतेशाम हुसैन का मत उल्लेखनीय है। "अंग्रेजी शिक्षा ने चाहे और कुछ न किया हो चाहे मैकाले अपने उद्देश्य में पूर्ण हुआ हो अथवा नहीं किन्तु इससे इतना अवश्य हुआ कि पूर्वी आध्यात्मिकता वैयक्तिक साधना, रहस्यात्मकता के विचारों को चोट सी लगी। फलत: सोचने समझने के दृष्टिकोण में बदलाव आया और जागीरदारी के सूखते हुए वृक्ष की छाया से एक नये मध्यम वर्ग का पौधा उत्पन्न हुआ और पनपता हुआ दिखाई दिया[3]।"

औरंगजेब के बाद भारत की राजनैतिक दशा छिन्न - भिन्न होती गयी और अंग्रेज मिशनरियों को अपने धर्म का प्रचार का मौका मिला और उन्होंने हिन्दू - मुस्लिम धर्म के विरुद्ध प्रचार करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। दूसरी ओर वह हिन्दुत्व जिसने कई बार झकोरे और थपेड़े खाने के बाद भी अपनी धार्मिक तथा जातीय जकड़न को ढीला नहीं किया था, उस समाज के अनादृत तथा त्रस्त वर्ग ने धर्म परिवर्तन

शुरू कर दिया और ईसाइयत की ओर झुकने लगा। फिर भी समाज की नींद नहीं टूटी। समाज की ये बेखबरी देखकर ईसाई धर्म प्रचारकों के इरादे और मजबूत हुए और उन्होंने बेधड़क युवा वर्ग को गुमराह करना शुरू कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रकाश में जिस युवक वर्ग ने आंखें खोलीं उसे पूर्वी संसार में दोष ही दिखाई दिये और वह अपने अतीत को भूलकर पश्चिम की ओर देखने लगा। क्योंकि "हिन्दुत्व सिमट कर पौराणिक हो गया था और अन्धविश्वासों को छोड़कर उसका कोई रूप दिखाई नहीं देता था[4]।" इसलिये युवा वर्ग इस धर्म से दूर होने लगा। उसे तीर्थों और मन्दिरों में कोई तत्व दिखाई नहीं दिया। उसे धार्मिक और नैतिक तत्वों पर कोई श्रद्धा न रही क्योंकि एक तो उनके मन में बुद्धिवाद का ज़ोर था और उनका हृदय उदारता और क्रान्ति के भावों से भरा हुआ था[5]। इस प्रकार मैकाले की कल्पना के भारतीयों का निर्माण होने लगा जो अपने धर्म की खिल्ली उड़ाता, मांस - मदिरा का छककर सेवन करता और धर्म के मामले में शून्य होता गया। फलत: अपने ही देश में विदेशी बने हुए इस वर्ग के विचारों और व्यवहारों ने समाज को जागृत करने की भूमिका तैयार की। इसी भूमिका पर बहुत से सांस्कृतिक आन्दोलन उठे जिनसे समाज को एक नई दृष्टि, एक नई समझ प्राप्त हुई। इस गुलामी से जकड़े हुए भारत को जागृत करने के लिये समाज की बुराइयों को दूर करना जरूरी था। उन्हें अन्धविश्वासों की उस जकड़न से मुक्त करने के लिये आवश्यक था कि समाज को पुन: हिन्दू धर्म की ओर आकर्षित किया जाय।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि सभी कार्य चाहे वो व्यक्तिगत हो, या सामाजिक हो, अथवा राजनैतिक सभी में धर्म की प्रधानता रही है। पूरी सामाजिक व्यवस्था धर्म सापेक्ष है। इसीलिये भारतीय धार्मिक, सामाजिक सुधारवादी आन्दोलन के प्रवर्तकों को धार्मिक पुनरुत्थान के कर्म में लाने से पहले सामाजिक व्यवस्था में सुधार की ओर उन्मुख होना पड़ा क्योंकि इसके बिना राष्ट्रीय जागरण असम्भव था। इसी धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आधार लेकर राजनीतिक चेतना का प्रसार एवं प्रचार हुआ। वस्तु "भारतवर्ष में राष्ट्रीयता संस्कृति की कुक्षि से उत्पन्न हुई[6]।"

ये आन्दोलन दो प्रकार के थे। कुछ उग्र सुधारवादी थे जो धर्म और समाज में बड़े क्रान्तिकारी सुधार लाना चाहते थे। उनका प्रेरणा स्रोत पश्चिमी विचारधारा और शिक्षा थे। इनमें ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज मुख्य थे। इन प्रवर्तकों ने जब पश्चिम से आकर्षित होकर समाज में अत्यन्त मौलिक परिवर्तन लाने चाहे तो प्रतिक्रिया में थियोसाफिकल सोसायटी और रामकृष्ण मिशन जैसे कट्टर सुधारवादी आन्दोलन उठे। इन दोनों अतिवादियों के बीच अनेक नरम विचारों वाले विचारक भी खड़े हुए। आर्य समाज ऐसा ही प्रयास था,जो वैदिक परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए परवर्ती युगों में उत्पन्न कुरीतियों का संशोधन करना चाहता था।

सन् १८२८ ई० में राजाराम मोहनराय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कलकत्ते में की थी। ये ईसाईयत के विरोध में हिन्दू समाज की रक्षा के लिये पक्का बांध था। मूर्तिपूजा के विरोध के अतिरिक्त ब्रह्म समाज में जातिभेद और सामाजिक कुरीतियों के समापन की ओर बहुत ध्यान दिया किन्तु सन् १८३३ ई० के आसपास ईसाईयों ने इतने घातक प्रहार किये कि यह उसका मुक़ाबला न कर सका और उसी के प्रवाह में बह गया।

रानाडे का प्रार्थना समाज ब्राह्म समाज का ही नवीन संस्करण था इस संस्था को महाराष्ट्र के सन्तों से प्रेरणा मिली थी। यह संस्था आधुनिक विचारों से युक्त आस्तिक संस्था थी। जाति प्रथा विरोध विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह विरोध और नारी शिक्षा का प्रचार इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था। रानाडे प्रार्थना समाज को जन समुदाय से जोड़ना चाहते थे जबकि " ब्राह्मसमाज कभी विद्वान वर्ग तक ही सीमित रहा[८]।" मध्यम वर्ग का अवलम्बन लेने के कारण प्रार्थना समाज राष्ट्रीय विकास में योग देने में सफल तो हुआ किन्तु यह सुधारों तक ही सीमित रह गया। इन संस्थाओं द्वारा समाज में सुधार हुआ और भारतीय समाज अपने आत्म गौरव से भर उठा। आत्मगौरव की इस भावना का उदय आर्य समाज के प्रवर्तक दयानन्द के रूप में हुआ जिन्होंने " सत्यार्थ प्रकाश " में धर्म की बुद्धि संगत व्याख्या की क्योंकि यूरोपीय बुद्धिवाद ने भारतीय शिक्षित युवकों को आकर्षित कर लिया था। धर्म परिवर्तन करने वालों को देखकर पुरातनपंथियों ने अपने नियमों को और भी ज़्यादा

कठोर कर लिया जिससे हिन्दू धर्म और कुछ ज़्यादा ही संकुचित हो गया जिससे हिन्दुत्व को ख़तरा उत्पन्न हो गया। ऐसे समय में दयानन्द ने वेदों की प्रतिष्ठा द्वारा लोगों में वैदिक साहित्य और संस्कृति के अध्ययन की रुचि पैदा की। वे यूरोपीय बुद्धिवाद को भारतीय संस्कृति में आत्मसात् करना चाहते थे क्योंकि वेद ही उनकी मूल प्रेरणा थी " उनके प्रयत्नों से वह धर्म फिर जागृत हुआ जो पौराणिकता की परतों में दब गया था।[9]" दयानन्द ने धर्म में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके उसे उसके मूलरूप में पुनः स्थापित कर दिया। जाति, भेद, छुआछूत, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, मूर्तिपूजा का विरोध किया और स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, शुद्धि-आन्दोलन का ज़ोरदार समर्थन किया। दयानन्द ने हिन्दू जाति को सबल और क्रियाशील बनाकर उन्हें मानसिक पराधीनता से मुक्त किया। दयानन्द ने जो सबसे बड़ा कार्य किया वह है मैकाले की माया से मुग्ध भारतीयों को निद्रा से जगाना तथा स्वराज का मंत्र फूंकना। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में कहा कि " कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर माता - पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य सुखदायक नहीं होता है।[10]" इन भावों ने राष्ट्रीय जागरण का मार्ग प्रशस्त किया।

इस जातीय स्वाभिमान को बढ़ाने की दिशा में एनी बेसेण्ट एक कदम और आगे बढ़ गयी। उन्होंने हिन्दू धर्म के समग्र रूप का समर्थन किया जिसकी परिधि में वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, पुनर्जन्म, अवतारवाद, कर्मफल, योग यहां तक कि सारे अनुष्ठान ८४ लाख योनियों की मान्यता तक समाहित हो गयी। जन साधारण में यह आन्दोलन काफी प्रचलित हुआ। ऐनी बेसेण्ट की यह मान्यतायें एक ओर तो विवेकानन्द से मिलीं और दूसरी ओर तिलक से जाकर जुड़ गयीं। विवेकानन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी में वेदान्त के सत्य को मुखरित किया। उन्होंने पश्चिम के सम्मुख भारतीय संस्कृति और सभ्यता के गौरव को प्रतिष्ठित करने का सराहनीय कार्य किया। उनकी मान्यता थी कि पश्चिम का उद्धार भारतीय आध्यात्मवाद से ही सकता है और भारत की उन्नति पश्चिम की उपयोगी विशेषताओं को अपनाने से हो सकती है। विवेकानन्द के इन विचारों से देश में जो चेतना की लहर उठी उससे

राष्ट्रीय भावनाओं को बहुत अधिक प्रकाश मिला। " हिन्दी के छायावादी कवियों को विवेकानन्द के दर्शन ने बहुत प्रभावित किया[११]। " वेदान्त के सत्य को और अधिक ओजस्वी वाणी तिलक ने प्रदान की। उन्होंने जनता के समक्ष प्रवृत्ति मार्ग को दार्शनिक रूप में प्रतिष्ठित किया क्योंकि उन्होंने अनुभव किया था कि भारत का सारा दोष जीवन को निस्सार मान लेना है। तिलक का गीता विषयक " कर्मयोगशास्त्र " अभिनव हिन्दुत्व की श्रेष्ठ संहिता मानी जा सकती है।

इन सुधारवादी आन्दोलनों से समाज में जागृति आयी और एक नये मानवतावादी समाज का जन्म हुआ जो छुआछूत तथा आडम्बरों से मुक्त था। इन आन्दोलनों ने राजनैतिक जागरण की भूमिका तैयार की। ये भावनायें जहां हिन्दू पुनरुत्थान को प्राचीन आर्य संस्कृति की ओर ले गयी वहीं मुसलमान अपने प्राचीन इतिहास की ओर लौट गया। ये सभी सुधार हिन्दुओं तक ही सीमित थे और मुसलमान समाज को मार्गदर्शन न मिलने के कारण वह प्रगति की दौड़ में बहुत पीछे रहा था। दूसरे मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा से दूर थे। एक मनोवैज्ञानिक कारण भी था जिसके दबाव में मुस्लिम समाज सोता रहा और नवोत्थान में देरी हुई। मुसलमान काफ़ी दिन तक इसी भ्रम में रहे कि अंग्रेजों से संघर्ष के बाद फिर जनता किसी मुसलमान को बादशाह बनायेगी और पुनः मुस्लिम राज्य स्थापित होगा। दूसरे मुस्लिम नवोत्थान के लिये अधिकांशतः साहित्यिक ही आगे आये। इसलिये स्वाभाविक था कि वे अपने उद्गार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रेषित करते जिससे विचारों के प्रभावी होने में समय लगा और मुसलमानों को जागृत होने में बहुत देर हो गयी। सर सैय्यद सुधारक थे। वे पाश्चात्य सभ्यता की विशेषताओं को भारतीय संस्कृति में समाहित करना चाहते थे और भारत को मध्यकालीन मनोवृत्ति से निकाल कर आधुनिक युग में प्रवेश दिलाना चाहते थे। बाद में कुछ विरोध हो जाने के कारण उन्होंने केवल मुसलमानों के लिये कार्य किया। मुस्लिम नवोत्थान के लिये वह अंग्रेजों की अनुकम्पा प्राप्त करने वाले तरीक़ों को भी अपनाने से नहीं हिचकिचाये। वे अंग्रेज़ियत से इतना प्रभावित थे कि मुसलमानों को उसी रंग में रंग देना चाहते थे। यह मुसलमानों के स्वाभिमान पर चोट थी। फलतः सोया हुआ स्वाभिमान मौलाना अलताफ़ हुसैन

शिबली के रूप प्रकट हुआ। उन्होंने मुसलमानों को उनके अतीत की याद दिलाई। उन्हें सर ऊँचा करके चलने की प्रेरणा दी। इस कार्य के लिये उन्होंने मुस्लिम समाज की तुलना यूरोप के साथ न करके इस्लाम के विगत गौरव से की। किन्तु " हाली का स्थान श्रीमती एनीबेसेण्ट अथवा कुछ - कुछ विवेकानन्द के समान था जिन्होंने हिन्दुत्व की महिमा हिन्दुत्व के आधार पर ही बतलायी थी।" लेकिन ये याद इतनी जबरदस्त थी कि अतीत पर भारी पड़ा। इस स्वाभिमान को इक़बाल ने आगे बढ़ाया और मुसलमान शिक्षित तथा धार्मिक दोनों वर्गों को आधार प्रदान किया। उनमें आत्म गौरव जगाने के लिये खुदी के दर्शन का प्रचार और मुस्लिम समाज को पुनः प्रवृत्ति मार्ग की ओर वापस लाने का महान् कार्य किया। इक़बाल ने धार्मिक आडम्बरों को सीधे पाप कह दिया था। इस प्रकार " इक़बाल ने अनवरत कर्म निरन्तर संघर्ष और सतत निर्भय प्रयास का जो दर्शन तैयार किया वह केवल मुसलमानों ही नहीं हिन्दुओं तथा अन्य जातियों के लोगों के भी फ़ायदे की चीज़ थी।[23] इन सब भावनाओं से बढ़कर इक़बाल का पैन इस्लामी राष्ट्रीयता का सूत्रपात करना था। यह एक प्रकार की भावात्मक एवं मानसिक संस्था थी जिसके अनुसार सम्पूर्ण विश्व के मुसलमानों में एक राष्ट्रीयता की भावना का संचार करना था। इक़बाल का खुदी का दर्शन तो प्रभावी न हुआ लेकिन पैन इस्लामी राष्ट्रीयता का व्यापक प्रभाव मुस्लिम जाति पर पड़ा और आज भी उसका वही स्वरूप है। सम्पूर्ण विश्व में घटित मुस्लिम जगत की कोई भी घटना समान रूप से समस्त विश्व के मुसलमानों पर मानसिक रूप से प्रभाव डालती है। जो अन्य मुस्लिम कवि मुस्लिम नवोत्थान के लिये आगे आये उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का वर्णन कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया तथा ग्रामीण क्षेत्रों की दुर्दशा, जनता की दयनीय स्थिति, सामाजिक पतन, शोषण, अनाचार आदि के अनेक चित्र उभारते हुए देश की सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परम्परा का गौरवपूर्ण वर्णन करके देश के सुप्त स्वाभिमान को जागृत कर विदेशी संस्कृति से मुक्ति की भूमिका तैयार की। पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीयों के लिये ज्ञान - विज्ञान के द्वार खोल दिये थे। एक ओर पाश्चात्य प्रगतिशील विचार और दूसरी ओर अंग्रेज साम्राज्यवादियों द्वारा देश में शोषण एवं अत्याचार की बढ़ती हुई प्रक्रिया ने भारतीयों को यह सोचने को विवश किया कि अंग्रेज

जिस प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को अपने लिये उचित समझते हैं वही व्यवस्था हमारे देश में निर्मित क्यों नहीं करते। जैसे - जैसे अंग्रेजों का शोषण बढ़ता गया भारतीय राष्ट्रीयता की यह चेतना तीव्र होती गयी।

स्वतन्त्रता संग्राम, विदेशी दासता से मुक्ति का प्रयास :

अंग्रेजों को भारत को गुलाम बनाये रखने का सबसे आसान तरीका जो नज़र आया वह था भारत का आर्थिक शोषण। जिसका शिकार सबसे पहले देशी रियासतें बनीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा धीरे - धीरे एक के बाद एक राज्यों को हड़प से ब्रिटिश शासन मजबूत होता गया किन्तु डलहौजी की हड़पनीति ने स्वाभिमान और स्वतन्त्रता प्राप्ति की चेतना को जन्म दिया और बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में हिन्दू - मुसलमान दोनों जातियों ने मिलकर सन् १८५७ ई० में विद्रोह किया। किन्तु समय से कुछ पूर्व होने के कारणयह विद्रोह सफल न हो सका और इस राज्य क्रान्ति को अंग्रेजों ने निर्ममता से दबा दिया लेकिन भारतीयों के हृदय से नवजागरण और देश प्रेम की भावनाओं का अन्त न किया जा सका। १८५७ के बाद भारत का राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया। यहां से ब्रिटिश सरकार ने अपने राज्य की नींव मजबूत करना शुरू किया तथा दूसरी ओर नवोत्थान से प्रेरित भारतीय जनता उस नींव को हिलाने में लगी रही यहीं से राजनैतिक चेतना का प्रथम चरण आरम्भ होता है। सन् १८५७ ई० के विद्रोह में हिन्दू - मुसलमानों के संगठन को देखकर अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को अपना लिया और इस मनोवृत्ति का शिकार यह दोनों ही सम्प्रदाय बने। फलस्वरूप यह समस्या आज भी भीषण रूप में देश के सम्मुख उपस्थित है।

महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के अनुसार भारतीयों को तरह - तरह के आश्वासन मिले तथा सन् १८६१ ई० के इण्डियन कौंसिल एक्ट के द्वारा शासन में कुछ सुधार भी हुए। स्थानीय स्वायत्त सत्ता का प्रारम्भ सन् १८७६ ई० से हुआ। सन् १८८३ ई० में इल्बर्ट बिल पारित हुआ जिसके द्वारा भारतीय मैजिस्ट्रेटों के ऊपर से यह

प्रतिबन्ध उठा लिया गया कि वे यूरोपियों के मुकदमें नहीं सुन सकते। इस बिल का अंग्रेजों ने विरोध किया। भारतीयों की समझ साफ होने लगी और राष्ट्रीयता को नयी दिशा प्राप्त हुई। भारत के शोषण की जो नीति अंग्रेजों ने अपनाई थी वह भारतीयों के लिये बिलकुल नई चीज थी। शिल्प विनाष्ट होने से भारतीय निर्धन होते जा रहे थे। इन बदलते हुए आर्थिक ढांचे ने नये - नये सम्बन्धों को जन्म दिया और जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ा। पहले गांव की जमीन पर सबका अधिकार होता था लेकिन सन् १८५७ ई० के विद्रोह को कुचलने में जिन लोगों ने सरकार का साथ दिया था उनके रूप में जमींदारों का एक तबका खड़ा हुआ और जब भूमि व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गयी तो पुराने रागात्मक सम्बन्धों को जन्म दिया। खेती व्यवसायिक हो गई। किसान को मालगुजारी तो देनी ही पड़ती थी साथ ही वह महाजनों के चंगुल में भी फंसता गया और इन दो पाटों के बीच वह वर्ग पिसने लगा। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग का अन्तर भी तभी सामने आया। अंग्रेजों के द्वारा जाने - अनजाने दी जाने वाली सुविधाओं को भी यही उच्चवर्ग उठाता था लेकिन जिस नई अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ उससे गांवों की जड़ता टूटा, गांव और शहर एक दूसरे के निकट आने को बाध्य हुए और जब सब एकजुट हुए तो किसी अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता अनुभव की गयी और १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। जिस समय कांग्रेस का जन्म हुआ उस समय हमारा देश गुलामी की सबसे दर्दनाक हालत में था। उस समय स्पष्ट तौर पर आजादी की बात सोचना उसका सपना देखना भी हमारे लिये आसान न था[१५]। इसी कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रखर रूप प्रदान किया। कांग्रेस में हर धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय को समान रूप से स्थान दिया गया। प्रारम्भिक पांच वर्षों में कांग्रेस की नीतियां बहुत स्पष्ट नहीं थी लेकिन १८९० ई० के लगभग कांग्रेस का लक्ष्य और नीतियां साफ होने लगीं। समय - समय पर यह मांग प्रस्तुत की गयी कि भारतवासियों को इस योग्य बनाया जाय कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा करने में सक्षम हों। प्रारम्भ में इस संस्था की नीति जन-जीवन के हित से सम्बन्धित कार्यों में सरकार के साथ सहयोग करने की थी। लेकिन जब अधिकतर मांगें सरकार द्वारा अस्वीकृत होने लगी तो राष्ट्रीय भावना का विकास तेजी से होने लगा। इसी समय तिलक के राष्ट्रीय क्षेत्र

में प्रवेश से बीसवीं शताब्दी के जन-जीवन में नवीन उत्साह आया। इनके सिद्धान्त बड़े ही उग्र थे। उन्होंने भारतीय मूल्यों की नयी खोज की। हिन्दुओं की इस बढ़ती हुई राष्ट्रीयता को देखते हुए अंग्रेजों ने मुसलमानों की ओर झुकना शुरू किया और उन्हें ऊंचे - ऊंचे ओहदे देकर राष्ट्रीय भावनाओं से दूर रखा। १९०५ में कर्जन द्वारा किया गया बंगाल विभाजन भी अंग्रेजों की भेद नीति का ही परिणाम था। इस विभाजन से सारा देश क्षुब्ध हो गया लेकिन इस आन्दोलन में मुसलमानों ने साथ नहीं दिया और सीधे अंग्रेजों और हिन्दुओं से सीधा संघर्ष हुआ। " इस आन्दोलन में मुसलमानों ने हिन्दुओं का साथ नहीं दिया। परिणामतः इस आन्दोलन की भावधारा शुद्ध हिन्दू भावधारा होती गयी। इसी आन्दोलन के क्रम में देश ने स्वदेशी का व्रत लिया"[१५]। स्वदेशी आन्दोलन सारे देश में व्याप्त हो गया और हाथ के कपड़े का उद्योग फिर से जीवित हो गया। सरकार ने भी दमनचक्र तीव्र कर दिया। विभिन्न जनता विरोधी एक्टों को पारित किया। इसी शृंखला की एक चाल थी १९०६ में " मुस्लिम लीग " की स्थापना इसके द्वारा मुसलमानों के अलग निर्वाचन क्षेत्र बने। " इससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि मुसलमान अब आसानी से राष्ट्रीयता की राह पर नहीं आयेंगे और उनकी सहायता और सहयोग से अंग्रेज भारत में अपनी सत्ता बनाये रहेंगे"[१६]। लीग को मुसलमान नौजवानों ने लीग को अंग्रेजों की चापलूसी करने वाली संस्था मात्र समझा। यह अमीर और आरामतलब मुसलमानों की संस्था थी। मुस्लिम निर्धन वर्ग को भी इससे कोई सरोकार नहीं था। १९१३ में जिन्ना ने लीग में प्रवेश किया। इससे पूर्व वे कांग्रेस में थे। कट्टरपंथी मुसलमानों ने जिन्ना को भी शंका की दृष्टि से देखा क्योंकि वे कोई क्रान्तिकारी विचार लीग में नहीं आने देना चाहते थे और यही अंग्रेजों की भी इच्छा थी। इधर विज्ञान की प्रगति ने देशों की दूरी को कम किया। विश्व में घटने वाली विभिन्न घटनाओं का सीधा प्रभाव सभी देशों पर पड़ने लगा। इटली की हार तथा जापान के विरुद्ध रूस की पराजय ने यूरोपीय अजेयता के भ्रम को चूर - चूर कर दिया और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्रदान किया। इसके बाद १९१४ में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ और उसमें भारत ने इस आशा से अंग्रेजों का साथ दिया कि उनकी सेवाओं से खुश होकर शायद अंग्रेज " स्वराज " की मांग पूरी कर दे और आजादी की मांग इन दिनों तेजी से की गयी। एनीबेसेण्ट और तिलक ने होमरूल

आन्दोलन द्वारा काफ़ी जागृति पैदा कर दी थी । विश्व युद्ध में टर्की मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध लड़ रहा था टर्की के विरुद्ध अंग्रेजों के लड़ने के कारण भारतीय मुसलमान भड़क उठे ।" १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का एक महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ जिसमें हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना उद्भूत हो उठी ।[२७] " राजभक्त रोंकते रहे लेकिन मुसलमान आज़ादी की लड़ाई में हिन्दुओं का साथ देने को आगे बढ़ने लगे । इस भावना की फलस्वरूप सन् १९२० में गांधी जी ने काटो तथा खिलाफ़त और भारतीय स्वराज्य इन दोनों उद्देश्यों को लेकर हिन्दू और मुसलमान एक हो गये । दोनों ने मिलकर सरकार से असहयोग का एलान कर दिया । सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद यह दूसरा अवसर था जब हिन्दू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर एक उद्देश्य की ओर अग्रसर हुए थे ।[२८] " इस प्रकार रौलेट ऐक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड तथा खिलाफत आन्दोलन के प्रश्न को लेकर दोनों सम्प्रदायों ने एकजुट होकर संघर्ष किया । १९२४ तक असहयोग आन्दोलन चलता रहा और सरकार का दमनचक्र भी भयानक होता गया । इसी दमनचक्र की एक कड़ी चौरीचौरी की दुर्घटना है ।" १९२३ ई० में टर्की के स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाने के कारण खिलाफत का प्रश्न भी समाप्त हो गया । अंग्रेजों की कूटनीतिज्ञता के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता का वातावरण दूषित विशृंखल होने लगा[२९] और असहयोग आन्दोलन के बाद हिन्दू - मुस्लिम दंगों की बाढ़ सी आ गयी और भोपाल विद्रोह से ये दोनों जातियां फिर नदी के दो पाट बनते दिखाई दिये । अंग्रेज के बहुत प्रयत्न के बाद भी हिन्दू-मुसलमान एक न हो सके क्योंकि अंग्रेजों के वे हिन्दू-मुसलमान नेता जिन्हें ऊंचे ओहदे प्राप्त थे और जिनके दिलों में अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता का ज़हर भर दिया था वे नहीं चाहते थे कि फिर एकता स्थापित हो । "हिन्दू साम्प्रदायिकता से बरी थे यह कहने का हिन्दुओं को कोई अधिकार नहीं है । किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीय एकता में विश्वास करने वाले हिन्दुओं के सामने मुट्ठी भर साम्प्रदायिक हिन्दुओं की कोई बिसात नहीं थी मगर, साम्प्रदायिकता संक्रामक रोग है । जब एक जाति, भयानक रूप से साम्प्रदायिक हो उठती है तब दूसरी जाति भी अपने अस्तित्व का ध्यान करने लगती है और उसके भी भाव शुद्ध नहीं रह पाते । अच्छे से अच्छे हिन्दू को भी यदि वर्षों तक यह समझाया जाय कि मुसलमान तुमसे

घृणा करते हैं तो इस जहरीले आघात से वह विचलित नहीं रह सकता। हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता की वृद्धि इसी प्रकार हुई है। और जब हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता दिखाई पड़ी तब मुसलमानों की साम्प्रदायिकता और भी बढ़ गयी एवं दोनों जातियों के बहुत से लोग परस्पर शत्रु हो उठे।[24] यहीं से मुस्लिम लीग कांग्रेस से पृथक् हो गयी और हिन्दू महासभा द्वारा संकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया जाने लगा।

भारतीय जीवन में शासकों की नीति से बढ़ते हुए विक्षोभ को ध्यान में रखते हुए साइमन कमीशन की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य था विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण कर यह रिपोर्ट देना कि भारतीय स्वशासन के योग्य हैं या नहीं किन्तु जब इसमें भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया तो सभी राष्ट्रीय दलों ( कांग्रेस सहित ) ने इसका बहिष्कार किया। इसके अतिरिक्त " बारदोली " का आन्दोलन भी एक प्रमुख घटना है। इसमें गांधी जी ने किसानों के साथ मिलकर कार्य किया। इसके बाद पूर्ण स्वराज की मांग तीव्र होती गयी और १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन में पुनः पूरी जोश के साथ हिन्दू - मुसलमान गांधी जी के नेतृत्व में मैदान में उतर आये। १९३७ के चुनाव के बाद जब कई प्रान्तों में कांग्रेस सरकार बन गयी तो लीग ने मौके से लाभ उठाकर मुसलमानों में जहर भरा कि हिन्दू बहुमत राज्य में तुम्हारे हितों की रक्षा सम्भव नहीं है। इससे साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया। १९३९ के द्वितीय महायुद्ध में भारत को सम्मिलित कर लिया गया। राजनैतिक दलों ने जब इसका विरोध किया तो सरकार ने विभिन्न आश्वासन दिये किन्तु कांग्रेस प्रान्तीय सरकारों ने त्याग-पत्र दे दिया। १९४० में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग उपस्थित की। १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधी जी ने सामूहिक आन्दोलन की योजना बनायी और कांग्रेस की बैठक में अखण्ड भारत का प्रस्ताव भी पास हुआ लेकिन जिन्ना मुसलमानों के लिये अलग स्टेट की मांग पर अड़े रहे। फलतः ब्रिटिश सरकार को पूर्ण स्वराज्य की मांग ठुकराने का अवसर प्राप्त हो गया और दमन चक्र तीव्र हो गया लेकिन जनता भी तब तक पूर्णरूप से जागृत हो चुकी थी। क्रान्ति की लहर बिजली की तरह पूरे भारत में दौड़ गयी और दो वर्ष तक सत्याग्रह चलता रहा। गांधी जी ने जिन्ना से कई बार परामर्श किया लेकिन वे पाकिस्तान की मांग को लेकर

उसी प्रकार बढ़े रहे। १९४६ के नोवाखाली के भयंकर दंगों को गांधी जी ने बहुत रोकना चाहा लेकिन वे असफल रहे। इस लम्बे संघर्ष के बाद सरकार भी यह समझ गयी कि क्रान्ति को और अधिक रोका नहीं जा सकता। फलत: १५ अगस्त १९४७ को लार्ड माउण्ट बैटेन ने भारत की स्वाधीनता की घोषणा की। लगभग २०० वर्षों की गुलामी से तो हम आज़ाद हो गये लेकिन यह स्वतन्त्रता खण्डित थी।

जिस समस्या के कारण यह खण्डन हुआ क्या वह समस्या आज भी सुलझ सकी है ? पाकिस्तान बन जाने के बाद भी अधिकांश मुसलमान जिन्हें इस धरती की मिट्टी से प्यार था वे इसे छोड़कर पाकिस्तान जाने के लिये अपने को तैयार न कर सके। अतएव समस्या पूर्ववत् ही बनी रही लेकिन यह वैमनस्य धर्म को लेकर उतना नहीं है जितना कि अधिकारों को लेकर है लेकिन इस वैमनस्य का कुछ लोग अपने हितों के लिये अनुचित लाभ उठाकर उसे धार्मिक रंग दे देते हैं। आज देश की बढ़ती हुई साम्प्रदायिक समस्या के लिये राजनैतिक तथा अराजकतावादी तत्व अधिक जिम्मेदार है। " सच तो यह है कि देशवासियों के विचार, भाव और अनुभूतियों के मध्य विरोधाभास होते हुए भी एक गहरी एकता दिखाई देती है जो उन्नति के युग में अधिक और अवनति के युग में क्षीण होती रहती है। प्राय: अराजकतावादी तत्व इस एकता को क्षीण करने में प्रयत्नशील रहते हैं, किन्तु प्रत्येक बार देश की आत्मिक एकता दबने के स्थान पर दोबारा और भी तीव्रता से उभर कर नये सिरे से एक नवीन समन्वयात्मक संस्कृति की नींव डालती रही है[२६]।" ऐसी विषम परिस्थितियों से गुजरते समय यदि हम अनेकता में एकता की इस भावना को आत्मसात् कर ले तो निश्चय ही हमारी संस्कृति की नयी छवि विश्व के सामने आ सकती है। जिसमें प्रत्येक वर्ग की जातिगत विशेषतायें शामिल होंगी वर्तमान समय की मांग भी यही है क्योंकि " भारतीय परिस्थितियां इस बात की मांग करती हैं कि हम एक रंग, एक जाति और राष्ट्रीय संस्कृति का ख्याल छोड़कर एक ऐसी समन्वयात्मक भावना को अपना आदर्श बनायें जिसमें समान राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक एकता के साथ - साथ विभिन्न प्रान्तों, जातियों, वर्गों की अपनी - अपनी भाषा, साहित्य, धर्म, सभ्यता एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को बनाये रखने और उन्नति करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। किसी छोटे या बड़े प्रान्त की संस्कृति को

राष्ट्रीय संस्कृति की हैसियत न दी जाय बल्कि राष्ट्रीय वही वस्तुएं कहलाएं जो सभी धर्मों और सभी प्रान्तों में समान हों।[22] शायद तभी हम भारतीय संस्कृति को विश्व के समक्ष उदाहरण के रूप में रख सकते हैं क्योंकि विश्व संस्कृति के निर्माण में भी इन्हीं तथ्यों को सामने रखना होगा। भारत संसार का लघु संस्करण है। यदि यहां यह समस्या हल हो जाय तो विश्व संस्कृति का स्वप्न साकार हो सकता है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय परिस्थितियां :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के सम्मुख अनेक जटिल समस्यायें मुंह फैलाये खड़ी थीं जिनके तत्कालीन समाधान के लिये प्रत्येक विचारक तथा समाजसेवी चिन्तित था। जब तक स्वाधीनता संघर्ष चलता रहा देश की सारी शक्ति विचारकों की मानसिक और भावात्मक शक्तियां उसी पर केन्द्रित रहीं लेकिन जब बाद में एक शान्तिपूर्ण जीवन की खोज प्रारम्भ हुई तो बहुत से मोह भंग हुए। भारतीय संस्कृति में उच्च तत्व होते हुए भी गुलामी के दिनों में उसका कोई महत्व नहीं रह गया था। लगभग दो सौ वर्षों से दीर्घकालीन संघर्ष और बलिदान के बाद १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता मिली लेकिन देश के विभाजन के फलस्वरूप साम्प्रदायिकता के नाम पर जो नर संहार हुआ उस वहशीपन को इतिहास भुला नहीं सकेगा। १९४८ में गांधी जी की हत्या ने वातावरण को और भी विषाक्त बना दिया। मानव के इस बर्बर कृत्य को देखकर स्वतन्त्रता का सपना धूल में मिलता दिखाई दिया। इस साम्प्रदायिक बवण्डर को शान्त होने में काफी समय लगा। किन्तु कांग्रेस सरकार के कल्याणकारी राज्य की घोषणा ने साधारण जनता के हृदय पर मरहम का काम किया और जनता हर्षोल्लास में खो गयी। यद्यपि सरकार उन समस्त आशाओं और आकांक्षाओं को आज तक पूरा न कर सकी। ऐसी ही आशा ३० वर्ष बाद पुनः जनता ने नई सरकार से जोड़ी थी लेकिन वह सरकार कुर्सी की खींचा-तानी में छिन्न - भिन्न हो गयी और पुनः उसी पुरानी सरकार के साथ जनता को जुड़ जाना पड़ा। स्वतन्त्रता प्राप्त करके हम राजनैतिक रूप से तो स्वतन्त्र हो गये लेकिन ऐसे भारत की रचना न हो सकी जो विश्व को चुनौती दे सके। उस गुलामी ने भी हमारे मस्तिष्क पर ऐसी पकड़ बना रखी

है कि हम अपनी सहस्त्रों वर्षों की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा के होते हुए भी हम अपना मार्गदर्शन नहीं कर पा रहे। अंग्रेजी शिक्षा से यद्यपि हमारी मानसिक जड़ता तो दूर हुई लेकिन शिक्षा का यह प्रसार केवल एक वर्ग विशेष तक ही सीमित रहा और अधिकांश जनता अशिक्षा के अन्धकार में ही रही। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश का प्रमुख लक्ष्य था साधारण एवं सामान्य जनता के लिये कल्याणकारी कार्य करना तथा उन सारी बुराइयों को दूर करना जो अंग्रेजों के शोषण से उत्पन्न हुई थी। फलतः देश की जनता को निर्धनता, अशिक्षा, बेरोजगारी से ऊपर उठाकर उन्हें समानता के स्तर पर लाना था क्योंकि स्वतन्त्रता के पूर्व ऐसे ही राज्य की स्थापना की घोषणा की गयी थी, लेकिन देश में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक शोषण से मुक्त एक नवीन व्यवस्था स्थापित करने से पूर्व देश की एकता को सुदृढ़ व्यवस्था इसी उद्देश्य से २६ जनवरी १९५० को एक स्वतन्त्र गणतन्त्रीय राज्य के रूप में भारत को प्रतिष्ठित कर उसका नवीन संविधान लागू किया गया। देश को हिमालय से कन्याकुमारी तक एक सूत्र में बांधा गया। यह संविधान धर्म, जाति, रंग, वर्ग, दल से परे था। इस धर्म निरपेक्ष राज्य के संविधान में किसी भी धर्म को मानने की स्वतन्त्रता थी, किसी भी राजनैतिक विचारधारा से जुड़ने की स्वतन्त्रता थी, शिक्षा प्राप्त करने और व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता थी। यह संविधान न तो साम्यवादी था न पूंजीवादी व्यस्क मताधिकार द्वारा नागरिकों को देश के संचालन का अधिकार दिया गया था चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हों। वे शासन संचालन में भाग ले सकते थे बशर्ते कि वे भारत के नागरिक हों। मौलिक अधिकारों द्वारा व्यक्ति स्वातन्त्र्य को बल मिला। इस संविधान में हमारी राष्ट्रीय नीतियां तो तय हुई ही साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिए मिली-जुली संस्कृति पर भी बल दिया गया है। वास्तव में संविधान का उद्देश्य जनता द्वारा, जनता के लिये एक कल्याणकारी की स्थापना करना है। ऐसे राज्य की स्थापना के लिये देश का आर्थिक रूप से सम्पन्न होना आवश्यक था। अंग्रेजों ने जो शोषण की नीति अपनाई थी उससे भारत को बिल्कुल कंगाल कर दिया था। अतः स्वाधीनता के बाद जो भारत मिला वह सोने की चिड़िया का कंकाल मात्र था। पराधीन भारत जिस आर्थिक विपन्नता और

पिछड़ेपन से गुज़रा था, जब वह स्वतन्त्र हुआ तब यूरोप और एशिया प्रगति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुके थे। इस प्रतिस्पर्धा में भी भारत को तेज़ी से दौड़ना था और कठिनाइयाँ अनेक थीं। भारत को इन कठिनाइयों से मोर्चा लेते हुए अपनी जनता के स्तर को ऊंचा उठाना था। ऐसे कानून बनाने थे जिनसे सामान्य जनता के लिए भी समृद्धि के द्वार खुल सकें। गांधी जी ने कहा था " मैं समझता हूं कि वर्षों तक भारत को ऐसे कानून बनाने पड़ेंगे जो शोषितों और दलितों को गड्ढे से निकालें, जिनमें उन्हें पूंजीपतियों और ऊंचे कहे जाने वाले लोगों ने ढकेल दिया है। अगर हम इन लोगों को इस दलदल से निकालना चाहते हैं तो भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने घर को ठीक करे और बराबर इन लोगों को ऊंचा स्थान दे, और उनके उस बोझ से उबारे जिसके नीचे वे पिसे जा रहे हैं।"[23]

देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये पंच वर्षीय योजनाओं के कार्यक्रम शुरू किये गये। इन योजनाओं का उद्देश्य था कम - से - कम धन में निश्चित समय के अन्दर कृषि, उद्योग, सिंचाई, बिजली, शिक्षा, यातायात के साधनों को बराबर विकासशील बनाया जाय। इस क्षेत्र में देश को सफलता मिली। दलितों का स्तर ऊंचा होने के साथ - साथ कृषि एवं उद्योग में प्रगति हुई और इन योजनाओं के द्वारा कालान्तर में देश अन्य देशों के मुकाबले में खड़ा होने में समर्थ हुआ, किन्तु इस स्वतन्त्र देश को जितनी तीव्रगति से उन्नति करनी थी वह न हुई क्योंकि योजनायें तो बनाई गयीं लेकिन वे कागजी बनकर रह गयीं तथा उन्हें क्रियान्वित करने में जिस लगन और ईमानदारी की ज़रूरत थी वह न हो सका। फलतः आम जनता को इनसे जो फ़ायदे होने चाहिये थे वे न हो सके। इस चोरबाजारी से अमीर वर्ग और अमीर होता गया तथा गरीब गरीब होता गया। इसी एक वर्ग की बेईमानी, धोखे और चोरी ने देश की संस्कृति को बनाने - बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आज़ादी के बाद से लेकर अब तक के भारत पर दृष्टिपात करने से एक बात साफ हो जाती है कि भारतीय जीवन को परिचालित करने में राजनीति की सक्रिय भूमिका रही है। आज जीवन के हर क्षेत्र में राजनीति का बोलबाला है। यदि छोटा-सा

काम भी कराना हो तो मंत्रियों की शरण में जाना पड़ता है। शिक्षा, शासन, धर्म, जाति हर मुद्दे राजनीतिक स्तर पर सुलझाये जाते हैं। राजनीतिज्ञों का उद्देश्य मात्र धन कमाना और अपनी कुर्सी की रक्षा करना हो गया है, इसके लिये वे अपनी चारित्रिक ऊंचाई से भी नीचे गिरने लगे तथा देश को प्रगति की ओर ले जाने का जो दायित्व उनके कंधों पर था वे उस दायित्व बोध से मुंह फेर बैठे। इसके स्थान पर अवसरवादिता, चोरबाजारी, घूसखोरी, बेईमानी उनका धर्म बन गया। नीति में कोई भेद नहीं रह गया। अपने कर्णधारों के पथ पर ही जब जनता भी चलने लगी तो रही-सही कमी भी पूरी हो गयी तथा मानदण्ड ऐसा हो गया कि जो अवसरवादिता से लाभ नहीं उठा सका वही पीछे रह गया और हर क्षेत्र में उसे उपेक्षित किया गया। इस भ्रष्ट नीति और पूंजीवादी व्यवस्था ने बहुत-सी बुराइयों को जन्म दिया। यद्यपि प्रीवीपर्स की समाप्ति से सामन्ती व्यवस्था का अन्त हो गया लेकिन इन्हीं सामन्ती संस्कारों की नींव पर पूंजीपतियों का एक वर्ग खड़ा हो गया जिसके हाथ में साधारण जनता से लेकर शासन तन्त्र तक आ गया। इन्हीं का अनुसरण कर हर व्यक्ति बड़ा आदमी बनने के चक्कर में नैतिक - अनैतिक का भेदभाव भूलकर आर्थिक सम्पन्नता की होड़ में इतना स्वार्थी हो गया कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया सफल न हो सकी और न ही साधारण व्यक्ति इससे लाभ उठा सका लेकिन एक बात ज़रूर हुई कि उच्चवर्ग की बुराइयों को समाज ग्रहण करना नहीं भूला। इस स्वार्थपरता से धर्म भी अछूता नहीं रहा। साधु, सन्यासी, मौलाना सभी राजनीतिज्ञों से मिलकर साम्प्रदायिकता फैलाने में लगे रहे और अपना व्यक्तिगत लाभ देखते रहे। नव स्वतन्त्र भारत में सबसे कामयाब अस्त्र घूसखोरी हुआ जिससे सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं। चाहे वे नकली दवाइयों के धन्धे हों, चाहे मिलावट का काम हो यहां तक कि शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता न रहा। स्कूल, कालेज, राजनीति के अखाड़े बनने लगे, हड़ताल सबका अधिकार बना और उसे मनमाने ढंग से प्रयोग किया गया।

इन सारी बुराइयों को समाज का शिक्षित वर्ग जो अपने को बुद्धिजीवी कहता है नपुंसक बना देखता रहा। यद्यपि अंग्रेजों की कल्पना के अनुसार यह वर्ग पूर्णरूप से पाश्चात्य रंग में नहीं रंगा लेकिन इसने पाश्चात्य संस्कृति का लबादा जरूर ओढ लिया

है और यह एक बनावटी संस्कृति का निर्माण करना चाहता है। इसी वर्ग में जो धन सम्पन्न हो गया था तो अपने को भारतीय कहलाने में भी लज्जा अनुभव करने लगा। इस उच्चवर्ग ने पश्चिमी वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन और भाषा को अपना आदर्श बनाया। यह केवल उन भारतीय चीजों को अपनाने में रुचि लेता था जिन्हें विदेशी अपनाते थे। उदाहरणार्थ भारतीय कला कृतियां जो विदेशियों के ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ाती हैं उन्हें ही यह वर्ग भी अपनाने लगा। इन्हीं लोगों की स्वार्थी प्रवृत्ति ने सारे सुख वैभव अपने हिस्से में ले लिये और जब यह सारी सुख-सुविधाएं सबको न मिल सकी तो अपराध भावना ने जन्म लिया। इस प्रवृत्ति को अपराध, हत्याकाण्ड, सेक्स, सस्पेंस पर आधारित साहित्य तथा फिल्मों ने और अधिक उत्तेजित किया। तेज़ी से बढ़ती अपराध की वृत्ति ने नारी को अपना शिकार बनाया। सेक्स भावना को उभारने के लिये विज्ञापनों में नारी शरीर का बुरी तरह प्रयोग किया गया। एक ओर नारी को मुक्त करने की बात, समान अधिकार देने की बात कही जा रही थी और दूसरी ओर उसके अस्तित्व को नकार कर नारी शोषण की साजिश चल रही थी। ये दोनों प्रतिक्रियाएं एक साथ समाज में देखी जा सकती हैं। पाश्चात्य देशों के युवा आन्दोलनों से भारतीय युवक वर्ग प्रभावित हो रहा है और अपनी परम्पराओं, संस्कारों से दूर होता जा रहा है। देश में हिप्पियों की बाढ़ आने से युवकों में फैशन के रंगीन वस्त्र धारण करना, लम्बे बाल, कन्धे पर लटका झोला हिप्पी होने का प्रतीक बन गया। यह युवा वर्ग नैतिकता से दूर होता चला गया। उसका भविष्य अन्धकारमय होता गया। कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिये युवा वर्ग का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश का भविष्य दांव पर लगा दिया। महानगरों के युवक तेज़ी से, हशीश, अफीम, गांजा और अन्य भयंकर नशीली चीज़ों का सेवन करने लगा। धीरे-धीरे यह जहर छोटे नगरों में भी फैलने लगा है। इसने हमारे सामने एक भयंकर समस्या का रूप धारण कर लिया है। इस आधुनिकता से मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग भी अपने को बचा नहीं सका है। इस खींचातानी में सबसे खराब स्थिति से मध्य वर्ग गुजर रहा है। इस विघटन और अराजकता की स्थिति का सबसे बड़ा कारण यह है कि बौद्धिक वर्ग अपनी चिन्तन-शक्ति खो बैठा है। उसकी दृष्टि उधार मांगे हुए मूल्यों पर टिकी है। कभी जो

नये मूल्य उसने निर्मित किये हैं उन्हें क्रियान्वित करने में अभी देरी है। परिणामत: हर क्षेत्र में एक बिखराव, टूटन और कुण्ठा व्याप्त होती जा रही है। जिन मूल्यों की परम्परा पर विगत शताब्दियों में आदर्शों की स्थापना की गयी थी वे बदली हुई परिस्थितियों में निर्जीव जान पड़ते हैं और जिससे अनेक रागात्मक सम्बन्धों पर प्रश्न-चिन्ह लग गया है। इस नयी रोशनी में संयुक्त परिवारों का आदर्श तो टूटा ही है धर्म और ईश्वर भी इससे नहीं बच सके हैं। ईश्वर से आस्था उठ चुकी है। मानव की बर्बरता के समक्ष काल्पनिक आदर्श और आस्था टिक नहीं सके। अपने देश के साम्प्रदायिक दंगों तथा विश्व स्तर पर होने वाले अमानुषिक कृत्यों ने पुराने आदर्शों पर से आस्था उठा दी है। विज्ञान के बढ़ते हुए प्रसार ने भी पुराने मूल्यों और पुरानी मान्यताओं को बदल कर रख दिया है। वह मानव जिसे श्रेष्ठ कहा जाता था विज्ञान के बढ़ते हुए प्रसार और आणुविक शक्तियों ने उसे बौना बना दिया है। उसका सब कुछ मशीनीकरण की भेंट चढ़ गया है। कल का जीवन क्या होगा इसका निर्णय मुश्किल है। मानव इतिहास ने कोई भी युग इतनी तीव्रगति और अनिश्चित स्थिति से नहीं गुजरा जहां पुराना सब कुछ टूटकर बिखर चुका हो। यह समस्या केवल भारत की ही नहीं विश्व की है। सारा संसार ही इस संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। यह जरूर है कि हमारे सामने समस्या कुछ अधिक ही जटिल है। क्योंकि हम न तो पुराने का मोह छोड़ पा रहे हैं, न नये को पूरी तरह अपना पा रहे हैं। परस्पर विरोधी तत्वों की टकराहट से संक्रमण उत्पन्न हो रहा है। जैसे विज्ञान के प्रभाव के कारण धर्म में अनास्था है लेकिन यहां अन्धविश्वासों की कमी नहीं, एक ओर छुआछूत और सामाजिक असमानता को मिटाने के प्रयास जारी हैं तो कहीं जाति के नाम पर तमाम अनैतिक कार्य हो रहे हैं। हरिजनों की समस्या पूरी तरह हल नहीं हो पायी। जहां दहेज विरोधी आन्दोलन चल रहे हैं वहां दहेज लेने और देने वालों की भी कमी नहीं है। देश में हम परिवार सीमित करने की बात कर रहे हैं वहीं बच्चों को ईश्वर का वरदान समझा जा रहा है। जिस युग में अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिल रहा है वहीं जाति गोत्र, नस्ल और कुल की छानबीन करने वाले भी कम नहीं हैं। तात्पर्य यह कि हर जगह विरोधाभास दिखाई दे रहा है। इस नये बनते हुए

समाज में जीने के लिये मानव को अपने संस्कारों से संघर्ष करना पड़ रहा है, तो दूसरी ओर आर्थिक विकृतियां उसे मारे डाल रही हैं। इस समस्या का एक कारण यह भी है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सारा भार हम प्रशासन पर डालकर खुद अपने दायित्व से मुक्त हो गये। देश के नव-निर्माण में हम कोई सहयोग नहीं देना चाहते। आज़ादी को अपना अधिकार मानकर मनमाने ढंग से इस स्वतन्त्रता का उपभोग करने से विभिन्न राजनैतिक दल अस्तित्व में आये। ये दल अपने स्वार्थ में ऐसे लगे कि उन्हें उचित - अनुचित का कोई ध्यान ही नहीं रहा। इस स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति ने नई पीढ़ी को विद्रोही बना दिया क्योंकि उसने देखा कि स्वार्थपूर्ण पुरानी विचारधारा मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है। जिस व्यवस्था को हम उच्च कोटि का समझते थे वह बेमानी हो गयी। चीन से पराजय और १९६५ के पाकिस्तान युद्ध से मोह भंग की प्रक्रिया शुरू हुई। नयी पीढ़ी और समाज के बुद्धिजीवी वर्ग ने पहली बार यह अनुभव किया कि अब तक प्रगति के नाम पर क्या हो रहा है? इसके बाद भी लम्बे समय तक व्यवस्था उसी घिसे-पिटे ढर्रे पर चलती रही। १९७७ के आम चुनाव से एक बार फिर ऐसा लगा कि व्यवस्था बदल जायेगी। लेकिन उसके बाद जो परिस्थितियां उत्पन्न हुईं उनसे व्यवस्था का विकृत रूप ही सामने आया। "जनता सरकार" केवल कुर्सी की लड़ाई में लगी रही, उसे साधारण जनता की आशाओं से कोई सरोकार न था। फलत: इस खींचातानी में वह समय से पूर्व ही समाप्त हो गयी। परिस्थितियों से पुन: सत्ता कांग्रेस सरकार के हाथ में आ गयी क्योंकि एक ही अनुभव इतना कड़ुआ निकला कि जनता ने पहली व्यवस्था को ही बेहतर समझा। यद्यपि इन्दिरा सरकार देश को उन्हीं आश्वासनों और वादों पर चलाती रही जो कभी पूरे नहीं हो सकते थे। धीरे - धीरे लोकतन्त्र की आड़ में अप्रत्यक्ष रूप से एक ही व्यक्ति की निरंकुशता का एकछत्र साम्राज्य मजबूत होता गया। मध्य वर्ग एवं साधारण जनता की स्थिति दिन पर दिन शोचनीय होती गयी। मंहगाई और बढ़ते हुए करों के भार से दबती जनता चुपचाप रही। इतना सब होने पर भी जिस देश की अखण्डता का स्वप्न हमने देखा था, जिस एकता के सूत्र में बंधे राज्य की स्थापना हमने संविधान में की थी वह एकता भी आज छिन्न - भिन्न होती नज़र आ रही है। विदेशी शक्तियों की गन्दी राजनीति ने देश की अखण्डता के लिये एक ख़तरा पैदा कर दिया है। इन आपद स्थितियों से व्यक्तियों में कुण्ठा बढ़ती जा

रही है। इस अनिश्चित स्थिति में जहां मृत्यु और जीवन के बीच कोई दूरी नहीं रह गयी। जहां भविष्य निश्चित नहीं है और शक्ति अर्जन ही मुख्य लक्ष्य है, इन सब असंगतियों ने युवा पीढ़ी को विद्रोही बना दिया। इस पीढ़ी का विश्वास पुराने मूल्यों और आस्थाओं पर से बिल्कुल उठ चुका है। अतएव यह विद्रोही नयी पीढ़ी एक ऐसी दुनिया बनाने का स्वप्न देख रही है " जो मुद्राह्रासों से मुक्त होगी। जहाँ निष्क्रिय परम्पराओं का उन्मूलन कर दिया गया होगा, जहां मूल पर प्रहार किये जायेंगे, जहां उन्मुक्त सेक्स ( अश्लीलता ) नहीं होगी, जहां निरक्षरता, बीमारी और भेदभाव का लेशमात्र भी न होगा। जहां अन्धविश्वास युक्त परम्पराओं का खण्डन किया जायगा, जहां आर्थिक न्याय होगा, जहां रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता न होगी, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक होगा। उसका व्यक्तित्व गरिमापूर्ण होगा, जहां विज्ञान सम्मत नैतिक वातावरण प्रतिफलित होगा।[२४]"

<u>संक्रान्ति कालीन संस्कृति और मानवतावाद का प्रश्न :</u>

स्वतन्त्रता के बाद का भारतीय समाज संक्रान्ति के दौर से गुजर रहा है। यूं तो प्रत्येक देश और प्राय: हर काल में संक्रान्ति की स्थिति आती है क्योंकि नये मूल्यों की स्थापना और पुरानी रूढ़ियों से संघर्ष की स्थिति हर युग और हर देश के सामने आती है। तीव्र सामाजिक परिवर्तन से संक्रान्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव स्वरूप भारतीय पूंजीपति वर्ग की उन्नति तेज़ी से होने लगी। राष्ट्रीय आय और आर्थिक शक्ति धीरे - धीरे इसी वर्ग के हाथ में सिमटती चली गयी। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्व युद्ध में हुए आणविक विस्फोट युद्ध में सम्बद्ध राष्ट्रों के अमानुषिक कृत्यों और आतंक ने सर्वत्र जीवन को बेमानी साबित कर दिया था। नैतिक मर्यादाओं की सीमा से जीवन बहुत पीछे जा चुका था। युद्ध के बाद मानव जीवन में बिखराव और अन्तर्व्यस्तता आ गयी थी। परिणाम स्वरूप राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर मूल्यों में विघटन प्रारम्भ हुआ और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया किन्तु इनके

स्थान पर कोई स्वस्थ दृष्टि प्राप्त नहीं हुई। विज्ञान के बढ़ते हुए प्रसार ने मनुष्य को भौगोलिक रूप से तो बहुत निकट ला दिया किन्तु दूसरी ओर विज्ञान के आणविक आविष्कारों ने मनुष्य को मनुष्य के लिये ही घातक बना दिया तथा समस्त मानवीय सम्बन्धों और प्रतिमानों को महत्वहीन कर दिया तथा मनुष्य के सम्मुख अनेक समस्यायें खड़ी कर दीं। इन असंगतियों ने जिन्दगी को एक बोझ बना दिया है" ------- सार्वजनिक आदर्शों के प्राइवेट, कुत्सित, कंकाल छुपे-छिपे स्वार्थ तथा कायर समझौते, रंग पुती भौंड़ी और टूटी तस्वीरें, बदलते सन्दर्भ, घुटती हुई केंचुलें और इन सबके ऊपर सबको मिलाकर बना फ़ीका, मधुर बदजायका कटुवर्ण विवर्ण का विपर्ययों भरा एक विराट वातावरण जो हर चीज़ अपने में समेटे हुए है। हर क्षण वस्तुओं, पद्धतियों के धरातल छिल रहे हैं, जिन्दगी दोनों हाथ ऊपर उठाये अकुलाती, टकराती, मुंह के बल गिरती अधखड़ी होती उठती, झकोले खाती चली जा रही है।"

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज पर एक विहंगम दृष्टि डालने से यह साफ़ पता चलता है कि ऊपर से ठीक लगने वाली सतह के नीचे कुछ और ही था नीचे की हलचल धीरे-धीरे तेज़ी पकड़ने लगी और अनेक विस्फोटक स्थितियां उत्पन्न हुईं। नैतिक आध्यात्मिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीति सम्बन्धी मूल्यों के आमूल परिवर्तन हो रहे हैं। हर स्तर पर परम्परा, विश्वास और नवीन मूल्यों के बीच संघर्ष चल रहा है क्योंकि एक परम्परागत समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद समाज में तीव्रगति से परिवर्तन हुए हैं। स्वतन्त्र होने के बाद प्रत्येक भारतवासी की सामाजिक स्थिति बदली है। ज़मींदारी प्रथा के उन्मूलन से स्वामी-सेवक की भावना समाप्त हुई है। हर व्यक्ति आत्म सम्मान का अनुभव कर रहा है। सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति से समाजवादी एवं लोकतन्त्रात्मक भावना बलवती हुई है। समाज के दलित एवं शोषित वर्ग की स्थिति में सुधार आरम्भ हुआ है। किन्तु नये उत्पन्न हुए पूंजीपति वर्ग के हाथों अब भी शोषित होने वालों की कमी नहीं है। जनसंख्या वृद्धि ने ग़रीबी, बेरोज़गारी और आवास की समस्या को जन्म दिया है। महानगरों में कारखानों और औद्योगिक केन्द्रों के खुलने से गांवों और

छोटे कस्बों, शहरों से बड़ी संख्या में लोग महानगरों की ओर आकृष्ट हुए हैं। महानगरों में भीड़ का सैलाब उमड़ पड़ा है। आवास की समस्या गम्भीर हो गयी है। देश में औद्योगिक उन्नति हुई है। उत्पादन भी पहले से कई गुना बढ़ा है लेकिन उसी अनुपात में जनसंख्या बढ़ने से तथा देश में आर्थिक वितरण की असमानता ने आर्थिक ढांचे में जगह - जगह पर छेद कर दिया है। फलत: जहां बड़ी - बड़ी इमारतें और ऊंची होती जा रही हैं। वहीं उनकी छाया में गन्दी झुग्गी झोपड़ियों में बहुत से लोग पशुवत जीवन भी व्यतीत कर रहे हैं। दूसरी ओर मध्यवर्ग अपने को गरीब कहलाना पसन्द नहीं करता और नहीं सादा भारतीय जीवन व्यतीत करना। चाहता है बाहरी तड़क - भड़क ही जीवन का उद्देश्य बन गया है। पश्चिमी प्रभाव इतना बढ़ा है कि पुराना ढांचा जहां टूट रहा है वहीं नया समाज जन्म ले रहा है—

करवट में फिर है मादरे आलम।
एक नया दौर ले रहा है जनम ।।[२६]

इन नयी मान्यताओं को स्वीकार करने से अपनी सामर्थ्य से अधिक न प्राप्त होने के कारण हर तरफ़ बिखराव और टूटन का वातावरण है—

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मंथन काल है
संक्रान्ति की घड़ियां बनी हैं शृंखला
बन्दी हुई है देह
मन को बांधने बढ़ते पतन के हाथ हैं ।।[२७]

अब भी समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो प्राचीनता के मोह को नहीं त्याग सके हैं। पूरे समाज का नया मस्तिष्क नहीं बन पाया है लेकिन आधुनिकता और परम्परा, पुरातनता जड़ता का द्वन्द्व चल रहा है। हमारी कृषी प्रधान संस्कृति में यांत्रिकता के प्रवेश से अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है। यहां तक कि विज्ञान ने धर्म और ईश्वर आस्था पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। पुरानी पीढ़ी जिन मूल्यों, मान्यताओं पर विश्वास करती थी वे नष्ट होने की प्रक्रिया में हैं। उनका खोखलापन

हर जगह प्रकट हो चुका है। भारत में परिवर्तन इसलिये भी देर लगी है कि यहां पुरातनता और नवीनता साथ - साथ चल रही है। रेल, मोटर, जहाज के साथ-साथ बैलगाड़ियों का अस्तित्व भी है। कल कारखानों और हरी-भरी खेतियाँ साथ-साथ चल रही हैं। आलीशान पक्की इमारतों के साथ - साथ झोपड़ियों की कमी भी नहीं है— महानगरों में रंगे-पुते चेहरों के साथ - साथ सादगी भी दिखाई देती है जहां धर्म के नाम पर अनास्था दिखाने वाले हैं, वहीं धार्मिक अन्धविश्वासी लोगों की कमी भी नहीं है। हमारे यहां यह संक्रमण इस हद तक है कि एक ही स्थान पर और एक ही परिवार के सदस्यों में कल और आज साकार हो उठा है—

एक मोटरकार को बैलगाड़ी खींचती है
एक फुटपाथ पर
सैकड़ों बल वाली पगड़ी सर पर रखे
और माथे पर बड़ा कश्का लगाये
एक पण्डित अपनी चिड़िया से निकलवाता है पत्ता ताश का
एक बुर्कापोश मां
और एक बेपर्दा बेटी
सर खुला गेसू तराशीदा
गिरेबां चाक
लब रंगे, चेहरा रंगा
नाखून रंगे
जिस्म पर चिपकी हुई पोशाक फिकरे की तरह[28]।।

आजादी से घूमने - फिरने तथा विवाह से पूर्व लड़के - लड़कियों का सम्पर्क जहां समाज ने स्वीकार कर लिया है वहीं लड़कियों पर सख्त पाबन्दियां भी हैं[29] और बेटों के स्वच्छन्द विचरण की भी मनाही है—

अपने आदर्श की मुक़ल्ली ।
मुझसे क्यों धोखा चाहती हो ?
+ + + +

किसी शाम अहबाब के साथ
दरिया किनारे न जाऊं ।।[30]

अर्थात् सर्वत्र समाज में विरोधी बातें मिलती हैं। प्राचीनता और आधुनिकता का ये चौराहा समाज को किस परिवेश में ले जायगा ये तो समय ही बतायेगा।

वर्तमान विघटनकारी युग में मानव का विनाश करने वाली शक्तियां प्रबल हो गयी हैं। ऐसे वातावरण में मानव की गरिमा को पुनः स्थापित करना आज का मूल प्रश्न है। युग-द्रष्टा होने के कारण आधुनिक कवि मानवता का नाश करने वाली शक्तियों से जूझ रहा है" धर्मों सम्प्रदायों और ईश्वर एवं देवताओं की परिधि में बंधकर व्यक्त होने वाली मानव हित चेतना को यथाशक्ति बन्धन मुक्त करके विज्ञान की वस्तु-परक उपलब्धियों से सम्बद्ध करके सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत करना आज का प्रमुख ध्येय है। मनुष्य - मनुष्य के बीच जन्मजात आर्थिक और सामाजिक अधिकार साम्य की भावना साम्यवाद तक ले जाती है तथा मानव सम्बन्धों के बीच एक दूसरे के स्वाभाविक स्वातन्त्र्य की रक्षा का भाव मौलिक समानाधिकार के साथ मिलकर प्रजातन्त्र तक पहुंच जाता है। दोनों के मूल में गहरी मानवतावादी चेतना है परन्तु मनुष्य स्वयं क्या है इसकी तात्विक धारणा छोटी होने के कारण इनके व्यवहारिक रूप दूषित हो गये हैं।[31] आज विज्ञान के दुरुपयोग, शक्ति प्रदर्शन की भावना ने मानव को इतना स्वार्थी बना दिया है कि अब उसके भीतर की बर्बरता जाग उठे और वह सारे नैतिक बन्धनों को नकार दे। आज इस बात की आशंका अधिक है। इस कारण सारा सांस्कृतिक विकास सत्प्रवृत्तियां झूठी साबित हो गयी हैं। आधुनिक काव्य में मानव के इस खण्डित व्यक्तित्व की पुनः प्रतिष्ठा की कोशिश है वहीं नैतिक मूल्यों की खोज की भी चेष्टा की गयी है क्योंकि मानव को जिस निराशा और कुण्ठा, अवसाद की स्थिति से गुजरना पड़ा है कि मानव ऐसे स्थान पर खड़ा है जहां उसके पथभ्रष्ट होने की आशंका अधिक है। विज्ञान के प्रसार और अणुअस्त्रों के निर्माण ने इस आशंका को और ठोस बनाया है और आज मानव - मानव के प्रति सदैव आशंकित रहता है। आधुनिक काव्य ने इस सांस्कृतिक समस्या को समझा है और मानव -

मानव के बीच सत्य आस्था उत्पन्न करने के लिये सचेष्ठ है—

विश्व में जब कुटिलता है त्रास है।
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है।।
और है विश्वास जन कल्याण का।
रंग रस का त्याग का बलिदान का।।
फिर कटोरी दृष्टि रंजित प्यार दो।
आदमी की शक्ति का आधार दो।।
प्यार तुमसे ही जगत से प्यार हो।
प्रेरणा का यह रंगमंच संसार हो।।[32]

आज कवि ने इस तनावपूर्ण, विघटनकारी युग में भी मानव मूल्यों की स्थापना करनी चाही है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मानव की प्रतिष्ठा की कोशिश आज कवि कर रहा है। छायावादी कवियों ने भी मानवतावाद को अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी थी किन्तु वह एक आदर्श मानव की स्थापना का स्वर था जिसमें कल्पना की प्रधानता होने के कारण वह कमनीय हो गया था। इसकी तुलना में स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में यथार्थ के धरातल पर मानव को प्रतिष्ठित किया गया है और इस मानवता की परिधि में समस्त वर्ग जातियां समाहित हो गये हैं। एक नयी सामाजिक दिशा का बोध प्राप्त हुआ है—

कर्मरत हो
स्वप्न मत देखो
कहीं उन्माद रह न जाय भंवरों का
निरर्थक गति उद्दीपन।
इस गली के छोर पर बुनियाद डालो
कोठरी में दीप की लौ
देखती ठंडा अंधेरा
इन्हीं पर्तों में कहीं खोया हुआ है
रूप का गोरा सवेरा[33]

इसी भावना के वशीभूत होकर वह ( कवि ) दूर - दूर तक शान्ति फैलाने का सन्देश देता है—

> दूर - दूर तक फैलावो आज़ादी मोहब्बत और अमन शान्ति
> एक जीती जागती ताबिन्दा जिन्दा शान्ति
> फूलते फलते संवरते कर गुजरने का खुला इम्कान [34]

आज सम्पूर्ण विश्व शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के हाथों का खिलौना बना हुआ है। ऐसे विशाक्त वातावरण में मानवीयता के हनन की संभावना बनी रहती है। " शक्ति शिविरों में विभाजित राजनीतिक के हाथ उन ध्वंसास्त्रों को पकड़े हुए हैं जिनके किंचित उपयोग से भी विश्व मानवता का संहार सुनिश्चित है। विशाक्त राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और शीतयुद्ध के वातावरण में राष्ट्रनायक राष्ट्रीय मस्तिष्क को भीषणतर से भीषणतम ध्वंसास्त्रों के आविष्कार के लिये प्रेरित कर रहे हैं। राजनीति की लहरें कभी शान्ति की आशा को शतप्रतिशत निश्चित करते - करते विश्व युद्ध को इस प्रकार मार्ग दे देती है कि विश्व मानवता संकट के भयावह आवर्त में फंस जाती है।[35] इसीलिये आज का कवि विश्व में घटने वाली हर मानवीय घटना के प्रति जागरूक है।

नवजागरण ने जिस ईश्वर केन्द्रित मानवतावाद को जन्म दिया था वह आज प्रगतिवादी विचारों के नीचे दब कर रह गया और उस पर राजनीतिक सत्ता सम्पन्न अधिनायक तन्त्र छाता चला गया जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्र मर्यादा का स्थान न के बराबर था। धीरे - धीरे अधिनायक तन्त्र का आतंक इस प्रकार हावी होता गया कि समाज में व्यक्ति का अस्तित्व नगण्य हो गया। अस्तित्व का यह प्रश्न हिन्दी - उर्दू काव्य में बड़ी दृढ़ता से उठाया गया और उसे सशक्त स्वर देने की कोशिश की गयी—

> जब मैंने पुस्तक खोली
> मुझसे इतिहास पुरुष ने कहा
> किसे ढूंढते हो मुक्ति ? या अपने को ?
> मैंने कहा केवल अस्तित्व को—[36]

उर्दू काव्य में तो अस्तित्व की जागरूकता इतनी बढ़ी की यह एहसास एक प्रवृत्ति ही बन गयी ।

भटक रहा है बेइरादा सिर्फ इसी तलाश में
कि उसको चेहरा चाहिये
खुद अपना चेहरा चाहिये
बिछड़ के जो सिसक रहा है चेहरों ही की भीड़ में—[37]

अनेक कवियों ने चेहरे की खोज को अपना विषय बनाया-[38]

अपनी बेचेहरगी पर ग़ौर तो कर
आईना देख के हैरां होगा—[39]

बिना व्यक्तित्व के अस्तित्व ही निरर्थक है । सुख और समृद्धि के प्रसार की आशा में कवि सांस्कृतिक रूप से इस दिशा में संघर्षरत है—

मैं कर्मपीठ में जागरूक दायित्व संभाले बैठा हूं ।
जब होगा तो मुझको होगा इस आशा में—[40]

कवि नयी मानव संस्कृति का स्वप्न साकार करने को कर्मरत है । " जब उसने युद्ध की भयंकरता उसके फलस्वरूप मन मस्तिष्क पर कुहासे अपसांस्कृतिक परम्पराओं में जकड़े हुए जीवन मानवी चेतना के सूक्ष्म से सूक्ष्म पर्तों का उद्घाटन और नये आयामों की खोज जीवन के विघटन, बिखराव, विसंगतियों और संघर्ष जीवन के पुराने घिसे-पिटे जीवन मूल्यों के स्थान पर नये भावबोध, नई व्यंजना यथार्थवादी दृष्टि को अपनी परिधि में समेटा है भाषा, शब्द चयन, मुहावरों, उपमानों, प्रतीकों, बिम्बों, छन्द योजना, लय अलंकार इन सभी दृष्टियों से भी नवीन है[41] । इसके साथ ही कवियों ने अपनी समस्त अनुभूतियों को समसामयिक परिवेश के अनुकूल बनाने की चेष्टा की और बहुत हद तक आधुनिक सांस्कृतिक विघटन पर प्रहार करने में सफल भी हुआ है लेकिन इस नयी संस्कृति के निर्माण में अभी समय है— इसका बहुत क्षीण आभास काव्य ( हिन्दी - उर्दू ) में मिलता भी है—

कभी तो कहता है रस्म गुलशन बहार
खुद सुबहे नौ से बदल
जो कोई गुल है तो चाक दामन
जो कोई बुलबुल तो नौहा खां है—[42]

इसी तथ्य का समर्थन हिन्दी कवि ने भी किया है—

कभी तो पड़ी है धरा अधबनी
अधूरी धरा पर नहीं कहीं
कभी स्वर्ग की नींव का भी पता—[43]

पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न आधुनिकता : एक सांस्कृतिक समस्या :

वर्तमान सांस्कृतिक दौर में जबकि हम नये और पुराने के बीच से गुजर रहे हैं पाश्चात्य प्रभाव हमारी संस्कृति के लिये एक समस्या बन गया है। राजनैतिक रूप से तो हमने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली किन्तु मन, मस्तिष्क और भावनाओं से हम इतने अधिक पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हैं कि उससे छूट पाना मुश्किल लगता है। औद्योगीकरण और पूंजीवाद के विकास से भारतीय संस्कृति का अस्तित्व खो बैठी है। देश का विशिष्ट वर्ग जो बौद्धिक और शिक्षित कहलाता है जो संस्कृति का पोषक कहलाता है वह बुरी तरह से पाश्चात्य संस्कृति के बोझ से दबता जा रहा है। अपनी मूल सांस्कृतिक परम्परा को भूलता जा रहा है। सर से पांव तक कृत्रिम आवरण से ढका है। यह वर्ग जिन रास्तों पर चल रहा है उसमें सिर्फ बनावट ही है जिस प्रकार " चित्रपट पर उभरने वाली आकृतियां हरकत करती हैं, बोलती हैं, हंसती हैं, रोती है, नफरत और मोहब्बत तो करती है, जीती और मरती भी हैं। लेकिन वे आत्माहीन परछाइयां मात्र ही होती हैं"[44] ऐसे ही हमारी संस्कृति भी आत्माहीन होती जा रही है। स्वतन्त्रता से पूर्व का पश्चीकरण जैसे आज भी हम पर हावी है। शिक्षित सुसंस्कृत कहलाने वाला समाज एक विशिष्ट वर्ग में पाश्चात्य भाषा और खान-पान, रहन - सहन, वेश-भूषा इस प्रकार रच-बस गयी है कि वह अपने ही देश में अजनबी

हो गया है— खो गया है इक जहाने मानी उसके बाकी नई जबान के शोर-ओ-गुल से वतन में अजनबी हुए हैं—[55] ऐसे बढ़ते हुए प्रभाव के परिणाम पर आज कवि की सजग दृष्टि है वह अपने धर्म को भूला नहीं है।[56] आज का कवि पाश्चात्य प्रभाव से आक्रांत समाज कच्चा चिट्ठा तो प्रस्तुत करता ही है, उस समाज को जागरण का सन्देश भी देता है—

उठो तमद्दुन के पासबानो
तुम्हारे आबाओं की ज़मीं से
उबल चुके जिन्दगी के चश्मे
निशान सजदों के अब जबीं से मिटाओ
उठो मोहब्बत के पासबानो
यह कोहो सहरा यह दश्तो दरिया
तुम्हारे अजदाद गा चुके हैं
यहां पे वो आतशीं तराना
जो गरमिए बज़्म था मगर अब
गुज़र गया उसको एक ज़माना—[57]

जहां कवि ऐसे प्रयास कर रहे हैं वहीं कवियों का ऐसा वर्ग भी है जो पाश्चात्य विचारों, काव्य सिद्धान्तों, दर्शनों के पीछे भाग रहा है। उसे अपनी परम्परागत संस्कृति में कोई आकर्षण नहीं है। नये बनने की होड़ में वह प्राचीनता को बिल्कुल उखाड़ फेंकना चाहता है। समन्वयात्मकता हमारी सांस्कृतिक विशेषता है किन्तु उस हद तक जब तक कि अपनी संस्कृति की मौलिकता बनी रहे उसी हद तक कोई भी प्रभाव सराहनीय हो सकता है। किन्तु आज पाश्चात्य प्रभाव के मोह में हम भारतीयता को खोते जा रहे हैं। हम यह भी भूल रहे हैं कि हमारी विचारधारायें पश्चिम की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण नवजागरण है जिसने परतन्त्रता में भी देश की सांस्कृतिक ज्योति को जलाये रखा। हम स्वतन्त्र भारत में भी पर संस्कृति को आदर्श बनाये बैठे हैं—

हम ओढ़ दूसरों का मुख
अनुकरण कर रहे गर्वित

जन भू की भौतिक प्रतिमा
हो रही न विकसित किंचित
पश्चिम के रंग में डूबा कर
भूल गये अपनापन

इसके समर्थन में हिन्दी काव्य पर संस्कृति के प्रभाव को छोड़ने की बात भी करता है[४६]
हिन्दी के समान उर्दू काव्य में भी अपनी परम्परा को बनाये रखने का भाव है और वह अपने काव्य से समाज की मानसिक जड़ता को दूर करने के लिये सजग है—

" मेरी बंसी में भी है कृष्ण के ओठों की नवा
मेरे नग़मों में है रक्सां राधा का जमाल
बिन्दराबन की तरह गूंज उठी है दुनिया
गोपियां वक्त के शायर से करती हैं सवाल
मेरे सीने में भी लहराती है ऐसी कोई आग
नाम हो जिसका बशीरत की ज़बां में गीता
पांडव भाप गये मेरे फ़न के तेवर
मेरे गीतों में है अर्जुन की सदाकत का ज़फ़र[५०]"

इस प्रकार जहां कवियों ने पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकारा है वहीं अपनी परम्परागत सांस्कृतिक परम्परा के प्रति भी कवि आस्थावान दिखाई देता है। इन दोनों संस्कृतियों के मेल से एक सर्वथा नवीन संस्कृति बनाने को कवि प्रयास कर रहे हैं—

" तुम मेरे शौक़ के मासूम बदन को छेड़ो
मैं तुम्हारे लुटे एहसास से हर लम्हा कलगीर रहूं।
तुम मेरी फ़िक्र के नव मुकुलियों को चूमो।
मैं तुम्हारी निगाह तिश्ना के शराब का जाम
अपनी रग - रग में उतारूं के बुझे प्यास की आग[५१]।"

किन्तु इसके बावजूद पाश्चात्य आधुनिकता हमारे लिये एक समस्या बन गयी है। यों तो प्रत्येक वर्तमान युग को आधुनिक कहा जाता है लेकिन यही आधुनिकता समाज के

लिये उस समय समस्या बन जाती है जब हम पुरातन का मोह भी नहीं छोड़ना चाहते और नये को स्वीकार भी नहीं करते हैं। ऐसी ही स्थिति आज हमारे देश की है। नये और पुराने मूल्यों से उत्पन्न संक्रमण की स्थिति समाज में हर तरफ़ व्याप्त है। वह जिन मूल्यों की सुरक्षा युगों से करता चला आया है उसे सहज ही छोड़ देने को तैयार नहीं है। आधुनिक सुख - सुविधाओं से सम्पन्न जीवन को तो बाह्य रूप से अपना लिया गया है, लेकिन परम्परागत संस्कारों के कारण समाज अपने पुरातन मूल्यों को छोड़ना नहीं चाहता। स्वतन्त्रता के बाद समस्या इसी बात की है कि इस द्वन्द्वात्मक स्थिति से किस प्रकार निपटा जाय कि वर्तमान सभ्यता और प्राचीन मूल्यों का सामंजस्य हो सके। नयी पीढ़ी को आधुनिक पाश्चात्य चमक - दमक ने चकाचौंध कर दिया है। इस पाश्चात्य प्रवाह में तेजी से बहते समाज को देखकर यह समस्या उठ खड़ी हुई कि बदली हुई परिस्थितियों के साथ अपने प्राचीन सामाजिक, नैतिक मूल्यों का सामंजस्य और उसमें युगानुरूप परिवर्तन कैसे किया जाय लेकिन "आधुनिकता ने जहां एक ओर टूट-फूट, नाश और संक्रमण के समस्त स्तरों का बोध कराया है वही निर्माण और नयी प्रतिभा के उभरने के द्वार भी दिखाये जो पुराने खण्डहरों से जन्म लेती है। वैसे तो प्रत्येक युग अपने पूर्ववर्ती युग से आधुनिक होता है लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि वैचारिक स्तर पर भी आधुनिक माना जाय। आधुनिकता सिर्फ उस समय प्रकट होती है जब वैचारिक तनाव उस स्थिति में पहुंच जाता है जहां सारे पिछले मूल्य छिन्न - भिन्न हो जाते हैं और नये मूल्यों की शेप अस्तित्व में आने के लिये व्याकुल हो जाते हैं"।[52]

बीसवीं शताब्दी आधुनिक आविष्कारों का समय है। जब मानव की बुद्धि अपने चरम विकास पर पहुंच गयी विज्ञान नित नयी दृष्टि दे रहा है लेकिन भारतीय समाज भले ही बौद्धिक स्तर पर उन्नत हो गया है लेकिन भावात्मक स्तर पर वह अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़ने के लिये अभी अपने को तैयार नहीं कर सका है। आज भी वह उन मूल्यों को गले लगाये बैठा है।[53] इस प्रकार बौद्धिक स्तर पर तो भारतीय मानव युग के साथ है लेकिन भावात्मक रूप से पुराने युग से जुड़ा रहता है लेकिन इस द्वैत संक्रमण से गुज़रते हुए ही उसमें नये विचार, नयी दृष्टि अनायास ही मिल जाती है।

इस प्रकार आज के सन्दर्भ में आधुनिकता विशेष दृष्टि, प्रवृत्ति, मूल्य और चेतना सरणियों की संगति की घोतक है।[54] अत: आधुनिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर रूढ़ियों का विरोध करती है। इसने " होउहै वही जो राम रचि राखा " जैसी मान्यवादी परम्परा को खण्डन किया है जो मानव के रचनात्मक विकास में बाधक होती है— इसका यह अर्थ नहीं कि हर परम्परा आधुनिकता की बाधक है बल्कि रूढ़िग्रस्त परम्पराओं का विरोध करती है। जो मानव विकास में बाधक है " आधुनिकता स्वमताभिमान से निरन्तर संघर्षरत रहती है।[55] आज कवि इन्हीं संस्कारों से मुक्ति के प्रयास में संलग्न है—

अत: दो
ओ काल देव
इस भूत से वर्तमान से मत्त
उस भविष्य का तीसरा वरदान मुझे दो
कि मैं— मुझको नहीं
अपने आपको देखें
उन निर्वीर्य नपुंसक मूर्तियों को तोड़ूं
जिनके आराध्य से नेत्र उनके मुंदे हैं—[56]

स्वातन्त्र्योत्तर कवि ने संस्कृति का ध्यान विज्ञान की ओर खींचा है। वैज्ञानिक संस्कृति को कवि ने दो स्तरों पर देखा है वरदान और अभिशाप दोनों पर अपनी पकड़ रखना और उसकी अभिव्यक्ति करना यह अपना कर्तव्य समझता है। वैज्ञानिक सत्य को राजनीति ने जिस प्रकार अभिशप्त किया है कवि उस भयावह परिणाम को अभिव्यक्त करता है।[57] विज्ञान के रचनात्मक उपयोग से जीवन को सत्य रूप में ऊपर उठाने के लिये कवि सचेष्ट है आत्मजयी का नचिकेता ऐसी जीवन दृष्टि की खोज करता है[58] लेकिन फिर भी समाज की स्थिति यह है कि अधिकांश व्यक्ति पुरानी परम्पराओं को गले से लगाये हुए हैं और ऐसे में " राजनीतिक और आर्थिक विषमतायें भोगते हुए और आधुनिकता और परम्परा के प्रति संस्कारगत मोह के बीच खींचातानी के फलस्वरूप

हमारे जीवन में निश्चित रूप से अकेलेपन या अजनबीपन की भावना बढ़ी और व्यक्ति समाज में रहते हुए भी अलग - अलग इकाई बनता गया और उसे अपने अस्तित्व की चिन्ता सताने लगी। संयुक्त परिवार के विघटन ने समस्या को और भी गम्भीर बना दिया है। महानगरों की बात छोड़ भी दें तो शहरों और कस्बों में भी अलगाव की यह प्रवृत्ति बढ़ती गई और संस्था में से संस्था और उसमें से दूसरी संस्था इसी प्रकार संस्थायें बनती गईं और अन्त में हर व्यक्ति अपने में ही सिमट कर एक संस्था बन गया[59]। सामाजिक जीवन से कटा हुआ अस्तित्व ही आधुनिकता का अभिशाप है। व्यक्ति स्वयं अपने लिये ही बाधक बनता जा रहा है—

खनक खनक नाज़ुकी तबस्सुम
लतीफ - व - नाजुक नये इशारे
कहीं नहीं हैं
बस एक सहमी हुई उदासी
फ़िज़ा के सीने में रो रही है—[60]

आधुनिक तकनीक और औद्योगीकरण ने व्यक्ति की स्वतन्त्र रुचियों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। उसकी जीवन्तता का हनन किया है। व्यक्ति के अभाव में समाज भीड़ में बदल गया है—

कितनी भोंड़ी है हर शक्ल
कितना करुण
मढ़ती दोहरी तेहरी चौहरी
रो - रो कर मुस्काने
हंस - हंस कर पढ़ने का स्वांग करते हुए—[61]

अभी हमारे देश ने वृहद् पैमाने पर औद्योगीकरण नहीं प्राप्त किया है लेकिन एक पूर्ण रूप से औद्योगीकृत देश की सारी बुराइयों को हमारे समाज ने जरूर अपना लिया है और इस राजनैतिक व्यवस्था ने भी हर जागरूक चेतना सम्पन्न व्यक्तियों को भी भीड़ तन्त्र का शिकार बनाया है। यहां हर व्यक्तित्व बिखरने लगा है "औद्योगिक युग का आदमी कटा- फटा समाज से टूटा हुआ निर्माण के स्तर पर

जड़, बेमानी स्तर पर सोचता आदमी है। कृषि युग के पारिवारिक सम्बन्ध जो उसे अर्थ देते थे टूट गये। संस्कृति के प्राचीन मूल्य और विश्वास, पैतृक पेशों के तरीके, सब कुछ औद्योगिक क्रान्ति के साथ खत्म हो गये और उसके स्थान पर औपचारिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। औद्योगिक महानगरों में आदमी आदमी से दूर होता गया। परिवेश से कटता गया। अब ये रिश्ता एहसान, जिन्स का रिश्ता न रहकर आर्थिक और कागजी सम्बन्ध बन गया।[62] आर्थिक संघर्ष ने धन को ही महत्वपूर्ण जीवन मूल्य बना दिया।[63] जब समाज में आर्थिक सम्पन्नता महत्वपूर्ण हो जाती है तो सारे मानवीय रिश्ते बेमानी हो जाते हैं। हर व्यक्ति अकेलेपन का एहसास करने लगता है—

यह सुकूते ग़मे हस्ती यह फ़िशारे ग़मे दिल
हू का आलम है किसको सदा दे कोई—[64]

ऐसे समाज से समझौता न कर सकने वाला हर व्यक्ति तन्हाई और एकाकीपन के बोझ से दबकर चीत्कार कर रहा है—

बस एक आवाज गूंजती है
मुझे बचाओ मुझे बचाओ
मगर कहीं भी अमां नहीं है—[65]

इसी के साथ समाज में परम्परा के कुछ ऐसे प्रेमी हैं जो सामान्य मनुष्य के दुख दर्द को बांटने की बात करते हैं लेकिन सिद्धान्तों के विपरीत व्यवहार में वे अत्यन्त निर्दयी, अत्याचारी हैं और जो मनुष्य को स्वर्ग - नर्क का भय दिखा कर आतंकित साधारण मानव और श्रमिकों का शोषण करते हैं तथा वर्तमान जीवन से उन्हें सन्तुष्ट रहने की सीख देते हैं—

अन्धेरी सल्तनतें ख़ामोशी के आईना साज़
ज़बां को करते हैं आदाबे गुफ़्तगू तालीम
वह जिनके मुंह में ज़बां है न ज़ेहन में आवाज़
सिखाते फिरते हैं सच्चा है क्या ज्ञान है क्या
ज़बां पे ज़िक्र है तक़दीर रूह - व - मज़हब का

मगर जो सीने में झांको तो ढूंढो गहरा
कहीं जो दिल को टटोलो तो एक बार के सिवा
कोई ज़मीन न ईमान कोई हक़ न ख़ुदा—[66]

इस प्रकार धर्म का डर दिखाकर समाज को सदैव आतंकित करने वालों की कमी नहीं थी। सम्भवत: यूरोप में धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में ही क्रान्ति आई थी " शुरू में धर्म और आध्यात्म से प्रेरित और परिचालित होने के कारण आधुनिकता ने धर्म और आध्यात्म की तानाशाही को ज़बरदस्त चुनौती दी थी तथा इनसे जुड़ी स्वीकृत मान्यताओं, मर्यादाओं के आगे प्रश्नचिन्ह लगाने शुरू कर दिये थे।[67] जो स्थान पहले समाज में धर्म का था वही स्थान वर्तमान काल में राजनीति ने ले लिया है। आज धर्म और राजनीति मिलकर मानव का शोषण कर रहे हैं उसके स्वतन्त्र अस्तित्व के विकास में बाधक है ये दोनों वैयक्तिक और सामूहिक दोनों स्तरों पर विचार प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध लगा रहे हैं इसी कारण आधुनिकता को धर्म और राजनीति दोनों से संघर्ष करना पड़ रहा है।

सुनो, सूर्यास्त है ——
फैल लो तुम क्षितिज बनकर
सांझ को संज्ञा दो
संज्ञा दो सूर्य को
सहज लेना चांदनी
वचन जल में व्रत का तैर जाने दो
समर्पण को व्यक्ति वेदी दो—[68]

संघर्ष का यही स्वर उर्दू काव्य में भी मुखरित हुआ है—
बहुत तीर बरसे कमानों से हर सू
मगर कुमरी ने न ज़ख्मों का अपने मदावा ही मांगा

— — — —

यह सच है कि तुम
हाकिमे वक्त हो और खुदा बन्दे कलाम भी तुम्हीं हो
मगर यह भी सच है
कि इन पाशों की बस्ती में रहकर
न आईना साज़ी का फ़न छोड़ पाया[69]

आधुनिकता उन समस्त सामन्ती एवं पूंजीवादी मूल्यों को तोड़ना चाहती है जो मानव का शोषण कर, उसकी स्वतन्त्रता का हनन कर रचनात्मक प्रक्रिया को नष्ट करना चाहते हैं जिस समाज में आर्थिक, राजनीतिक शोषण साधारण-सी बात हो जाय उस समय से किसी स्वस्थ परम्परा के निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। दूसरी ओर परम्परा का मोह यह इजाज़त नहीं देता कि बढ़कर आधुनिकता का स्वागत किया जाय। पूंजीवाद मनोवृत्ति इस स्थिति को बनाये रखने में प्रयत्नशील होती है क्योंकि वे सामान्य जन-मानस को भ्रमित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रख सके। इसी स्थिति से हमारा देश आज गुज़र रहा है। इस मनोवृत्ति को छठें - सातवें दशक के काव्य ने स्पष्ट तौर से समझा है।

इस जनता
संस्कृति की लीद को खाद बना दिया
फिर पड़ा है सारा देश
गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, जातिवाद, डॉगवाद, नक्सलवाद
हिप्पीवाद, भूखवाद, दिगम्बरवाद, माई मतोबावाद
और लिंग, योनि, गुदा अनन्तवादों की फ़सल उगाने के लिये
एक दरबारी के गले से एक साधारण आदमी
बह गया, रिसता है वह पुराना नासूर—
कौन कुरेदता है अपना कुदूर कुदूर—[70]

इसलिए नयी कविता ने मानव स्वाभिमान को अपना केन्द्र बनाया तथा मानव वैशिष्ट्य को सांस्कृतिक मूल्य बनाने का आग्रह किया—

जो कि अपने ही प्राति पथ का सहारा
जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र
भीतिहीन विराट पुत्र
इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर
विश्वास करना चाहता हूं—[७१]

इस आधुनिक दृष्टि ने मानव को नितान्त नयी भूमि पर ला खड़ा किया है—

मेरे ख़ुलूस फ़िक्र से बनती है कश्मकश
कमतर भी नहीं हूं जो बरतर नहीं हूं मैं—[७२]

फलतः मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना ने दायित्व बोध कराया और जिससे वह सामाजिक जीवन को नये संस्कार देने में सक्षम हुआ।

हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन जीवन से भरे निर्मल सरोवर
हम नदी के पुत्र हैं पाषाण धारा से घिरे
दूर उसके क्रोड से हम दूर उस स्रोतस्विनी से
तदपि उसके अंश हम वंशज उसी के
हो गये हों हम भले म्रियमाण
पर
समवाय के अभिमान से मिल
एक होने के लिये आकुल हमारे प्राण
हम अहम् को भूल
मेटकर अपनी बनावट
तोड़ दें मार्यें सभी
एक दिन फिर से मिलें धार में
समवेत जीवन के अपरिमित ज्वार में—[७३]

अब तक की भारतीय परम्परा में व्यक्ति की स्थिति गौण्य रही है। आधुनिक चेतना ने इस परम्परा को जड़ से हिला दिया। समाज का अस्तित्व तब तक नहीं स्वीकारा

जाता जब तक कि जन - जन में आत्मचेतना न समा जाय। यद्यपि व्यक्तित्व को संस्कार देने के लिये वह समाज का महत्व स्वीकार करता है लेकिन सामाजिक चेतना के प्रवाह में व्यक्ति का बह जाना उसे स्वीकार नहीं—

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको— भी पंक्ति को दे दो
यह अद्वितीय यह मेरा, यह मैं स्वयं विसर्जित

-- -- -- --

यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता में कांपा
यह वह पीड़ा जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधुआते तम में
यह सदा द्रवित चिर जागरूक अनुरक्त नेत्र[७४]

उर्दू काव्य में सामाजिक चेतना के प्रति तो जागरूकता है ही इसके साथ ही वैयक्तिकता का आग्रह भी कम नहीं—

" जिन्दगी बन के रंगे गुल में मचलता हूं मगर
नरगिसे दीदए खूबां का मैं बीमार भी हूं[७५]

नयी कविता में आधुनिकता को जीवन दृष्टि के रूप में महत्व दिया गया है और खोये हुए व्यक्तित्व के महत्व को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयत्नशील है। व्यक्तित्व की तलाश विशेषकर महानगरीय जीवन में तीव्रता से अनुभव की जा रही है। यहां के यांत्रिक एवं आतदिक जीवन में व्यक्ति और समाज के बीच अजनबीयत बढ़ती जा रही है। महानगरों में औद्योगिक प्रसार के कारण केवल सर्वहारा वर्ग की स्थापना की ही समस्या नहीं है बल्कि महानगरों में रहने वाला मध्यवर्गीय व्यक्ति भी नौकरशाही का शिकार है। महानगरों में पश्चिमी परिस्थितियों को जिस तेजी के साथ अपनाया जा रहा है उससे पूरा परिवेश विभ्रांतिपूर्ण हो गया है। महानगरीय जीवन ऊपरी रूप में बहुत कुछ पश्चिम जैसा हो गया है और इस बदलते

हुए दृष्टिकोण को काव्य में भरपूर अभिव्यक्ति मिली है। अधिकांश कवियों ने महानगरीय परिवेश की भाग दौड़, भीड़, टैक्सी, बस, ट्रैफिक, ऊंची - ऊंची इमारतें, समुन्द्र के किनारे क्लब, होटल, डिस्को को अपने काव्य का विषय बनाया है क्योंकि आधुनिक बनने की सबसे बड़ी निशानी इसी परिवेश में रहना मानी गयी है। कवियों के सामने तेज रफ्तार समाज तो है लेकिन उसकी समस्याओं, उसकी विसंगतियों को समझने का प्रयास नहीं दिखायी देता क्योंकि वे कवि इस भीड़ से बचकर अपना एक अलग संसार बनाये बैठे हैं। उन्हें डर है कि इस भीड़ में व्यक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व खतरे में है। कवि समाज के अलग मूल मर्यादाओं से हटकर अपने अस्तित्व की चेतना में गुम समाज का विद्रोही बना हुआ है। यह विद्रोह आधुनिकता पाकर यौन स्वेच्छाचारिता के रूप में काव्य में अभिव्यक्त हुआ। आधुनिकता इस सन्दर्भ में सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध हुई और पूरे समाज को उसने अपने सांचे में ढालने का सफल प्रयास किया। " आधुनिकता ने एक नई नैतिकता को जन्म दिया है जिसको कि पुष्ट और बुद्धिग्राह्य बनाने के लिये उसने विराट दर्शन खड़ा कर लिया है। इस नई नैतिकता ने हमारे तरुण वर्ग साहित्य और कला को भूरिशः प्रभावित किया है। जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को रोकने के लिये आधुनिक सभ्य समाज ने जिस बन्ध्याकरण, गर्भनिरोधक साधन, गर्भपात और विलम्बित विवाह का सहारा लेना प्रारम्भ किया है उसने सांस्कृतिक दृष्टि से हमारे समक्ष एक नई नैतिकता का प्रश्न उठा दिया है। कारण वात्सल्य का भावाकुल स्वरूप दबने लगा है। आधुनिकाओं में मातृत्व की पवित्रता से अधिक चमड़े के सौन्दर्य को महत्व मिलने लगा है और न चाहकर भी हमारा समाज निकट भविष्य में द्रौपदी का पतिव्रत जैसी किसी उदार धारणा को प्रच्छन्न रूप से स्वीकार करने की तैयारी कर रहा है। इस सम्भावना का प्रमुख कारण है शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय में नारियों का प्रवेश। लेकिन नारियों के लिये भी समाज ने दोहरी नीति अपनायी है। एक ओर तो उसे समानता और स्वतन्त्रता देने के नारे लगाये जाते हैं तो दूसरी ओर नारी शरीर को लेकर कामवासना की नई नैतिकता का जन्म हुआ है। हर वस्तु के विज्ञापन में नारीतन उपभोक्ताओं को उत्तेजित करने का साधन मात्र बन गया है। इस नई नैतिकता ने पाप, पुण्य, नीति - अनीति पवित्रता - अपवित्रता की मान्यताओं

को बहुत पीछे छोड़ दिया है। इस निम्नांपित यौन स्वेच्छाचारिता ने जिस कुत्सित सैन्दिग्ध सुझाव को जन्म दिया। वो धीरे - धीरे हमारे सामाजिक जीवन का अंग बनती जा रही है जबकि जितेन्द्रियता हमारी संस्कृति का मूल मन्त्र रहा है जिसकी विधि निषेध की लम्बी शृंखला बनी रही। हर चीज को पाप-पुण्य से जोड़कर उस पर धार्मिकता की मुहर लगा दी गई थी। यह दबाव इतना बढ़ा कि हर बात सामाजिक विधि नियमों के समक्ष तोलने - परखने में कभी - कभी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन भी करना पड़ा लेकिन आधुनिकता ने जो नई दृष्टि प्रदान की उसने नये सिरे से व्यक्ति को विचारने की दिशा मिली। फलत: जिस नई नैतिकता ने जन्म लिया उसने सभी प्रचलित मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। इस सन्दर्भ में नैतिक समाज से विद्रोह का अर्थ सिर्फ यौन विद्रोह तक सीमित हो गया। उर्दू काव्य में भी यौन-स्वेच्छाचारिता आई लेकिन हिन्दी काव्य के समान बर्बरता का रूप धारण नहीं किया। इस बढ़ती हुई भोगवादी मनोवृत्ति को तथा कथित सभ्य कहे जाने वाले वर्ग ने और भी अधिक बढ़ावा दिया। इस स्थिति का परिणाम क्या होगा यह विचारणीय प्रश्न है। कुछ कवियों ने इस स्थिति पर व्यंग भी किया है—

इस युग के सियाराम
छूछा काम—[७७]

लेकिन यह सभी कवि रुग्ण मन:स्थिति के शिकार नहीं बहुत से कवियों ने इस परिवेश की विसंगतियों को देखा है—

ग़रीब सीता के घर कब तक रहेगी
रावन की हुक्मरानी
द्रोपदी का लिबास उसके बदन से
कब तक छिनता रहेगा—[७८]

किन्तु मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों पर आधुनिकता इतनी अधिक प्रभावशाली हो गयी है कि वह पाश्चात्य संस्कृति को ग्रहण करना ही आधुनिकता समझ बैठे हैं—

आधुनिकता की बही पर नाम अब भी तो चढ़ा दो
नायलान का कोट हम सिलवा चुके हैं
और जड़ से नोच कर बेला चमेली के द्रुमों को
कैक्टसों से भर चुके हैं बाग हम अपनी[७९]

इस प्रकार समाज के एक विशिष्ट वर्ग ने पश्चिमी संस्कृति को ही अपना आदर्श बना लिया है। यह सत्य है कि दीर्घकाल तक अंग्रेजों के सम्पर्क में रहने से हम उनके प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते लेकिन पश्चिम के अनुकरण को जीवन का आधार बना लेना ठीक नहीं जबकि हमारे पास हमारे अपने देश की देवमाला, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता भक्तों सूफियों की परम्परा के साथ कुरान इस्लामी इतिहास पैगम्बरों की जीवनियां बौद्धों, जैनों तथा विभिन्न आस्तिक - नास्तिक दर्शनों की एक समृद्ध परम्परा है। यह विरासत में मिली संस्कृति स्वयं इतनी रचनात्मक है कि एक जीती - जागती सांस्कृतिक परम्परा का निर्माण कर सकती है इसे छोड़कर हम उधार लिये हुए विचारों का अनुकरण कर रहे हैं। वह भी तब जबकि पश्चिम अपनी आधुनिकता से ऊबकर पूर्व की ओर आशावान दृष्टि से देख रहा है। ' हरे राम हरे कृष्ण ' में मन की शान्ति खोज रहा है और हम उस वातावरण में सांस ले रहे हैं जो या तो पूरी तरह से पाश्चात्य रंग में रंगा है या फिर अशिक्षित्त आडम्बरी वातावरण है। ऐसे में हम तभी विश्व संस्कृति के अग्रदूत बन सकते हैं यदि हम " आधुनिक बनने का एक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार करने के क्रम में हमें एक ओर पाश्चात्य आधुनिकता के आत्यांतिक प्रभाव को अस्वीकार करना है। साथ ही अपनी पुरानी संस्कृति के अवांछित पक्षपात से हमें बचना है और दूसरे हमें साहस के साथ अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की विगत मूल्यों को पहचान कर पश्चिम के अनुभवों से लाभ उठाते हुए उसमें आवश्यक परिष्कार देना है।[८०]

इन्हीं तथ्यों को आधार मानकर कुछ कवियों ने आधुनिकता को अपनी परिस्थितियों, अपनी संस्कृति और अपने परिवेश में ढालकर रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। वर्तमान जीवन में उनकी सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से भारती का ' अन्धायुग, ' नरेश मेहता की ' संशय की रात ' दुष्यन्त कुमार की ' एक कण्ठ - विषपायी ' पंत का लोकायतन, डा० विनय का ' एक पुरूष ' कुंवर नारायण का

"आत्मजयी" महत्वपूर्ण है। जिसमें पुराण वेद, रामायण, महाभारत का प्रभाव ग्रहण किया गया है। यही स्थिति उर्दू काव्य में भी है। अमीक हनफ़ी ने कुरान मजीद, इस्लामी इतिहास रोम, यूनान और हिन्द देवमाला से प्रभाव ग्रहण किया और उनका औचित्य ढूंढने का प्रयत्न किया है। शहाब जाफ़री के (सूरज का शहर" पर ऋग्वेद, कुमारपाशी के "ख्वाबे तमाशा" पुराने मौसमों की आवाज पर ऋग्वेद गीता और बुद्धमत का प्रभाव ग्रहण किया गया है। राजनारायण राज़ कृष्ण मोहन हरमतुल इकराम, वहीद अख़्तर, अज़हर कार, जुबैर रिज़वी आदि ने अपनी कविताओं में भारतीय एवं इस्लामी संस्कृति के पौराणिक ऐतिहासिक पात्रों को प्रतीक रूप में चित्रण किया गया है। इस प्रकार दोनों काव्यों ( हिन्दी -उर्दू ) ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा को अपनाकर आधुनिकता से आक्रान्त मानसिकता को झटक दिया है। सांस्कृतिक परम्परा को नवीन सन्दर्भों में देखते हुए ब्रह्माण्ड से नवीन सम्बन्धों की खोज की जा रही है—

> मैं यहां मौजूद भी हूं और लामौजूद भी
> मैं कदम हूं और पहले का कदम है मेरी जात[81]
> ईश्वर से भी एक ख़लीक़ रिश्ता क़ायम करने की
> बात कही गयी है।[82]

ईश्वर और ब्रह्माण्ड के साथ नये सम्बन्धों के स्थापित करने के साथ ही आर्थिक न्याय, समानता मानव अस्तित्व पाप - पुण्य आस्था, अनास्था, प्रेम सौन्दर्य, यौन, नैतिकता से जुड़े प्रश्नों का हल भी खोजने के लिये कवि सक्रिय है। इस खोज में नवीन मानवीय सम्बन्ध की स्थापना जैसे स्वस्थ भाव को पहचाना है—

> जैसे स्वस्थ भाव को पहचाना है—
> मैं सत्य चाहता हूं, युद्ध से नहीं, शत्रु से भी नहीं
> मानव का मानव से सत्य चाहता हूं—[83]

उसने यह भी अनुभव किया है कि दूसरों के अस्तित्व में ही अपनी सार्थकता है—

> मैं तुम्हारे साथ हूं उस स्वप्न में

नर नारी के नये सम्बन्धों का अर्थ भी काव्य में स्पष्ट हुआ है—

हमें भीतर और बाहर के बीच
एक ऐसा सेतु चाहिये
जो धार को निर्बाध बहने भी दे
और हमें अविभाजित रहने भी दे

क्या हमारे आपसी प्रतिबन्धों की पंक्ति ही वह सेतु नहीं है? [८५]

आज कवि यह मानकर चलता है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से मनुष्य को बांटा नहीं जा सकता। साम्प्रदायिकता जाति नस्ल और रंग के मसले को भी कवि ने नकारा है।

मुझे सब मज़हबों से प्यार है
मैं सबका आईना
मैं कहूँ गीता व कुरान
मेरा मज़हब दिले इन्सां— [८६]

आठवें दशक का काव्य इस दिशा में पूर्ण सक्रिय है। वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दोहरी मानसिकता से मुक्त करना चाहता है। वह—

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु कश्चित् दुःखभाक भवेत

की भावना को व्यापक रूप से जन में व्याप्त देखना चाहता है। वह यह नहीं चाहता कि मानवतावादी समाज यह सोचने को विवश है कि—

क्या दामन नहीं मज़ारों का बर्फ से लिपटे कोहसारों का
और हवा की सारंगी पर
सर झुकाते पौदों पेड़ों का
खून से आलूदा रोता— [८७]

स्वातन्त्र्योत्तर काव्य ने व्यक्ति को जो गौरव प्रदान किया है यदि वह सफल हुआ

तो निश्चित हो—

> चिड़ियां सन्देशवाहक होंगी तुम्हारी आवाज की
> पेड़ उभार लायेंगे रात द्वारा दफ़नाया गया प्रभात[८८]

और

> आने वाली नस्लों का दिन
> नूर का दामन फैलायेगा
> फूल बनेंगी नीरस कलियां
> जब नन्हा आदम आयेगा[८९]

यद्यपि इस संक्रान्ति के युग में मानवी समाज का निर्माण बहुत कठिन है लेकिन आज का कवि इसके लिये संघर्षरत है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

१- डा० एजाज हुसैन : उर्दू शायरी का समाजी पसमंजर, पृष्ठ- २६१- ६२
२- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य ( सन् १८५० - १९०० )
पृष्ठ - १
३- प्रो० एहतेशाम हुसैन : रवायत और बगावत , पृष्ठ- १४६
४- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ- ५२८
५- - वही - पृष्ठ- ५२९
६- - वही - पृष्ठ- ५४२
७- - वही - पृष्ठ- ५४५
८- डा० सुधाकर शंकर कलवडे : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ-७४
९- - वही - पृष्ठ-८५
१०- - वही - पृष्ठ-८७
११- डा० शम्भूनाथ पाण्डेय : आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृष्ठ-२५
१२- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ- ६९
१३- - वही - पृष्ठ- ७१६
१४- आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ-१३५
१५- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-७२७
१६- - वही - पृष्ठ-७२८
१७- डा० सुधाकर शंकर कलवडे : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ-९९
१८- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-७२९
१९- डा० सुधाकर शंकर कलवडे : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ-१०५
२०- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-७२०
२१- डा० आबिद हुसैन : कौमी तहजीब का मसला, पृष्ठ-१४
२२- - वही - पृष्ठ-२१
२३- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय विश्व युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का
इतिहास, पृष्ठ-१८ पर उद्धृत

२४- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का
इतिहास, पृष्ठ-३६ - ४०

२५- डा० गिरिजाकुमार माथुर : शिलापंख चमकीले की भूमिका से

२६- आनन्द नारायण मुल्ला : मेरी हदीसे उम्र गुरेजां, पृष्ठ-२५३

२७- डा० गिरिजाकुमार माथुर : आग और फूल : धूप के धान, पृष्ठ-५२

२८- अमीक़ हनफ़ी : शोरों के भंवर - शज़ारत, पृष्ठ-८५

२९- यहां चितवन की बराबर मोहिनी चिन्तामणि पर
कुण्डली मारे सांप से बैठे पहरवाले रखवाले हैं
वीरेन्द्र कुमार जैन : यातना का सूर्य पुरुष, पृष्ठ-१६

३०- मज़हर इमाम : कांठ आदर्श - रिश्ता गूंगे सफ़र का : पृष्ठ-३४

३१- डा० जगदीश गुप्त : मानवतावाद और आधुनिकता—कवितांतर, पृष्ठ-३८

३२- डा० गिरिजाकुमार माथुर : तैंतीसवीं वर्षगांठ; नयी कविता, अंक-१, पृष्ठ-८२

३३- डा० कुंवरनारायण : विकल प्राण जनम को आतुर—नयी कविता-३, पृष्ठ-३७

३४- अमीक़ हनफ़ी : कांठ एक हरत पहलू—शज़ारत, पृष्ठ-२१

३५- जितेन्द्रनाथ पाठक : नयी कविता एक ऐतिहासिक अनिवार्यता—नयी कविता,
अंक- ५-६, पृष्ठ-६१

३६- लक्ष्मीकान्त वर्मा : इतिहास सेतु—अतुकान्त, पृष्ठ-६३

३७- परवेज़ शहेदी : बेबहरी — नयी नज़्म का सफ़र, पृष्ठ-२०२

३८- (क) जाने कब मुझको मेरी खोई हुई सूरत मिले
वन के पत्थर में पड़ा हूं आवरों के बीच
अकील शादाब : सुराबों के सफ़ीर, पृष्ठ-७६

(ख) आईना दर आईना मेरे अक्स है कितने
खुलता ही नहीं मुझपे कि मैं कौन हूं क्या हूं
मख़मूर सईदी : आवाज़ का जिस्म, पृष्ठ-१०

३९- करामत अली करामत : शुआओं की सलीब, पृष्ठ-१२०

४०- कीर्ति चौधरी : दायित्व भार तीसरा सप्तक पृष्ठ-३६

४१- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-२२८

४२- जाहिदा जैदी : जहरे ख्याल, पृष्ठ-१०६

४३- धर्मवीर भारती : थके हुए कलाकार—ठंडा लोहा, पृष्ठ-५३

४४- वहीद अख्तर : हमारे अहद का अदबी मेज़ाज फलसफ़ा और अदबी तन्क़ीद, पृष्ठ-१४४

४५- - वही - जबान की मौत शब का रज़्मिया, पृष्ठ-८२

४६- (क) भारत भूषण अग्रवाल : विलायती स्पेस - औ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ-५६-६०

(ख) अली सरदार जाफरी : इन्टलेक्चुअल— पत्थर शरर, पृष्ठ-३६

४७- अख्तरूल ईमान : गुलाम रूहों का कारवां—यादें, पृष्ठ-१६३ - ६४

४८- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- १६१

४९- कैलाश वाजपेयी : मुझे नींद नहीं आती—संक्रान्त, पृष्ठ-८४

५०- हुरमतुल एकराम : फ़न की मोपरिंग—शहपर, पृष्ठ-९५

५१- साजदा जैदी : मशरिक मग़रिब का कुतुब ख्याल—आतशे सैय्याल, पृष्ठ-१४४

५२- वजीर आगा : जदीदियत क्या है—अलफ़ाज, मई - जून १९७७

५३- दुष्यन्त कुमार : एक कन्ठ विषपायी, पृष्ठ-५४

५४- डा० कमला प्रसाद पाण्डेय; छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ-२६७

५५- वहीद अख्तर : जदीदियत के बुनियादी तसव्वुरात—जदीदियत और अदब, पृष्ठ-४६

५६- कुंवर नारायण : नचिकेता—नयी कविता-४, पृष्ठ-५३

५७- धर्मवीर भारती : अंधायुग

५८- कुंवर नारायण : नचिकेता—आत्मजयी, पृष्ठ-१०६

५९- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-१५८

६०- बलराज कोमल : इंजमहलाफ़िल - सफर मदाम सफ़र, पृष्ठ- २१

६१- कैलाश वाजपेयी : तीसरा अंधेरा, पृष्ठ- २४

६२- वारिस अलवी- अदब और आदमी—पानिस्कोरी—शबखून— नवम्बर १९७१, पृष्ठ-२३

६३- वहीद अख़्तर : एक और आलम आशोब— शब का रज़्मिया- पृष्ठ-६८
६४- मंसूर सईदी : गुफ़्तनी - पृष्ठ-१११
६५- मज़हर इमाम : उखड़ते ख़ेमों का दर्द— नई नज़्म का सफ़र, पृष्ठ-२८७
६६- वहीद अख़्तर : लहराये ज़ुल्फ़- पत्थरों का मौग़नी, पृष्ठ- २३५ - ३६
६७- नरेन्द्र मोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ, पृष्ठ- १७
६८- नरेश मेहता : निवेदनम् — नयी कविता अंक - ३, पृष्ठ- ५३
६९- ज़ुबैर रिज़्वी : सवाल - ख़िश्तए - दीवार, पृष्ठ- २६ - २७
७०- ओमप्रकाश निर्मल : कुछ भी रहा है— समकालीन कविता की भूमिका
सम्पादक- डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृष्ठ-२११ - १२
७१- मुक्तिबोध : दूर तारा - तार सप्तक, पृष्ठ- ४६
७२- अली जवाद ज़ैदी : दयारे सहर, पृष्ठ- २६
७३- भारत भूषण अग्रवाल : हम नहीं हैं दीप- ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ-६३ - ६४
७४- अज्ञेय : यह दीप अकेला— बावरा अहेरी, पृष्ठ- ६२ - ६३
७५- मंसूर सईदी : गुफ़्तनी, पृष्ठ- ६
७६- कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ- २३६
७७- डा० जगदीश गुप्त : प्रथा काम प्रीत, शब्द दंश, पृष्ठ-८२
७८- सरदार जाफ़री : अमन की लौ हंसी— नई नज़्म का सफ़र, पृष्ठ- ११६
७९- दिनकर : आधुनिकता — मेरे सुभाषित, पृष्ठ- ४७
८०- कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ-२१४
८१- ज़फ़र अख़्तर- बशारत, पृष्ठ- ६५
८२- मैं उसका आईना हूं वह मेरा आईना रिश्ता बड़ा
लतीफ़ है मेरा ख़ुदा के साथ ज़फ़र अख़्तर- बशारत
ज़फ़र अख़्तर : बशारत, पृष्ठ- ८६
८३- नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृष्ठ-३१
८४- कुंवर नारायण : परिवेश— हम तुम, पृष्ठ-८६
८५- जगदीश गुप्त : पंक्तिबद्ध सेतु — युग्म, पृष्ठ- ६
८६- रफ़त सरोश : उम्र की एक नहर- हिन्दुस्तान हमारा, पृष्ठ-४२३

८७- राजनारायण राव : कह बोली फिर गौतम की - चांदनी असाढ़ की, पृष्ठ-१०६

८८- कमलेश : दिनों की आकांक्षा - पहचान दो : पृष्ठ -४

८९- असरारुल ईमान : एक कहानी - यादें, पृष्ठ- १४१

# चतुर्थ अध्याय

## हिन्दी काव्यधारा : सांस्कृतिक प्रतिबिम्बन का स्वरूप

किसी भी साहित्य का विकास सामाजिक परिवर्तनों के कारण होता है। समाज से अलग साहित्य अथवा कलाओं का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता, कोई भी समाज आर्थिक सम्बन्धों के बदल जाने से धीरे - धीरे परिवर्तित हो जाता है। इन नई बदली हुई परिस्थितियों और समाज दशाओं का चित्रण करते समय साहित्य भी नया रूप ग्रहण कर लेता है और सामाजिक विकास के समानान्तर ही साहित्य भी विकसित होता है जो साहित्य समाज की परिवर्तित स्थितियों का प्रमाण नहीं प्रस्तुत करता उसे मौलिक व सच्चा साहित्य नहीं कहा जा सकता।

हमारा प्राचीन साहित्य सामन्ती समाज व्यवस्था की देन है। यह पूरा साहित्य या तो आश्रमों में बैठकर लिखा गया था या राजदरबारों में। इसीलिये आठ सौ ( ८०० ) वर्षों का पूरा साहित्य या तो धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित है अथवा चमत्कारिक वीरत्व, विलास और मनोरंजन से अर्थात् ८०० वर्षों तक समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इसीलिये उसे प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य भी इन्हीं दो या तीन दिशाओं में घूमता रहा। कवि विशिष्ट व्यक्तित्व का प्राणी होने के कारण भक्ति विलास सम्बन्धी साहित्यिक रीतियों का पारम्परिक अनुकरण करते हुए साहित्य रचना करता था।

यद्यपि यह पूरी साहित्यिक परम्परा सामन्ती राजाओं जैसे विशिष्ट समाज से जुड़ी रही या फिर समाज से कटकर रहने की प्रवृत्ति रही लेकिन जो साहित्य लिखा गया उसने अपने युग की हर धड़कन को महसूस किया और उसको अपने काव्य में प्रतिबिम्बित किया।

हिन्दी साहित्य का वह काल जिसे विद्वानों ने वीरगाथा काल कहा है वह प्रचण्ड वीरत्व, शौर्य और साहस के भावों से ओत-प्रोत है क्योंकि हर्षवर्धन के पश्चात् केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई थी। पूरा उत्तर भारत छोटे - छोटे राज्यों में बंट चुका था। ये छोटे राजा पारस्परिक ईर्ष्या - द्वेष के कारण आपस में ही लड़ते

रहते थे। राजपूत राजा अलग - अलग विदेशी शक्तियों का सामना करते थे लेकिन पारस्परिक विद्वेष के कारण भेदभाव को भुला कर वे सामूहिक रूप से संघर्ष को तैयार न थे। इन राजाओं के राज दरबारों के आश्रित भी इन्हीं की तरह क्षेत्रीय राष्ट्रीयता के भावों की अभिव्यक्ति करते थे। इसी कारण " वीरगाथा काल की राष्ट्रीय भावना पूर्णतया जातिगत या सामूहिक न होकर व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक अधिक है। उसमें आदर्श एवं व्यापक राष्ट्रीय भावना का अभाव है।[१] इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो " वीसलदेव रासो " और " आल्हाखण्ड " में व्यापक राष्ट्रीय भावनाओं को प्रश्रय नहीं मिला। उस युग के कवि की प्रवृत्ति " जिसका खाओ उसका गाओ " वाली, थी फिर चाहे वह राजा पृथ्वीराज हों, या जयचन्द। इस काल के कवियों का उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का यशोगान करना था। लेकिन उसके माध्यम से जातीय उत्थान या सारे देश के गौरव की रक्षा का प्रयत्न नहीं हुआ तथापि उन्होंने अपने राजाओं के हृदय में उत्साह का संचार कर युद्ध करने के लिये समर्थ बनाने का प्रयास अवश्य किया। इनके काव्य में प्रादेशिक स्तर पर ही राष्ट्रीय भावना अधिक थी। वे अपने सीमित राज्य को कोई अपमानित न करे की भावना से काव्य -रचना करते थे। क्योंकि उन राजाओं में आपसी संघर्ष सामान्य बातों को लेकर होता था। प्राय: युद्ध का कारण सुरा, सुन्दरी और सेना जैसे महत्वहीन प्रसंग होते थे। और इन प्रकरणों को लेकर ही शौर्य प्रदर्शन की लालसा प्राय: रक्त बहा देती थी। कवि भी इन्हीं युगीन सम्प्रेषणों के प्रभाव में आकर अलंकारिक वीर भावों का प्रदर्शन मात्र करते थे। वीरगाथा कालीन संकीर्ण राष्ट्रीयता के कारण धीरे - धीरे देश की राजनैतिक दशा शोचनीय होती गयी। यहां तक कि विदेशियों के लगातार भारत पर आक्रमण करने पर भी ये छोटे-छोटे रजवाड़े आपसी स्वार्थों में लीन रहे। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये वे विदेशी आक्रमणकारियों की सहायता करने से नहीं चूकते थे। उनकी यह आपसी कलह देश को घुन की तरह खोखला करती रही। इन्हीं परिस्थितियों ने मुसलमानों को आकर्षित किया। फलत: " गजनी में तुर्कों का अन्त करके शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने भारत जीतने की ठानी। कई बार पराजित होकर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। ——
कन्नौज के राजा जयसिंह के षड्यन्त्र के परिणाम स्वरूप पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी

से पराजित हुआ और मारा गया। दिल्ली में तुर्क सल्तनत स्थापित हुई और शनैः शनैः उसका विस्तार हुआ[2]। इसके बाद लगातार पांच - छः सौ वर्षों तक मुस्लिम साम्राज्य रहा। इसके साथ ही भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति में क्रान्ति आई लेकिन दीर्घकाल तक साथ रहते - रहते क्रान्ति और संघर्ष का रूप समन्वय ने ले लिया। तो भी इन काव्यों में उस युग की संस्कृति का प्रतिबिम्ब दिख ही जाता है। इन " युद्ध वर्णनों में जहां नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र और कवच आदि की जानकारी मिलती है वहीं उसमें मिलने वाले मंत्रियों और राज्य कर्मचारियों सम्बन्धी निर्देशों से तत्कालीन शासन व्यवस्था को समझने की कुंजी मिल जाती है। उसमें प्रसंगानुकूल दण्ड व्यवस्था सन्धि विग्रह के नियम, राजा और प्रजा का सम्बन्ध तथा क्षत्रिय नरेशों की पराजय के मूल कारणों पर प्रकाश डालने वाले निर्देश भी प्रचुर परिणाम में उपलब्ध होते हैं। विवाह के प्रसंगों में शृंगार वर्णन के अन्तर्गत जहां आलोच्यकालीन वस्त्र और आभूषणों पर प्रकाश डालने वाले निर्देश मिलते हैं वहीं भोजों के वर्णनों से खाद्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। विविध जातियों की सामाजिक स्थिति मनोविनोद के साधन अभिवादन की प्रणालियां, अतिथि सत्कार पारिवारिक जनों का पारस्परिक सम्बन्ध देवी - देवता, शकुन - अपशकुन, भूत - प्रेत, यंत्र - मंत्र में विश्वास आदि तथ्यों का भी विभिन्न ग्रन्थों की मुख्य और अवान्तर कथाओं में अभिव्यंजन हुआ है[3]। " पृथ्वीराज रासो " का कवि चन्दबरदाई पृथ्वीराज के जन्म से लेकर उसके जीवन में घटने वाली प्रमुख घटनाओं का वर्णन करता है। इन वर्णनों से हमें तत्कालीन संस्कृति के बहुत से तत्वों का पता चलता है। पृथ्वीराज का बारात का वर्णन[4] करते हुए सुहागिन स्त्रियों का कलश लेकर द्वार पर आरती उतारने के लिये आना तत्कालीन सामाजिक विवाह रीतियों का परिचय देता है।

> कलश बंदि दुग्गा सिंघ। महुर महिल नृप मैलि ।।
> बहुरि सुहाग सुहागिनी। वई काम रस केलि ।।
> कनक थार आरति उदित। कुम्भ सुवासिनी लाई।
> जनु कि जोति तम हर पहुत। नव ग्रह करत बधाई[5]।।

उस समय भी बारात को जनवासा दिया जाता था[6]। विवाह में मंगल गीत और गाली

गाई जाती थी—

मंगल गावति मुसकनि । कोकिल कंठी नारि ।
सुघर पुरुष जौवन छके । सुनहिं सुहाई गारि [7]।।

विवाह में कन्यादान, कुलदेवता और ब्राह्मण पूजा के वर्णन पृथ्वीराज रासो में मिलते हैं[8]। पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुए कवि लिखता है—

प्रथीराज चहुआन । बान पारथ गहि बंधन्ह ।।
प्रथीराज चहुआन । सरिस जुध कोउ न मंडे ।।
प्रथीराज चहुआन । सत्रु बिनु रद महि घंडे ।।
प्रथीराज चहुआन पहु । कली करन अवतार कहि ।।
सोमेस सूर पुरई सुगग । उदर विष्णु अवतार लहि [9]।।

चन्दबरदाई के वर्णनों से पता चलता है कि उस समय ज्योतिष पर विश्वास किया जाता था । स्वप्न आदि का फल ज्योतिष बताते थे[10]। किन्तु इन कवियों का संकुचित राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखा गया काव्य वीर राजपूतों को पारस्परिक गृह युद्धों के लिये प्रेरित करता था और दूसरे देश की एकता के छिन्न - भिन्न होने का खतरा बन रहता था ।

मुसलमान शासकों के शक्ति के सम्मुख छोटे - छोटे भारतीय रजवाड़ों का शौर्य और पराक्रम तिरोहित हो चुका था । सर्वत्र निराशा का समुद्र उद्वेलित होता हुआ भारतीय मानस में शान्त ज्वालामुखी बनता जा रहा था । ऐसी निराश हिन्दू जाति को भक्त कवियों ने आध्यात्मिक संबल प्रदान किया । भक्ति काल में मुस्लिम शासन सभ्यता संस्कृति और कलाओं का प्रसार हो रहा था । यद्यपि वे आक्रमणकारी बनकर आये । परन्तु समय पाकर कुछ ऐसी परिस्थितियां और कारण बनते गये कि वे विदेशी एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् भारतीय होते गये और इसी देश को अपना देश समझने लगे[11]। धीरे - धीरे वे भारतीय निवासियों के जीवन में इतना घुल मिल गये कि एक नवीन संस्कृति का निर्माण हुआ । हिन्दू - मुस्लिम जातियों को समन्वित करने के कार्य को सफल बनाने में तत्कालीन भक्ति साहित्य ने बहुत सहयोग दिया

भक्ति आन्दोलन दक्षिण से प्रारम्भ हुआ जिसमें भेद भाव की भावना नहीं थी। इसी आध्यात्मिक समता को भक्त कवियों ने अपने - अपने काव्य में स्थापित किया—

जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

सगुण उपासना मुसलमानों के धर्म के विरुद्ध थी। अतः आवश्यकता थी एक ऐसी भक्ति पद्धति की जो दोनों सम्प्रदायों को अनुकरणीय हो। अतः कबीर ने निर्गुण भक्ति का स्रोत प्रवाहित किया। इसी परम्परा को नानक, दादू और संत रैदास ने आगे बढ़ाया। इन संत कवियों ने उन तथ्यों का बहिष्कार आवश्यक समझा जिसके आधार पर दोनों धर्मों में विषमता की सम्भावना थी। इसी बात को ध्यान में रखकर सन्त कवियों ने मूर्ति पूजा, तीर्थ, व्रत, तिलक लगाना, माला फेरना आदि पुरानी रूढ़ियों धर्माडम्बरों का घोर विरोध किया साथ ही मुसलमानों के रोजा नमाज, अजान आदि कर्मों की निन्दा कड़े शब्दों में की। इन संत कवियों ने साधना के क्षेत्र में मन की शुद्धता पर बल दिया। कबीर की दृष्टि में जाति और नाम का महत्व नहीं था—

वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदिम कहिए[१२]।
कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिए।।
हिन्दू कहै मोहि राम पियारा तुरक कहै रहिमाना।
आपस में दोउ लर मुए मरम न काहू जाना[१३]।।

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा भया खुदाय[१४]।।

पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार[१५]।

माला फेरत जुग गया। गया न मन का फेर।
करका मनका डारि दे मनका मनका फेर[१६]।।

" उनकी भक्ति का प्रभाव क्रमश: ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये[17]। सन्त साहित्य ने समाज के पीड़ित और संस्कृति से वंचित वर्गों को जगाया " सन्तों द्वारा प्रेरित यह साम्यभाव अधिक टिकाऊ था क्योंकि वह आर्थिक, लौकिक, या बाह्य साम्य की भित्ति पर नहीं टिका था वरन् वह आन्तरिक साम्य पर आधारित था[18]। सन्त काव्य में तत्कालीन धर्म,समाज, शासन की झलक भी मिलती है। यथा—

अब न बसूं इहि गाइं गुसाईं तेरे नेवगी
खरे सयाने हो राम
नगर एक तहां जीव धरम हता बसे जु पंच किसाना
-- -- -- --

धरम राइ जब लेखा मांग्या बाकी निकसी भारी
पांच किसानां भाजि गये हैं जीव धर बांधो पारि हो राम[19]

चौपड़ि मांडि चौहटे अरध उरध बाजार
कहै कबीरा राम जन खेलो सन्त विचार[20]

पहली नारि सदा कुलवंती सासु सुसरा मानै।
देवर जेठ सबनि की प्यारी प्रिय को मरम न जानै।।
अबकी घरनी धरी जा दिन थे, पीय सौं बान बन्यूं रे[21]।

जो कार्य सन्त कवियों का विद्रोही स्वर कर रहा था दूसरी ओर वही कार्य सूफी कवि सांस्कृतिक समन्वय द्वारा कर रहे थे। सूफी सन्तों ने भारतीय परिवेश की कथाओं को लेकर, उन्हीं की मान्यताओं को आधार बनाकर प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की। यह काव्य दोनों वर्गों के बीच के वैमनस्य को मिटाने में काफ़ी हद तक सफल हुए। इन प्रेमाख्यानक काव्यों में भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रतिबिम्बन हुआ है। सिंहलगढ़ में राजकुमारों द्वारा जायसी ने जो सिद्ध रत्नसेन की वन्दना

करवाई है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय समाज में योगियों का महत्व था। पद्मावत में योगपरक अर्थों के बहुत से प्रसंग आये हैं। रत्नसेन पद्मावत विवाह के समय कवि विभिन्न रीति - रिवाजों का वर्णन करता है तो कहीं विदाई प्रसंग में शकुन - अपशकुन की जायसी के रत्नसेन विवाह में दिये गये भोज से तत्कालीन खान - पान की रस्मों और रुचियों की जानकारी मिलती है।

पांति - पांति सब बैठे भांति - भांति जेवनार।
कनकपत्र दोनन्ह तर, कनक पत्र पनवार ॥

पहिले भात परोसे आना। जनहुं सुबास कपूर बसाना।
झालर मांड़े आइ पोई। देखत उजर पाग जस धोई॥
लुचुई और सोहारी धरी। एक तौ तातो औ सुठि कोंवरी।
खंडरा बचका और डुभकौरी। बरी एकोतर सौ, कोहंड़ौरी[1]॥

खाने के बाद पान खाया जाता था—

भइ जेवनार फिरि खंडवानी। फिरा अरगजा कुंहकुंह पानी।
फिरा पान बहुरा सब कोई। लाग बियाह चार सब होई॥

तत्कालीन विवाह की रस्मों का कवि वर्णन करता है—

बाइ बजावति बैठि बराता। पान फूल सेंदुर सब राता।
जहं सोने का चित्तर सारी। लेइ बरात सब तहां उतारी॥
मांझ सिंघासन पाट सवारा। दूलह आनि तहां बैसारा।
कनक खंभ लागे चहुं पाती। मानिक दिया बरहिं दिनराती[2]॥

पद्मावत में कवि केवल समाज का ही प्रतिबिम्ब नहीं प्रस्तुत करता बल्कि धर्म, दर्शन, भक्ति के सूफी सिद्धान्तों का भी विस्तार से वर्णन करता है।

सन्त तथा सूफी कवियों के समान भक्त कवियों का भी सांस्कृतिक महत्व है क्योंकि तुलसी, सूर, मीरा आदि भक्त कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में समता का पाठ पढ़ाया। कर्म-काण्ड आडम्बर धर्मान्धता, दरिद्रता और छूत-छात से ग्रस्त समाज में

स्वसंस्कृति के प्रति अभिमान, तेज और प्रेम जगाने के लिये इन कवियों ने अवतारवाद को आश्रय लिया और हिंसा, असत्य, अत्याचार और अन्याय की सत्ता को नष्ट करने वाले राम और कृष्ण के चरित्र को जनता के सामने रखा। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोकरक्षक चरित्र की स्थापना करके हिन्दुत्व की ज्योति जगाया। हिन्दू जाति को पुनः उसकी ऊंचाई पर खड़ा कर दिया।

बरनाश्रम निज, निज धरम , निरत वेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं , नहिं भय सोक न रोग[२६] ।।

कवि मानव मात्र की समानता पर बल देता है—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रनामू ।
राम सखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महिं लुठत सनेह समेटा ।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ।[२७]

जिन पारिवारिक सम्बन्धों का आदर्श तुलसी ने उस समय समाज के सामने रखा वे आदर्श आज भी हमारी संस्कृति के अंग हैं—

भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू ।।
जौं न जाउं बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ।।[२८]

मुनिबर सयन कीन्हिं तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ।
तेई दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते । गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ।।
बार - बार मुनि आज्ञा दीन्हीं । रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं ।
चापत चरन लखनु उर लाए । सभय सप्रेम परम सुखु पाएं ।।
पुनि - पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढ़े धरि उर पद जलजाता[२९] ।

मानव आज भी भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है।

सूर ने कृष्ण की लोकरंजक प्रतिमा स्थापित की। वात्सल्य भाव की भक्ति का आश्रय लेकर हिन्दू जाति में कृष्ण की लीलाओं रास क्रीड़ाओं के द्वारा उत्साह

प्रदान किया । इस युग में आध्यात्मिक चरित्र निर्माण ही जीवन की सफलता हेतु प्रमुख रहा । नैतिकता और आदर्श की प्राप्ति और मौलिक व्याख्या करने में ही इस युग की काव्य धारा अग्रसर होती रही । इस प्रकार भक्ति काल की निर्गुण-सगुण दोनों धाराओं ने संस्कृति के निर्माण में योग दिया । भक्तिकालीन के उपरान्त देश की आन्तरिक उथल - पुथल धीरे - धीरे शान्त हो गयी, और देश में सुख - समृद्धि बढ़ती गयी । लम्बे समय तक शान्ति और निश्चिन्तता ने समाज में भोग-विलास की प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया । संत काव्य ने जिस साहित्य को सामन्ती परिवेश से मुक्त करके सामान्य जन-मानस से जोड़ा था वह पुनः राज्य दरबारों की चहारदिवारी में कैद हो गयी । राजाश्रय पाकर कवि अपने आश्रयदाताओं की विलासी मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए समाज के प्रवाह में बह गया । उसके काव्य के विषय- सौन्दर्य, सुरा-सुन्दरी होने लगे । विलासिता के रंग में ये काव्य इतना डूबा कि जो चरित्र कभी साहित्य के आदर्श थे,वही राम सीता— राधा कृष्ण—भोग - विलास के जीवन्त उदाहरण हो गये । यहां तक कि " दनुज - दलन करने वाले लोकरक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी भी अब सरयू किनारे कामक्रीड़ा करने लगे । धनुष उनका शृंगार बन गया । सीता के व्यक्तित्व का आदर्श भी युग की शृंगारिकता में लिप्त हो गयी, और सीता का रमणीय रूप शेष रह गया ।[30]" कवि प्रायः नख-शिख वर्णन, नायक - नायिका भेद और अलंकारिक वर्णनों शृंगारप्रिय प्रसंगों को अभिव्यक्ति देने लगा । इस चमत्कारिक वर्णनों में ही कवि अपनी प्रतिभा को लगा बैठा । उस समय के काव्य में नारी के अत्यन्त शृंगारी और वासनात्मक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये—

> अपने अंग के जानिके यौवन नृपति प्रवीन ।
> स्तन, नयन, नितम्ब को बड़ो इजाफ़ा कीन[31]।
>
> दीप उजेरहु पतिहि हरत वसन रति काज ।
> रही लपटि छवि की छटनि नेको छुटि न लाज[32]।
>
> निरख नवोढ़ा नारि तनु छुटत लरकाई लेस ।
> भो प्यारो प्रीतम तियन मानहु चलत विदेस[33]।

किन्तु इन घोर शृंगारी साहित्य का वर्णन करते हुये भी रीति कालीन कवि अपने युग का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है। उस साहित्य से ही तत्कालीन राजाओं एवं सामन्तों की विलासी प्रवृत्ति का ज्ञान होता है।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सों बंध्यो आगे कौन हवाल [34]।

कवि अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण नायक - नायिका का रूप वर्णन अत्यन्त अतिशयोक्ति पूर्ण एवं अलंकारिक भाषा में करता था—

अंग - अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ाए हूं रहै बड़ौ उज्यारो गेह [35]।।

मकराकृति गोपाल के सोहत कुण्डल कान।
धर्यौ मनौ हिय घर समरु ड्योढ़ी लसत निसान [36]।।

इन विलासी प्रसंगों के बीच पाण्डित्य प्रदर्शन की ही प्रवृत्ति से प्रेरित होकर कवि भक्ति नीति की बातें भी करता था—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांईं परै स्यामु हरित दुति होइ [37]।।

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु कांचो कांच सौ [38]।
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहां ।।

इस घोर शृंगारिक युग में भी एक सर्वथा पृथक किन्तु ऊंचा स्वर सुनाई दे रहा था जिसकी आत्मा राष्ट्रीयता और वीरत्व से परिपूर्ण थी, वह विशिष्ट स्वर भूषण कवि का था। भूषण के काव्य में देश की रक्षा एवं उत्थान का भाव छिपा है। भूषण ने शिवा जी तथा छत्रसाल जैसे लोक हितैषी नायकों को आलम्बन बनाकर जिस ओजस्वी काव्य की रचना की उसमें सारी जाति का अभिमान झलकता है—

राखी हिन्दुआनी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी राजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो गुन गुनी है।[36]

इस प्रकार एक ओर और श्रृंगारिक काव्य की रचना हो रही था तो दूसरी ओर वीर रस प्रधान काव्य लिखे जा रहे थे। किन्तु इस पूरी साहित्यिक परम्परा ( वीरगाथाकाल से रीतिकाल तक ) से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि हर युग का साहित्य अपने समाज का सही प्रतिबिम्बन है। जब साहित्य ने स्वयं समाज को दिशा प्रदान की तब भी और जब वह स्वयं समाज के प्रवाह में बह गया उस समय भी उसने समाज के हर स्पन्दन को स्पष्ट रूप से अनुभव किया। इसके बाद जब पुनः विदेशी शासकों से लोहा लेने का समय आया तो उसने अपनी सारी श्रृंगारिकता और विलासी ताने - बाने को एक झटके से तोड़ दिया और सोयी हुई जाति में फिर से जातीय स्वाभिमान जागृत किया।

## १- पुनर्जागरण से उत्पन्न जातीय स्वाभिमान की भावना का उदय :

भारत में जो नवोत्थान के आन्दोलन हुए उन सभी का प्रत्यक्ष प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। इन आन्दोलनों ने पश्चिमी बुद्धिवाद को भारतीय संस्कृति में आत्मसात करने का प्रयत्न किया। जिस समय यूरोपीय संस्कृति ने भारत में प्रवेश किया उस समय हमारे धर्म और संस्कृति पर रूढ़ियों की पर्तें जमी थी। यूरोप के मुकाबले में आने के लिये यह जरूरी था कि भारतीय संस्कृति में आये हुए मुस्लिम तथा अंग्रेजी प्रभाव को हटाकर शुद्ध हिन्दुत्व का रूप प्रकट किया जाय जो पुराणों और स्मृतियों के नीचे दबा पड़ा था। नवजागरण के धार्मिक आन्दोलन ने धीरे - धीरे समाज को सुधारने का प्रयत्न किया किन्तु आर्य समाज के दयानन्द सरस्वती ने इन पर्तों को एक झटके से साफ कर दिया और वेद के सत्य को प्रतिष्ठित किया। वेदों में मूर्तिपूजा अवतारवाद और तीर्थों तथा अन्य धार्मिक आडम्बरों का समर्थन नहीं था। अतः आर्य समाज ने उन सारे विश्वासों और क्रियाओं को गलत घोषित

किया जो तत्कालीन समाज को ग्रसित किये हुए थे। आर्य समाज हर सिद्धान्त को बुद्धिवाद की कसौटी पर परखा और बुद्धिग्राह्य तत्वों को ग्रहण किया। धर्म के साथ सामाजिक कुरीतियों पर भी तीखा प्रहार कर हिन्दू समाज को प्रगतिशील बनाने के लिये आर्य समाज ने सराहनीय योग दिया। भारत को हिन्दू देश के रूप में प्रतिष्ठित करने तथा राजनीति, समाज तथा धर्म हर स्तर पर संगठित करने के लिये आर्य समाज ने शुद्धी का आन्दोलन चलाया। फलत: वेद के आधार पर जिस देश भक्ति और राष्ट्रीयता का संचार हुआ उससे बिखरे हुए समाज को एकीकरण की शक्ति मिली। "उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता के प्रथम संचरण का श्रेय स्वामी दयानन्द के आर्य समाज को है। समाज के प्रभाव स्वरूप जिस राष्ट्रीयता का जन्म हुआ उसमें अतीत के प्रति अनुराग और आदर्शपूर्ण स्थान प्राप्त करने का आग्रह मुख्य था।[40] आर्य समाज के इन कार्यों का अमिट प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा और द्विवेदी युगीन कवियों ने हिन्दू संस्कृति को आधार बनाकर भारतीय जनता में जागरण उत्पन्न किया। स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज की बौद्धिकता की छाप इस युग के सभी कवियों पर किसी-न-किसी रूप में पड़ी है। उपाध्याय जी के "प्रिय प्रवास" में राधा और कृष्ण का जो स्वरूप अंकित किया गया है वह आर्य समाज द्वारा किये गये पौराणिक और मध्य कालीन कवियों के विवेचन से पूरी तरह प्रभावित है।[41] इस युग के सभी कवियों मैथिली शरण गुप्त, हरिऔध, लोचनप्रसाद द्विवेदी, सियाराम शरण गुप्त, श्यामनारायण पाण्डेय तथा छायावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर आदि ने अतीत के वैभव का गुणगान किया तथा कुछ धार्मिक और ऐतिहासिक चरित्रों को आधार बनाकर कथा काव्यों की रचना की। क्योंकि ये चरित्र आज भी मानव मूल्यों के निर्माण में सहायक हैं। इन चरित्रों को बदलते हुए परिवेश में ढाल कर अतीत की संस्कृति में वर्तमान समस्याओं का समाधान खोजने की प्रवृत्ति सामान्य हो गयी। भारत का अतीत गौरव मण्डित, समृद्धि और वैभव से युक्त एवं सम्पन्न रहा है। इतिहास साक्षी है कि इसकी समृद्धि और सम्पन्नता ने सदैव विदेशियों को आकर्षित किया था। इन विदेशियों ने बहुत बार बर्बरता का प्रदर्शन किया। इसे लूटा लेकिन अनेक घात-प्रतिघात सहने के बाद भी हमारी संस्कृति अविच्छिन्न बनी रही थी। प्राचीन भारत विभिन्न

कलाओं, चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, काव्यशास्त्र का पर्याप्त विकास कर चुका था किन्तु बाद में ये देश जब गुलामी के दिन बिता रहा था और अंग्रेज उसे अपनी संस्कृति के रंग में रंग कर सदैव गुलाम बनाये रखना चाहते थे उस समय अपने को हीन भावना से बचाने तथा दासता की जंजीरों को तोड़ने की प्रेरणा हमें केवल अतीत से ही मिल सकती थी। सम्भवतः इसी कारण तत्कालीन कवि अतीत वर्णन की ओर आकर्षित हैं। "छायावादी कविता का मूलाधार भावुकता थी और भावुकता जब वर्तमान से असन्तुष्ट हो जाती है तब वह स्वभावतः अतीत की ओर लालसा से दौड़ती है।[42]" कवियों ने धर्म ग्रन्थों से उन प्रसंगों का चुनाव किया जो राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाये। इतिहास के उस स्वरूप को अपनाया जो पुनः जन-मानस की रग - रग में जागरण भर दे। अतीत की ओर आकृष्ट होने का एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश साम्राज्य के दमनचक्र का स्पष्ट शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता था। डायर, विलिंग्टन को देश से निकालने की बात नहीं की जा सकती थी, लेकिन कवि जयद्रथ का वध रावण का वध दिखा सकता था। लोक रक्षक के रूप में करुणा की कल्पना की जा सकती थी, अत्याचारी राजा के विरुद्ध। सारस्वत प्रदेश के निवासियों का शोषण कवि दिखा सकता था। साकेत की उर्मिला और प्रियप्रवास की राधा को कवि जागृत कर सकता था। शकों और हूणों को निष्क्रान्त कर सकता था। महाराणा को आधार बनाकर ओजस्वी कविता का सृजन कर सकता था। इन विभिन्न कारणों ने भी अतीत की ओर कवि का ध्यान आकर्षित किया।

गुप्त की "भारत भारती" प्रसिद्ध कृति है। जिसने अतीत का गौरव-गर्वित वातावरण बनाया—

> देखो हमारा विश्व में कोई उपमान नहीं था।
> नर देव थे हम और भारत देवलोक समान था[43]।।

"भारत - भारती" के अनुसार सर्वप्रथम दार्शनिक सिद्धान्त गौतम, कपिल, व्यास, पंतजलि, जैमिनी से ही पाये हैं। वेद ग्रन्थों की रचना तब हुई थी, जबकि संसार में इंजील और कुरान की रचना नहीं हुई थी[44]। भारत भारती में अनेक विषयों के अन्तर्गत भौतिक समृद्धि, कला, कौशल, शिल्प के विकास का विशेष रूप से वर्णन

किया है[४५]। ' वाल्मीकि, व्यास, कालिदास के साहित्य की समानता शेक्सपियर, होमर, फिरदौसी नहीं कर सकते। इसका उल्लेख पुष्ट तर्कों द्वारा ' भारत - भारती ' ने किया है[४६]। भारत धर्म प्रधान देश है जिसकी रग - रग में आध्यात्म व्याप्त है। तिब्बत, शाम, ईरान, चीन, जापान, लंका आदि कहाँ में आर्यों की कीर्ति व्याप्त थी[४७]। शिल्प एवं कलाएं पूर्ण विकसित हो चुकी थीं। देवता भी यहाँ निवास करना चाहते थे—

देव दम्पति अट देख सहार से
उतर कर विश्राम करना चाहते हैं।[४८]

शिल्प का आदर्श रूप था—

कामरूपी वारिदों के चित्र से
इन्द्र की अमरावती के मित्र से
कर रहे नृप सौध गगन स्पर्श हैं
शिल्प कौशलों के परम आदर्श हैं॥[४९]

' मौर्य विजय ' काव्य ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा के माध्यम से अतीत कालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन किया गया है। मौर्य कालीन देशवासियों की चारित्रिक श्रेष्ठता महत्वपूर्ण थी। सिल्यूकस भी भारत के चारित्रिक उत्कर्ष को देख कर प्रभावित हो गया था—

धीर वीर ये भारतीय होते हैं कैसे।
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे॥
क्या ही उज्ज्वल गेय चरित इनके होते हैं।
ग्रीकों का भी गर्व कार्य इनके खोते हैं॥[५०]

स्वर्ग की तुलना में कवि अपने देश को ही सर्वोपरि मानता है—

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ
किन्तु सुर सरिता कहाँ, सरयू कहाँ ?

यह मर्तों को मात्र पार उतारती
यह यहीं है जो पितरों को तारती ।।

— — — —

और सात्विक भाव से सरयू भरी
पुण्य की प्रत्यक्ष धारा यह खरी
तीर पर हैं देव मन्दिर सोहते
भावुकों के भाव मन को मोहते
है अयोध्या अवनी की अमरावती
इन्द्र हैं दशरथ विदित वीरव्रती [51]

भारतीयों के नैतिकता पूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में साकेत की मान्यता है—

एक तरु के विविध सुमनों से खिले
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले ।
स्वस्थ शिक्षित शिष्ट उद्योगी सभी,
बाह्यभोगी आन्तरिक योगी सभी [52] ।।

कवियों ने भारत के पूर्व पुरुषों के गुणगान द्वारा अतीत के गौरव को स्थापित किया । राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान, भीष्म, कृष्ण, द्रोण, भीम, अर्जुन, दधीचि का स्मरण कराया है [53]। भारत की सांस्कृतिक महिमा गाते कवि थकते नहीं थे । राम और कृष्ण के वर्णन में ओज की प्रधानता है और ये पौराणिक चरित्र युगानुरूप वीरत्व की भावना से ओत-प्रोत हो गये । उसी भावना से `द्वापर` में कृष्ण - बलराम के दिव्य चरित्रों का अवलोकन किया गया । `जयद्रथ वध` में चक्रव्यूह तोड़ने का प्रयास ओजस्व वर्णित अभिमन्यु का वीरगति को प्राप्त होना तथा अर्जुन का जयद्रथ से प्रतिशोध लेने की कथा है— `चक्रव्यूह` को देखकर अभिमन्यु में वीर भावना का संचार होता है [54] प्रकारान्तर से कवि नवयुवकों को उत्साहित करना चाहता है । अतीत गौरव स्मरण हेतु लिखी गयी `मौर्य विजय` पराधीन भारतीयों

में स्वाभिमान और उत्साह भरने में सहायक हुई है। चन्द्रगुप्त की वीरता और साहस देश की तत्कालीन स्थिति को बदलने में योगदान करती है—

> जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे
> शौर्य वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे
> रोम मिस्र चीनादि कांपते रहते सारे
> यूनानी तो अभी अभी हमसे हैं हारे
> सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय
> फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय[55]

'प्रिय प्रवास' के कृष्ण पौराणिक होते हुए भी वीर योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं। उनकी वीरता का उद्देश्य अन्याय का नाश करना है। कृष्ण का कथन है—

> मनुष्य क्या एक पिपीलिका कभी।
> न वध्य है जो अहित हेतु हो ।
> न पाप है किंच पुनीत कार्य है।
> पिशाच कर्म्मी नर की वध क्रिया।
> समाज उत्पीड़क धर्म्म विप्लवी ।
> स्वजाति का शत्रु दुरन्त पातकी ।
> मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुंज का ।
> न है क्षमा योग्य वरंच वध्य है।
> क्षमा नहीं है खल के लिये भली ।
> समाज उत्पादक दण्ड योग्य है।
> कु-कर्म कारी नर का उबारना ।
> सुकर्मियों को करता विपन्न है[56]।

'द्वापर' में कृष्ण के पौराणिक चरित्र का प्रस्तुतीकरण भी नवीन धरातल पर हुआ है। वो ब्रह्म का अवतार भी है और योगीराज भी। उनके चरित्र का

असाधारण पक्ष है उनका संयोगी होकर भी योगी होना[५७]। बलराम के चरित्र के माध्यम से कवि ने नवयुग के अनुरूप अभिव्यक्ति प्रदान की । साकेत के राम का चरित्र भी, मानवीय धरातल पर नवीन सन्दर्भों में रखा गया है—

सुख देने आया, दुःख झेलने आया,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया ।
भव को नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ।।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया[५८] ।।

साकेत की सीता का चरित्र भी नवीन उद्भावनाओं के साथ चित्रित हुआ—

तो बरसो, सरसे रहे न भूमि जली सी,
मैं पाप - पुंज पर टूट पड़ूं बिजली-सी[५९] ।।

मध्यकालीन वीरों में प्रख्यात राणा प्रताप के शौर्य और पराक्रम को प्रतीक मानकर बहुत-सी कविताओं की रचना हुई जिनसे गौरवशाली अतीत तो सामने आया ही साथ ही जनता को उद्बोधित करने का सहारा भी मिला । " हल्दीघाटी " में राणा प्रताप के जीवन की मुख्य घटनाओं को काव्य का आधार बनाया गया है । वीरता के हुंकार से युद्ध भूमि का सजीव रूप सामने आ जाता है ।

जय रुद्र बोलते रुद्र-सदृश खेमों से निकले राजपूत
झट झण्डे के नीचे आकर जय प्रलयंकर बोले सपूत
अपने पैने हथियार लिये पैनी पैनी तलवार लिये
आये खर कुन्त कटार लिये जननी सेवा का भार लिये[६०]

इन विषम परिस्थितियों में कवि के सामने महाराणा का चरित्र नवीन स्फूर्ति का संचार करता है— " भैरवी " की सारी आशाएं उस वीर शिरोमणि प्रताप से जाकर जुड़ जाती है—

जागो— प्रताप मेवाड़ देश के
उदय मिट हैं जा रहे
जागो ! प्रताप मां बहनों के
अपमान - भेद हैं जा रहे
मेरे प्रताप तुम फूट पड़ो
मेरी आंसू की धारों से
मेरे प्रताप तुम गूंज उठो
मेरी संतप्त पुकारों से—[६१]

जिस प्रकार हल्दीघाटी में वीरों के दर्प का खौलता लहू प्रवाहित हुआ था उस संग्राम में अनेक राजाओं के मुकुट धूल में मिल गये थे। उसे एक युग बीत गया। कवि पुनः उसी वीरता की उमंग अपने देशवासियों में देखना चाहता है।[६२] क्रान्ति में सोये हुए हिन्दू राष्ट्र की तरुणाई को जगाने का संकल्प अभिव्यक्त है—

जागो जागो निद्रित भारत।
त्यागो समाधि हे योगिराज।
शृंगी फूंको लो शंख नाद।
डमरू की डिम - डिम नव निनाद।
हे शंकर के पावन प्रदेश।
खोलो त्रिनेत्र तुम लाल लाल।
कटि में लो व्याघाम्बर को।
कर में त्रिशूल लो फिर संभाल।[६३]

महाराणा का शौर्य मध्यकाल का स्वर्ण है। प्रताप ने मातृभूमि की रक्षा के लिये अनेक कष्ट उठाये थे। प्रताप के चरित्र को आधार बनाकर कई काव्य ग्रन्थ लिखे गये। कवि उससे प्रभावित होकर पूछता है—

जन्मभूमि के लिये, प्रजा सुख के लिये
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया[६४]

" शिवाजी का पत्र " कविता में शिवाजी के ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से काव्य में अपना ओज भरकर कवि ने हिन्दू जागरण और उत्थान को प्रकाश दिया-- ऐसे महान् चरित्र संसार में कहीं भी हों वे सार्वभौमिक होते हैं। " शिवा जी का पत्र " कविता निराला का ओजस्वी स्वर एवं ऐतिहासिक चरित्र का स्पन्दन पाकर प्रखर राष्ट्रीयता के रूप में प्रकट हुई। इस कविता में राष्ट्रीय चेतना के साथ हिन्दू जागरण और सांस्कृतिक उत्थान को भी प्रश्रय दिया गया है। इस पत्र मे राजनीतिक गुलामी से मुक्ति का उत्तेजनापूर्ण स्वर स्पष्ट सुनाई देता है--

सांस्कृतिक चिंतन का दूसरा ध्रुव है
है जो बहादुर समर के,
वे मरकर भी,
माता को बचायेंगे।
शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम मां का दाग
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे
निर्जर हो जाओगे, अमर कहलाओगे।[66]

भारत भारती में भी शिवाजी को औरंगजेब का दर्प मिटाने वाले सिंह के रूप में चित्रित किया गया है।[67] " जागो फिर एक बार में " कवि ने गुरुगोविन्द सिंह की वीरता को स्वर देकर वीर प्रतिमा का स्मरण कराया है।[68]

देशवासियों को जागरण का सन्देश देने वाले कवियों ने इस सत्य पर भी प्रकाश डाला है कि विदेशियों को हम पर शासन करने का अवसर देने में एक कारण हमारी आपसी फूट और दुर्बलताएं भी हैं--

जितनी विरोधी शक्तियां है
हम लड़ रहे हैं आपस में
सच मानो व्यर्थ है यह
शक्तियों का व्यर्थ है--[69]

प्रसाद का पूरा साहित्य जातीयता के स्वाभिमान को जागृत करता है। प्रसाद काव्य का आधार ही हिन्दू संस्कृति रहा है। भारतीयों में पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से अपनी संस्कृति के प्रति जो हीन भावना व्याप्त होती जा रही थी, प्रसाद ने उसे जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न किया और अपनी संस्कृति के गौरव को गाया—

हमारे संचय में था दान अतिथि थे सदा हमारे देव
वचन में सत्य हृदय में तेज प्रतिज्ञा में रहती थी टेव
वही है रक्त वही है देश वही साहस है वैसा ज्ञान
वही है शान्ति वही है शान्ति वही हम दिव्य आर्य सन्तान[70]

कामायनी के मनु का बार-बार अपने स्वर्णिम अतीत को याद करना हमारे गौरवमय अतीत का प्रतीक है[71] तथा श्रद्धा का कहना इस देश की कला की प्रसिद्धि एवं समृद्धि का परिचायक है—

भरा था मन में नव उत्साह सीख लूं ललित कला का ज्ञान।
इधर रह गंधर्वों के देश पिता की हूं प्यारी सन्तान[72]।

कामायनी का 'शक्तिशाली हो विजयी बनो' का सन्देश राष्ट्र को उद्बोधित करने में पर्याप्त सहायक हुआ है[73]। इसी परम्परा में आगे विदेशी सेल्यूकस को पराजित करने वाले चन्द्रगुप्त की वीर भावना की अभिव्यक्ति दिनकर ने भी की है[74]।

करुणा और वेदना की कवयित्री महादेवी भी 'वृन्दाविपिन' वाले के माध्यम से देश के जागरण का सन्देश देती हैं—

शंख में ले नाश, मुरली में छिपा वरदान
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार
गूंजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज
के पार, वृन्दाविपिन वाले आज[75]

प्रसाद गौरवमय अतीत का गान अत्यन्त कोमलता और मधुरता से करते हैं—

तप की तरुणमयी प्रतिमा
प्रज्ञा परमिता की गरिमा
इस व्यथित विश्व की चेतनता
गौतम सजीव बन आयी थी
उस पावन दिन की पुण्यमयी
स्मृति लिये धरा है धैर्यमयी
जब धर्म चक्र के सतत
प्रवर्तन की प्रसन्न ध्वनि आयी थी[76]

चूंकि साहित्य समाज सापेक्ष होता है और उसका रचयिता युगद्रष्टा । कवि समाज की हर गतिविधि पर अपनी कड़ी नज़र रखता है। जब कभी समाज में उसे कोई कमी दृष्टिगत होती है तो वह समाज को दिशा देने के लिये अतीत के उत्तम मूल्यों को समकालीन परिस्थितियों में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है। ऐसा ही प्रयास विदेशी संस्कृति से मुक्ति दिलाने के लिये कवियों ने किया था। कवि प्राचीन वीरों की जीवन-शक्ति को फिर से जागृत होते देखना चाहता है—

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिर हमें गांडीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर[77]

इस प्रकार का काव्य जो अतीत के इतिहास को आधार मानकर लिखा गया था उन काव्यों ने एक नये युग की शुरूआत की। जातीय स्वाभिमान की रक्षा करने के लिये जन-मानस आकुल हो उठा और स्वतन्त्रता प्राप्ति का नया मार्ग प्रशस्त हुआ। कवियों का हिन्दुत्व प्रधान प्राचीन संस्कृति के गौरव गान करने का वास्तविक उद्देश्य किसी जाति या वर्ग के प्रति अनास्था दिखाने का नहीं था बल्कि राष्ट्रीय जागरण

के लिये उसे साधन रूप में ग्रहण किया गया था । प्राचीन गौरव के पुनरुत्थान की भावना में मुख्यत: संस्कृति का ही जयजयकार है । परन्तु यह भावना कहीं भी संकीर्ण तथा साम्प्रदायिक नहीं होने पाई है।[७८] राष्ट्रीय जागरण के समय समाज के संगठित रहने की आवश्यकता स्वत: ही सिद्ध है क्योंकि राजनीतिक आन्दोलन और जागृति के लिये सामाजिक आधार की पुष्टि कदाचित् पहली शर्त होती है।[७९] इसलिये देश के जातीय स्वाभिमान को जगाने की आवश्यकता कवि ने तीव्रता से अनुभव की ।

२- <u>हिन्दी उर्दू काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति के विविध आयाम :</u>

भारतीय इतिहास में नहीं वरन् विश्व के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी महान् परिवर्तनों का युग रहा है। इस शताब्दी में प्राय: सभी देशों में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक स्तरों पर परिवर्तन आये । भारतीय इतिहास में भी उन्नीसवीं शताब्दी महान् परिवर्तनों का युग है,क्योंकि इसी युग में भारतीय मानस में वर्षों की गुलामी से मुक्ति की अकुलाहट तीव्रता से दिखायी देती है। अंग्रेजों में स्वतन्त्रता प्रेम, जातीयता, महत्वाकांक्षा कूट - कूट कर भरी थी । इसके विपरीत भारतीय समाज रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, धर्माडम्बर, भेदभाव एवं आत्महीनता की भावनाओं से ग्रसित था । इन्हीं सामाजिक बुराइयों के कारण राष्ट्र पराधीन हो गया था । १८५७ ई० की क्रान्ति को अंग्रेजों ने कठोरता से कुचल दिया था और उनके शोषण व दमनचक्र के नीचे देश की राष्ट्रीय भावना और आत्मसम्मान दब कर गयाथा किन्तु विदेशी शासन, शोषण के प्रति असन्तोष की भावना समाप्त नहीं हुई थी । लम्बे समय तक देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा। इस गुलामी से मुक्ति का प्रयास लगातार होता रहा । किन्तु किसी भी देश को बहुत दिनों तक गुलामी की नींद में नहीं सुलाया जा सकता । अत: कालान्तर में शासक वर्ग की प्रेरणा लेकर ही परम्परागत भारतीय राष्ट्रीयता में परिवर्तन आया । यह आधुनिक राष्ट्रीयता भारत के लिये नवीन विश्वास थी । इसके पूर्व इस देश में यह बात अपरिचित थी।[८०] क्योंकि इससे पूर्व राष्ट्रीयता का यह स्वरूप नहीं था । राष्ट्रीयता का बहुत

संकुचित नहीं था । किन्तु नवजागरण ने देश को जागृत किया । राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि विचारकों ने जनवादी दृष्टिकोण अपना कर पूरे देश में जागरण का ऐसा मंत्र फूंका जिसने जनता में व्याप्त निराशा की भावना को जड़ से उखाड़ फेंका । अंग्रेजों के अध्ययन बर्क, स्पेन्सर, मिल्टन, रूसो के क्रान्तिकारी विचारों ने भी भारतीय मानस में हलचल मचा दी । पराधीन राष्ट्र स्वतंत्र होने के सपने देखने शुरू किये । पूरी शक्ति स्वतन्त्रता आन्दोलन में लग गई क्योंकि उस समय देश के सामने प्रमुख लक्ष्य यही था । एक गुलाम राष्ट्र का उद्देश्य वास्तव में यही होना भी चाहिये था । नवजागरण ने पूरे देश में इसकी भूमिका तैयार कर दी थी । फलत: जनता में क्रान्ति की लहर दौड़ गई और वह पूरी शक्ति के साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष में संलग्न हो गई ।

(ब) राजनीतिक पक्ष :

राजनीतिक पराधीनता देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य था । शासकों के शौर्य स्वाभिमान एवं तेजस्विता का लोप होने के कारण देश पराधीन हुआ था । शासकों के मदिरा, मांस और वासना में लिप्त होने से देश भुखमरी, दासता, क्लेश का आगार बन गया था । दूसरी ओर राजनीतिक दासता से राष्ट्र का सर्वतोमुखी अधोपतन हो जाता है । विदेशी शासकों के आर्थिक शोषण से देश दिन पर दिन खोखला होता जा रहा था और उसकी उन्नति अवरुद्ध हो रही थी । पाश्चात्य आविष्कारों तथा संस्कृति के आगे भारत नतसिर हुआ । परन्तु भारतीय सैकड़ों वर्षों से स्वतन्त्रता प्रेमी रहे हैं । अंग्रेजों से पूर्व यद्यपि मुसलमान भी एक विदेशी के रूप में आये थे । उन्होंने भी देश पर शासन किया था । किन्तु उनकी नीति शोषण की नहीं थी बल्कि एक शासक के रूप में उन्होंने देश की उन्नति के लिये बहुत से अच्छे कार्य किये और देश के गौरव को बढ़ाया । कभी भी उन शासकों ने एक लुटेरे के समान देश का आर्थिक शोषण नहीं किया बल्कि वे यहीं के निवासी बन गये थे और उनके शासन में देश ने खूब प्रगति की थी । इसके विपरीत अंग्रेज इस देश का धन लूटकर अपने देश ले जा रहे थे और जनता पर अत्याचार कर रहे थे । इस शोषण और अत्याचार से मुक्ति पाने के

लिये भारतीय मानस दासता की शृंखलाओं को तोड़ने का यत्न करने लगा। फलतः राज्यक्रान्ति की भावना भारत भर में फैल गयी और देशभक्ति की भावना का विकास हुआ।

अंग्रेजी शासन से असन्तुष्ट समाज में विभिन्न सुधार आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ और राजनैतिक दल एवं संस्थाएं निर्मित हुई। इनमें से कुछ दल क्रान्ति द्वारा शक्ति का प्रयोग करके अंग्रेजी शासन का तख्ता उलट देना चाहते थे और कुछ दल शान्ति-पूर्वक वैधानिक तरीकों से देश को मुक्त करने का प्रयास करने लगे। तब अंग्रेजों ने भेद-नीति और अत्याचार के द्वारा इस क्रान्ति का दमन करने की कोशिश की। राज्य-क्रान्ति को प्रेरणा देने वाले लोकमान्य तिलक और गांधी जी थे। सन् १८५७ ई० का विद्रोह अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीय जनता का प्रथम विस्फोट था किन्तु अंग्रेजों की संगठित सैनिक शक्ति के बल से यह विद्रोह सफल नहीं हो सका। अंग्रेजों का ऐसा आतंक छाया कि बहुत वर्षों तक विद्रोह तो क्या उनके विरुद्ध कुछ कहने - सुनने का भी किसी में साहस न रहा। इसी कारण इस घटना की साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं हो सकी और ( सन् १८५७ से लेकर सन् १८८७ ई० ) तिलक युग के प्रारम्भ तक राजनैतिक क्षेत्र में कुहासा छाया रहा। इसके बाद तिलक आदि के प्रयास से पुनः जनता जागृत हुई।

साहित्य युग सापेक्ष होता है और उसका मानव - जीवन से चिरन्तन सम्बन्ध है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः साहित्य का सम्बन्ध समाज से भी हो जाता है। इसी साहित्य का एक अंग कविता भी है। इसलिये काव्य भी सामाजिक परिवर्तन के अनुसार अपने को परिवर्तित करता है। फलतः नव जागरण का प्रभाव कवियों पर भी पड़ा और उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देश को उद्बोधित किया। अपनी रचनाओं के माध्यम से देश को राष्ट्रीयता के सूत्र में बांधने का कार्य सम्पन्न किया। तत्कालीन काव्य ने देश की त्रुटियों का निःसंकोच वर्णन किया। क्रान्ति के समय कवि की लेखनी आग उगलती है और समृद्धि सुव्यवस्था के समय चांदनी बरसाती है। अतएव इस विषम परिस्थिति में कवि रीतिकालीन शृंगारिक परिवेश के सारे बन्धनों को तोड़कर जन-सामान्य के बीच उतर आया और राष्ट्र को जागृत

करने के लिये कवियों ने जन्मभूमि के प्रति प्रेम जगाया। देश के प्रशस्ति के गीत गाये। कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा विदेशी शासन की निन्दा की और अपने देश के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान मुक्त कण्ठ से किया। राष्ट्रीय जागरण के गीतों ने जनता को उद्बोधित करने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया।

राजनीति में तिलक के प्रवेश से एक नवीन क्रांति आई।" इसके बाद उत्साह, वीरता, धैर्य तथा युयुत्सा के दर्शन होने लगे। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ कर फेंकने के लिये प्रेरणा देने वाली ढेरों कवितायें लिखी गईं। साम्राज्यवाद को मानवीय संस्कृति की एक विकृत कल्पना मानकर स्वाधीनता का अपहरण करने वाले साम्राज्यवाद को समाप्त करने का उद्घोष इन कविताओं में मिलता है।[82] महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह की नीति अपना कर राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्ति का प्रचार गांव-गांव में फैलाकर देशवासियों को संघर्ष के लिये तैयार किया। असहयोग आन्दोलन ने क्रान्ति की आग को और तेज़ किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति की मांग बढ़ती गयी। अन्ततः देश अपने लक्ष्य प्राप्ति में सफल हुआ।

इन सारी राजनीतिक गतिविधियों का प्रतिबिम्ब तत्कालीन साहित्य प्रस्तुत करता है। देश को जागृत करने के लिये कवियों ने देश की प्रशस्ति के गीत गाये, अतीत का गौरवगान करके जनता को स्वर्णिम अतीत की याद दिलाकर देश में जागरण लाने का प्रयास किया। मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, "नवीन", सुभद्राकुमारी चौहान, प्रसाद, निराला, पन्त, इकबाल, चकबस्त, वामिक जौनपुरी, अख्तर शीरानी, जोश आदि बहुत से कवियों ने राजनीति से प्रभावित होकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष को तीव्र स्वर प्रदान किया।

यह वास्तविकता है कि कलाकार अपने परिवेश से प्रभावित होता है। साहित्यकार अपनी धरती से समाज से प्रभाव लेकर उसमें कल्पना का समन्वय कर अपनी रचनाओं का सौन्दर्य बढ़ाता है और अपने विचारों से अपने सामाजिक परिवेश को प्रभावित करता है। बीसवीं शताब्दी के हिन्दी, उर्दू कवियों ने भी अपने परिवेश में ढलकर रचनायें कीं और अपने कवि धर्म का पालन किया। हिन्दी काव्य बहिर्मुखी

होने के कारण अपने युग की हर धड़कन को महसूस कर उसको अभिव्यक्त देने में सफल हुआ। इसके विपरीत उर्दू काव्य अन्तर्मुखी होने के कारण अपने परिवेश से नहीं जुड़ सका। उर्दू कवि निरन्तर एक सीमित क्षेत्र में ही काव्य रचना करता रहा। जिस समाज को उर्दू काव्य में अभिव्यक्ति दी गयी थी वह एक अत्यन्त भव्य समाज था। हिन्दी कविता जिस प्रकार लगातार समाज से जुड़ी रही, और उसमें जो कठिनाई उठाने की, दुःख झेलने की भावना है वह उर्दू काव्य में नहीं मिलती। किन्तु कुछ जागरूक कवियों ने अपने आपको ईरानी प्रभाव से मुक्त किया। अपने काव्य को भारतीय परिवेश से जोड़ा। " विशेषकर दक्षिण के कवियों के यहां भारतीयता अपनी पूरी सज-धज के साथ उपस्थित हुई है " लेकिन फारसी शायरी के बढ़ते हुये प्रभाव के साथ उर्दू शायरी विशेषत: गज़ल की प्रवृत्ति ईरानी होती चली गयी। अपनी धरती पर उर्दू कवियों की पकड़ कमज़ोर होती गया और शायद उर्दू कवि जीवन कठोरताओं, वास्तविकताओं का सामना न कर सका। इस कारण जामो मीना में ही खोया रहा। १८५७ की क्रान्ति ने भारतीय समाज में उथल - पुथल मचा दी थी। उसी समय पहली बार उर्दू काव्य ने अपने देश के दर्द को पहचाना और गुलाम देश को देखा। १८५७ से पूर्व राष्ट्रीयता का वह रूप नहीं था जो पूरे समाज को भौगोलिक इकाई बना सकने में सक्षम होता।[3] " दूसरे उर्दू शायरी अपनी समृद्ध ईरानी परम्परा को इतनी जल्दी नहीं तोड़ सकी जितनी जल्दी हिन्दी काव्य ने रीतिकालीन शृंगारिक ताने-बाने को झटके से तोड़ डाला और सामंती परिवेश को त्याग कर जन साधारण से जुड़ गया। इसी कारण हिन्दी के विभिन्न स्तरों के कवियों— मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, दिनकर के यहां केवल भारतीयता ही दिखायी देती है। फिर भी उर्दू कवियों में कुछ ऐसे स्वर हैं जिन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता के सम्पूर्ण इतिहास को समझा और अपने काव्य में उन्हें अभिव्यक्ति देकर मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने में अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभाया और उनका काव्य सम्पूर्ण राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने में सहायक हुआ। हिन्दी, उर्दू काव्य में इन राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति विभिन्न स्तरों पर हुई। भारतेन्दु युग के कवियों ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति को पूर्णतया प्रतिबिम्बित किया। जातिय अभिमान को जागृत

किया। यह कवि समाज में परिवर्तन तो लाना चाहते थे लेकिन केवल उसी सीमा तक जहां तक कि भारतीयता जीवित रह सके। सम्भवत: इसी कारण उस युग का हर कवि पश्चिम को शंका की दृष्टि से देखता था। भारतेन्दुयुग के कवियों ने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को विभिन्न स्वरों पर तीव्रता से अभिव्यक्त किया।

भारत वन्दना और प्रशस्ति :

भारत को प्रकृति ने सर्वथा सम्पन्न बनाया है। विशाल समुद्र, गहन वन, ऊंचे पहाड़, युगों से प्रवाहित सरितायें एवं विस्तृत धरती इसकी सम्पन्नता के प्रतीक हैं। इसकी प्राकृतिक सुषमा ने सदैव कवियों को आकर्षित किया है और उन्होंने इसका प्रशस्तिगान मुक्त कण्ठ से किया है। इसके पीछे " जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी " की भावना निहित थी। अपने गुलाम देश को आजाद कराने के लिये मातृभूमि की महिमा और बढ़ जाती है। " उन्नीसवीं शताब्दी के पहले भारतीय साहित्य में जन्मभूमि अथवा राष्ट्र पर कोई कविता नहीं थी, भारत में राष्ट्र की भावना सम्भवत: कभी नहीं थी, जन्मभूमि अथवा मातृभूमि नाम की वस्तु तो थी परन्तु हम अपने गांव या एक सीमित क्षेत्र को ही जन्मभूमि मानते थे। भारतवर्ष को जन्मभूमि मानना हमने पश्चिम से सीखा।[24] बीसवीं शताब्दी में देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत गीतों की रचना हुई जिनका मुख्य विषय मातृभूमि का दैवीकरण अर्चना, वन्दना, भक्ति और प्रेम था-

जय जय भारत भूमि भवानी।  
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी।।  
तेरा चन्द्रवदन घट विकसित शान्ति सुधा बरसाता है।  
मलयानिल निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।।  
हृदय हराकर देता यह अंचल तेरा धानी।  
जय जय भारत भूमि भवानी।।[25]

यही भाव उर्दू काव्य में भी द्रष्टव्य है-

वाह ये आब बका पानी ये बहारें खुशगवार ।
ये तेरा शादाब-व-शीरीं भैदा दाम खुशगवार ।।

तत्कालीन उर्दू काव्य में भी इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की गयी—

ठंडी ठंडी हवा में डूबी हुई यादे जुनूब
सब्ज खेतों की बहारें और ये मैदानों की दूब
जिल्हे शफकत सौ तेरा है मादरे मुश्फिक दराज
खाक पर क्या क्या तेरे मकीनों को है नाज ।।

कवि को गंगा के सौन्दर्य में ईश्वर की महानता दिखाई देती है—

ऐ आबरूदे गंगा उफ री तेरी सफाई
वो तेरा हुस्न दिलकश वो तेरी दिलरुबाई
तेरी तजल्लियां हैं जल्वा फरोशे मानी
तन्वीर में है तेरी एक शाने किबरियाई [87]

बदलती हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न नयी चेतना का स्पष्ट विकास हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु और उर्दू में 'आज़ाद' से होता है। नवीन और प्राचीन कड़ियों को जोड़ने का श्रेय इन्हीं को है। यह क्रान्ति का युग नहीं था बल्कि धीमे परिवर्तन का युग था। इसलिये समाज में तेज़ी से सुधार लाना प्रमुख उद्देश्य था। इन कवियों और नेताओं के प्रयास से तत्कालीन मध्यवर्ग में जागृति उत्पन्न हुई। उर्दू साहित्य जो कुछ विषयों तक सीमित था और अपने पूर्वजों की परम्परा पर चल रहा था, उसे 'आज़ाद' ने नयी दिशा दी। एक सीमित परिवेश से निकल कर खुले वातावरण में आने की प्रेरणा दी और कहा कि "हम कोयल, चम्पा, चमेली, अर्जुन और नीम, गंगा, जमुना, हिमालय और अन्य स्थानीय वस्तुओं को बिलकुल भूल गये हैं, अब इस बात की आवश्यकता है कि हम उनकी ओर भी पूरा ध्यान दें।"[88] इसके बाद उर्दू में एक नयी शैली का जन्म हुआ। थोड़े ही समय में एक नये ढंग का काव्य लिखने का प्रचलन सारे भारत में फैल गया जिसने क्रान्ति के बाद फैली

निराशा को दूर किया और जिससे राष्ट्रीय जागरण के लिये उचित भूमिका तैयार हुई। देशवासियों को जागृत करने के लिये देश भक्तिपूर्ण साहित्य की रचना होने लगी। मातृभूमि के सपूतों पर कवि को गर्व है वह मातृभूमि को बेड़ियों से मुक्त कराने का आकांक्षी है। अतः वह सम्पूर्ण देशवासियों को स्वतन्त्रता के लिये एक कण्ठ एक मन और एक देह से जूझने की प्रेरणा देता है और गफलत में सोये हुए देश को जगाना चाहता है—

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।
असंख्य कीर्ति रश्मियां विकीर्ण दिव्य दाह-सी,
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिन्धु में सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।[८९]

उर्दू में भी देश के नवजवानों को उद्‌बुद्ध करने वाली कविताओं की रचना की गई—

हां जवानाने वतन ख़्वाब से बेदार हो अब
सो चुके रात भी आखिर हुई होशियार हो अब
सबरे नूरे वफ़ा के लिये तैयार हो अब
दर्दे दिल कुछ मुझे कहना है ख़बरदार हो अब
बेखुदी दिल की तस्वीरें क्यां मेरी है
मर्सिया कौम का है और ज़बां मेरी है[९०]—

तत्कालीन कवियों ने देश की सांस्कृतिक गरिमा का पूर्ण स्वरूप मुखरित किया। देश की सम्पन्नता और प्राकृतिक वैभव का वर्णन कवियों ने किया इन गीतों में राष्ट्रीयता को संकीर्ण दायरों में न बांधकर शाश्वत एवं सार्वजनीन करने का प्रयत्न किया गया—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे
उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड़ निज प्यारा
बरसाती आंखों के बादल बनते जहां भरे करुणा जल
लहरें टकरातीं अनन्त की पाकर जहां किनारा
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे
मन्दिर ऊंघते रहे जब जग कर रजनी भर तारा[61]

प्रसाद के समान अनेक हिन्दी कवियों ने भारत का प्रशस्ति गान किया। सियाराम शरण गुप्त को अपनी मातृभूमि सुखकारी पुण्यभूमि माता के समान संसार में सर्वोत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ लगती है।[62] मैथिली शरण गुप्त को भारत माता सुधामयी, शरणदायिनी, वात्सल्यमयी, क्षमामयी, प्रेममयी, विश्वशालिनी, विश्वपालिनी, भयनिवारणी लगती है[63] तो इकबाल को मातृभूमि संसार में सबसे अच्छी लगती है—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी ये गुलसितां हमारा
पर्वत वो सबसे ऊंचा हमसाया आसमां का
वो संतरी हमारा वो पासबां हमारा
गोदी में खेलती है उसकी हजारों नदियां
गुलशन है जिनके दम से रश्के जिनां हमारा[64]

भारत पर कई बार विदेशी आक्रमण हुए हैं। भारतीय इतिहास के अवलोकन से यह भी ज्ञात होता है कि कई बार उन विदेशी आक्रमणकारियों ने यहां नर संहार किया। धन - सम्पत्ति का हरण किया लेकिन इतने घात प्रतिघात सहने के बाद भी यह संस्कृति अक्षुण्ण बनी हुई है। इसके विपरीत यूनान, मिस्र, असीरिया की

संस्कृतियां अल्प काल में ही समाप्त हो गयीं। इकबाल ने इसी को लक्ष्य करके भारतीय संस्कृति की महिमा का वर्णन किया है—

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरेजमां हमारा
यूनान, मिस्र, रोमा सब मिट गये जहां से
बाकी मगर है अब तक नामोनिशां हमारा[65]

राष्ट्रभक्त कवियों ने मातृभूमि की वन्दना की। कवि की भावनायें प्रसाद गुण से मण्डित हैं। उसे अपनी जन्मभूमि सर्वेश की प्रतिमूर्ति समान लगती है—

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियां प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं
बंदीजन खगवृन्द शेष फन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की

हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की। कवि का विचार है कि मातृभूमि ने जो सुख दिये हैं उनसे हम उऋण नहीं हो सकते—

पाकर तुम्हसे सभी सुखों को हमने भोगा
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा
तेरी ही यह देह तुम्ही से बनी हुई है
बस तेरे ही सुरस सार से सनी हुई है
फिर अन्त समय तू ही इसे देह अपनायेगी
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायेगी[66]

उर्दू काव्य में भी देश के प्रति आस्था व्यक्त की गयी है। अपनी जन्मभूमि भारत पर कवि को गर्व है। यह देश सूफी सन्तों का है। यहां का जीवन स्वर्ग की समता करता है—

चिश्ती ने जिस ज़मीं पे पैग़ामें हक़ सुनाया ।
नानक ने जिस चमन में वहदत का गीत गाया
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया
जिसने हजाजियों से दश्ते अरब छुड़ाया
मेरा वतन वही है मेरा वतन वही है

-- -- --

वहदत की लय सुनी थी दुनिया ने जिस मकां से
मीरे अरब को आई ठंडी हवा जहां से

-- -- --

रफ़अत है जिस ज़मीं की बामे फ़लक का ज़ीना
जन्नत पे ज़िन्दगी है जिसकी फ़ज़ा में जीना
मेरा वतन वही है मेरा वतन वही है—

## उद्बोधन एवं आवाहन

नवजागरण से प्रेरित होकर अतीत के द्वारा निवासियों को जागृत किया गया । उनमें जागरण और आत्मविश्वास लाने के लिये उन धार्मिक चरित्रों की नवीन सन्दर्भों में व्याख्या की गयी जो भारतीय जीवन में आज भी आदरणीय है तथा मूल्य निर्माता है । इस दृष्टि से साकेत " जयद्रथ वध," " द्वापर," " सिद्धराज", " प्रियप्रवास ", " कृष्णायन," " मानसी", " प्रभाती," " मौर्य विजय," " महाराणा का महत्व", " हल्दीघाटी," " खण्डहर के प्रति," " आर्यपंथक," आदि काव्य ग्रन्थों में जातीय अभिमान झलकता है । " साकेत " के राम और " प्रियप्रवास " के कृष्ण ईश्वर का अवतार न होकर जननायक के रूप में, उद्धारक के रूप में चित्रित किये गये हैं । साकेत की सीता वन की कुटिया में भी राजभवन के सुख पाती है । " मध्यकालीन " कवियों की रचनाओं में कृष्ण के विरह में रो-रो आंसू

बहाने वाली राधा ( हरिऔध जी ) के प्रियप्रवास में लोक सेवारत नारि का रूप ले लेती है।[९८] साकेत के राम की यह घोषणा कि मैं विश्व के संतप्त विवश लोगों के जीवन में सुख शान्ति की स्थापना हेतु आया हूं, मैं इस भूतल को स्वर्ग बनाने के लिये आया हूं।[९९] राम के इस कथन के द्वारा कवि ने मानव की ईश्वरता का चित्रण नितान्त भौतिक धरातल पर किया है। इसी प्रकार राम के चरित्र में देशप्रेम, प्रजाहित, चिन्तन आदि अन्य अनेक युगानुकूल विशेषतायें परिलक्षित होती हैं जिनके कारण अलौकिकता की प्रतिमूर्ति पौराणिक राम की अपेक्षा ये हमारे अधिक समीप प्रतीत होते हैं। राम के परम्परागत व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए भी गुप्त जी ने उन्हें युगानुकूल रूप प्रदान किया।

रामायण महाभारत के पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त प्राचीन एवं मध्यकालीन वीरों का गुणगान कवियों ने किया। कवियों ने इन वीर चरित्रों की वीरता का गान कर पराधीन, हतोत्साहित भारतीय जनता को ओज से भरा और इसके साथ ही इन पात्रों की नैतिकता द्वारा जनता को संयम - नियम का पाठ भी पढ़ाया। इस दृष्टि से प्रताप को शौर्य और देश प्रेम का प्रतीक मानकर अनेक काव्यों की रचना हुई। प्रसाद का ` महाराणा का महत्व ` काव्य राणा प्रताप के मातृभूमि के लिये हर तरह से कष्ट झेलने का वर्णन कर कवि देशवासियों के अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता है।[१००] महाराणा के जीवन के ` हल्दीघाटी ` के महत्वपूर्ण युद्ध को आधार बना कर लिखा गया ` श्यामनारायण पाण्डेय ` का काव्य युवकों में वीर रस का संचार करने में सक्षम है—

> जय रुद्र बोलते रुद्र सदृश खेमों से निकले राजपूत,
> झट झण्डे के नीचे आकर जय प्रलयंकर बोले सपूत।
> अपने पैने हथियार लिये पैनी तलवार लिये
> आये खर कुन्त कटार लिये जननी सेवा का भार लिये।।[१०१]

` नवीन ` के काव्य में दासता से मुक्ति का भीषण ज्वार उद्वेलित होता है। कवि के राजनैतिक मुक्ति के गीत स्फूर्ति एवं ओज से हृदय को स्पन्दित करते हैं—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये
एक लहर इधर से आये
एक लहर उधर से आये

— — —

एक ओर कायरता कांपे
गतानुगति विगलित हो जाये।
और दूसरी ओर कंपा देने वाला गर्जन उठ जाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मंडराए।
नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक टूक हो जायें,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के ये सब तार मूक हो जायं[१०२]।।

द्विवेदी जी की वाणी में भी ओज और करुणा का रोमांचक समन्वय मिलता है—

जागो प्रताप मेवाड़ देश के
हृदय भेद हैं जाग रहे
जागो! प्रताप मां बहिनों के
अपमान छेद हैं जाग रहे
मेरे प्रताप तुम फूट पड़ो
मेरे आंसू की धारों से
मेरे प्रताप तुम गूंज उठो
मेरी संतप्त पुकारों से[१०३]

'प्रभाती' में भारत की सुप्त तरुणाई को जगाने का संकल्प है—

जागो जागो निद्रित भारत
त्यागो समाधि हे योगिराज

शृंगी फूंको लो शंखनाद
डमरू का डिम-डिम मय निनाद
हे शंकर के पावन प्रदेश
खोलो त्रिनेत्र तुम लाल लाल
कटि में लो व्याघाम्बर को
कर में त्रिशूल लो फिर संभाल[१०४]

राणा प्रताप शिवाजी चन्द्रगुप्त की वीरता का आदर्श तरुणों और अभिमन्यु की वीरता का आदर्श किशोरों के सन्मुख कवियों ने रखा। इसी प्रकार राधा, सीता, उर्मिला, पद्मिनी, दुर्गावती और कृष्णा के त्याग बलिदान और शौर्य का आदर्श भारतीय रमणियों के सामने रखकर कवि नारी जाति में जागरण लाना चाहता है और इनके माध्यम से उद्बोधन का सन्देश अबलाओं को देते हैं।

उर्दू काव्य में यही चीज दूसरे तेवर में कही गयी—

उठो ऐ वां फरोशो सरकटाने के लिये उठो
वतन के दुश्मनों का खून बहाने के लिये उठो
मिजारं बास्मी को मूल जाने के लिये उठो
लपकते शोलों से दामन जलाने के लिये उठो
लगी है आग मशरिक में बुझाने के लिये उठो[१०५]
उठो ऐ वां फरोशो सर कटाने के लिये उठो

चकबस्त की 'खाके वतन'[१०६] 'हमारा वतन दिल से प्यारा वतन'[१०७] 'लाल्ले कौम'[१०८] 'कृष्ण कन्हैया'[१०९] 'नौजवानों से खिताब'[११०] इसी तेवर की कवितायें हैं। इन कविताओं में कवि कभी युवकों को उद्बोधित करता है, तो कभी अतीत के वर्णन से वर्तमान को जीतना चाहता है। इन काव्यों में क्रान्ति का आह्वान स्पष्ट सुनाई देता है। जन्मभूमि के लिये कवि त्याग की भावना को महत्व देता है, जन्मभूमि के सामने उसके लिये स्वर्ण भी तुच्छ है।

आवाज दे रही है हमें किसलिये बेहिश्त
हिन्दोस्तां में खेमा छाये हुए हैं हम[१११]

वर्तमान की दयनीय दुर्दशा देखकर स्वर्णिम अतीत के गौरव का कवि स्मरण करता है—

देश ओ मेरे देश
गौरव धनी है पुरातन तू
मेरे ओ चिर निवेश[११२]

इक़बाल भी अतीत को याद करते हुए लिखते हैं—

आता है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना
वो बाग़ की बहारें वो सबका चहचहाना
आजादियां कहां वह अब अपने घोंसले का
अपनी खुशी से आना अपनी खुशी से जाना[११३]

प्राचीन वैभव का स्मरण करके कवि ने वर्तमान अवनति पर चिन्ता प्रकट की है—

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी[११४]

अंग्रेजी शासन के क्रूरता पर आंसू बहाते हुए कवि जागरण का सन्देश देता है—

ये, दस्तूरे जुबां बन्दी है कैसा तेरी महफिल में
यहां तो बात करने को तरसती है जुबा मेरी
मेरा रोना नहीं रोना है सारे गुलिस्तां का
वो गुल हूं मैं ख़िज़ा हर गुल की है गोया ख़िज़ा मेरी[११५]

एक स्वतन्त्र देश का इस प्रकार गुलाम हो जाना कवि को रुलाता है—

रुलाता है तेरा नज़ारा ऐ हिन्दोस्तां मुझको
के इबरत ख़ेज़ है तेरा फ़साना सब फ़सानों में[११६]

गुलामी की जंजीरों को शीघ्रातिशीघ्र कवि तोड़ देना चाहता है। वह चेतावनी देता है कि अब सोने का समय नहीं यदि अब भी न जागे तो तुम्हारा नाम मिट जायगा—

> न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्तां वालो।
> तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।।[१२७]

नव जागरण से प्रभावित हिन्दी कवियों ने राष्ट्रीय उद्बोधन के गीत गाकर समाज जागरण का प्रयत्न किया। निराला की 'जागो फिर एक बार' जागरण का शब्द-चित्र है। अंग्रेजों की अमानवीय नीतियों एवं शोषण के विद्रोह कवि के स्वर में देश को जगाने का आह्वान है—

> " जागो फिर एक बार।
> समर में अमर कर प्राण
> गान गाये महासिन्धु से
> सिन्धु-नद तीरवासी।
> सैन्धव तुरंगों पर
> चतुरंग - चमू - संग।
> सवा - सवा लाख पर
> एक को चढ़ाऊंगा
> गोविन्द सिंह निज
> नाम जब कहाऊंगा।
> किसी ने सुनाया यह
> वीर-जन मोहन अति
> दुर्जय संग्राम राग
> फाग था खेला रण
> बारहों महीनों में
> शेरों की मांद में
> आया है आज स्यार[१२८]

कवि देशवासियों को शेर होने का आभास करा के अंग्रेजों को देश से निकाल भगाने का सन्देश देता है। कवि यह मानता है कि देश परिस्थितिवश गुलाम हो गया है। अत: मोह निद्रा को त्यागने का सन्देश देशवासियों को देता है—

" पशु नहीं वीर तुम
समर शूर क्रूर नहीं
काल-चक्र में हो दबे
आज तुम राजकुंवर
समर सरताज !
मुक्त हो सदा ही तुम
— — —
तुम हो महान
तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता कामपरता
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी नहीं
पूरा यह विश्वभार"[११९]

निराला युग की ज्वलन्त परिस्थितियों के प्रति सदैव सचेष्ट रहे हैं। कवि द्वारा आराम, सुन्दर स्त्री, शराब, पुराने याम और दाम छोड़कर शत्रु की ओर बढ़ने का सन्देश देकर जनता में शक्ति और साहस का संचार करता है।[१२०]

अपनी जन्मभूमि के कण-कण को पावनता से ओतप्रोत मानकर उसके प्रति दैवी धारणा भारतीय कवियों की अपनी मौलिक विशेषता है। कवियों द्वारा प्रस्तुत अपनी धरती की सांस्कृतिक पवित्रता भारतीय जनता को मातृभूमि के प्रति अर्चना, वन्दना के लिये प्रेरित करती है। निराला के " भारति जय विजय करे "

गीत में भारत माता का दैवीकरण किया गया है—

> भारति जय विजय करे
>
> कनक शस्य कमल धरे
>
> लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर जल
>
> धोता शुचि चरण युगल स्तव कर बहु अर्थ भरे
>
> तरु - तृण - वन लता वसन अंचल में खचित सुमन
>
> गंगा ज्योतिर्जल कण धवल धार हार गले ।
>
> मुकुट शुभ्र हिम तुषार प्राण - प्रणव ओंकार
>
> ध्वनित दिशाएं उदार - शतमुख - शतरव मुखरे[121]

सोहनलाल द्विवेदी ने भारत माता को सुकुमारी वन्दनीय सीता के रूप में चित्रित किया है[122]। इसी प्रकार उर्दू कवियों ने भी मातृभूमि का दैवीकरण किया है—

> तेरा देवस्थान देवी दिल के काशाने में है
>
> तेरी तस्वीरें मुक़द्दस हर सनम ख़ाने में है
>
> लक्ष्मी है तू ज़माने में उजाला तेरा
>
> हर कमल का फूल पानी में खिलाता है तेरा
>
> सरस्वती का रूप है दुर्गा का है अवतार
>
> मुल्के दानिश की है देवी मादरे ग़मख़्वार तू[123]

'दिले बेक़रार सोज़ा' कविता में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति है[124]—

राष्ट्रीय जागरण का बिगुल बजाने वाले कवियों में दिनकर की आवाज़ अपना प्रमुख स्थान रखती है। उन्होंने पराधीनता की बेड़ी पहने हुए भारत में नव जागरण का मंत्र फूंका। गरजते बादलों, हिमवर्षण, बिजली के बीच भी सर उठाकर युवकों को चलना चाहिए। ऐसी ही जवानी को सम्बोधित करके जनजागरण को उद्दीपित करते हुए दिनकर कहते हैं—

> जागरूक की जय निश्चित हार चुके सोने वाले
>
> बेफ़िक्री का समां-बांधा ऊंघी घरे खड़ा अवरव ले भरा ज़माना

ज्वालामुखियों पर अन्य बैठे अपना मंत्र जगाते हैं
मिट्टी का वह पुतला खींच हटें सुरपुर को बर्बाद करें
लूट जन्नत वीरानों को आबाद करें[१२५]

उस समय संसार के बहुत से गुलाम देश स्वतन्त्रता के लिये संघर्षरत थे। उन पाश्चात्य देशों के पददलित लोगों के उत्थान से प्रेरणा लेकर कवि 'जवानी का झण्डा' उड़ाकर नौजवानों को पूर्व में भी वही ज्वाला प्रज्वलित करने का उपदेश देता है।[१२६] अन्यत्र शोषण के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना पाप नहीं है। शौर्य की शिखाएं प्रतिशोध से दीप्त होती हैं।[१२७] दिनकर का कुरुक्षेत्र तेजस्विता, वीरता और निर्भयता का सन्देश देता है। माखनलाल चतुर्वेदी, नौजवानों के खौलते हुए रक्त में धरती, आकाश एक करने की प्रबल शक्ति होती है, सारी दुनिया को हिला देने की सामर्थ्य होती है, पर विश्वास करते हैं उनके भावोद्गार में आत्मविश्वास, ज्वालामुखी विस्फोट की भीषण शक्ति है। कवि नवयुवकों को ही जागृत नहीं करता बल्कि अबलाओं को भी रणवेश धारण कर दुर्गा और काली बनने का सन्देश देता है—

चूड़ियां बहुत हुईं कलाइयों पर प्यारे भुजदण्ड सजा लो
तीर कमानों से शृंगार करो ज़रा जिरह बख़्तर पहना दो
जो मैं जौहर से सुहाग, जग उठे पुतलियों पर आ जाओ
बिना तीसरे नेत्र दृष्टि में क्यों प्रलय ज्वाला सुला दे[१२८]

इलाहाबादी बच्चन भी राष्ट्रीयता के रंग से नहीं बच सके और अपनी आवेशमयी वाणी में देशवासियों को आत्म विश्वास, स्वावलम्बन, आत्मसम्मान अंगीकार करने का उपदेश देते हैं।[१२९] संघर्षपूर्ण जीवन से उदासीन होते हुए देशवासियों को प्रसाद का सन्देश है कि केवल तप ही जीवन का सत्य नहीं प्रकृति भी परिवर्तनशील है। प्रकृति के यौवन का शृंगार बासी फूल नहीं कर सकते।[१३०] शक्तिशाली व्यक्ति के आगे सारे मार्ग प्रशस्त हैं।[१३१] इसीलिये कवि को बुरे दिन के बाद अच्छे दिन आने की आशा है[१३२] किन्तु उसके लिये दृढ़ आत्मविश्वास आवश्यक है क्योंकि आत्म विश्वास ही भाग्य को भी बदल सकता है—

खुदी को कर बुलन्द इतना के हर तक़दीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है।[133]

इस प्रकार कवियों ने भारतीयों को नींद से जगाकर देशभक्ति को अंगीकार करके आगे बढ़ने का सन्देश दिया। उद्बोधन में कवियों ने जातीय एकता को बनाये रखने का प्रयत्न किया क्योंकि इतने बड़े लक्ष्य तक पहुंचने के लिये विभिन्न धर्मों और जातियों में एकता लाना आवश्यक था। तभी एक स्वतन्त्र राष्ट्र की कल्पना की जा सकती थी। इतिहास साक्षी है कि धार्मिक एकता ने राष्ट्रीय एकता का निर्माण किया है। प्राचीन आर्यों का एक ही धर्म था और आर्यों में सहिष्णुता तथा समन्वय की भावना थी। कृष्ण की भक्ति, कर्म और ज्ञान का समन्वय, पुराण के त्रिमूर्ति की कल्पना और बुद्ध का अवतार माना जाना समन्वय के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय कभी अनुदार नहीं रहे। आगे का इतिहास भी साक्षी है कि भारत विभिन्न धर्मों और विश्वासों को आत्मसात करता रहा है। इसके विपरीत योरोपीय इतिहास यह स्पष्ट रूप से बताता है कि वहां धर्म के नाम पर क्या - क्या अत्याचार नहीं हुए। बड़े - बड़े देशों में धर्म के नाम पर खून की होली खेली गयी इसके लिये ईसामसीह और सुकरात के उदाहरण ही काफ़ी हैं, लेकिन भारत में अंग्रेजों के पूर्व धर्म के नाम पर कभी लड़ाइयां नहीं हुईं। "भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं, जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अन्त में जाकर एक ही रूप में प्रमाणित होते हैं। इसी भारतीयों के बीच एक सांस्कृतिक एकता भी है।[134]

भारत में सात सौ वर्षों तक राज्य करने के बाद भी अंग्रेजों से पहले कभी देश में खून की नदियां नहीं बही थीं लेकिन अंग्रेजों की नीति ने इस एकता को भारी धक्का लगाया। इस समस्या पर विवेकानन्द ने हिन्दू - मुस्लिम एकता का सन्देश अपने एक पत्र में देते हुए लिखा था कि "हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि उसके दो धर्म हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जांय। वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के संयोग से जो धर्म खड़ा होगा, वही भारत की आशा है।[135] बहुत से नेताओं ने हिन्दू - मुस्लिम एकता का समर्थन किया। गांधी जी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन कर हिन्दू - मुसलमान को एक किया लेकिन अंग्रेजों की कूटनीति और दोनों

जातियों की धर्मान्धता के कारण गांधी जी का प्रयास सफल न हो सका। क्योंकि वे अच्छी तरह समझ गये थे कि भारत का भविष्य तभी अन्धकारमय हो सकता है जबकि ये दोनों जातियां यूं ही लड़ती रहें। १९२५ से लेकर आज तक उनके द्वारा उत्पन्न की गई यह समस्या देश की प्रमुख समस्या बनी हुई है और समय - समय पर यह साम्प्रदायिक दंगे भड़काते रहते हैं।

तत्कालीन कवियों ने राष्ट्र की उन्नति के लिये जातीय एकता पर बल दिया और उसका प्रचार किया। तत्कालीन साहित्य की प्रत्येक विधा में इस समस्या को लक्षित किया गया। कवियों ने यह सन्देश दिया कि देश भक्तों का बलिदान तभी सफल हो सकता है जब यह भेद भाव जड़ से मिटे और हम इस तुच्छ भावना को भूलकर एकता के बन्धन में बंध जायं। सियाराम शरण गुप्त हिन्दू - मुस्लिम एकता का आह्वान करते हुए कहते हैं—

" हाजिर मेरा खून तुम्हारा
फूले फले और इस्लाम
अब न मांगो अपने हाथों
और बहुत तुमने मांगा
हिन्दू - मुसलमान दोनों को
यह संयुक्त राष्ट्र होगा"[१३६]।

उर्दू कवियों ने भी इस समस्या को गहराई से समझा और दोनों जातियों में एकता लाने का प्रयास किया—

" जल रहा हूं कल नहीं पड़ती किसी पहलू मुझे
हां डुबो दे ऐ मौहीते आबे गंगा तू मुझे।
सर जमीं अपनी क्यामत की नफ़ाक अंगेज़ है
वस्ल कैसा यां तो एक करबे फिराक आमेज़ है।
बदले यक रंगी के ये नावाशनाई है गज़ब
एक ही खिरमन के दानों में जुदाई है गज़ब[१३७]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' एवं रामनरेश त्रिपाठी ने जोरदार शब्दों में साम्प्रदायिकता को समाप्त करने की बात करते हैं। कोई भी धर्म आपस में अन्तर रखना नहीं सिखाता। धर्म के अन्तर से ऊपर उठकर कवि श्रेष्ठ भारतीय होने का सन्देश देता है—

> " मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
> हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा[१४०]

भारतीयता की भावना से ओतप्रोत होकर कवि लिखता है कि यदि मातृभूमि के लिये हृदय में प्रेम हो तो धर्म की दीवार बीच में नहीं रह पाती—

> गंगा नहाये शेख अगर तेरा हुक्म हो
> तेरा इशारा हो तो बरहमन करे वज़ू
> तेरा तरीक़े इश्क ही ईमान है मेरा
> तेरे फ़िदाइयों में हूं ऐ शोख़ तुर्क[१४१]

कवि चाहता है कि विभिन्न जातियां भारत को अपनी मातृभूमि मानें और भ्रातृत्व की भावना से मिलकर रहें—

> जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई
> कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब भाई-भाई
> पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है जन्मभूमि है देश यही[१४२]
> इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं

एक ही देश में दुश्मन की तरह रहने वालों को इंगित कर कवि कहता है—

> " दुश्मन भी जिसको देख के दिल में उदास है
> इस तरह दोस्तों के सताए हुए हैं हम[१४३]

हिन्दू मुस्लिम एकता से कोई और लाभ न उठाये इस दृष्टि से कवि दोनों जातियों को सतर्क करता है—[१४४] भारत-भारती और गुरुकुल[१४५] जातीय एकता का सन्देश देते हैं।[१४६]

पंत ने भी अपने काव्य " स्वर्ण धूलि " में एकता का प्रबल समर्थन किया है।[147] सियारामशरण गुप्त ने हिन्दू - मुसलमान दोनों जातियों को एक डाल का फूल कहा है।[148] कवि ब्राह्मण को नया मन्दिर निर्मित करने का निमन्त्रण देता है। जिसकी नींव आपसी प्रेम हो। जहां जाकर जातीय भेद समाप्त हो जांय।

सच कह दूं ऐ बरहमन गर तू बुरा न माने
तेरे सनम कदों के बुत हो गये पुराने
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा
जंगो जदल सिखाया वाअज़ को भी खुदा ने
तंग आके मैंने आखिर दैरोहरम को छोड़ा
वाअज़ का वाज़ छोड़ा छोड़े तेरे फसाने
पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है
खाके वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है
आ गैरियत के पर्दे एक बार फिर उठा दें
बिछड़ों को फिर मिला दें नक्शे दुई मिटा दें
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती
आ एक नया शिवाला इस देस में बना दें
दुनिया के तीरथों से ऊंचा हो अपना तीरथ
दामने आसमां से इसका कलस मिला दें
हर सुबह उठ के गाये मन्तर वो मीठे-मीठे
सारे पुजारियों को मै प्रीत की पिला दे[149]

कवि का आशय है कि यदि हम सभी धर्मों के प्रति विनीत नहीं हैं तो हमारी ईश्वर से प्रार्थना व्यर्थ है—

" गीता कुरान दोनों ही
जो हम न सुन सके सविनय
तो व्यर्थ प्रार्थना करना
मेरा सीधा सा आशय

भारत सब धर्मों की भू
सबका हो यहां समन्वय
प्रिय राम रहीम उभय ही
ईश्वर के नाम न संशय [२५०]

१९३८ में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर कांग्रेस और लीग में समझौता असफल हो जाने पर भारत में जगह-जगह साम्प्रदायिक झगड़े होने लगे। दोनों जातियां एक दूसरे का खून पीने को हिंसक पशु बन गयीं। देश मातृभूमि को बन्धन मुक्त करने के स्थान पर उसके बंटवारे की बात करते देख कवि का मन क्रोध और लज्जा से भर उठा—

" खूं बहाया जा रहा इन्सान का सींग वाले जानवर के प्यार में
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही मस्जिदों की ईंट की दीवार में—[२५१]

इस धर्मान्धता जन्य पागलपन के कारण भारत के स्वप्न बिखरने लगे। आन्तरिक संघर्षों ने देश के मस्तक को झुका दिया। इस मिट्टी में मिलते आदर्शों की रक्षा के लिये कवि आक्रोश से भर उठा—

लड़ते हैं हिन्दू मुसलमान
भारत की आँखें जलती हैं
आने वाली आज़ादी की
लो दोनों पांखें जलती हैं।
वे छुरे नहीं चलते छिदती जाती स्वदेश की छाती
लाठी खाकर भारत माता बेहोश हुई जाती है[२५२]

नोआखाली का दारुणीय चित्रण "बापू" कविता से हुआ है[२५३]—देश के साम्प्रदायिक संघर्षों से दु:खी होकर कवि दोनों जातियों को एक करने के लिये बेचैन है—

ऐ दोस्तो मिटा दो आपस की यह लड़ाई
हिन्दोस्तां वाले सारे हैं भाई - भाई
तफ़रीक़ इस तरह की किसने तुम्हें सिखाई
आपस में मेल रखो दिल की करो सफाई [२५४]

अकबर इलाहाबादी दोनों धर्मों में " मिल्लत " चाहते हैं—

बस ये कहता हूं के मिल्लत के मानी को न भूल
राहे कौमी का यू कुछ ही न हो रुख्न पैदा[155]

लम्बे समय तक कवि इस साम्प्रदायिक वैमनस्य को नहीं देखना चाहता है—

कहता हूं मैं हिन्दू व मुसलमां से यही
अपनी - अपनी रविश पे तुम नेक रहो
लाठी है हवाए दहर पानी बन जाओ
मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो[156]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की स्वतन्त्रता एवं उन्नति के लिये कवि सभी जातियों, सम्प्रदायों में सच्चा मेल, समन्वय, सौहार्द्र चाहता है। एक ओर कवियों ने एकता का प्रचार किया और दूसरी ओर फूट, द्वेष, संघर्ष, कलह का निषेध किया। भारत की एकता को खण्डित करने वाली सबसे बड़ी समस्या साम्प्रदायिक ही है। कवियों ने इस समस्या का यथार्थ चित्रण किया। लेकिन आज भी पंथ, धर्म, जाति को लेकर देश की एकता को खण्डित किया जा रहा है। ऐसे समय में कवियों का स्वतन्त्रता से पूर्व दिया गया जातीयता का सन्देश पुनः आवश्यक है। इस एकता के बिना राष्ट्र की उन्नति कठिन है।

कवियों ने जातीय एकता के प्रचार के साथ ही देशवासियों को दासता का बोध भी कराया। देशवासियों को यह बोध कराया कि पराधीनता ही देश की अवनति का कारण है। पराधीनता में जो अपमान, लज्जा, ग्लानि होती है उसका अनुभव कवियों ने स्वयं किया और देशवासियों को भी कराया। क्योंकि व्यक्ति, समाज सबकी उन्नति एक स्वतन्त्र राष्ट्र में ही होती है, गुलामी का रास्ता सीधा नर्क का रास्ता है। कवियों ने यह भी बताया कि यदि स्वर्ग के मार्ग पर अग्रसर होना है तो दासता की श्रृंखलाएं तोड़नी होंगी। कवियों ने "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं " की वास्तविकता से जनता का साक्षात्कार कराया। देशभक्ति का

तत्कालीन लक्ष्य विदेशी शासन से मुक्ति था । भारत हमारा है हमारी जन्मभूमि है हमारे घर कोई विदेशी आकर अधिकार करे, हमारा शोषण करे और हम मूक होकर बन्दी बने रहें यह अत्यन्त लज्जा की बात थी । स्वतन्त्रता के लिये इन बन्धनों को तोड़ना आवश्यक था किन्तु यह तभी सम्भव था जब सारा देश इसे अनुभव करता । अतः राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिये जनता की भावनाओं को आंदोलित करके निरन्तर संघर्ष की प्रेरणा दी । कवियों ने गुलामी का दुःख स्वाधीनता का सुख व्याख्यायित किया और देशभक्ति पूर्ण कविताओं की रचना की । देशवासियों को उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सब कुछ न्योछावर करने की प्रेरणा मिली ।

' रामनरेश त्रिपाठी ' की ' पथिक ' कविता परतन्त्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं । जीवन की एक घड़ी की गुलामी सैकड़ों वर्षों के नर्क के समान और एक क्षण की स्वतन्त्रता सौ वर्षों से उत्तम है— की अभिव्यक्ति करती है ।[१५९] चतुर्वेदी जी को आकाश में मुक्त विचरण करने वाली कोयल से जागृति मिलती है ।[१६०] ' भैरवी ' की अधिकांश कविताओं में दासता का बोध कराया गया है ।[१६१] हिन्दी में इसी भाव को अभिव्यक्ति देने के लिये मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, दिनकर, पंत ने बहुत-सी कविताओं का सृजन किया है ।

हिन्दी कवियों के समान ही उर्दू कवियों ने सुरूर जहां बादी, अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, इकबाल, जिगर मुरादाबादी, जोश मलीहाबादी, हफीज जालन्धरी ने भी देशभक्ति पूर्ण कविताएं लिखकर देशवासियों को दासता का बोध कराया ।

ग़फ़लत की हंसी से आह मरना अच्छा
अफ़आले मुज़िर से कुछ न करना अच्छा
अकबर ने सुना है अहले ग़ैरत से यही
जीना ज़िल्लत से हो तो मरना अच्छा[१६२]

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में जातीय एकता के साथ अनेक अभावों को दूर करने की आवश्यकता कवियों ने तेज़ी से अनुभव की। इसके लिये यह आवश्यक था जोश और तेज के साथ विदेशी प्रभाव को छोड़ा जाय। अतः कवियों ने आधुनिक युवकों के फैशन एवं कायरता पर भी व्यंग्यकणें की—

हासिल करो इल्म तबा को तेज़ करो
बातें जो बुरी हैं उनसे परहेज करो
क़ौमी इज्ज़त है नेकियों से अकबर
इसमें क्या है कि नक़्ले अंग्रेज करो[163]

अकबर इलाहाबादी के यहां यह रंग बहुलता से पाया जाता है। जगह - जगह वह पश्चिम प्रभाव से बचने की चेतावनी देते हैं—

ख़ुदा के वास्ते ऐ नौजवानों होश में आओ
दिलों में अपनी गैरत को जगह दो होश में आओ[164]

— — — —

है तारीके जदीद बुरक मिज़ाज
मेरे हक़ में क़दीम चाल अच्छी
गो कि इसमें ज़रा सकाहत है
फिर भी बिस्कुट से शीरमाल अच्छी[165]

गांधी तथा अन्य नेताओं ने भारत को जिस राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये प्रोत्साहित किया उससे एक सुन्दर भविष्य का चित्र उभरा। अतीत की सुन्दर तस्वीरों ने एक आदर्श भविष्य की मान्यताएं प्रस्तुत कीं। आधुनिक काव्य में देश भक्ति के उत्साह का रूप भारत के उत्कर्ष और एक सुन्दर भविष्य की भावना में अभिव्यक्त होता है। स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों ने भारत के मुक्ति स्वप्न के आणित चित्रों द्वारा जनता के विषाद संकुल मन में स्फूर्ति और उत्साह भरकर राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण योग दिया। एक ओर जहां उन्होंने वर्तमान के गौरव के चित्र अंकित किये हैं

यहां दूसरी ओर उनके परिमार्जन के लिये भविष्य की उज्ज्वल कल्पनाएं कीं।[१६६]

स्वर्णिम भविष्य के चित्र पंत के काव्य में सबसे अधिक मिलते हैं। " नवीन संस्कृति के विषय में सबसे अधिक सुलझी हुई भावना पंत की है। इनकी कुछ अपनी विशिष्टता है इसी के परिणाम स्वरूप इनकी नयी व्यवस्था की भावना भी स्वतन्त्र है।[१७०] पंत में नई संस्कृति का स्वर्णांकुर गांधीवाद और साम्यवाद दोनों के सामन्जस्य का सन्देश लेकर आया।[१७१] कवि मानवमात्र की मंगल कामना करता है—

> हो शांत जाति विद्वेष कलित रक्त समर
> हो शांत युगों के प्रेम मुक्त मानस अन्तर
> संस्कृत हों सब जन स्नेही हों सहृदय सुन्दर
> संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर
> हो धरणि जनों की जगत स्वर्ग जीवन घर
> नव मानव को दो प्रभु ! नव मानवता का वर[१७२]

मोहनलाल द्विवेदी दिव्य भविष्य की पवित्र ज्वाला में सब पापों को जला देना चाहते हैं।[१७३] गुप्त जी ने राम से इसी धरा को स्वर्ग बनाने की बात कहला कर स्वर्णिम अतीत की कल्पना की है—

> मैं यहां जोड़ने नहीं बांटने आया हूं
> सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया[१७४]

हिन्दी कवियों ने नव भविष्य के निर्माण की सुन्दर कल्पनाएं कीं। भविष्य के स्वर्णिम जगत को साकार करने का एकमात्र उपाय है क्रान्ति। बीसवीं शताब्दी में जीवन के सभी क्षेत्रों में नव जीवन का स्वर गुंजरित होने लगा। रूढ़ियां और परम्पराएं टूटीं। पाश्चात्य प्रगतिवादी विचार भारत को मिले और साहित्य में भी क्रान्ति का स्वर सुनाई दिया। कवियों के स्वर इतने तीव्र हुए कि सारे देश में उथल - पुथल मच गयी। नवीन के विप्लव गान[१७५] ने काव्य जगत में धूम मचा दी।

क्रांति का स्वर उर्दू काव्य में भी व्यापक रूप में सुनाई देता है—

> नज़र आता है कुछ बदलता हुआ सा रंग आलम का
> हफ़ीज़ एक दो बरस में देख लेना इन्क़िलाब आया[१७६]

निराला की अनेक रचनाओं में क्रान्ति का स्वर मुखरित हुआ है। यह क्रान्ति बादलों का गर्जन बनकर अभिव्यक्त हुई है—[१७७]

> " झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर
> राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!
> झर झर झर निर्झर गिरि सर में
> घर मरु, तरु मर्मर, सागर में
> मन में विजन गहन - कानन में
> आनन - आनन में, रव घोर कठोर
> राग अमर! अम्बर में भर निज रोर
> — — —
>
> उथल पुथल कर हृदय
> मचा हलचल
> चल रे चल
> मेरे पागल बादल[१७८]

नये जगत के निर्माण के लिये कवि इस व्यवस्था के ध्वन्स और नाश की कामना करता है—[१७९]

> ये छोटे तायफ़ुर ये छोटे - छोटे वार
> बता रही है ये बेचैन करवटें ऐ दोस्त
> कि जल्द एक बड़ा इन्क़लाब आयेगा—[१८०]

वामिक़ के यहां क्रान्ति का स्वर विभिन्न कविताओं में बिखरा पड़ा है—

तूफाने इन्कलाब की हर मौजें सर बलंद
पहलू में है कंदिर साहिल लिये हुए
हम रहरवाने शौक़ के देखो तो हौसले
इक इक क़दम है तुरबेत मंजिल लिये हुए[१८१]

नाम्मिक की "मांझी की बांसुरी लिखकी। "मुनादी" "आंख लाते हो" क्रान्ति का उद्बोधन करती है।[१८२]

नये जगत निर्माण के लिये क्रान्ति लाने के इच्छुक निराला श्यामा को नृत्यमग्न कर विद्रोह का शंख फूंकते हैं—

एक बार बस और नाच तू श्यामा
अट्टहास - उल्लास नृत्य का होगा जब आनन्द
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार
बन्द हो जायेंगे ये सारे कोमल छन्द
सिन्धु राग का जब होगा आलाप
उत्ताल - तरंग - भंग कह दो
मा मृदंग के सुस्वर क्रिया कलाप[१८३]

छायावाद के कोमल कवि पंत जी ने भी विद्रोहात्मक गीतों का गायन किया। परिवर्तन की इस भावना ने पंत के काव्य में रोमांचक रूप ले लिया है। "ग्राम्या" की "गा कोकिला बरसा पावक कण" "वे डूब गये सब डूब गये" (स्वर्णोदय) "द्रुत झरो" आदि अनेक गीतों में क्रान्ति का स्वर ऊंचा हुआ है। कवि पुरानी मान्यताओं को तोड़ने को उद्यत दिखाई देता है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त-ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण
हिमताप पीत, मधुवात भीत
तुम वीत राग जड़ पुराचीन[१८४]

जोश भी सोयी हुई जनता में क्रान्ति उत्पन्न करके देश के जागरण की आशा करते हैं—

> क्या हिन्द का जिन्दा कांप रहा है
> गूंज रही हैं तकबीरें
> उकताए हैं शायद कुछ कैदी
> और तोड़ रहे हैं जंजीरें
> दीवारों के नीचे आ आ कर
> यूं जमा हुए हैं जिन्दानी
> सीनों में तलातुम बिजली का
> आंखों में झलकती शमशीरें
> भूखों की नजर में बिजली है
> तोपों के दहाने ठण्डे हैं
> तकदीर के लब को जुम्बिश है
> दम तोड़ रही है तदबीरें—[१८५]

बच्चन भी क्रान्ति की शान्ति की अपेक्षा पतझड़ की क्रान्ति की कामना करते हैं।[१८६]
नित्य नूतन रचना का सन्देश देते हुए कवि कहता है—

> नूतन युग का हो नया राग
> अभिनव पत्ते, नूतन पराग
> उज्ज्वल अतीत के हों अंग
> पर जागे हृदय में नई आग
> प्राचीन कीर्ति से हो न तुष्ट
> हम रचे नित्य नूतन महान[१८७]

क्रान्तिवादियों को जिन स्थितियों से गुजरना पड़ा उसकी सही तस्वीर दिनकर के काव्य में मिलती है। 'हुंकार' 'कुरुक्षेत्र' 'रेणुका' सामग्री का केन्द्र क्रान्ति ही है। दिनकर सारे सुधार क्रान्ति केकी से लाने के पक्षपाती हैं।

कवि `तांडव` कविता में लिखता है—

> घहरे प्रलय प्रमोद गगन में अन्ध धूम हो व्याप्त भुवन में
> बरसे आग बहे झंझानिल, मचे ध्वान्ति जग के आंगन में
> फटे अतल पाताल धंसे जग उछल - उछल कूदे भू पर
> प्रभु तव पावन नील गगन-तल विदलित अमित निरीह निबल दल
> मिटे राष्ट्र उजड़े दरिद्र जन आह ! सभ्यता आज
> कर रही है शोषित शोषण[१८८]।

इस प्रकार आलोच्य कवियों ने क्रांति के स्वरूप का वर्णन किया और तत्कालीन अत्याचार,घुटन,शोषण ने कवि को उत्तेजित किया। क्रान्ति का आवाहन राष्ट्रीय कवियों की प्रमुख विशेषता है लेकिन सबका क्रान्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण भिन्न है। अन्ततः नव निर्माण की कामना सभी करते हैं। लेकिन ऐसे समय जबकि राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति के अलग-अलग रूप अपनाये गये। उसी समय "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब उसे छाया, छायावाद कहा गया[१८६]।" मानव से प्रकृति का सम्बन्ध अनन्त काल से है। छायावाद ने उसी सम्बन्ध को फिर जीवित किया।

वैदिक काल से ही हमारी संस्कृति का एक मुख्य अंग प्रकृति है। प्रकृति से हमारी धार्मिक, आध्यात्मिक भावनाओं का सम्बन्ध युगों - युगों से चला आ रहा है। वेदों ने हमारा आधा जीवन प्रकृति के साथ बांध दिया था अर्थात् वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में व्यक्ति प्रकृति से ही सम्बन्धित रहता था। हर युग के काव्य में प्रकृति को कवियों ने अभिव्यक्ति दी है चाहे वह संस्कृत कवि कालिदास हों चाहे भवभूति हों या हिन्दी कवि तुलसी, सूर, जायसी, बिहारी हों सभी ने प्रकृति को अपने काव्य में जीवन्त रूप दिया। आधुनिक काव्य भी प्रकृति की उपेक्षा नहीं कर सका। आधुनिक कवियों ने प्रकृति के शुद्ध रूप का भी वर्णन किया और आध्यात्मिक स्तर पर भी अभिव्यक्ति दी। कवि हिमालय के सौन्दर्य में देश की

विशालता, प्राचीनता, भव्यता का भी दर्शन करता है। इसी प्रकार समुद्र, गंगा, यमुना विभिन्न फूल पक्षियों के वर्णन से कवि एक ओर शुद्ध प्रकृति से जुड़ता है दूसरी ओर इनके माध्यम से देश की एकता का प्रयास करता है। फलतः प्रकृति से कवि ने तादात्म्य स्थापित किया और प्रकृति के माध्यम से अनायास वह अपने भावों को अभिव्यक्ति कर सकता था। कवि उस प्रकृति के कण - कण में उस छाया का दर्शन करने का प्रयास किया जिसने उसे अभिव्यक्ति के लिये प्रोत्साहित किया। अंग्रेजी शासन में सर्वत्र दुःख दैन्य क्षोभ व्याप्त था। इसका मूल कारण था पराधीनता। इसी राजनैतिक पराधीनता के कारण देश को पग - पग पर अवहेलना और तिरस्कार सहन करना पड़ता था जिससे दुःख बढ़ता गया। निराशा व्याप्त होती गयी। इस निराशा ने संसार और जीवन के प्रति उपेक्षा के भाव को जन्म दिया लेकिन जहां कवियों को इस नश्वरता और अनित्यता ने उद्दीप्त किया वहीं संसार के रचयिता के प्रति उत्सुकता भी पैदा की और मन ने उस सत्ता को जानने की लालसा पैदा हुई—

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहां
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहां—[१६०]

ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति अन्यत्र भी हुई है—[१६१] पंत को नक्षत्रगण आमंत्रित करते प्रतीत होते हैं—

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान
न जाने नक्षत्रों से कौन
कौन सन्देशा मुझे भेजता मौन[१६२]

महादेवी के लिये यही नक्षत्र प्रेरणादायक हैं। वह इन्हीं के सहारे जीवन यापन करती हैं—

रजनि कौन तम में परिचित सा
सुधि सा छाया सा आता
सूने में सस्मित चितवन से
जीवन दीप जला जाता[१६३]

रामकुमार वर्मा की जिज्ञासा कुछ इस तरह अभिव्यक्त हुई है—

इस सोते संसार बीच जगकर सजकर रजनी बाले
कहां बेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले[१६४]

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के लिये कवियों ने प्रकृति से प्रतीक ग्रहण किये और उनके माध्यम से पराधीन भारत की मुक्ति का सन्देश दिया । प्रकृति की मुक्तता उसे विद्रोह करने को प्रेरित करती थी । अपने विद्रोह की अभिव्यक्ति के लिए वह प्रकृति का सहारा लेता था । वह प्रकृति के साथ जागते हुए भारत की परिकल्पना करता है—

खुले पलक फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि डोले मधुवात
स्पन्दन, कम्पन और नव जीवन
सीखा जग ने अपनाया[१६५]

देश प्रेम किस प्रकार प्रकृति के द्वारा अभिव्यक्त होता है । इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार उल्लेखनीय हैं । " यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आंसू बहाएगा । जो यह भी नहीं जानते कोयल किस चिड़िया का नाम है,जो यह भी नहीं सुनते चातक कहां चिल्लाता है, जो आंख भरकर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय सौरभ पूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं,जो यह भी नहीं झांकते कि किसानों के झोपड़े के भीतर क्या हो रहा है,वे यदि दस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बताकर देश प्रेम का दावा करें तो उनसे

पूछना चाहिये कि भाइयो ! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा ? अतः देश की प्रकृति से लगाव ही देशप्रेम का भाव उत्पन्न करता है इसीलिये उस युग का कवि अपने देश प्रेम को व्यक्त करने के लिये देश की प्रकृति, पशु, पक्षी, फूल, नदी, पहाड़ आदि को अपने काव्य में अभिव्यक्त करता है।

हिमगिरि का उत्तुंग शृंग है सामने  
खड़ा बताता भारत के गर्व को  
पड़ती इस पर जब रवि रश्मि की  
मणिमय हो जाता नवल प्रभात से[१९७]

कामायनी में हिमालय महान् सन्देश देता बताया गया है। कवि यहां प्रकृति को दर्शन से जोड़ देता है[१९८]— हिन्दी के समान उर्दू कवियों ने भी अपनी धरती की महक और प्रकृति सम्बन्धी कविताएं लिखीं—

ऐ हिमाला ऐ फसीले किश्वरे हिन्दोस्तां  
चूमता है तेरी पेशानी को झुक कर आसमां  
तुझमें कुछ पैदा नहीं देरीना रोज़ी के निशां  
तू जवां है गरदिशे शामो सहर के दरमियां  
एक जल्वा था कलीमे तूरे सीना के लिए  
तू तजल्ली है सरापा चश्मे बीना के लिए  
इम्तहाने दीदए ज़ाहिर में कोहिस्तां है तू  
पासबां अपना है तू दीवारे हिन्दुस्तां है तू[१९९]

कोयल का गान सुनकर समस्त स्मृतियां उमड़कर अतीत रूपी समुद्र को जगा देती हैं। कोयल के साथ आम के झूमने, बकुल के कांपने तथा किंशुक के नया अनुराग बनकर फूलने का वर्णन[२००] इन सबके प्रति कवि का लक्ष्य देश प्रेम ही है। प्रसाद ने विभिन्न फूलों, पक्षियों पर रचना की अपनी लेखनी से रजनीगंधा[२०१], सरोज[२०२], कोकिल[२०३], खंजन[२०४] का मधुर रूप दर्शाया। निराला ने जूही[२०५], शेफालिका[२०६] पर कविता लिखी। अपने

देश की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कभी कवि सावन का वर्णन करता है, उड़ते हुए कालों को देखता है—

> तराना रेज है यूं शाखे सब पर कुमरी
> कि जैसे गाती हो मधुबन में कोई सुन्दर नार
> -- -- -- --
> है मोतियों की लड़ी या कतार कुलों की
> हवा में उड़ते हैं जुगनू के छूटते हैं शरर[२००]

या फिर वीर बहूटी का वर्णन करते हुए कवि देश की संस्कृति से अनायास ही जुड़ जाता है—

> धाह ! ओ नन्हें से कीड़े
> नाजिशे सहरा है तू
> दश्त में एक सुर्ख छोटा-सा
> गुले राना है तू
> सफ्हए हस्ती पे एक नक्शे तसव्वुर सा है तू
> शोला जारे हुस्न की छोटी-सी एक दुनिया है तू[२०८]

मल्यानिल आशा का संचार करता है। उसके साथ स्वर मिलाकर कवि कह उठता है—

> बहती रीवों में मलयवात
> स्पन्दित उर पुलकित पात गात
> जीवन में रे यह स्वर्ण प्रात
> नव रूप गंध, रंग, मधु मरंद
> नव आशा अभिलाषा अमंद
> नव वन गुंज नव भाव छंद[२०९]

अख्तर शीरानी की " ओ देश से आने वाले बता " कविता में पनघट, बाग, झूले,

सावन, बरसात के मौसम के सुन्दर बिम्बों को ग्रहण किया गया है—[२१०]

करते हैं मुसाफिर को मुहब्बत के इशारे
ऐ वादिए गंगा तेरे शादाब नज़ारे
ये बिखरे हुए फूल ये निखरे हुए तारे
खुशबू से महकते हुए दरिया के किनारे [२११]

"सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा" मानने वाले इकबाल ने राष्ट्र प्रेम की उदात्त भूमिका में भारतीय प्रकृति की आध्यात्मिक चेतना के रूपों से जोड़कर अत्यन्त सुन्दर तथा रमणीय चित्र खींचे। प्रकृति के प्रत्येक अवयव में उन्हें ईश्वर का रूप मिलता है—

दुनिया की महफिलों से उकता गया हूं या रब
क्या लुत्फ़ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो
शोरिश से भागता हूं दिल ढूंढता है मेरा
ऐसा सुकूत जिस पर तक़रीर भी फ़िदा हो
लज़्ज़त सरोद की हो चिड़ियों की चहचहों में
चश्मों की शोरिशों में बाजा सा बज रहा हो
गुल की कली चटक कर पैग़ाम दे किसी को
हो हाथ का सरहना सब्ज़ा का हो बिछौना
सफ़ बांधे दोनों जानिब बूटे हरे हरे हों
नदी का साफ़ पानी तस्वीर ले रहा हो
पानी को छू रही हो झुक झुक के गुल की टहनी
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो
मेंहदी लगाये सूरज जब शाम की दुल्हन को
सुर्खी लिये सुनहरी हर फूल की क़बा हो

हिन्दी में छायावादी कवियों ने भी प्रकृति को आध्यात्मिक धरातल पर लाकर उसे

सीधा सम्बन्ध स्थापित किया—

> उजले - उजले तारक झलमल
> प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
> धारा बह जाती बिम्ब अटल
> खुलता था धीरे पवन - पटल
> चुपचाप खड़ी थी वृक्षपांत
> सुनती जैसे कुछ निजी बात[२१३]

प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देखकर कवि के हृदय में विस्मय की भावना का उदय होता है और कवि उस विस्मय लोक में पहुंच जाना चाहता है। भौंरों के मीठे गान को वह सीखने को आतुर हो जाता है—

> सिखा दो न मधुप कुमारि
> मुझे भी अपने मीठे गान[२१४]

प्रकृति के प्रति आध्यात्मिक भाव कभी कवि को उसकी धरती से जोड़ देती थी। कभी निराशा से वह जीवन से विरक्त होने लगता था। कभी प्रकृति से इतना घुलमिल जाता था कि उसका मानवीकरण कर देता था। वह प्रकृति को कभी प्रेयसी के रूप में कभी आराध्य के रूप में देखता है—

> बाँकी ज़मीन तबस्सुमे पिन्हां लिए हुए
> अफ़साने शबाब का उन्वां लिये हुए
> — — — —
> तारों की छावों ज़ब्त किये मैक़ी उठी
> गोया बड़ी लचक से कोई नाज़नी उठी[२१५]

महादेवी ने प्रकृति पर मानवी भावनाओं का आरोपण किया। उसे हंसते - रोते - खेलते विभिन्न रूपों में देखा—

> रजनी ओढ़े जाती थी

झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली
मुस्कुराता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
नूपुर रुनझुन ले
फिर आई मनाने सांझ
मैं बेसुध मानी नहीं
मैं प्रिय पहचानी नहीं[216]

इसी तरह " भारति जय विजय करे[217] " समस्त देश की प्राकृतिक सुषमा के साथ उसका प्राण प्रणव ओंकार है वह कहकर

भारतीय संस्कृति के सार को समाहित करके उसे सांस्कृतिक रूप दे दिया गया है। प्रकृति का अंकन " गीतिका " में विभिन्न रूपों में मिलता है। " सखी बसन्त आया[218] " " मेघ के घने केश[219] " " हंसी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी[220] " उर्दू काव्य में भी प्राकृतिक वर्णन में भारतीय संस्कृति के तत्वों को अभिव्यक्ति दी गयी है।

ऐ हिमाला ऐ फ़सीले किश्वरे हिन्दोस्तां
चूमता है तेरी पेशानी को झुककर आसमां
तुझमें कुछ पैदा नहीं देरीना रोज़ी के निशां
तू जवां है गरदिशे शामो सहर के दरमियां
-- -- --

ऐ हिमाला दास्तां उस वक्त की कोई सुना
मस्कन-ए-आबाए इन्सां जब बना दामन तेरा
कुछ बता उस सीधी सादी जिन्दगी का माजरा
दाग़ जिसपे गुज़ए शी तकल्लुफ़ का न था[221]

प्रकृति के हर रूप में उसे ईश्वर दिखाई देता है—

> हर परदए हस्ती में जब तू मुश्किल है
>
> हैरां हूं मैं फिर फिर कौन सा बातिल है
>
> हैरां हूं के ये आखिर क्यों बीच में हायल है
>
> मेरा तेरा रिश्ता तो बापस्तए दिल है[222]

निराला सन्ध्या को सुन्दरी के रूप में देखते हैं तो जोश भी शाम को एक सुन्दरी के रूप में देखते हैं—

> नौशेब रूंची बलंद बाला
>
> ओढ़े हुए सुरमई दुशाला
>
> बक़चुर्द बेनिगाह व जुल्फ बरदोश
>
> मुर्फ़ में खड़ी हुई है ख़ामोश

इसी प्रकार कवियों ने फूलों, मोती, गंगा, हिमालय, कोमल, गाय, वीर बघूटी आदि को अपने काव्य का विषय बनाकर देश की संस्कृति का वर्णन किया। अत्यधिक संवेदनशीलता आवेग तथा भावुकता से प्रेरित कवियों के प्राणविशुद्ध प्रेम के प्रति उदात्त मनोभूमि से सम्प्रक्त थे। प्रेम के उदात्त स्वरूप की उन्होंने अनुभूति भी की। हिन्दी काव्य में तो यह भाव बहुत अधिक मिलता है। किन्तु उर्दू काव्य में भी इसकी कमी नहीं। इक़बाल में प्रेम की प्यास बहुत तीव्र थी और बहुत कुछ आध्यात्मिक भी। इस धरती और आकाश को छोड़कर किसी दूसरे आकाश की खोज इक़बाल की स्वच्छन्द प्रकृति की परिचायक है—

> सितारों के आगे जहां और भी है
>
> अभी इश्क़ के इम्तिहां और भी हैं
>
> तू शाहीं है परवाज है काम तेरा
>
> तेरे सामने आसमां और भी है[224]

निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति, मृत्यु के स्थान पर जीवन और आध्यात्मिक राष्ट्र प्रेम कोप्रतिष्ठित कर इक़बाल ने सांस्कृतिक नव जागरण के विविध रूपों को अपने काव्य

में साकार किया । जैसे प्रकार मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त आदि ने स्वच्छन्द आध्यात्मिकता को अपने काव्य में प्रश्रय दिया ।

(ख) आर्थिक पक्ष :

काव्य और मानव जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध कभी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है और कभी अप्रत्यक्ष रूप से। जीवन के बदलने के साथ काव्य भी बदलता है। किन्तु ऐसा कभी नहीं होता कि जीवन की बाह्य परिस्थितियां बदल जाएं और उसे प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य न बदले। समाज की सम्पन्नता, विपन्नता, दु:ख, वैभव, सुख, विलास की स्थितियां समकालीन साहित्य में प्रतिबिम्बितहोती रहती हैं। यदि भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन देश की दुर्दशा का प्रमुख कारण वर्षों की गुलामी थी। परतन्त्र रहने के कारण भारतीय जीवन की गति और विकास रुक गया था। समाज में अज्ञानता, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास की जड़ें गहरी हो गयी थी। भारत जैसा महान और संस्कृति सम्पन्न देश राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक हीनता को प्राप्त हुआ था और जनता को अपने त्राण का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। भारत की दुर्दशा देखी नहीं जाती थी तभी तो भारतेन्दु ने भी कहा—

> रोवहु सब मिलि के आवहु भाई
> हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।[२२५]

राष्ट्र की इस दुर्दशा का हिन्दी कविताओं में अत्यन्त सजीव वर्णन मिलता है। वर्तमान की कठोरता का पूरा प्रतिबिम्ब तात्कालिक काव्य में प्राप्त होता है। आधुनिक कवियों की यह विशेषता है कि वे केवल स्वर्णिम अतीत में ही नहीं खोए रहे बल्कि " सामाजिक जीवन के प्रति भी उन्होंने उत्साह दिखाया[२२६]। अब तक रीतिकालीन हिन्दी काव्य एक वर्ग विशेष तक ही सीमित था किन्तु नवजागरण ने काव्य को सामन्ती परिवेश से निकाल कर पुनः सामान्य जन मानस से जोड़ दिया। तदुपरान्त

कवियों ने भारत की तत्कालीन दुर्दशा का विभिन्न स्तरों पर वर्णन किया और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का संकल्प किया।

भारत में व्यापार करने की इच्छा लेकर आने वाले अंग्रेजों ने धीरे - धीरे इस पूरे देश को अपनी मुट्ठी में बांध लिया और धीरे - धीरे आर्थिक रूप से इसका शोषण किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना का उद्देश्य भारत के तैयार माल को यूरोप में ले जाकर बेचना था। लेकिन उद्योगपतियों और पूंजीवादियों ने इसे उलट दिया और भारत को बाजार बना दिया। अंग्रेजी राज्य घोर आर्थिक शोषण का ही दूसरा नाम है। विदेशी पूंजीवाद देशी व्यापार पर तरह - तरह के बन्धन लगाकर उसे समाप्त करता जा रहा था। विदेशी माल की खपत और कच्चे माल के निर्यात से जनता की आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली गयी। जब तक देशी रजवाड़े रहे तब तक तो उनके सहारे बहुतों का पेट पलता रहा लेकिन देशी सामन्तवाद के विनाश के कारण बहुत से लोग भुखमरी का शिकार होते गये जो भारत अंग्रेजों के आने से पहले औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न था जिसका अपना तैयार किया हुआ माल-सूती, ऊनी वस्त्र आदि चीन, अरब, फारस जैसे विदेशी राज्यों में जाता था। अब वही दीन हीन हो दूसरों का मुंह जोह रहा था। अंग्रेजों ने भारत को सदैव गुलाम बनाये रखने के लिये सबसे पहले उसका आर्थिक शोषण शुरू किया। यहां के उद्योग धन्धों, हस्तकला आदि को छिन्न - भिन्न करके आत्म-निर्भरता को समाप्त किया। अंग्रेजों की शोषण नीति का प्रभाव कृषकों पर पड़ा क्योंकि उन्हें जमींदारी और रैयत वाड़ी प्रणाली में जकड़ दिया गया। अन्य कला-कौशलों के अभाव में एकमात्र साधन कृषि ही रह गया लेकिन यहां किसान अब जमींदारों और साहूकारों के शोषण का शिकार हो गया था। लगान बढ़ने से किसानों के लिये खाने का भी सहारा न रहा। साथ ही अंग्रेज उन गरीब किसानों को कुली के रूप में अपने देश के उद्योगों में काम लेने के लिये ले जाते थे। इस प्रकार आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन से नये - नये आर्थिक वर्गों का जन्म हुआ। उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त एक नये मध्यवर्ग का उदय हुआ। आधुनिक काल में इस वर्ग की भूमिका ही सबसे अधिक क्रान्तिकारी कही जायगी। इस वर्ग के उदय

का एक कारण और था — नई शिक्षा[227]। अंग्रेजी शिक्षा का जिस प्रकार का प्रचार हुआ उससे क्लर्कों की ही भरमार हो गयी। शिक्षित वर्ग को नौकरी का दरवाजा खटखटाना पड़ा जिससे बेरोजगारी की समस्या दिन प्रतिदिन उग्र होती गयी। सरकार की आर्थिक शोषण नीति पूंजीपतियों के अत्याचार कृषक तथा श्रमिक वर्ग की दरिद्रता कला कौशल उद्योग धन्धों के नाश और गलत शिक्षा नीति से देश की स्थिति दयनीय हो गयी। फलत: शोषण नीति के विरुद्ध अभियान शुरू हुआ। देश की आर्थिक निर्भरता के लिये गांधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन चलाया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया और खादी के प्रचार द्वारा देश को आर्थिक रूप से सम्पन्न करने का प्रयास किया। कवियों ने इस आर्थिक दुर्दशा के विविध रूपों का चित्रण किया —

आर्थिक विषमता : शोषण और उद्योग धन्धों का ह्रास :

अंग्रेजों के शोषण से देश की आर्थिक निर्भरता अत्यन्त शोचनीय हो गयी। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों को भी भारतीय आर्थिक स्वाधीनता की चिन्ता थी। धन के विदेश जाने से वे अत्यन्त क्षुब्ध हैं —

> अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी
> पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी

रामनरेश त्रिपाठी ने भी देश प्रेम से प्रेरित होकर देश की दुर्दशा का अत्यन्त करुण रूप भावात्मक चित्र अंकित किया है। "पथिक" का क्रूर एवं अन्यायी नृप अंग्रेजी शासन की क्रूरता का प्रतीक है जिसकी अनीति के कारण देश की आर्थिक स्थिति का विघटन हुआ था। भारत की दीन दशा के चित्रण कवि इस प्रकार करता है —

> धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर
> मांस नहीं है सिर्फ सांस है शेष अस्थिपंजर में
> अन्न नहीं है वस्त्र नहीं है रहने का न ठिकाना
> कोई नहीं किसी का साथी, अपना और बिराना[228]

त्रिपाठी जी की " मिलन " कविता भी आर्थिक शोषण, विपन्नता, अत्याचार की कहानी है।[२२९] भारत भारती में देश के आर्थिक संकट के बड़े दयनीय चित्र खींचे गए हैं। अंग्रेजों ने देश का शोषण कर उसे श्रीहीन बना दिया है।[२३०] तत्कालीन कवियों ने जनता के सम्मुख भारत के धन, बल, वैभव के ह्रास के चित्र खींचे। उन कवियों का विश्वास था कि बिना शिल्प की उन्नति के देश की उन्नति कठिन है।

भूख के कानून में ईमानदारी जुर्म है
और बेईमानों पर शर्मसारी जुर्म है
डाकुओं के दौर में परहेजगारी जुर्म है
जब हुकूमत खाम हो तो पुख्तकारी जुर्म है[२३१]

पाश्चात्य सम्पर्क से नयी सभ्यता से भारत का साक्षात्कार हुआ। जमींदार, अमीर के साथ एक पूंजीपति वर्ग भी भारतीय समाज व्यवस्था में उदित हुआ जिसने विलासिता, शृंगार, वैभव, धन, बल, ऐश को अपना लक्ष्य बनाया और अधिक धन,बल प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो निरन्तर भूख, दरिद्रता और लाचारी में जीता रहा। इस आर्थिक विषमता के शिकार दलितों का वर्णन कवियों ने किया।

निराला ने भारत की विपन्नता के प्रतीक भिखारी की स्थिति और स्वरूप दोनों का चित्रण किया।

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता[२३२]
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

निराला ने भारत की दयनीय स्थिति का करुण चित्र खींचा है। किसी भी देश की इससे बुरी दशा क्या होगी कि भिखारी को जूठे पत्तल चाटने में भी कुत्तों के झपटने का डर हो। ` तोड़ती पत्थर ` पूंजीवाद के कारण उत्पन्न भारत की निम्न वर्ग की नारी का दयनीय चित्र है।

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म- रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार - बार प्रहार
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार[२३३]

इसी प्रकार बादल राग का किसान शोषण की जीती जागती तस्वीर है। आर्थिक विषमता के दौर में गरीब बच्चे को खिलौने की तरफ देखना भी जुर्म है। एक गरीब बाप का हृदय यह सब देखकर भी चुप रहने को बाध्य है-

वे खिलौना ? नहीं मेरे मासूम
आग इसको समझ के दूर से ताप
मेरे नन्हें से माहताब। न रो
आ सुला दे थपक के ये मुफलिस बाप[२३४]

निराला ने अपने काव्य में आर्थिक विषमता के अनेक चित्र खींचे हैं। ` नये पत्ते ` में कवि सामन्तशाही का यथार्थ वर्णन करता है कि किस प्रकार धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहीं, व्यक्तिगत सुख - स्वार्थ ही सर्वोपरि था[२३५]। केदारनाथ अग्रवाल की ` युग की गंगा ` आर्थिक विषमता को घोषित करती है[२३६]।

पंत ने ग्रामों की दीनदशा का वर्णन " ग्राम्या " की कविताओं में किया है। गांवों में दैन्य, कंगरित, पशुतम जीवन व्यतीत करते लोग युगों से अभिशापित हैं। यह भारत के गांव सभ्यता संस्कृतिहीन होकर नरक जैसाजीवन व्यतीत कर रहे हैं। किसानों, मजदूरोंकी इस दशा और शोषण के लिए कवि पूंजीवाद को जिम्मेदार ठहराता है। आर्थिक क्रान्ति में मार्क्सवादी दर्शन ने बड़ा योगदान दिया। मार्क्स के अनुसार समाज की वर्तमान दशा में जो दुख, क्लेश, वैषम्य और असन्तोष फैला हुआ है उसका प्रमुख कारण समाज की पूंजीवादी व्यवस्था है क्योंकि इसी के कारण समाज दो वर्गों में बंट गया—शोषण करने वाला पूंजीवादी और शोषित सर्वहारा वर्ग। इन दोनों के बीच में पिसने वाला मध्यवर्ग जो आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा वर्ग का सदस्य है और मानसिक रूप से वह पूंजीवाद की ओर देखने वाला है। मार्क्स का विचार है कि यदि पूंजीवाद का अस्तित्व नष्ट कर दिया जाय तो सर्वत्र मंगल और सुख शान्ति हो जाय।

मार्क्सवादी दर्शन व्यापक होने के कारण जीवन के हर क्षेत्र में इसका प्रभाव पड़ा क्योंकि " साम्यवाद मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ही मांग नहीं करता वरन् उच्चस्थिति, समानता, आधिपत्य से मुक्ति राजनीतिक अथवा आर्थिक शोषण से मुक्ति जैसी मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति भी करता है। ------ साम्यवाद प्रत्येक मनुष्य को जो आज निराश और कुण्ठाग्रस्त हैं गम्भीरतम आकांक्षा की पूर्ति का अवसर प्रदान करता है[238] " मार्क्सवाद का साहित्य में स्वागत हुआ। हिन्दी में मुक्तिबोध तथा उर्दू में सरदार जाफ़री पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु प्रगतिवादी काव्यधारा के हर साहित्यकार पर परोक्ष रूप से मार्क्स का प्रभाव पड़ा और विशुद्ध सामाजिक यथार्थ का बोध कराने वाले विचारों का स्वागत किया गया। इस शताब्दी के तीसरे दशक के उपरान्त राष्ट्रीय जीवन में एक परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है।

" ये सोवियत की सरज़मी जो फ़ख्रे रोज़गार है
मुल्कमतों की कंगूरा जो सबकी दोस्तदार है

बदल दिया है मौसमों को जिसमें मध आया है यह
नये सितारे नाचते हैं जिसमें वह दिलरुबा उटा है यह[239]

निराला ने `कुकुरमुत्ता` (अणिमा) (बेला) में मार्क्सवाद का समर्थन किया है। `कुकुरमुत्ता` में कवि ने गुलाब को पूंजीवादी वर्ग का प्रतीक माना है और `कुकुरमुत्ता` को सर्वहारा वर्ग का। बेला में ग्राम्य जीवन के अनेक चित्र मिलते हैं—

इकबाल भी पूंजीवाद के विरुद्ध मजदूरों के पैगाम देते हैं—

बन्दये मजदूर को जाकर मेरा पैगाम दे
खिज्र का पैगाम क्या है ये पयामे कायनात

— — —

मक्र की चालों से बाजी ले गया सरमायादार
मुन्तेहाए सादगी में खा गया मजदूर मात
उठ के अब बज्मे जहां का और ही अन्दाज है
मशरिको मगरिब में तेरे दौर का आगाज है[240]

पंत जैसी कोमल कान्त पदावली के कवि के काव्य में भी मार्क्सवादी विचारों की सबल अभिव्यक्ति हुई। इस दृष्टि को वे ग्राम्या, युगान्त, युगवाणी में स्वीकार करते हैं—

नवोद्भूत इतिहास भूत सक्रिय सकरण जड़ चेतन
द्वन्द्व तर्क से अभिव्यक्ति पाता युग युग में नूतन
आज अस्त साम्राज्यवाद धनपति वर्गों का शासन
प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता मरणासन्न समापन
साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण
मुक्ति निखिल मानवता करती मानव का अभिनन्दन[241]

साम्यवादी युग की स्थापना के लिये सामन्तशाही का विरोध किया गया। कवि का विश्वास है कि साम्राज्यवाद जो प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है आज अपनी समस्त

साधनों के साथ मरणोन्मुख हो रहा है। उसके साथ पूंजीवादी राष्ट्र भी समाप्त होने वाली है। राष्ट्रीयता पर आक्रमण करने वाले साम्राज्यवाद का नाश अटल है।[242]

धार्मिक भी पूंजीवाद को उखाड़ देना चाहते हैं—

फुफले बसरे स्वाई में तेरे आने की
वक़्त के झटकों से कानून तेरा टूट गया
जिसको टेके तू खड़ा था वो असा छूट गया
खुल गये तेरे कुंचुकारी के सारे फन्दे
वो जो इक जाल बुना करते थे औहाम तेरे
वो तेरा फ़लसफ़ए कोहना - मजबूरो गुलाम
तेरा पारीना तमद्दुन तेरा फ़रसूदा निजाम
सब पुघलके ही तो हैं छुब के रह जायेंगे
एक नई सुबह के सैलाब में बह जायेंगे—[243]

नगरों में पूंजीपतियों ने मजदूरों को मशीन बना दिया है। कवि के अनुसार किसानों में अपने श्रम के प्रति आस्था जन्म ले रही है। कोयले के प्रतीक द्वारा नयी चेतना नयी जिन्दगी का चित्र खींचना है जो कोयले मुर्दा बने हुए थे वे नयी चिंगारी लाते ही शिव के लाल नेत्र जैसे जल उठेंगे।[244] क्रान्ति से उन्हें डरना नहीं है। बादलों की वज्र हुंकार सुनकर केवल गगनस्पर्शी पर्वत कांपते हैं। छोटे - छोटे पौधे नहीं दूसरे शब्दों में क्रान्ति के नाम से धनी वर्ग को चिन्ता होती है। जन साधारण के लिये तो वह नयी आशा और विश्वास का सन्देश लाती है—

हृदय थाम लेता संसार
सुन - सुन घोर वज्र हुंकार
अशनिपात से शापित उन्नत शत शत वीर
क्षत- विक्षत हत अचल शरीर
गगनस्पर्शी स्पर्धा धीर

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार
शस्य अपार
हिल - हिल
खिल - खिल
हाथ हिलाते तुम्हें बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते[245]

कवि का विश्वास है कि जल्दी ही क्रान्ति आने वाली है और जग बदलने वाला है-

ये छोटे - छोटे तम्बूर ये ऊँचे - ऊँचे दार
बता रहे हैं ये बेचैन करवटें ऐ दोस्त[246]
कि जल्द एक बड़ा इन्कलाब आयेगा

` आंख लगी थी -----? में कवि कहता है—

एक नये दौर का आगाज हुआ चाहता है
जिन्दगी का नये मकसूद हुआ चाहता है
— — —

बेड़ियां गलने लगीं तौक़े गिरां कटने लगे[247]
अब्र मुद्दत से जो छाये हुए थे छटने लगे

शोषित वर्ग की जागरूक चेतना नवीन क्रांति के माध्यम से साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित समाज की स्थापना में सफल होगी ऐसा कवियों का विश्वास है। आर्थिक विषमता का सबसे बड़ा शिकार कृषक और श्रमिक रहे हैं। वह किसान जो भारतीय राष्ट्र का मेरुदण्ड था अन्नदाता है। उन्हें ही अंग्रेजी शासन काल में दीन हीन बनना पड़ा था। जमींदारी प्रथा ने उसे और भी बुरी तरह चूस कर बर्बाद कर दिया। इस शोषण की नीति से ग्रामीण जीवन पूरी तरह विदेशी शासकों और पूंजीवादियों पर आश्रित हो गया था। अन्य हस्तकलाओं और उद्योगों के अभाव में कृषि ही ग्रामीणों की जीविका का एकमात्र साधन रह गया था। नवीन वैज्ञानिक प्रणालियों से अनजान जमींदारी व्यवस्था से त्रस्त महाजनों के ऋण से दबे कृषकों को अपने परिवार

के लिये रोटी जुटाना कठिन था। लगातार पड़ने वाले दुर्भिक्षों ने किसानों को आर्थिक रूप से तोड़ दिया। अंग्रेजी शासन ने सबसे अधिक कर किसानों पर ही बढ़ाया था। जमींदारों के अत्याचार करने वाले कारिन्दे, तहसील के चपरासी, पुलिस, कर्मचारी, पटवारी, सूदखोर महाजन इत्यादि कृषकों के रक्त पर ही पल रहे थे। जमींदार के जुल्मों से पीड़ित थे नानारायण किसान जिनके खून और अस्थियों पर आधुनिक सभ्यता की चमक दमक विलासिता पूंजी साम्राज्य टिका था वही सबसे अधिक दु:खी था।

किसानों की इस दयनीय दशा का विस्तृत वर्णन कवियों ने किया।[२४८] 'भारतभारती' किसानों की दयनीय स्थिति का परिचय देने के लिये लिखे गये किसानों की हीन दशा की ओर शिक्षित जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिये कई काव्य लिखे गये जिनमें कृषक जमींदार महाजन और सभा का शिकार होता हुआ परिवार के साथ नष्ट हो जाता है। गुप्त जी का 'किसान' प्रबन्ध जिसका नायक एक किसान है। वह कठोर परिश्रम करने पर भी दु:ख ही सहता है।[२४९] इन काव्य की विशेषता यह है कि इनके नायक किसान के दिल अत्याचारियों से बदला लेना का भाव नहीं आता और अगर उसमें रोष का भाव आता भी है तो शीघ्र शान्त हो जाता है। इसके विपरीत प्रगतिवादी कवि पूंजीवादियों के अत्याचार का बयान करके आंसू ही बहाना नहीं चाहता बल्कि वह उनके विरुद्ध क्रान्ति का नारा बुलन्द करता है।[२५०] संघर्ष का सन्देश देता है—

ये मजदूरों का लश्कर है
किसानों की चढ़ाई है
ये जनता की लड़ाई है[२५१]

पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति का समय आ गया है। इसलिये कवि शोषितों को जागरण का सन्देश देता है—

ऐ खाक नशीनों उठ बैठो, वह वक्त करीब आ पहुंचा है
जब तख्त गिराए जायेंगे, जब ताज उछाले जायेंगे।।[२५२]

अगर ये मज़दूर किसान जागृत हो जायें तो वह पूंजीवाद को उखाड़ फेंक सकता है किन्तु उन्हें " एहसासे ज़िल्लत " दिलाने की आवश्यकता है—

ये मज़लूम मख़लूक़ गर सर उठाये
तो इन्सान सब सरकशी भूल जाय
ये चाहें तो दुनिया को अपना बना लें
ये आकाओं की हड्डियां तक चबा लें
कोई इनको एहसासे ज़िल्लत दिला दे[253]
कोई इनकी सोई हुई दुम हिला दे

इतनी मेहनत से खेती करने के बाद किसान भूखा रह जाता है। इस पर कवि बहुत अधिक दुखी होकर सोचता है—

ये क्यों खेत फटा पड़ता है जोबन जिनका[254]
किसलिये उनमें फ़क़त भूक उगा करती है ?

निराला, पन्त, दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, केदारनाथ अग्रवाल, सरदार जाफ़री, वामिक जौनपुरी, फिराक़ गोरखपुरी ने अपनी रचनाओं में किसानों की भावना को सशक्त अभिव्यक्ति दी। पन्त ने " कृषक," रामनरेश ने " मिलन", निराला " कुछ झांकने लगी "; केदारनाथ अग्रवाल," धरती के किसान " सरदार जाफ़री की " जम्हूर " और फिराक गोरखपुरी की " धरती की करवट " में किसानों की दशा का वर्णन और क्रान्ति की आवाज़, समाज का परिवर्तन सब कुछ प्रतिबिम्बित हुआ है। दिनकर की " हाहाकार "[255] कविता में कृषकों के अभावमय जीवन की दैन्य अवस्था का करुण चित्रण है। अमीरों के प्रति कृषक को दिनकर वाणी देते हैं—

" विद्युत की चकाचौंध में, देख दीप की लौ रोती है
अरी हृदय को थाम, महल के लिये झोपड़ी बलि होती है
देख, कलेजा फाड़ कृषक दे रहे, हृदय शोणित की धारें[256]
बनती ही उन पर जाती हैं, वैभव की ऊंची दीवारें "।।

लेकिन कवि आशावान है कि एक दिन पूंजीवाद की समाप्ति होगी और इसके लिये वह कृतसंकल्प है-

> अभी तो सीन-ए-बशर में सोते हैं वो ज़लज़ले
> कि जिनके जागते ही मौत का भी दिल दहल उठे
>
> -- -- --
>
> अभी तो पूंजीवाद को जहान से मिटाना है
> अभी तो साम्राज्य को सज़ा-ए-मौत पाना है
> अभी तो शरिताकियत के झण्डे गड़ने वाले हैं
> अभी तो जड़ से कुश्तो-खूं के नक़्श उखड़ने वाले हैं
> अभी तो धन गरज सुनायी देगी इन्कलाब की
> अभी तो गोशमर रहा है क़्म आफ़ताब की
> अभी किसानो-कामगार का राज होने वाला है
> अभी बहुत जहां में कामकाज होने वाला है
> मगर अभी तो जिन्दगी मुसीबतों का नाम है
> अभी तो नींद मौत की मेरे लिए हराम है[247]।।

किसानों की भांति मज़दूरों का जीवन भी नारकीय बन गया है। भारत में पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना पर अंग्रेजी शासकों ने थोड़े से भारतीयों को धनाधीश बनाकर उनकी सहायता से साधारण जनता का शोषण करने की अनोखी नीति अपनाई थी। मज़दूरों की दशा शोचनीय थी। भूखे अधमरे मज़दूर युवक मिल मालिकों के शोषण का शिकार बनते जा रहे थे। उन्हें अन्याय,अत्याचार हर रोज़ सहन करना पड़ता था। इस शोषण, अन्याय, अत्याचार से बचने के लिए भारतीय स्वाधीन भारत चाहते थे जिसका आधार समाजवादी शासन व्यवस्था हो। कवि मज़दूर किसानों की दशा से द्रवीभूत होकर उनके शोषण और दीनता का अंकन करता है-अपनी एक लम्बी कविता में फ़िराक मज़दूरों के महत्व को बताते हैं-

ओट में छिपी हुई तस्वीरों
का घूंघट सरकाया किसने
शर्मीली तकदीर की देवी
का आंचल ढुलकाया किसने
— — —
इस नंगी उजड़ी दुनिया को
सजाकर दुल्हन बनाया किसने

मुक्तिबोध पूंजीवाद का नाश चाहते हैं।[२५६] वह इस विषमता का कारण पूंजीवाद को समझते थे। उनके विचार से साम्राज्यवाद ही इस विषमता को दूर कर सकता है—

लेनिन के हाथों से पलट जायेगी काया
अब नामो निशां जार के मिट्टी में मिलेंगे
"हम" अब उफुके-रुस से होते हैं नुमायां
दुनिया के लिये है ये नयी सुबहे- बहारां
अब एक नयी तस्वीर है अल्वा-दहे-दौरां
तारीखें तमद्दुन के नये बाब खुलेंगे[२६०]

दिनकर इस वैषम्य का निवारण क्रान्ति द्वारा करना चाहते हैं—

" रण रोकता है तो उखाड़ विषदन्त फेंको
वृक - व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो।
अथवा अब के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र
दांतों में कराल काल-कूट विष भर दो
वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो

रस सोखता है जो मट्टी का भीमकाय वृक्ष
उसकी शिराएं तोड़ो डालियां कतर दो।[२६१]

किसानों के शोषण और उनके आन्दोलन को दबाने के लिए किए गए अमानुषिक अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिये दिनकर ने भूषण की भावतरंगिणी और लेनिन की क्रान्ति चेतना का आवाहन किया है।[२६२]

इस प्रकार अनेक कवियों ने रूस और साम्यवाद का आदर्श रखकर शोषितों को बल और प्रेरणा दी। भारत में अंग्रेजी शासन काल में अनेकों बार अकाल पड़े। साधनों के अभाव और शासकों की लापरवाही, किसानों की गरीबी के कारण बहुत बार लाखों लोग काल का शिकार बने, अनेक कवियों ने बंगाल में पड़े भीषण अकाल की भयंकरता का वर्णन संवेदनशीलता से किया—

भग्न हो मृत्यु नृत्य करती
नग्न हो मृत्यु नृत्य करती
देती परम तुष्टि की ताल
पड़ गया बंगाल में काल
भरी कंकालों से धरती
भरी कंकालों से धरती[२६३]

उर्दू काव्य में भी यह संवेदनशीलता दिखाई देती है-

पूरब देश में डुग्गी बाजी फैला दुख का काल
दु:ख की अग्नि कौन बुझाए सूख गये सब ताल
जिन हाथों में मोती रोले आज वही कंगाल रे साथी
आज वही कंगाल
भूका है बंगाल रे साथी भूका है बंगाल[२६४]

<u>स्वदेशी आन्दोलन :</u>

अंग्रेजों ने अपने व्यापार की रक्षा के लिए राजनैतिक रूप से अपने को भारत

में मजबूत किया । जैसे - जैसे इंग्लैण्ड का भारत में आर्थिक लाभ बढ़ा वैसे - वैसे उनका राजनीतिक स्वार्थ भी बढ़ता गया और उन्होंने यहां आर्थिक शोषण की नीति अपनाई । राजनैतिक नेता इस दासता का कारण आर्थिक दुर्दशा को मानते हुए स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दे रहे थे । वास्तव में " स्वदेशी आन्दोलन का जन्म अंग्रेजों की आर्थिक नीति के कारण हुआ[24]। इसके बाद बंग भंग के परिणाम स्वरूप पूरे देश में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । स्वदेशी वस्तुएं अपनाने का आग्रह वास्तव में देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही किया गया । क्योंकि राजनैतिक क्षेत्र में यह अनुभव किया जा रहा था कि जब तक हम कला कौशल में स्वयं दक्ष नहीं होंगे तथा देशवासियों से चकाचौंध करने वाली विदेशी वस्तुओं के प्रति घृणा के भाव जागृत नहीं होते तब तक राष्ट्रीय योजना सफल नहीं होगी ।

विदेशी वस्तु त्याग और स्वदेशी वस्तु व्यवहार ही देश की गिरी हुई आर्थिक दशा को सुधारने का एक मात्र उपाय था । विदेशी वस्तुओं में सबसे अधिक कपड़े प्रयुक्त किये जाते थे । अंग्रेज यहां से रूई को कच्चे माल के रूप में ले जाते थे और इस प्रकार देश का धन बाहर जा रहा था । इसीलिये देश के राजनीतिक मंच से एक ओर विदेशी वस्तु त्याग का आन्दोलन चलाया गया था और दूसरी ओर स्वदेशी वस्तु व्यवहार के अनुकूल भावनाएं पैदा की जाती रही थी । एक लम्बे समय के संघर्ष के बाद जनता का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और सभी ने ये विचार किया कि स्वदेशी से ही भारत का कल्याण हो सकता है । विदेशी वस्तु के विक्रय के कारण ही भारत का धन विदेश जा रहा है और यहां कोरी, जुलाहे, शिल्पी भूखे मर रहे है । गांधी जी के आगमन से यह अभियान तीव्र हुआ और चरखा एवं खादी का प्रचार भी बढ़ा । लाखों नवयुवकों ने स्वदेशी व्रत धारण किया । इस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीति पर प्रबल प्रहार था ।

इन राजनैतिक विचारों का तत्कालीन काव्य पर प्रभाव पड़ा । कवियों ने राष्ट्र हित को ध्यान में रखते हुए अपनी शक्तिशाली कलम का योगदान यहां भी दिया । यद्यपि काव्य की अपेक्षा कहानी, उपन्यासों में इसकी विस्तृत अभिव्यक्ति

हुई लेकिन फिर भी इसका कुछ प्रतिबिम्ब काव्य में भी मिलता है। गांधी जी ने गांवों की दशा को उन्नत करने के लिये चरखे का प्रचार किया और खादी राष्ट्रीय जीवन का अंग बन गयी। खादी के महत्व से अवगत कराने के लिये अनेक काव्य रचनाएं हुईं-

> खादी के धागे में अपनेपन का अभिमान भरा
> माता का इसमें मान भरा अन्यायी का अपमान भरा
> खादी ही भर-भर देश प्रेम का प्याला मधुर पिलाएगी
> खादी ही दे-दे संजीवन मुर्दों को पुनः जिलाएगी[२६६]

( साकेत ) भारत भारती, कामायनी रेणुका पर स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। साकेत की सीता चरखा कातने बुनने के लिये कोल-किरात बालाओं को प्रोत्साहित करती है-

> तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में
> आओ हम कातें बुनें गान की लय में[२६७]

सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्रीय उत्थान के लिये खादी को उपयोगी माना है। आर्थिक सुसम्पन्नता ग्राम सुधार खादी से ही हो सकते हैं। " खादी से ही भारत की रूठी आज़ादी घर आयेगी।[२६८] " कवि का विश्वास है कि एक पतला तुच्छ धागा विदेशी यंत्र कला को चुनौती देने में सक्षम है।" " खद्दर के सूत्रों में नवजीवन, आशा, स्पृहा एवं आल्हाद का सन्देश है।[२६९]

इस प्रकार कवियों ने आर्थिक दुर्दशा-शोषण, उद्योग धन्धे, आर्थिक विषमता और किसान मज़दूरों की दशा को सशक्त अभिव्यक्ति दी और तत्कालीन भारत की आर्थिक दशा का उद्घाटन प्रभावशाली रूप से किया।

## (स) सामाजिक पक्ष :

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक दशा हीनावस्था के शिखर को

पहुंच गयी थी । हिन्दू जाति का प्रत्येक अंग जर्जर होने के बाद भी प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक परिवर्तन करने के स्थान पर परम्परा की लीक पीट रहे थे । समाज में जातिपांति, दहेज, अनमेल विवाह आदि कई प्राचीन रूढ़ियां तथा कठोर धार्मिक बन्धन समाज को जकड़ कर उसकी प्रगति को बाधित कर रहे थे । नैतिक पतन होने के कारण ईर्ष्या, द्वेष, मोह, दैन्य, हिंसा, स्वार्थ, भय, सन्देह, भोग विलास आदि अनेक विकार समाज में व्याप्त रहे थे । इन बुराइयों से ग्रस्त समाज अध:पतन की ओर जा रहा था । " समग्र रूप से विचार करने पर समाज की सृजनात्मक नवनवोन्मेष-शालिनी शक्ति का ह्रास हो गया था । उसमें नए प्राण, नवीन शक्ति और चेतना फूंकने की आवश्यकता थी ।[२७०]

कवियों ने समाज की इस दुर्दशा का वर्णन किया और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करके रूढ़िवादिता को दूर करने का प्रयास भी किया ।

रूढ़िवादिता,सामाजिक विषमता का वर्णन तथा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार :

समाज से विमुख साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं रहता । इसलिये आधुनिक कवि समाज को समीप से देख रहे थे । सांस्कृतिक नेताओं तथा समाज सुधारकों के समान इन कवियों का भी विचार था कि बिना समाज की बुराइयों को दूर किये स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती । अत: कवि अधोगति को प्राप्त समाज का यथार्थ चित्रण करने की ओर अग्रसर हुए कवि ने उस समाज का सजीव वर्णन किया । सामाजिक कुरीतियों, भूत,प्रेतादि की पूजा, दहेज, जातिपांति से व्याप्त कुरीति विकारों का भारतेन्दु कालीन कवियों ने विस्तृत वर्णन किया तथा उन्हें जड़ से उखाड़ देने का प्रयत्न किया । अयोध्यासिंह की सामाजिक चेतना अत्यन्त जागरूक है ।[२७१] रामनरेश त्रिपाठी के " पथिक " में समाज की अवनति का वर्णन किया गया है ।[२७२] भारतभूषण अग्रवाल रूढ़ियों का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

" खान बर्फ की कड़ी पर्त सी

एक - एक कर अमित रूढ़ियां
सदियों से जमती जाती हैं
तह पर तह मानव जीवन पर
ये आज ठोस दीवार बनी
हैं रोक रही जीवन की गति
मन की उन्नति[273]

सामाजिक जीवन धारा अवरुद्ध होने के कारण सामाजिक जीवन भी कुत्सित बन गया। अधिकांश जनता को अर्थहीन जीवन बिताना पड़ रहा था।[274] प्राचीन मान्यताओं रूढ़ियों को निरर्थक बताते हुए कवि उनकी समाप्ति की कामना करता है और नये मूल्यों की स्थापना का सन्देश देता है—

निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग!
जग - नीड़ शब्द और श्वास हीन
च्युत अस्त व्यस्त पंखों से तुम
झर झर अनन्त में हो विलीन[275]

समाज की शोचनीय दशा से विक्षुब्ध हुआ कवि कभी - कभी निराश होकर भगवान की शरण खोजने लगता है। समाज में फैले अन्धकार को मिटाने के लिये वह ईश्वर को पुकारता है—

दुनिया से निराला ये बांसुरी वाला
गोकुल का ग्वाला
— — —
आजा मेरे काले
भारत के उजाले
दामन में छुपा ले
— —

ऐ हिन्द के राजा
एक बार फिर आजा
दुख दर्द मिटा जा[206]

विदेशी शासकों द्वारा प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य केवल राज्य कार्य को चलाने वाले प्रजा जनों को तैयार करना था -

" प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाय मिट मन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है नीति यही शासन की
चरित्रहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी
है यह भाव निरंकुश नृप का सदा अनीति वहेगी[207]

संक्षेप में जातिपांति विदेश यात्रा बन्धन समाज को जकड़े थे।[208] भूत प्रेतादि की पूजा आलस्य, अशिक्षा के कारण " समाज रूपी शरीर का हर अंग दूषित हो गया था।[209] राजनैतिक क्षेत्र में जो लोग प्रयत्नशील थे उन्होंने समाज की भी बुराइयों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। स्वतन्त्रता की कामना और सामाजिक तथा नैतिक उन्नति के प्रयत्न एक साथ मिलकर चले। समाज सुधार और क्रान्ति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध बताते हुए पण्डित नेहरू लिखते हैं " ऐसा नहीं हो सकता कि राजनैतिक परिवर्तन और औद्योगिक क्रांति तो हो किन्तु हम यह माने बैठे रह जांय कि सामाजिक क्षेत्र में हमें कोई परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं। राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार समाज का परिवर्तन नहीं करने से हम पर जो बोझ पड़ेगा उसे हम बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे, उसके नीचे हम टूट जायेंगे[210]। किन्तु आधुनिक सभ्यता के आगमन से समाज की तन्द्रा टूटी और राजाराम मोहन राय ने सबसे पहले सामाजिक सुधार आन्दोलन प्रारम्भ किया। सांस्कृतिक आन्दोलनों ने समाज को शिक्षा, जातिपांति, नारी के प्रति नवीन दृष्टि दी। दयानन्द, विवेकानन्द, रामकृष्ण के उपदेशों से नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई, बाद में इन कार्यों को कांग्रेस ने भी अपने आन्दोलन में समाविष्ट किया। गांधी जी ने बहुत-सी सामाजिक बुराइयों को दूर किया। पाश्चात्य सम्पर्क, बुद्धिवादिता और दयानन्द के प्रयत्न से नवीन सामाजिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिली।

हिन्दी काव्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण इसमें सामाजिक क्रान्ति का स्वर प्रबल है। समाज की बुराइयों, कुरीतियों, विषमताओं पर हिन्दी कवियों ने कठोर प्रहार किये। मैथिलीशरण गुप्त ने रूढ़ियों को बिना जड़ की जीवन रस चूसने वाली बेल कहकर यह कामना की है कि शास्त्र रूढ़िबद्ध न हो जायं[२८१]।

सोहनलाल द्विवेदी रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, जड़-जीवन आश्रित अन्यायों के वितान को अग्नि ज्वालाओं में जला देना चाहते हैं[२८२]। निराला में विदेशी साम्राज्य से मुक्ति और सदियों से चली आती रूढ़िवादिता के विरुद्ध [illegible] जनता की नवीन चेतना प्रतिबिम्बित होती है[२८३]। भारत भूषण ऐसी अग्नि प्रज्वलित करना चाहते हैं जिससे विकास में बाधा डालने वाले प्रस्तर पिघल जाएं[२८४]। कवि का विश्वास है कि काल की धारा अशुभ, अवांछित को बहा ले जायेगी[२८५]। दलितों पीड़ितों को समाज में प्रतिष्ठित देखने की कामना करते हुए कवि क्रान्ति का विस्फोट करना चाहता है[२८६]। निराला जातीयता की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि इस भेदभाव ने हमारी शक्ति क्षीण की है। ऊंची जाति के लोग जब नीची जातियों से घृणा करते हैं तभी समाज में द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य की लहरें उठती हैं। फलतः अस्तित्व खतरे में पड़ने से क्रान्ति की लहर फैलती है[२८७]। 'पृथ्वी' का कवि ईर्ष्या, द्वेष, आडम्बर के साम्राज्य को समाप्त कर धरती को शाप मुक्त करने का अभिलाषी है[२८८]। सामाजिक जीवन जब तक ईर्ष्या, दम्भ, शोषण और संघर्ष से परिपूर्ण है तब तक तप, त्याग और अहिंसा के आदर्श व्यर्थ होते हैं। सम्भवतः इसी कारण देवता - दानवों से हारते रहे हैं[२८९]। दिनकर ने अनेक कविताओं में आडम्बरों की आलोचना की है। कवि का विचार है कि पाखण्ड, आडम्बर, पाप को जला कर भस्म कर देना चाहिये[२९०]। कवि परम्परा की होली जलाना चाहता है। सदियों के पाप, आलस्य, प्रमाद, अविद्या से जर्जर समाज को झकझोर कर जगाना चाहता है। एक नई राह पर चलने का सन्देश देता है[२९१]। 'कुरुक्षेत्र' का कवि भाग्यवाद का खण्डन करता है।

'ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में

" मनुज नहीं लाया है
अपना सुख उसने अपने
भुजबल से ही पाया है।
प्रकृति नहीं डर कर झुकती है
कभी भाग्य के बल से
सदा हारती वह मनुष्य के
उद्यम से श्रमजल से
ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा
करते निरुद्यमी प्राणी
धोते वीर कु-अंक भाल का
बहा भ्रुवों से पानी "[262]

प्रगतिवादी कवि समाज में प्रखर परिवर्तन लाना चाहता है इसीलिये उस पुराने, रूढ़ियों से विकृत समाज को चुनौती देता है जो मानव विकास में बाधित हो। पंत जर्जर समाज के विध्वंस की कल्पना करते हुए कोयल को पावक कण बरसाने का आग्रह करते हैं। कवि को जाति, वर्ण, कुल के भेद रुचिकर नहीं और न ही वह प्राचीन रूढ़ियों को सहन करता है। इसीलिये पंत इन सबको विनष्ट होते देखना चाहते हैं—

" झरें जाति, कुल, वर्ण, पर्ण, घन
अंध- नीड़-से रूढ़ि रीति छन
व्यक्ति- राष्ट्र-गत राग द्वेष रण
झरें - मरें विस्मृति में तत्क्षण
गा, कोकिला गा- कर मत चिन्तन "[263]

निराला भी ' कुकुरमुत्ता ' ' अणिमा ' ' बेला ' की कविताओं में नवीनता का स्वागत करते हुए सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंकते हैं। अपने आराध्य से भी उन्होंने यही प्रार्थना की कि जो जीर्ण-शीर्ण हो भस्म हो जाये और

और नवीन का निर्माण हो। सभी प्रगतिवादी कवियों में इस प्रकार की विद्रोहात्मक भावनाएं विद्यमान हैं।

नारी दशा :

उन्नीसवीं शती में स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। किसान मजदूर और अछूतों के समान ही नारी वर्ग भी समाज को शोषण का शिकार था। भारतीय नारी दया की पात्र थी। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उसे कष्ट और शोषण की अनेक सीढ़ियां पार करनी पड़ती थी—

" पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने
रक्षंति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति "

इस मंत्र का जाप सदियों से समाज कर रहा था। यथा आदिम युग से सभ्यता के विकास तक हर युग में नारी पुरुषों के सुख के साधनों में गिनी जाती थी। समाज की हर व्यवस्था में नारी के लिये विचित्र विषमता थी। जीव मात्र के उद्धार का व्रत लेने वाले संतों ने उसे मायाविनी, ठगिनी के रूप में देखा, भक्तों ने ताड़ना की अधिकारिणी समझा और रीतिकाल तक आते आते वह केवल वासना की पुतली बना दी गयी। इस प्रकार सामन्ती व्यवस्था में नारी अशिक्षा, अज्ञानता में बंधी मात्र भोग्य होकर रह गयी। उसे अनिच्छापूर्वक सती होना पड़ता था। उसके लिये विधवा जीवन शाप के समान था।

शताब्दियों से पीड़ित उपेक्षित नारी के प्रति उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सांस्कृतिक आन्दोलनों के नेताओं ने आस्था जागृत की। अभी तक या तो उसके चरित्र को भव्य रूप में चित्रित किया जाता था या निकृष्ट रूप में। सामाजिक रूढ़ियां स्त्री पर अन्याय करने वाली थी। जैसे—विधवा- मुण्डन, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह का प्रचलन, अनमेल विवाह, पर्दा, दहेज आदि। सुधारकों के प्रयत्न तथा पाश्चात्य विचारों के प्रभाव ने समाज में जागृति

पैदा की और समाज में स्त्रियों के लिये उदार भावना विकसित हुई। भारतीय नारी जो पुरुष प्रधान समाज में अपना पद और आस्था खो चुकी थी पुनः प्रतिष्ठा मिली। उपेक्षित नारी के प्रति कवि द्रवित हो उठा। नारी दुःख की पराकाष्ठा विधवा हो जाने में है। विधवा के दुःख का वर्णन अनेक कवियों ने किया। मैथिलीशरण गुप्त का विश्वास है कि अल्पावस्था में विवाह करने की प्रथा ही विधवा समस्या का कारण है। मैथिलीशरण का काव्य विधवाओं के प्रति सामाजिक अत्याचारों का भांडा फोड़ती है।[२६४] निराला ने भारतीय विधवा नारी के दिव्य रूप के साथ समाज के प्रति विक्षोभ भी प्रकट किया है। साथ ही मानव मनोवृत्ति की यथार्थता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है—

" वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव स्मृति की रेखा-सी
वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है"[२६५]

दिनकर ने विधवा की त्यागमयी मूर्ति की ओर संकेत किया है।[२६६] वैधव्य को धार्मिक दृष्टि से पवित्रता, काम-दग्धकारिता, स्वामि-स्मरण तथा सहनशीलता का जीवन बताकर साकेत में वशिष्ठ विधवा धर्म को भव्य कहते हैं और दशरथ की रानियों को सती होने से रोकते हैं—

देवियों ऐसा नहीं वैधव्य
भाव भव में कौन वैसा भव्य ?
धन्य यह अनुराग निःति राग
और शुचिता का अखंड सुहाग।
अग्निमय है अब तुम्हारा नाम
दग्ध हो जिसमें स्वयं सब काम

सह मरण के धर्म से भी ज्येष्ठ
आयु भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ
तुम जियो अपना यही व्रत पाल
धर्म की बल-वृद्धि हो चिरकाल
सहन कर जीना कठिन है देवी
सहज मरना एक दिन है देवी [२८७]

अल्पायु में वृद्ध के साथ विवाह करना नारी को मृत्यु की ओर ढकेलने के समान ही है। कवि लिखता है—

" जो कली है खिल रही उसके लिये
पर पके सूखे पत्तों जैसा न हो
दो दिलों में जाय जिससे गांठ पड़
भूल गंठ जोड़ा कभी ऐसा न हो " [२८८]

पर्दा प्रथा के कारण नारियों को खुली हवा, प्रकाश आदि नहीं मिलता और वे भयंकर रोगों का शिकार हो जाती हैं। दहेज प्रथा नारियों के व्यापार करने की प्रवृत्ति प्रतीत होती है। इस दोष से आज भी हमारा समाज मुक्त नहीं है। इस प्रकार नारी उच्च आदर्श से उतर कर दासी जैसी रह गयी थी किन्तु सुधारवादी आन्दोलनों ने उसकी दशा में आशातीत परिवर्तन किये। गुप्त जी ने सीता, यशोधरा, उर्मिला, माण्डवी, कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, यशोदा के व्यक्तित्व के रूप में नारी के उज्ज्वल रूप को प्रस्तुत किया। समाज में नारी को पुरुषों के समान समानता मिली क्योंकि समाज का सामन्जस्य नारी स्वतन्त्रता के बिना अपूर्ण ही रहेगा क्योंकि पुरुष और स्त्री मिलकर ही संसार चलाते हैं। इस ओर महादेवी जी संकेत करती हैं—" पुरुष समाज का न्याय है स्त्री दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है स्त्री सरस सहानुभूति। जिस प्रकार युक्ति से काटे हुए काष्ट के छोटे - बड़े विभिन्न आकार वाले खण्डों को जोड़कर हम अखण्ड चतुष्कोण या वृत्त बना सकते हैं परन्तु उनकी विभिन्नता नष्ट करके तथा सबको समान आकृति देकर

हम उन्हें किसी पूर्ण वस्तु का आकार नहीं दे सकते, उसी प्रकार स्त्री पुरुष के प्राकृतिक मानसिक वैपरीत्य द्वारा ही हमारा समाज सामंजस्यपूर्ण और अखण्ड हो सकता है। उनके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से नहीं"[२९९]।

आधुनिक काल में स्त्रियों की दशा में बदलाव महायुद्धों के कारण भी आया। युद्ध प्रभावित देशों के पुरुषों के लम्बे समय तक घर से दूर रहने के कारण स्त्रियों को सामान्य घरेलू धन्धों के अतिरिक्त कार्यालयों, कारखानों में भी क्रियाशील होना पड़ा। परिणाम स्वरूप पुरानी मान्यताएं बदलीं और उन्हें पुरुषों के समान स्थान मिला। इस परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। आर्य समाज ने स्त्री - सुधार में बड़ा योग दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी तक काव्य में स्त्रियों का बड़ा दीन चित्रण किया गया था। नायिका भेद के जाल में जकड़ी अभिसारिका, मुग्धा, प्रौढ़ा, यौवना ही बनी रही। रूढ़ियों में जकड़े समाज ने उसे मात्र घर की दीवारों में कैद कर दिया था। नव जागरण में नारी के प्रति काव्य के दृष्टिकोण को बदल दिया। कवियों ने नारी मुक्ति की घोषणा उच्च स्वर में की क्योंकि समाज के आधे हिस्से की इस पर विजय नहीं प्राप्त हो सकती थी—

" तोड़ो - तोड़ो - तोड़ो कारा
पत्थर की निकलो फिर गंगा जलधारा
गृह - गृह की पार्वती
पुनः सत्य सुन्दर शिव को सवारती
उर - उर की बनो आरती
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा
तोड़ो - तोड़ो - तोड़ो कारा "[३००]

उर्दू काव्य ने भी महफिलों और मयखानों यहां तक की घर की दीवारों से स्त्री को

स्वतन्त्र कराने का संकल्प लिया—

औरतो अपने चेहरों से अपनी नकाबें उलटकर चलो
कैदी तारीक बावर्ची खानों से निकलो
आज से हुस्न आज़ाद है
— — —

अब तुम्हें भेड़ और बकरियों की तरह बेचना जुर्म है
तुम कनीज और लौन्डी नहीं
मां हो, बेटी हो, बीवी हो, महबूब हो [301]

प्रगतिवादी कवियों की नारी के प्रति दृष्टि भावात्मक काल्पनिक या वासनात्मक न होकर सरल,सहज और स्वस्थ है। नारी को नर के ही समान वे मानव मात्र सहजीवी मानता है—

वह नर की छाया नारी
चिर नमित नयन पद विजड़ित
वह चकित भीत हिरनी सी
निज चरण चाप से
शंकित मानव की चिर सहधर्मिणी
युग-युग से मुख अवगुंठित
स्थापित घर के कोने में
वह दीप शिखा सी कम्पित
बंदिनी काम कारा की
आदर्श नीति परिचालित [302]

नर के अधीन मानी जाने वाली नारी को नारी आन्दोलन ने नया रूप रंग दिया। नायिका के ही रूप में उसका वर्णन नहीं हुआ बल्कि मां, बहन के रूप में कवि ने उसे सम्मान दिया।

" किस प्यार से दे रही है मीठी लोरी
हिलती है सुडौल बांह गोरी गोरी
माथे पे सुहाग, आंखों में रस हाथों में
बच्चे के हिंडोले की चमकती डोरी

— — —

रक्षाबन्धन की सुबह रस की पुतली
छायी है घटा गगन पे हल्की हल्की
बिजली की तरह लचक रहे हैं लच्छे
भाई के है बांधती चमकती राखी [303]

मध्यकालीन नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था, न समाज में कोई मान था। नारी की इस स्थिति पर कवि ने कटु व्यंग किये। काव्य में नारी के प्रति जागरूकता स्वस्थ मनःस्थिति के साथ व्यापक जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है—

कर पदाघात अब मिथ्या के मस्तक पर
सत्यान्वेषण के पथ पर निकली नारी
तुम बहुत दिनों तक बनी दीप कुटिया का
अब बनो, क्रान्ति की ज्वाला, की चिंगारी [304]

अली सरदार जाफ़री पर मार्क्स का प्रभाव होने के कारण उनका नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रगतिशील है। वह नारी को भोग्या के रूप में न देखकर साथी के रूप में देखते हैं—

मेरे घर की बरकत है तेरे कदम में
हर एक रंगो राहत की साथी है औरत
जहन्नम को जन्नत बनाती है औरत [305]

फ़िराक भी परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। नारी का साथ दुःख दर्द को मिटा देता है—

तू हाथ को जब हाथ में ले लेती है
दुख दर्द ज़माने के मिटा देती है
संसार के तपते हुए वीराने में
सुख शान्ति की गोया तू हरी खेती है [306]

कवि सारे इल्मो अमल नारी के मधु रूप पर न्योछावर करना चाहता है-

जो दस्ते-नाज़ हुए मर्द की जबीने गुमी
कर वो हर शिकन - गमें जिन्दगी हमवार
करें न अज़मते औरत का हमसे अन्दाजा
तमाम इल्मो अमल उसकी ममता पे निसार [307]

मध्यकालीन सामन्ती युग में कवियों ने जिस नारी सौन्दर्य का वर्णन किया वह महलों का सौन्दर्य था। अलंकारों के बोझसे दबी कोमलांगी का वर्णन कवि करता था किन्तु अब समाज के हर वर्ग की नारी का चित्रण कवि करता है। वह लकड़ी बिनने वाली नारी का पुजारी बन गया है, मालन के रूप में वह उसका सौन्दर्य वर्णन करता है तो कभी जामुन बेचने वालियों के सौन्दर्य का काव्यात्मक चित्रण कवि ने किया है-

बढ़ाए जुल्फें आरिज़ प्यार लहरा के
नहाया कौन चला आ रहा है गंगा से
सिरा दुलाई का सरपर नज़र झुकाए हुए
दबाए दांतों में आंचल बदन चुराए हुए
— — —

अज़ल के दिन से दरे हुस्न का भिखारी हूं
इधर भी इक नज़र मैं तेरा पुजारी हूं [308]।
— — —

आ रही है बाग़ से मालन वो इठलाती हुई
मुस्कुराने में लबों से फूल बरसाती हुई

गुनगुनाती मुस्कुराती लड़खड़ाती झूमती
मिस्ल का बनी हो पर कुछ पैरों कुम जाती हुई [309]

" फिर रही है तरबतर गलियों में सोती जागती
यूं अन्धेरे ही से बाजारों की चौंकाई हुई
दोनों हाथों से संभाले हैं सरों की टोकरी [310]
हाय बांड़ाई की सूरत बांउ शरमाई हुई

इस प्रकार आधुनिक नारी की शोचनीय दशा का वर्णन कवि करता है और उसे समाज के अन्याय से विमुक्त कराने के लिये क्रान्तिकारी बन जाता है। इस युग में नारी सम्बन्धी समस्याओं के सारे आयामों को लेकर एक गतिशील आन्दोलन चलाने के पक्ष में है। उन्हीं के परिणाम स्वरूप आज समाज में नारी प्रगति कर रही और एक प्रतिष्ठित स्थान उसे समाज ने दिया है।

अस्पृश्यता की समस्या का निवारण :

नारी के समान ही अस्पृश्यों की स्थिति समाज में युगों - युगों से चली आ रही थी। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पूरे समाज को चार वर्णों में बांटा गया था। यह विभाजन कार्यों के आधार पर हुआ था। लेकिन कुछ समय बाद यह जाति विशेष की रूढ़ि बन गया और शूद्रों की स्थिति समाज में बदतर होती चली गयी। धर्म सूत्रों में यह उपदेश दिया गया कि वेदपाठ शूद्रों के सामने नहीं हो सकते। उच्चवर्गीय हिन्दुओं के साथ उनका कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं बन सकता था। सवर्ण हिन्दुओं के कुओं से ये लोग पानी नहीं भर सकते थे, न मन्दिर में इन्हें जाने का अधिकार था। इन्हें स्वर्ग प्राप्ति के लिये ब्राह्मण की सेवा करनी पड़ती थी। अछूत जातियाँ शहर के बाहर बस्ती में रहती थीं। अस्पृश्यता हिन्दू जाति के लिये अभिशाप थी। इन दीन - हीन वर्गों का वर्णन कवियों ने किया है-

कहां परित्राण
खुल रहे बन्धु तुम्हें प्राण
बीते अविरत शत - शत
अब्द शब्द अप्रतिहत
उठता है जो फनत
नहीं इन्हें स्थान[311]

निराला समाज की पुरानी व्यवस्थाओं को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। इसलिये समाज के हर वर्ग को वह सम्मान दिलाना चाहते थे। इसी कारण समाज की कोई भी समस्या निराला की दृष्टि से बच नहीं सकी। निराला से पूर्व भारतेन्दु के काव्य में सर्वप्रथम इस समस्या को उठाया गया[312]। " साकेत " में मैथिली शरण गुप्त ने इसी कारण राम और सीता को कोल, किरात, भीलों आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते हुए चित्रित किया है।

ओ भोली कोल - किरात - भिल्ल बालाओ
मैं आप तुम्हारे यहां आ गयी आओ
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ
दो अहो। नव्यता और भव्यता पाओ[313]

हिन्दी काव्य में अछूतों के दुखों का वर्णन तो मिलता है लेकिन अछूतों के प्रति किये जाने वाले सामाजिक अत्याचारों के चित्र अधिक नहीं मिलते।

आधुनिक युग में इस जातिगत विषमता को दूर करने के लिये प्रयत्न किये गये। गांधी जी ने मानव मानव के बीच की घृणा को समाज के लिये अभिशाप समझा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जिस संगठन की आवश्यकता थी वह इस भेद भाव के कारण संगठित होने के स्थान पर खोखला होता जा रहा था। इसलिये यह आवश्यक था कि हर वर्ग के सामाजिक स्तर पर समानता देकर संगठित किया जाय। इससे पहले पूर्व मध्यकाल में भी यह भेद भाव एक सामाजिक समस्या के रूप समाज का

कलंक थी लेकिन इसके विरुद्ध भक्तों और सन्तों ने ज़ोरदार अभियान चलाया था। " जाति-पांति पूछे नहिं कोय हरि को भजे सो हरि का होय " का उपदेश देकर इस समस्या को दूर करने का प्रयास किया था। समाज में ऊंच नीच के भेद भाव को दूर करने के लिये सन्तों और भक्त कवियों ने धार्मिक रूढ़ियों और आडम्बरों की कटु आलोचना की थी। लेकिन उनके इस उपदेश को समाज ने उस समय भी स्वीकार नहीं किया था। फलतः अस्पृश्यों को जब धर्म में समानता नहीं मिली तो अन्य क्षेत्रों में तो समानता दुर्लभ थी। किन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गांधी जी इस समस्या के निवारण के लिये प्रयत्न किया। उनके नेतृत्व में अछूतोद्धार एक राजनैतिक प्रश्न बन गया क्योंकि वो जानते थे कि जाति से निष्कासित यह अंश जब तक समाज का अभिन्न अंग नहीं बन जाता समाज का सुधार असम्भव है। बिना इन बुराइयों को दूर किये अपने लक्ष्य तक पहुंचना मुश्किल है। गांधी जी के प्रयत्नों से १६३२ के बाद अस्पृश्यता निवारण के प्रस्ताव निरन्तर पास होते रहे और रूढ़िवादी जाति - व्यवस्था के टूटने के साथ इस भावना का ह्रास होता गया।

कवियों ने तत्कालीन समाज की इस समस्या को अनेक कविताओं में प्रतिबिम्बित किया। मैथिली शरण गुप्त ने जाति की जीवन शक्ति को क्षीण होने से बचाने का इस संकुचित भावना से उबरने का सन्देश दिया। मानवता के नाते अछूत भी सबके समान हैं कवि अछूतोद्धार के सम्बन्ध में कहता है—

बढ़ो, बढ़ाओ अपनी बांह
करो अछूत जनों पर छांह
हैं समाज के वे ही सपूत
रखते हैं जो सबको पूत[३१५]

निराला राष्ट्र की समस्त शक्तियों का आवाहन हरिजनोद्धार के लिये करते हैं। उनका विचार है कि शूद्रों को जब तक समानता नहीं मिलती, जब तक उनका उद्धार नहीं होता हमारी सारी पूजा, आराधना व्यर्थ है। अस्पृश्य निरन्तर मांगता के

प्रतीक हैं।[315] राम द्वारा शबरी और निषाद के प्रति प्रेम को आधार बनाकर सोहनलाल द्विवेदी अछूतों को समानता देने के लिये उनके मन्दिर प्रवेश का अधिकार मांगते हैं।[316]

इस प्रकार तत्कालीन समाज सुधार के साहित्यकारों- राजनीतिज्ञों ने मनुष्यमात्र के प्रति समता और बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया ।

(द) धार्मिक पक्ष ?

धर्म राष्ट्र को भावात्मक रूप से संगठित रखने का सबसे बड़ा साधन है। राष्ट्र अपने धर्म रूपी शरीर में जीवित रहता है लेकिन धर्म का अर्थ मात्र सम्प्रदाय नहीं है बल्कि उन नियमों को धारण करना है जिससे मानव अपने कर्तव्यों की पहचान सके। किन्तु जब धर्म में रूढ़ियां आ जाती हैं वह संकुचित हो जाता है और लोगों को अपना कर्तव्य भूलने लगता है तो समाज में अन्धकार छा जाता है और उसका पतन होने लगता है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की धार्मिक परिस्थितियां बड़ा विचित्र रूप धारण किये हुए थीं। अनेक सम्प्रदाय और मत खड़े हो जाने के कारण समाज की एकता नष्ट हो रही थी। जादू, टोना, टोटका, प्रेत आदि पर विश्वास करना अभी लोगों ने नहीं छोड़ा था, धर्माडम्बर, पाखण्ड, अन्धविश्वास आदि कुरीतियां धर्म में व्याप्त थीं। अनेक आन्दोलनों को उठ खड़े होने पर भी धर्म का साफ़ रूप जनता के सामने नहीं आया। यद्यपि दयानन्द सरस्वती ने समाज सुधार के साथ - साथ धार्मिक क्षेत्रों की कुरीतियों को भी समाप्त करने का आन्दोलन चलाया लेकिन आर्य समाज का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर ही विशेष रूप से पड़ा और उनमें जातिय स्वाभिमान जगा।

यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जागृति दिखाई देती है लेकिन धार्मिक क्षेत्र में भारतीय जनता अभी भी रूढ़िग्रस्त है। धर्म के नाम पर होने वाले पापाचार जाति को दूषित कर रहे हैं। इसी धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण

सामाजिक जीवन विशृंखल हो गया था । कोई ऐसा बन्धन नहीं था जो नैतिक रूप से समाज को बांध सकता । इतिहास में पहली बार भारत आर्थिक दृष्टि से इतना हीन हुआ था और धार्मिक जीवन भी किसी नवीन आदर्श से प्रेरित न होने के कारण निस्पंदित हो रहा और अंग्रेजों के आगमन के बाद भी धार्मिक क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं आया । यद्यपि अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य ने सामाजिक सुधारों को जन्म दिया । जहां पाश्चात्य प्रभाव ने सांस्कृतिक जागरण को जन्म दिया वहीं अंग्रेजों ने जानबूझ कर भारतीय समाज को अन्धविश्वासों में पड़े रहने दिया और भारतीय धर्मों में वैमनस्य का बीज डालकर रही - सही धार्मिक एकता भी समाप्त कर दी ।

इस काल में जहां एक ओर धार्मिक पतन की स्थिति थी तो दूसरी ओर धर्म में सुधार लाने के प्रयास भी हो रहे थे । कवियों ने धर्म की दुर्गति के विभिन्न रूपों के चित्रण के साथ - साथ धार्मिक सुधारों पर भी विचार किया । उर्दू की अपेक्षा हिन्दी काव्य इस क्षेत्र में अधिक जागरूक दिखाई देता है ।

प्रसाद धर्म की अवस्था पर खेद प्रकट करते हुए लिखते हैं—

गज समान ग्रस्त, द्रौपदी सदृश त्रस्त
सुदामा सा विकल गौतमी सम अपमानित
धर्म रोता है ।[318]

' भारत भारती ' में धार्मिक दुर्दशा का चित्रण किया गया है । धर्म के स्थान पर सम्प्रदायों की प्रबलता, पण्डों की लूटमार, ब्राह्मण - क्षत्रिय आदि सब अपने कार्य से विमुख हो समाज में बढ़ते पाखण्ड का वर्णन किया गया है[318]—गुप्त जी ने उन पाखण्डी साधु - संतों की निन्दा की है जिनका उद्देश्य जनता को लूटकर समाज को खोखला करना है ।[319] धार्मिक अवनति के कारण अन्य धर्म हिन्दुओं को अपनी ओर खींच रहे थे और समाज का पददलित, उपेक्षित वर्ग उन धर्मों की समानता की ओर झुक रहा था । मैथिली शरण गुप्त इस धर्मान्तर की ओर हिन्दू धर्मियों का ध्यान

आकृष्ट करते हैं—

" बने विधर्मी वे अन्जान
मुसलमान किंवा क्रिस्तान
तो हो जाते हैं सुस्पृश्य
हाय दैव, क्या करुण दृश्य
रखते हो यदि तुम कुछ शर्म
करो न अपनों को बेधर्म"[320]

हिंसा और दम्भ प्रदर्शन ही होता है और पशु हत्या की तृष्णा नहीं बुझती[321]।
भारतीय धार्मिक विषमता और व्यवस्था पर व्यंग करते हुए कवि लिखता है—

" पर गुलाब जल में गरीब के अश्रु क्या पायेंगे
बिना नहाए इस जल में क्या नारायण कहलायेंगे
मनुज मेघ के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए
कैसे बचे दीन, प्रभु जी, धनियों के गृह में बन्द हुए"[322]

आर्य समाज अपने क्रान्तिकारी धार्मिक और सामाजिक सुधारों को लेकर प्रस्तुत हुआ
" आर्य समाज अवतार के विरुद्ध झण्डा उठाये हुए था। इसका फल साहित्य
पर भी पड़ा और कृष्ण तथा राम को यथासम्भव मानव चरित्र के रूप में चित्रित किया
गया"[323]।

आधुनिक युग की बदलती हुई परिस्थिति के साथ जीवन के हर क्षेत्र में
परिवर्तन हो रहे थे। आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण समाज और
धर्म में भी परिवर्तन की आवश्यकता हुई। प्रकृति सम्बन्धी नूतन अनुसंधानों से दर्शन
क्षेत्र में भी परिवर्तन आया और यह धर्म अतीत की वस्तु बन गया। धार्मिक क्षेत्र
में क्रान्तिकारी परिवर्तन आर्य समाज और विवेकानन्द ने किये इन परिवर्तन का प्रभाव
साहित्य पर भी पड़ा और धर्म के नाम पर किये जाने वाले पापाचारों की कटु
आलोचना की गयी। दिनकर ने मोक्षवादी विचारधारा का खण्डन किया। कवि

के अनुसार ये मान्यता व्यक्ति को निकम्मा बनाती है। अतः कवि विरक्ति और वैराग्य मार्ग का खण्डन करता है।[324] आर्य समाजी कवियों ने अत्यन्त उग्र रूप से धर्म की रूढ़िगत परम्परा का विरोध किया।

मुसलमान सुधारकों ने भी धर्म में आई बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। इसीलिये वहाबी आन्दोलन शुरू हुआ जो धर्म के मूलरूप का प्रचार करता था। राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े कुछ मुस्लिम कवियों ने सामाजिक विचारों से धर्म का मेल न देखकर धर्म के बन्धन से निकलने का प्रयास किया। जोश ऐसे धर्म को छोड़ने को तैयार थे जो आज़ादी में बाधक था—

> तेरे झूठे कुफ्रो ईमां को मिटा डालूंगा मैं
> हड्डियां इस कुफ्रो ईमां की मिटा डालूंगा मैं
> डाल दूंगा तर्फे नौ कश्मीर और प्रयाग में
> क्योंकि दूंगा कुफ्रो ईमां को दहकती आग में[325]

जोश ऐसे धर्म की निन्दा करते हैं जो इन्सान को इन्सान से दूर करता है। जमील मजहरी, सीमाब अकबराबादी और सागर निज़ामी देश की स्वतन्त्रता के लिये सर्वस्व न्योछावर करने का सन्देश देते हैं और उनकी इस राष्ट्रीयता से धर्म बाधक नहीं है। मुस्लिम कवियों की नवीन पीढ़ी मार्क्स से प्रभावित होने के कारण धर्म और धार्मिक आस्थाओं पर विश्वास ही नहीं करती इस दृष्टि से वे जोश के अधिक निकट हैं। हिन्दी कवियों ने भी धर्म के परम्परागत स्वरूप को नकारा है। आधुनिक युग की राजनैतिक स्थिति को देखकर कवि को धर्म के नाम पर किये जाने वाले कर्म काण्ड व्यर्थ प्रतीत होते हैं। कवि धर्म के उस स्वरूप को नकारता है जो मानव को अनेक वर्गों में बांटता है—

> ईश्वर ईश्वर में आज पड़ गया अन्तर
> टुकड़ों टुकड़ों में बंटा मनुजता का घर
> लो बौद्ध धर्म की खोल, पर कृत्य पुना
> पूजन अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर"[326]

धार्मिक रीति नीतियों के कारण प्रबल होती साम्प्रदायिकता का कवि पर्दाफाश करता है क्योंकि भक्ति और श्रद्धा का ऐसा कुलषित रूप उसे स्वीकार नहीं । धर्म के नाम पर होने वाले शोषण के कारण जन सामान्य अपने स्वस्थ जीवन से कितना दूर होता जा रहा है इस पर नवीन जी आक्रोश प्रकट करते हैं-

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उसी दिन सोचा क्यों न लगा दूं आग इस दुनिया भर को
यह भी सोचा क्यों न ये टेटुआ घोटा जा स्वयं जगतपति का
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का[327]

समाज और युग जीवन को कलुषित होने से बचाने के लिये भारत में सदैव रूढ़िग्रस्त धर्म केविरुद्ध संघर्ष की स्थिति रही है। धर्म जब रूढ़िग्रस्त हो जाता है तब वह जीवन को कुण्ठित कर देता है -

पढ़ता बनी धर्म का भूषण
शठता आचार्य बन बैठी
भूत दया का रूप धरे यह
निपट नपुंसकता है ऐंठी[328]

इस प्रकार कवियों ने धर्माडम्बर, मूर्तिपूजा अन्धविश्वासों का विरोध किया। कवि धर्म को शोषण का साधन मानते हैं और मानवतावादी धर्म की प्रतिष्ठा की बात करते हैं-

मैंने केवल जाना मानव
उन्नत जीवन का श्रेष्ठ मान
उसके ही कंठों से निःसृत
भावी समृद्धि के कलगान
यह स्वर्ग नरक यह पाप पुण्य
उसके ही भावों की रचना[329]

इसी लिये वह देवताओं को मन्दिर- मस्जिद में नहीं ढूंढता उसका धर्म तो मानवतावाद है—

> आरती लिये तू किसे ढूंढता है मस्जिद
> मन्दिरों, राज प्रासादों ये तहखानों में
> देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे
> देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में [330]

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में कवियों ने परम्परा का विरोध करके वस्तुवादी चेतना के स्वर प्रसार किये। धर्म दर्शन से सम्बन्धित परम्परागत संस्थाओं उनकी दीक्षा, पूजा-पाठ, संस्कारों आदि का विरोध किया गया और उन्हें युग दृष्टि के अनुकूल नवीन रूप में देखने का आग्रह बढ़ा।

इस प्रकार लम्बे संघर्षों और कुरबानियों के बाद धीरे - धीरे आशा की किरण दिखाई देने लगी क्योंकि अंग्रेजों को भी ये लगने लगा कि अब इस देश को और गुलाम नहीं रखा जा सकता। साहित्यकार और राजनीतिक नेताओं को भी स्वतन्त्र होने की उम्मीद नज़र आने लगी—

> सबा ने फिर दरे ज़िन्दां पे आके दी दस्तक
> सहर क़रीब है दिल से कहो न घबराये [331]

फ़ैज़ प्रगतिवादी होने के कारण बहुत अधिक आशावान हैं क्योंकि कवि को विश्वास है कि देश अपनी मन्तव्य को अवश्य प्राप्त करेगा। शीघ्र से शीघ्र स्वतन्त्र देश को देखने का इच्छुक कवि अपने हृदय को समझाने की कोशिश करता है—

> यही तारीकी तो है ग़ाज़ए रुख़्सारे सेहर
> सुबह होने ही को है ऐ दिले बेताब ठहर [332]

फैज इसी भावुकता में अपनी मातृभूमि के हर दुख दर्द को बांट कर उसे सुखी देखना चाहते हैं। इस भाव को अत्यन्त कोमल और सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। अपनी भावुकता के कारण वह अलग- सा दिखाई देता है—

गर मुझे इसका यक़ीं हो मेरे हमदम मेरे दोस्त
गर मुझे इसका यक़ीं हो कि तेरे दिल की थकन
तेरी आंखों की उदासी, तेरे सीने की जलन
मेरी दिलजोई मेरे प्यार से मिट जायेगी
मेरा हरफ़ तसल्ली वो दवा हो जिससे
जी उठे फिर तेरा उजड़ा हुआ बेनूर दिमाग
तेरी पेशानी से धुल जाए ये तजलील के दाग
तेरी बीमार जवानी को शफ़ा हो जाए
गर मुझे इसका यक़ीं हो मेरे हमदम मेरे दोस्त
रोज़ो शब शामो सहर मैं तुझे बहलाता रहूं
मैं तुझे गीत सुनाता रहूं हल्के शीरीं
आबशारों के बहारों के चमन ज़ारों के गीत
आमदे सुबहो के महताब के सैय्यारों के गीत[333]

अन्तत: दीर्घ कालीन संघर्ष के उपरान्त कांग्रेस सभा में पूर्ण स्वाधीनता को लक्ष्य बनाते हुए घोषणा की गयी " हम भारतीय प्रजाजन अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें। अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकास का पूरा मौक़ा मिले। हम यह भी मानते हैं कि जब कोई सरकार यह अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने का या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया बल्कि उसका अधिकार गरीबों के रक्त और शोषण पर भी है, और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष को नाश कर दिया है। अत: हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए"[334]। इस प्रकार लगातार स्वतन्त्रता की मांग करते रहने के उपरान्त स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

स्वाधीनता स्वागत :

१५ अगस्त सन् १९४७ ई० को भारत सदियों से पैरों में पड़ी दासता की बेड़ी को तोड़कर स्वतन्त्र हो गया किन्तु जातीय विभेद के आघात को सहन नहीं कर सकी । उसका भी विकास और स्वरूप खण्डित हो गया । भारत के दो टुकड़े हो गये । एक भारत और दूसरा पाकिस्तान कहलाया । पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिन्धु ब्लूचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत का भाग सम्मिलित था । शेष बचा भाग भारत में रहा । यह विभाजन निश्चित ही अंग्रेजों की कूटनीति की सफलता का परिणाम था । भारतवासियों ने इसी में सन्तोष किया और उस गुलामी के नारकीय जीवन की अपेक्षा देश का विभाजन श्रेयस्कर समझा । भारत को जिस स्थिति में अंग्रेज छोड़ गये थे उसे संभालना आसान काम नहीं था । दक्षिण भारत में हैदराबाद की महत्वाकांक्षा सिर उठा रही थी, उत्तर भारत में लीग साम्प्रदायिकता की आग सब कुछ भस्म कर देना चाहती थी, कश्मीर की सैनिक कार्यवाही के परिणाम कुछ भी हो सकते थे । इस प्रकार सर्वत्र एक चुनौती देश के सामने थी । आज़ादी की कीमत उसी वक्त खून और आंसुओं से चुकानी पड़ी ।[335] हिन्दी कवियों के साथ उर्दू कवियों ने भी इस विभाजन और फ़िरकापरस्ती साम्प्रदायिक भावनाओं के प्रति दुःख व्यक्त किया—

गारतो कत्ल की है गरमिए बाजार वही
अभी इन्सान की है फितरते खूं ख़ार वही

— — —

जो तअस्सुद का करे ज़िक्र वही कौम परस्त
नाम मुंहे से जो ले अम्न का गद्दार वही
फ़िरका वाराना हकीमों की दवा से होशियार
मैल में आज मोआलिज़ के है बीमार वही
वतन ! ऐ मेरे वतन ! यूं मुझे मायूस न कर
खून पड़ी आई है तेरी इसे मनहूस न कर[336]

फिर भी शताब्दियों के बाद भारतीयों ने स्वतन्त्रता देवी के दर्शन किये थे। इसलिये इस दीर्घकालीन संघर्ष और अनेक बलिदानों के पश्चात् प्राप्त स्वतन्त्रता का स्वागत हो गया। जन गण के हृदय में उल्लास होने लगा तथा खुशी की उमंगें उठने लगीं। कवियों ने विजय घोष करके जन जागरण गीत गाये। उनके सामने स्वस्थ एवं उन्नत भविष्य के स्वप्न मंडराने लगे। अब उनकी कविता में दुःख, वेदना, अवसाद के स्थान पर हर्ष और उन्माद के स्वर ध्वनित होने लगे—

विजय ध्वजा फहराओ
वन्दनवार बंधाओ
आओ है स्वतन्त्र्य मनाओ[337]

हिन्दी तथा उर्दू कवियों ने समान रूप से स्वतन्त्रता का स्वागत किया—

मचलती है चमन में कैसी रूत यूं आई आज़ादी
अहिंसा के पयम्बर ने हमें दिलाई आज़ादी[338]

स्वतन्त्रता का गान अनेक कवियों ने किया। बच्चन की `धरा के इधर उधर` में स्वतन्त्रता के स्वागत के साथ नयी जिम्मेदारियां उत्तरदायित्व और गौरव की ओर संकेत मिलता है। उर्दू काव्य ने आज़ादी का स्वागत बहुत खुशी के साथ किया गया—

बसद गुरूर फ़ख़्र व नाज़ आज़ादी
मचल के खुल गई जुल्फदराज़ आज़ादी
महो नुजूल है नग़मा तराने आज़ादी
वतन ने छेड़ा है इस तरह साजे आज़ादी

ज़माना रक्स में है जिन्दगी गज़ल खां है
हर एक जबीं पर है एक मौजनूर आज़ादी
हर आंख में है कैफ़-व-सुरूर आज़ादी
गुलामी ख़ाक बसर है हुजूर आज़ादी

हर एक क़ब्र है एक बाग़ तुर आज़ादी
हर एक बाग़ में एक परचम तुर अ फ़शां है [350]

वास्तव में भारत ने अपनी आज़ादी को केवल अपने देश की मुक्ति के रूप में नहीं मनाया, अपनी बन्धन मुक्ति को उसने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद से सभी परतंत्र देशों की मुक्ति के प्रतीक के रूप में मनाया। कवि भारत की स्वतन्त्रता के साथ पूरे विश्व को स्वतन्त्र देखने की मंगलमयी कामना करता और अपनी सांस्कृतिक परम्परा को उद्घाटित करता है—

सभ्य हुआ अब विश्व, सभ्य धरणी का जीवन
आज खुले भारत के संग भू के जड़ बन्धन
शांत हुआ अब युग - युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण
धन्य आज का स्वर्ण - दिवस, नवलोक जागरण
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हों दिशि क्षण
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन

आज़ादी के बाद सर्वत्र आनन्द और उल्लास छा गया था। सबकी आंखों में अनेक प्रकार के नये स्वप्न अंगड़ाइयां लेने लगे। किन्तु कवि सजग था। उसने जनता को कर्त्तव्यबोध के प्रति सचेत किया [351]। क्योंकि देश स्वतन्त्र तो हो गया था, किन्तु अनेक प्रकार की आशा कवि मन को झकझोर रही थी—

ऊंची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी
छायाओं का डर है [352]।

इसलिए अनेक प्रकार का दायित्व भी आ पड़ा। किन्तु इसमें गौरव की भावना भी विद्यमान थी। दुनिया के बीच भारत स्वाधीन मस्तक उठाए खड़ा था।

अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत देश आर्थिक शोषण से जर्जर हो गया था।

ग़रीब लोगों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था इसलिए साधारण जन में आशा बंधी कि अब स्वतन्त्रता के साथ - साथ समानता - शोषण मुक्ति एवं कल्याण की भावना का विकास होगा। कवि को भी देश की धरती सोना उगलती दिखाई देने लगी --

" बड़े नाज़ से उभरा है सूरज
हिमाला के ऊंचे कलश जगमगाए
पहाड़ों ने चश्मों को सोना बनाया
नये बल नये नूर उनको सिखाये
हिबोस ज़रीं आबशारों ने पाया
नशीबी जमीनों पै छींटे उड़ाये [343]

किन्तु आशा और उल्लास के इस वातावरण में विषाद का धुवां भी फैला हुआ था। अंग्रेज जाते जाते भारत को दो खण्डों में विभाजित कर गए थे--भारत और पाकिस्तान। धर्म और सम्प्रदाय को आधार बनाकर किया गया यह विभाजन हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों के लिये सुखद कदापि नहीं था। फिर भी धर्म के नाम पर ये दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे थे। धर्म के नाम पर हिंसा का नग्न नृत्य हो रहा था। साम्प्रदायिक घृणा और विद्वेष की आग में देश धूं धूं करके जल रहा था।

एक और यह प्रवाद भी प्रचलित था कि गांधी जी ने विभाजन का सक्रिय विरोध नहीं किया। फलतः जनता के एक वर्ग ने यह भी प्रचार किया कि भारत विभाजन में गांधी जी की भी मौन सम्मति है। किन्तु प्रबुद्ध वर्ग यह जानता था कि गांधी जी का इसमें कोई दोष नहीं था [344] क्योंकि जब देश के अन्य नेता निहित स्वार्थ के कारण देश के विभाजन पर सहमत हो गये और सम्पूर्ण भारत में साम्प्रदायिक हिंसा की अग्नि भड़क उठी, तो उस विषम समय में भी गांधी जी स्थान - स्थान पर पैदल घूम घूम कर शान्ति और सौहार्द्र का वातावरण बनाने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। जो मुसलमान इस संघर्ष में अपनी मातृभूमि छोड़कर नहीं गये थे उनकी भावनाओं का आदर करते हुए गांधी जी उनके हितों की रक्षा पर विशेष बल देते थे। कुछ

धर्मान्ध हिन्दुओं ने इस भावना को मुसलमानों के प्रति गांधी जी का पक्षपात समझा और गांधी जी की हत्या की योजना बनाई। फलस्वरूप नाथूराम गोडसे ने एक दिन प्रार्थना सभा में जाते हुए गांधी जी को अपनी गोली का निशाना बना दिया। गांधी जी की हत्या पर सारा देश चीत्कार कर उठा और पुनः दंगों में हिंसा भड़क उठी। यह समझ में नहीं आया कि उस अजातशत्रु से किस शत्रुता का बदला चुकाया गया था। यह स्पष्ट था कि गांधी जी भारत विभाजन के कारण ही बलिदान हुए थे। गांधी जी की मृत्यु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बहुत बड़ा आघात था किन्तु धीरे - धीरे स्थिति संभल गयी। गांधी जी की मृत्यु से भारतीय राजनीति एवं इतिहास का एक अध्याय समाप्त हुआ।

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची


१- गोविन्द राम शर्मा : हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियां, पृष्ठ-६७

२- डा॰ शिव कुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, , पृष्ठ-३०

३- डा० राजपाल शर्मा : हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ०-२१

४- चन्द्रबरदाई : पृथ्वीराज रासो, पृष्ठ-५५५

५- -वही- पृष्ठ-५४८

६- -वही- वही

७- -वही- पृष्ठ-५८१

८- -वही- पृष्ठ-५५५

९- -वही- पृष्ठ-३१८

१०- -वही- पृष्ठ-२८८

११- जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृष्ठ-२३७

१२- कबीर वचनावली : सम्पा०- अयोध्यासिंह उपाध्याय, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-१३५

१३- कबीर ग्रन्थावली : " - श्याम सुन्दर दास

१४- -वही-

१५- -वही-

१६- -वही-

१७- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, आठवां संस्करण, पृ०-६२

१८- डा० भगीरथ मिश्र : कला साहित्य और समीक्षा, पृष्ठ-८९

१९- कबीर : कबीर ग्रन्थावली, पद-२२२

२०- -वही- अं०-१, साखी-३१

२१- -वही- पद-२२९

२२- जायसी : पद्मावत, सम्पा०-वासुदेवशरण अग्रवाल, दोहा-२७६

२३- आदित सुक पछिउं दिसि राहू । बीफै दखिन लंक दिसि दाहू ।।

सोम सनीचर पुरुब न चाहू । मंगल बुद्ध उत्तर दिसि कालू ।।

जायसी : पद्मावत, रामचन्द्र शुक्ल, रत्नसेन बिदाई खण्ड, दोहा-पृ०-१४४

२४- जायसी : पद्मावत, पृष्ठ- १०७-१०६

२५- - वही - पृष्ठ- १०७

२६- तुलसी : रामचरित मानस, उत्तर काण्ड, दोहा-२०

२७- - वही - अयोध्या काण्ड, दोहा-२४३।३-४

२८- - वही - दोहा-४२।१

२९- - वही - बालकाण्ड, दोहा-२२६

३०- डा० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य के बृहद् इतिहास, पृष्ठ-१८

३१- बिहारी : बिहारी सतसई, पृष्ठ-१०

३२- - वही - पृष्ठ-१४

३३- - वही - पृष्ठ- १३

३४- - वही - पृष्ठ- २०३

३५- - वही - पृष्ठ- १०६

३६- - वही - पृष्ठ- १

३७- - वही - पृष्ठ- २५३

३८- - वही - पृष्ठ - २५४

३९- भूषण : शिवाबावनी, पद-४८, पृष्ठ-२२८

४०- डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ-३७

४१- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृष्ठ-५८-५६

४२- दिनकर : काव्य की भूमिका, पृष्ठ-४२

४३- मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ-१६

४४- - वही - " पृष्ठ-१३-१४

४५- - वही - " पृष्ठ-४६

४६- - वही - " पृष्ठ-४३

४७- - वही - हिन्दू पृष्ठ-३३

४८- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृष्ठ-१३

४६- - वही - पृष्ठ-१४

५०- सियाराम शरण गुप्त : मौर्य विजय, पृष्ठ-६

५१- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृष्ठ-१५

५२- - वही - -वही -

५३- रामनरेश त्रिपाठी : मानसी, पृष्ठ-३७-३६

५४- अभिमन्यु धोखा कर्ण का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं
क्या आर्य वीर विपक्ष वैभव देखकर डरते कहीं ?

सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश कथा
उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सर्वथा
मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ वध, पृष्ठ-६

५५- सियारामशरण गुप्त : मौर्य विजय, पृष्ठ-१०

५६- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास-त्रयोदश सर्ग, पृष्ठ-१८३

५७- मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर, पृष्ठ-८५

५८- - वही - साकेत, पृष्ठ-१६७

५६- - वही - पृष्ठ-१६६

६०- श्यामनारायण पाण्डेय : हल्दीघाटी, पृष्ठ-११६-१७

६१- सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृष्ठ-३६

६२- - वही - पृष्ठ-३३

६३- - वही - प्रभाती पृष्ठ-३०-३१

६४- जयशंकर प्रसाद : महाराणा का महत्व, पृष्ठ-१५

६५- - वही -

६६- निराला : शिवाजी का पत्र परिमल, पृष्ठ-१६७

६७- मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती : पृष्ठ-८६

६८- निराला : जागो फिर एक बार, अपरा, पृष्ठ-६

६६- -वही - छत्रपति शिवा जी का पत्र, अपरा, पृष्ठ-७८

७०- प्रसाद : स्कन्द गुप्त, कविता हिमालय के आंगन में, पृष्ठ-१६३
७१- प्रसाद : श्रद्धा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-२३
७२- - वही - पृष्ठ- २२
७३- - वही - पृष्ठ - २५
७४- दिनकर : पाटली पुत्र की गंगा से : रेणुका, पृष्ठ-२५
७५- महादेवी वर्मा : नीरजा; पृष्ठ - १०३
७६- प्रसाद : लहर, पृष्ठ - ३३
७७- दिनकर : हिमालय, रेणुका, पृष्ठ-७
७८- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ-३०
७६- नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य(भूमिका) पृष्ठ-१२
८०- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; हिन्दी साहित्य, पृष्ठ-३६५
८१- डा० नन्ददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य नया प्रश्न, पृष्ठ-३
८२- डा० सुधाकर शंकर कलवडे : आधुनिक हिन्दी कविता में: राष्ट्रीय भावना, पृ०-२६४
८३- डा० नरेश-जोश की शायरी में हिन्दोस्तानियत, नया दौर, पृष्ठ-२७-२८
सितम्बर - अक्टूबर-१६५५
८४- डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक साहित्य का विकास, पृष्ठ-७६
८५- मैथिलीशरण गुप्त : मंगल घट, पृष्ठ-३३
८६- सुरूर जहां आबादी : मादरेवतन, इन्तेखाब-ए-मन्जूमात, भाग-१, पृष्ठ-२६
८७- - - वही - गंगा - वही - पृष्ठ-२६
८८- प्रो० एहतेशाम हुसैन : उर्दू साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ-१७७
८६- प्रसाद : चन्द्रगुप्त चतुर्थ अंक, पृष्ठ-१७३
६०- चकबस्त : नौजवानों से खिताब, सुबहेवतन, पृष्ठ-५३
६१- जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त, दूसरा अंक, पृष्ठ-८६
६२- सियारामशरण गुप्त, मौर्यविजय, पृष्ठ-१६
६३- मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत, पृष्ठ-१३
६४- इकबाल : तराने-ए-हिन्दी-कुल्लियाते इकबाल, पृष्ठ-७४

९५- इक़बाल : तरान-ए-हिन्दी-कुल्लियाते इक़बाल,पृष्ठ-७५

९६- मैथिलीशरण गुप्त : मातृभूमि,पद्य प्रबन्ध,पृष्ठ-५५

९७- इक़बाल : हिन्दुस्तानी बच्चों का क़ौमी गीत-कुल्लियाते इक़बाल,पृष्ठ-७८

९८- हरिऔध : प्रिय प्रवास, एकादश, द्वादश सर्ग, पृष्ठ-१५०-१६२

९९-मैथिलीशरण गुप्त : साकेत अष्टमसर्ग,पृष्ठ-१६७

१००- प्रसाद : महाराणा प्रताप का महत्व : पृष्ठ-९५-९८

१०१- श्यामनारायण पाण्डेय : हल्दीघाटी,पृष्ठ-११६-११७

१०२- नवीन : विप्लव गायन, कुंकुम,पृष्ठ-

१०३- सोहनलाल द्विवेदी, भैरवी,पृष्ठ-३६

१०४- - वही - प्रभाती,पृष्ठ-३२

१०५- वामिक़ जौनपुरी : जरस, पृष्ठ-१२९

१०६- चकबस्त : ख़ाके वतन, सुबहेवतन,पृष्ठ-२

१०७- - वही - हमारा वतन दिल से प्यारा वतन-सुबहेवतन,पृष्ठ-३३

१०८- - वही - लाले कौन - सुबहेवतन,पृष्ठ-५०-५२

१०९- - वही - कृष्ण कन्हैया - सुबहेवतन,पृष्ठ-५८-६२

११०- - वही - नौजवाने से ख़िताब - सुबहेवतन,पृष्ठ-५३

१११- जोश : जश्न - ए - इस्तेक़लाल - सुमूम-व-सबा - पृष्ठ-३१

११२- सियारामशरण गुप्त- बापू , पृष्ठ-६७

११३- इक़बाल : परिन्दे की फ़रियाद - कुल्लियाते इक़बाल,पृष्ठ-३९

११४- मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती,पृष्ठ-१०

११५- इक़बाल - तस्वीरे दर्द - कुल्लियाते इक़बाल,पृष्ठ-६२

११६- - वही - - वही - पृष्ठ-६४

११७- - वही - - वही - पृष्ठ-६५

११८- निराला : जागो फिर एक बार, अपरा,पृष्ठ-१९-२०

११९- निराला : - वही - पृष्ठ-२०

१२०- - वही- बेला पृष्ठ-७३

१२१- - वही - भारती वन्दना गीतिका पृष्ठ-७३

१२२- मोहनलाल द्विवेदी ? प्रभाती : पृष्ठ-११

१२३- सुरूर जहां आबदी : मादरेवतन - उन्तखाबे अन्दुमात, भाग-१, पृष्ठ-२८

१२४- - वही - चिश्तीकरा सोज़ - वही - पृष्ठ-२९

१२५- दिनकर : अनल किरीट - हुंकार, पृष्ठ-२७-२८

१२६- जवानी का झण्डा, सामधेनी, पृष्ठ-७९

१२७- दिनकर ? कुरुक्षेत्र पृष्ठ-३१

१२८- माखनलाल चतुर्वेदी : हिमतरंगिनी - हिमकिरीटिनी, पृष्ठ-१४०

१२९- बच्चन : बंगाल का काल, पृष्ठ-८३-८४

१३०- तप नहीं केवल जीवन सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद
तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का आह्लाद।
प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अतिशीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।
प्रसाद : श्रद्धा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-८३-८४

१३१- शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूंज रहा जयगान
डरो मत अरे अमृत संतान। अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र खिंची आवेगी सकल समृद्धि
प्रसाद : श्रद्धा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-२५

१३२- दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात
प्रसाद : श्रद्धा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-२४

१३३- इकबाल : बाले जिबरील - कुल्लियाते इकबाल - पृष्ठ-३५३

१३४- दिनकर : रेती के फूल, पृष्ठ-३६

१३५- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-६०५

१३६- सियाराम शरण गुप्त : आत्मोत्सर्ग, पृष्ठ-६६

१३७- इकबाल : तराने दर्द-कुल्लियाते इकबाल, पृष्ठ-४३

१३८- हरिऔध : जीवन प्रोत भारत, पद्मप्रसून, पृष्ठ-६६३

१३९- रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृष्ठ-६६

१४०- इक़बाल : तराना-ए हिन्दी, कुल्लियाते इक़बाल, पृष्ठ-७४
१४१- सुरूर जहाँ आबादी -उरूसे हुब्बेवतन-इन्तेख़ाब मन्जूमात, पृष्ठ-२५
१४२- डा० सुधाकरशंकर कलवडे : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ०-२३
१४३- जोश मलीहाबादी : बज़्म-ए-इस्तेक़लाल-गुमुम-व-सबा, पृष्ठ-२६
१४४- मैथिलीशरण गुप्त, हिन्दू, पृष्ठ-२०२
१४५- -वही- भारत भारती, पृष्ठ-१०७-१६३
१४६- -वही- गुरुकुल, पृष्ठ-१५०
१४७- पंत : मनुष्यत्व, स्वर्णधूलि, पृष्ठ-२१
१४८- सियारामशरण गुप्त : आत्मोत्सर्ग, पृष्ठ-७०
१४९- इक़बाल : नया शिवाला - कुल्लियाते इक़बाल, पृष्ठ-८८-८९
१५०- पंत : संस्कृति द्वार, लोकायतन, पृष्ठ-१२८
१५१- दिनकर : तक़दीर का बंटवारा, हुंकार, पृष्ठ-७१
१५२- - वही - है मेरे स्वदेश- सामधेनी, पृष्ठ-३५-३६
१५३- - वही - बापू, पृष्ठ-२०
१५४- हफ़ीज़ जालन्धरी, नग़मा ज़ार, पृष्ठ-१४१
१५५- अकबर इलाहाबादी- कुल्लियाते अकबर-भाग-१, पृष्ठ-२८५
१५६- - वही - पृष्ठ-३७६
१५७- - - - - - - - - - -
१५८- - - - - - - - - - -
१५९- रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, तीसरा सर्ग, पृष्ठ-५०
१६०- माखनलाल चतुर्वेदी : कैदी और कोकिला, हिमकिरीटिनी, पृष्ठ-१९
१६१- सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृष्ठ-३७, ६८, ७२
१६२- अकबर इलाहाबादी : कुल्लियाते अकबर, भाग-१, पृष्ठ-२७३
१६३- - वही - पृष्ठ-२६२
१६४- - वही - पृष्ठ-३७६
१६५- - वही - पृष्ठ-१३३

१६६- - - - - - - - - - - - -

१६७- - - - - - - - - - - - -

१६८- - - - - - - - - - - - -

१६९- नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ-२७

१७०- डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्य धारा, पृष्ठ-१८५

१७१- पंत : युगवाणी, पृष्ठ-४

१७२- - वही - ग्राम्या, पृष्ठ-१०८

१७३- सोहनलाल द्विवेदी, प्रभाती, पृष्ठ-३०

१७४- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत अष्टम सर्ग, पृष्ठ-१६६-६७

१७५-बालकृष्ण शर्मा नवीन, विप्लव गान-कुंकुम, पृष्ठ-१०

१७६- हफ़ीज जालन्धरी : इन्क़िलाब - नग़माज़ार, पृष्ठ-१५१

१७७- निराला : बादलराग - परिमल, पृष्ठ-१७६

१७८- सोहनलाल द्विवेदी : विप्लव गीत, भैरवी, पृष्ठ-१३२

१७९- वामिक जौनपुरी : कौन झंडा, जरस, पृष्ठ-१००

१८०- - वही - जरस, पृष्ठ-१५३

१८१- - वही - पृष्ठ-५१, १२६, ५५

१८२- - वही -

१८३- निराला : उद्बोधन, परिमल, पृष्ठ-१२८

१८४- पंत : द्रुत झरो - युगान्त, पृष्ठ-१५

१८५- जोश मलीहाबादी : शिकस्ते ज़िन्दां का ख़्वाब - सुम्बुल व सबा, पृष्ठ-६५

१८६- बच्चन : क्रांति-शांति-प्रारम्भिक रचनाएं, भाग-२, पृष्ठ-६०-६१

१८७- - वही - पृष्ठ-१३३

१८८- दिनकर : तांडव - रेणुका, पृष्ठ-२

१८९- प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ-१५२

१९०- प्रसाद : आशा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-१५

१६१- प्रसाद : आशा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-१४ - १५

१६२- पंत : गुंजन

१६३- महादेवी : यामा, पृष्ठ-१४७

१६४- रामकुमार वर्मा, अंजलि, पृष्ठ-७

१६५- पंत : ग्रंथि, पृष्ठ-८०

१६६- रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग-१, पृष्ठ-७६

१६७- प्रसाद : कानन कुसुम, पृष्ठ-११०

१६८- मधुरिमा में अपनी ही मौन एक सोया सन्देश महान
सजग हो करता था संकेत चेतना मचल उठी अनजान
प्रसाद : श्रद्धा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ-२३

१६६- इकबाल ? हिमाला - कुल्लियाते इकबाल, पृष्ठ-२७

२००- महादेवी : नीरजा, पृष्ठ-१४

२०१- प्रसाद : कानन कुसुम, पृष्ठ-३६

२०२- - वही - पृष्ठ-४१

२०३- - वही - पृष्ठ-४२

२०४- - वही - पृष्ठ-४३

२०५- निराला : जुही की कली - परिमल, पृष्ठ-१६१-६३

२०६- - वही - पृष्ठ-१६६-६७

२०७- सुरूर जहां आबादी : फिरदौस बरहिजाल-इन्तखाबे मन्जूमात, पृष्ठ-३०

२०८- - वही - वीर बहूटी; ~~पृष्ठ-२२~~ - वही - पृष्ठ-32

२०९- पंत : गुंजन, पृष्ठ-३३

२१०- अख्तर शीरानी : वो देस से आने वाले बता, ~~कुल्लियाते~~ मन्जूमात - पृष्ठ-६८

२११- - वही - बादिरा गंगा में एक रात, ~~पृष्ठ-७०~~ वही - पृष्ठ-60

२१२- इकबाल : एक आरजू- कुल्लियाते इकबाल, पृष्ठ-४६ - ४७

२१३- प्रसाद : दर्शन - कामायनी, पृष्ठ-१०७

२१४- पंत : पल्लव, पृष्ठ-६४

२१५- जोश - तुलूर फ़िक्र, पृष्ठ-८

२१६- महादेवी - यामा, पृष्ठ-१४७

२१७- निराला : भारती-वन्दना : अपरा : पृष्ठ - 13

२१८- निराला : सखि वसन्त आया - गीतिका, पृष्ठ-७२

२१९- - वही - मेघ के घन केश - गीतिका, पृष्ठ-५

२२०- - वही - सखी री बदलाव वसन वासन्ती लेगी, पृष्ठ-१०२

२२१- इक़बाल : हिमाला, कुल्लियाते इक़बाल, पृष्ठ-२७- २८

२२२- जिगर मुरादाबादी, शोल-ए-तूर, पृष्ठ-१४६

२२३ - जोश : जमना के किनारे - नक्शो निगार, पृष्ठ-१६

२२४- इक़बाल : कुल्लियाते इक़बाल, पृष्ठ-२०८

२२५- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारत दुर्दशा, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-४६६

२२६- डा० केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा, पृष्ठ-५४

२२७- बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : पृष्ठ-२७

२२८- रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृष्ठ-४५

२२९- - वही - मिलन, पृष्ठ-४

२३०- मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृष्ठ-८६

२३१- जोश : सुम्बुल व सलासिल, पृष्ठ-१४६

२३२- निराला : भिक्षुक - अपरा, पृष्ठ-६६

२३३- निराला : तोड़ती पत्थर, अनामिका- पृष्ठ-७६

२३४- जोश : यह खिलौना नक्शो निगार - पृष्ठ-७४

२३५- निराला : नया पत्ता, पृष्ठ-३२

२३६- केदारनाथ अग्रवाल : युग की गंगा, पृष्ठ-३५

२३७- पंत : ग्राम्या, पृष्ठ-१३-१६

२३८- डा० राधाकृष्णन : पूर्व और पश्चिम कुछ विचार, पृष्ठ-१२५

२३९- अली सरदार जाफ़री : सोवियत यूनियन और जंगाज़-

अम्न का सितारा, पृष्ठ-१३

२४०- इक़बाल : सरमाया मेहनत, कुल्लियाते इक़बाल, पृष्ठ-२०६

२४१- पंत : मूलदर्शन, युगवाणी, पृष्ठ-२६

२४२- पंत : साम्राज्यवाद - युगवाणी, पृष्ठ-३६

२४३- वामिक जौनपुरी - गुमराह रहबर से - जरस पृष्ठ-१०८

२४४- केदारनाथ अग्रवाल : युग की गंगा, पृष्ठ-४६

२४५- निराला : बादल राग - परिमल, पृष्ठ-

२४६- वामिक जौनपुरी - कौन हंसा - जरस - पृष्ठ-१००

२४७- - वही - आंख लाते ही -- ? जरस, पृष्ठ-५५

२४८- मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ-६३

२४९- - वही - किसान, पृष्ठ-२३

२५०- डा० शम्भुनाथ पाण्डेय - आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृष्ठ-१६

२५१- वामिक जौनपुरी : जनता की लड़ाई - जरस - पृष्ठ-१२६

२५२- फैज़ अहमद फ़ैज - तराना - दस्तेसबा ( कलामे फैज़ ) पृष्ठ-११७

२५३- - वही - कुत्ते - नक़्शे फ़रयादी ( कलामे फ़ैज ) पृष्ठ-६५

२५४- - वही - नक़्शे फरियादी, पृष्ठ-७५

२५५- दिनकर : हाहाकार, हुंकार, पृष्ठ-२२

२५६- - वही - कस्मै देवाय, रेणुका, पृष्ठ-३२-३३

२५७- फिराक़ गोरखपुर : शामे अयादत, गुलेनग़मा, पृष्ठ-२४१ - ४२

२५८- फ़िराक गोरखपुरी : मजदूरों, कारीगरों, शिल्पकारों की ललकार, गुले-नग़मा पृष्ठ-१८८ से १९५

२५९- मुक्तिबोध : पूंजीवादी समाज के प्रति, तार सप्तक, पृष्ठ-६१

२६०- फिराक़ - दास्ताने आदम, गुलेनग़मा, पृष्ठ-१७६

२६१- दिनकर : कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-१०२

२६२- - वही - कस्मै देवाय, रेणुका, पृष्ठ-३३

२६३- बच्चन : बंगाल का काल, पृष्ठ-८

२६४- वामिक जौनपुरी, भूका बंगाल, जरस, पृष्ठ-१२१

२६५- रामविलास शर्मा, तार सप्तक, पृष्ठ-२४८

२६६- मोहनलाल द्विवेदी, भैरवी, पृष्ठ-६ - ८
२६७- मैथिली शरण गुप्त : साकेत अष्टम सर्ग, पृष्ठ-१६१
२६८- मोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृष्ठ-८
२६९- पंत : पल्लविनी : पृष्ठ-२५७
२७०- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य ( १८५०-१९००ई०)
पृष्ठ-११
२७१- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : कुसुम प्रसून, पृष्ठ-३५
२७२- रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृष्ठ-४५
२७३- भारत भूषण अग्रवाल, जीवनधारा, दूसरा सप्तक, पृष्ठ-६३
२७४- केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, पृष्ठ-२
२७५- पंत : द्रुत झरो, युगान्त, पृष्ठ-५४
२७६- हफ़ीज जालन्धरी : कृष्ण कन्हैया- नग़मा-ए-ज़ार, पृष्ठ-३७
२७७- रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृष्ठ-४७
२७८- मैथिली शरण गुप्त : हिन्दू, पृष्ठ-३६
२७९- - वही - भारत भारती, पृष्ठ-१४०
२८०- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय - भूमिका, पृष्ठ-१३
२८१- मैथिली शरण गुप्त, हिन्दू, पृष्ठ-१६४ - १६५
२८२- सोहनलाल द्विवेदी, प्रभाती, पृष्ठ-५
२८३- डा० रामविलास शर्मा : निराला, पृष्ठ-१८६
२८४- भारत भूषण अग्रवाल : तार सप्तक, पृष्ठ-६३
२८५- सियारामशरण गुप्त, नकुल, पृष्ठ-१
२८६- - वही - नकुल, पृष्ठ-११८
२८७- निराला, परिमल, पृष्ठ-२०४ -२०५
२८८- सोहनलाल द्विवेदी, भैरवी, पृष्ठ-१७७
२८९- दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-२७
२९०- दिनकर : कस्मै देवाय, रेणुका, पृष्ठ-३२

२९१- दिनकर : कहानियां , सामधेनी ,पृष्ठ-८४

२९२- - वही - कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-१०६

२९३- पंत : युगान्त, पृष्ठ-१६

२९४- मैथिलीशरण गुप्त, (अ) हिन्दू,पृष्ठ-६२

(ब) भारत भारती ,पृष्ठ-१४०

२९५- निराला : विधवा,परिमल,पृष्ठ-११०

२९६- दिनकर : विधवा - रेणुका, पृष्ठ-६६

२९७- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, सप्तम सर्ग,पृष्ठ-१४८

२९८- अयोध्यासिंह उपाध्याय'हरिऔध': चुभते चौपदे,पृष्ठ-२०१

२९९- महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियां,पृष्ठ-१४ - १५

३००- निराला : मुक्ति, अनामिका,पृष्ठ-१३७

३०१- अली सरदार जाफ़री : अम्न का सितारा,पृष्ठ-७२

३०२- पंत : नारी-युग वाणी,पृष्ठ-६४

३०३- फिराक गोरखपुरी : रुबाइयात गुलेनगमा,पृष्ठ-२६३

३०४- पंत : ग्राम्या,पृष्ठ-६७

३०५- अली सरदार जाफ़री : नई दुनिया के सलाम और नमहूर,पृष्ठ-२१

३०६- फ़िराक गोरखपुरी : रुबाइयात - गुलेनगमा,पृष्ठ-२६३

३०७- - वही - हुस्न की देवी से - गुले नगमा,पृष्ठ-२४७

३०८- जोश मलीहाबादी ,गंगा के घाट पर-नक्शोनिगार,पृष्ठ-२१

३०९- - वही - मालन - नक्शो निगार,पृष्ठ-२२

३१०- - वही - जामुन वालियां - नक्शोनिगार,पृष्ठ-२३

३११- निराला : गीतिका,पृष्ठ-८६

३१२- भारतेन्दु : भारत दुर्दशा,भारतेन्दु ग्रन्थावली ,पृष्ठ-६१६

३१३- मैथिलीशरण गुप्त, साकेत,अष्टम सर्ग,पृष्ठ-१६१

३१४- - वही- हिन्दू,पृष्ठ-१०५

३१५- निराला : गीतिका, पृष्ठ-८४

३१६- सोहनलाल द्विवेदी, प्रार्थना-मैत्री, पृष्ठ-६३

३१७- प्रसाद : कानन कुसुम, पृष्ठ-१०६

३१८- मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ-१३१

३१९- - वही - हिन्दू, पृष्ठ-१३४ - १३५

३२०- - वही - ,, पृष्ठ-१०८

३२१- - वही - द्वापर पृष्ठ-६१

३२२- दिनकर : बोधिसत्व - रेणुका, पृष्ठ-१८

३२३- डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ-४३

३२४- दिनकर : कुरुक्षेत्र, पृष्ठ-१२५-२६

३२५- जोश मलीहाबादी : हुब्बेवतन, नक्शो निगार - पृष्ठ- ८६

३२६- शिवमंगल सिंह सुमन : विश्वास बढ़ता ही गया - विडम्बना, पृष्ठ-१५

३२७- नवीन : कूठे परि, हम विषपायी जनम के, पृष्ठ-४६३

३२८- - वही - पृष्ठ-५३४

३२९- शिवमंगल सिंह सुमन : प्रलय सृजन, पृष्ठ-१२

३३०- दिनकर, जनतंत्र का जन्म, चक्रवाल, पृष्ठ-३५२

३३१- फैज़ अहमद फ़ैज़ : दस्तेसबा, कलामे फैज़, पृष्ठ-११४

३३२- - वही - ऐ दिले बेताब ठहर-दस्तेसबा, पृष्ठ-१०

३३३- - वही - मेरे हमदम मेरे दोस्त- दस्तेसबा, पृष्ठ-१५-१६

३३४- जवाहरलाल नेहरू : मेरी कहानी, पृष्ठ-८५८

३३५- गत नियति मुक्ति उपक्रम में

भारत का करुण विभाजन

छाया सा दुर्मति प्रेरित

बदुरक्त पात सह गृहरण

मूमन की दमन विकृतियां

हत बल रिपु झट से पोषित

भड़की भी भग लपटों में

हिंसा जिह्वायें लोहित

पंत : लोकायतन, पृष्ठ-११९

३३६- आनन्द नारायण मुल्ला : इन्सानी दरिंदे- मेरी हदीसे उम्र गुरेज़ां - पृष्ठ-१६४

३३७- पंत : जयगान, युग पथ, पृष्ठ-६४

३३८- आनन्दनारायण मुल्ला : लहू का टीका- मेरी हदीसे उम्र गुरेज़ां, पृष्ठ-३३८

३३९- बच्चन : धार के इधर - उधर, पृष्ठ-४०

३४०- मजाज़ : जश्न आज़ादी, ग़मे दौरां, पृष्ठ-४६

३४१- आज जीत की रात

पर सावधान रहना

गिरिजा कुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ-३५

३४२- गिरिजा कुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ-३६

३४३- जज़्बी : नया सूरज, ग़मे दौरां, पृष्ठ-१०४

३४४- देश का विच्छेद ही

अभिशाप था

पर पितामह पर

न उसका पाप था ।

नरेन्द्र शर्मा : रक्त चन्दन, पृष्ठ-५२

# पंचम अध्याय

## स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उर्दू काव्य में भारतीय संस्कृति का स्वरूप और उसका काव्य में प्रतिफलन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये सुव्यवस्थित विधि - विधान की आवश्यकता थी । इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए डा० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में संविधान सभा ने भारत का संविधान निर्मित किया और उसके अनुसार २६ जनवरी सन् १९५० ई० को भारत सार्वभौम सत्ता सम्पन्न प्रजातांत्रिक गणराज्य घोषित कर दिया गया । वास्तविक रूप से उसी दिन भारत में जनता के राज्य की नींव पड़ी--

सदियों शताब्दियों सहस्त्राब्द का अन्धकार बीता
गवाक्ष अम्बर के दहके जाते हैं
यह और नहीं कोई जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते आते हैं
सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुंचा
तैंतिस कोटि हित सिंहासन तैयार करो[१] ।

सन् १९५२ ई० में प्रथम आमचुनाव सम्पन्न हुए । देश को आर्थिक रूप से विकसित करने के लिये पंचवर्षीय योजनाएं बनीं । विभिन्न देशी रियासतें जो ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वतन्त्र कर दी गयी थीं, सरदार पटेल की सूझबूझ से पुनः भारत में मिला ली गईं ।

यद्यपि पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर सन् १९४८ ई० में आक्रमण एक महत्वपूर्ण घटना थी, किन्तु जिस घटना ने भारत को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर झकझोर दिया वह था सन् १९६२ ई० में किया गया चीन का आक्रमण । इस घटना ने भारत की गुटनिरपेक्षता, अहिंसा और पंचशील की नीति को भी जड़ से हिला दिया । देश की तन्द्रा टूटी, इस मोहभंग से आत्मरक्षा और देश प्रेम भावना

एक बार फिर एक साथ सक्रिय हो उठी। त्याग और बलिदान की भावना के साथ ही उत्साह और आक्रोश के स्वर साहित्य में झंकृत हो उठे। दिनकर ने ( परशुराम की प्रतीक्षा ) कविता द्वारा जन मानस में उत्साह फूंकने का सफल प्रयत्न किया। उर्दू काव्य ने भी यह कार्य बड़े जोश से किया–

" वतन फिर तुझको पैमाने वफ़ा देने का वक़्त आया
तेरे नामोस पर सब कुछ मिटा देने का दिन आया

— — —

जो कर्ज़ रह गया था वो चुका देने का वक़्त आया
वतन फिर तुझको पैमाने वफ़ा देने का वक़्त आया[2] "।

समकालिक संकट कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अनेक कविताएं उपलब्ध हैं जिनका विषय उत्साह, आक्रोश, बलिदान है। इस प्रकार लगातार काव्य में समाज तथा उसके परिवर्तन प्रतिबिम्बित होते रहे।

## (ब) राजनीतिक पक्ष

युग सापेक्ष होने के कारण काव्य साहित्य में स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियों को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। स्वतन्त्रता के बाद के भारत की संकटापन्न स्थिति को काव्य में स्पष्ट स्वर दिया गया है। स्वतन्त्र भारत के सांस्कृतिक धरातल पर राजनैतिक सन्दर्भों में मानव की तलाश का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। " राजनीति दो महायुद्धों का भयानक मानव - संहार आयोजित करने के बाद शक्ति क्षीण नहीं हुई, बल्कि शीत युद्ध का रूप लेकर एशिया, अफ्रीका क्षेत्र की स्वतन्त्रता दो महान् शिविरों में विश्व राजनीति का जुआ, फिर उनके बीच सौहार्द्र निःशस्त्रीकरण इत्यादि के बीच से वह मनुष्य की दुनिया के और बड़े हिस्से को घेरती गई। इस कदर कि आज वह मनुष्य को नियमित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति है "[2]।

१- काव्य में राजनीतिक सम्बद्धता :

आज जीवन को संचालित करने में राजनीति को वही स्थान प्राप्त हो गया है जो कभी धर्म को था। १९६० के मोहभंग ने काव्य साहित्य को सीधे राजनीति से जोड़ दिया और काव्य में राजनीतिक स्वर मुखरित हुआ। किन्तु यहां भी उर्दू काव्य की राजनीतिक चेतना तटस्थ रही। इसका प्रमुख कारण यह था कि उर्दू स्वतन्त्रता के बाद अपने को अल्पसंख्यकों तक ही सीमित कर लिया था। "ऐसा लगता था" जैसे कवि और लेखक का इस बात से विश्वास उठ गया कि वह अपनी लेखनी से वास्तव में कोई परिवर्तन भी पैदा कर सकता है। फलतः हमारे साहित्यकारों ने हमारी राजनीति और व्यवस्था में कुछ वर्गों से उभरे हुए निम्न स्तर के "फाशी रुझान" के विषय में अपना कोई दायित्व प्रकट नहीं किया"[४]। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उर्दू काव्य में राजनैतिक स्वर है ही नहीं। वह भी राजनीतिक विसंगतियों से छुटकारा चाहती है किन्तु उसमें यह भाव विद्रोह के रूप में मुखर न होकर चुप का रूप धारण कर अभिव्यक्त हुआ है—

अपने लफ़्ज़ों की नुमाइश न करो महफ़िल में
आजकल पारसा अल्फ़ाज़ उड़ायेंगे हंसी[५] ।।

जब कि हिन्दी काव्य ने चुप और चीख़ को एक ही अर्थ दे दिया है-

कुछ हैं जो अकारों के आगे अन्धे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूं कि इन्कार से भरी हुई एक चीख़
और एक समझदार चुप
दोनों का मतलब एक है
भविष्य गढ़ने में चुप और चीख़

अपनी - अपनी जगह एक ही क़िस्म है
आना - अपना क़र्ज़ अदा करते हैं[6]।।

स्वतन्त्रता से पूर्व देश ने जो सपने देखे थे वह पूरे नहीं हुए। सन् 60 के बाद भारत की संकटापन्न स्थिति स्पष्ट होने लगी थी। किन्तु इसका सारा दायित्व संभावना राजनीति पर ही था। समाज में लगातार बढ़ता हुआ उत्पीड़न और विदेशी आक्रमण के कारण राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का प्रश्न समकालीन खोखली राजनीति के कारण ही सामने आये थे। स्वतन्त्रता के पूर्व की सारी आशायें समाप्त हो गयीं जो स्वाधीनता मिली। वह इसके विपरीत थी-

दाग़ दाग़ उजाला वो शब गुज़ीदा सहर
वो इन्तेज़ार था जिसका वो ये सहर तो नहीं
यह वह सहर तो नहीं जिसकी आरज़ू लेकर
चले थे यार कि मिल जायगी कहीं न कहीं[7]

स्वतन्त्रता के पश्चात् अधिकांश नेता राजनीति को व्यापार की वस्तु समझने लगे थे। स्वार्थलिप्सा के कारण देश की आर्थिक, सामाजिक नैतिक परिस्थितियां निरन्तर बिगड़ती चली गयी। प्रत्येक राजनीतिक विचारधारा तानाशाही होती चली गयी। आज़ादी बेमानी होकर रह गयी-

हम हैं आज़ाद न मानेगा मेरा ज़ौके सलीम
ज़िन्दगी जकड़ी हुई आज सुनहरे हैं वही
आज भी ज़र की वही ग़ैर मसावी तक़सीम
आज भी कुव्वते तक़लीक़ पे पहरे हैं वही[8]।

लोकतन्त्र के जिस आधार को लेकर स्वतन्त्रता के बाद भारत की राजनीति का निर्माण हुआ था उस आदर्श को छोड़कर राजनीति व्यापार बन गयी थी जिसने ज़हर भरी अवसरवादिता को जन्म दिया-

उफ़क से ता उफ़क तक
है ज़हर भरी प्यालियां [६]

चुनाव से लेकर व्यवस्था तक प्रत्येक स्थान पर व्यावहारिक राजनीति का आधिपत्य होता जा रहा है। टिकट प्राप्त करने के लिये बड़ी - बड़ी रकमों की भेंट, अवसरानुसार एक दल से दूसरे दल में जाना जनता को झूठे प्रलोभन देकर वोट मांगना, चुनाव जीतने के बाद अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न, साम्प्रदायिकता की आड़ लेकर जनता को बहकाना, आज के राजनीतिज्ञों का व्यवसाय बन गया है। परिणाम-स्वरूप जनता का विश्वास टूटने लगा, देश की आन्तरिक स्थिति निर्बल होती गयी। राजनीति की इस घोर विषमता से आज का कवि अछूता न रह पाया और काव्य सीधे राजनीति से सम्बद्ध हो गया-

क्या ख़बर थी कि फ़कत नाम है आज़ादी का
यह भी एक तर्ज़ है सैय्याद की सैय्यादी का [१०]

देश की ग़रीब जनता उसी प्रकार शोषण का शिकार रही जैसे पहले थी। कवि इस स्थिति को समाप्त करने के लिये सजग है-

माओं को उनके होठों की शादाबियां
नन्हें बच्चों को उनकी ख़ुशी बख़्श दो
मुल्क की रूह को ज़िन्दगी बख़्श दो [११]

एक ओर देश की ग़रीबी जैसे - जैसे बढ़ती गयी वैसे - वैसे राजनीतिक वर्ग लगातार वैभव और ऐश्वर्य के साधनों में सिर से पांव तक डूबे हुए हैं। कवि उन्हें धिक्कारता है-

ख़ाली पेट पर
घी रख कर चिराग़
तैरते जा रहे हैं

अपने ऐश्वर्य के सरोवर में
झुकती आंखों के भी
बनाकर बन्दनवार
सजाते जा रहे हैं
संसद और विधान सभाओं के द्वार[12]

स्वाधीनता के स्वागत और जयगान का स्वर कर्तव्य बोध की भावना से ओत-प्रोत हो गया-

स्वदेश बागडोर हाथ में लिए
विशाल जन समूह साथ में लिये
क्या नहीं उचित कि हो अधोमुखी
प्रवेश तुम
करो प्रमाद
पंक में [13]

कवि राजनीतिज्ञों को दायित्वबोध कराता है कि नेतृत्व वर्ग को हर उस काम से बचने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे देश के गौरव और सम्मान को ख़तरा हो । उच्चवर्ग के समान दलितों को भी समाज में विकास का अवसर मिलना चाहिए । कवि का इस बात पर बल है कि ऐश्वर्य के साथ उत्तरदायित्व का भी अनुभव नेताओं को होना चाहिये—

सीखना है लेकिन अब मैख़ानए तामीर में
जुंबिशे नब्ज़ तमन्ना व ख़िराम दौर जाम
मंज़िले मक़सूद तक वह क़ौम जा सकती नहीं
जिसके क़ब्ज़ में नहीं उसकी स्यासत की लगाम
हमको बचना चाहिये हर उस बुरे अक़दाम से
जिससे हो मतऊन दुनिया में वतन का नेक नाम

सौहार्द व आदर्शों हरदम रहें पेशनजर
आरजू दिल में रहे और अमन बिलअमनेआम

—— —— ——

देश के सामान भी हों कर्ज़ का एहसास भी
जश्न भी हों मुफ़लिसों की नाज़ बरदारी भी हो[२४]

पहले हमें दलितों की स्थिति को सुधारना आवश्यक तत्पश्चात् समारोहों में धन का व्यय और उन्नति की बड़ी - बड़ी बातें करनी चाहिये-

रोने वालों की हंसी को पहले वापस लाइये
शौक़ से फिर जश्न आज़ादी मनाते जाइये[२५]

कवि समाज में व्यवस्था और नेतृत्व के शोषण के प्रति सजग है और इस भयावह स्थिति पर देश का हर वर्ग चिन्तित है। चिन्ता इस बात की है कि ऐसे देश का क्या किया जाय जहां सर्वत्र अविश्वास और आशंका व्याप्त है। कवि को लगता है कि यह स्वार्थलोलुप नेता देश की हत्या ही न कर दें। ऐसी स्थिति में देश की लाश को पहचानना भी संभव न होगा[२६]। लेकिन इसके साथ ही नई ज़िन्दगी में कवि का विश्वास भी अमर है-

ऊंची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन
उसकी छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नई ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है[२७]

लेकिन इस नये भारत के निर्माण के लिये त्याग, संयम, परिश्रम, समानता आवश्यक है। तभी भारत का एक नये रूप में विश्व में स्थान पा सकेगा।[18] उर्दू काव्य में भी अपनी आशा के अनुरूप नये भारत बनाने का संकल्प है तथा स्वतन्त्रता के बाद के अवसाद को कवि मिटा देना चाहता है -

हमारे मैकदे का अब निज़ाम बदलेगा
हम अपना साक़ी बदल देंगे जाम बदलेगा
बदलती रहती हैं क़द्रें रहीले वक्त के साथ
ज़माना बदलेगा हर शै का नाम बदलेगा
यह अर्श व फर्श की तफ़रीक़ कुछ नहीं वामिक़
बलन्द व पस्त का मेयारे आम बदलेगा[19]

कवि नया संसार और नया इंसान बनाना चाहता है-

सुख सपनों के सुर गूँजें
मानव की मेहनत पूँजी
नई चेतना नये विचारों
की हम लिये मशाल
समय को राह दिखालें
नया संसार बसालें
नया इंसान बनालें[20]

किन्तु इस अवसरवादी गन्दी राजनीति के चक्र ने कवि का स्वप्न साकार नहीं होने दिया। कहने के लिये देश में प्रजातंत्र है लेकिन आज भी अप्रत्यक्ष रूप से अधिनायकवाद ही चल रहा है। गांधीवाद के नाम पर आज भी चोर बाज़ारों का शासन चल रहा है-

कुर्सी का काम खून पढ़कर
शिक्षा संस्कृत व्याभिचार बनी

सिंहासन तो है गांधी का
शासन है चोर बाजारों का[21]

इन स्वार्थी नेताओं ने सारे आदर्श नष्ट करके अंधेर नगरी बसायी है-

आकाश नगर का नाम मिटा
आकाश नगर के दीप बुझे
और उसकी जगह अन्धेर नगर आबाद हुआ[22]

ऊंची कुर्सी पर बैठकर नेतागण अपनी प्रशंसा सुनने, स्वागत कराने में लग गये और आंखों पर ऐसा चश्मा पहन लिया जिससे देश की हीन दशा उन्हें दिखाई ही नहीं देती थी। जनता की तरफ़ से उन्होंने आंख-कान बन्द कर लिये-

अब कान थे अखबारों के लिए
आंखें थीं फ़ुक्तयारों के लिए
और गर्दन थी हारों के लिए
— — —

हर ऊंची कुर्सी वाले ने
हर टोपी पगड़ी फुंदने ने
काले - काले चश्मे पहने[23]

थोड़े से सत्ताधारी अवसरवादी लोगों ने पूरी व्यवस्था को निगल लिया-

थोड़े से पेशेवर जुआरी
नहीं -------- नहीं
सत्ताधारी
खेलते हैं खेल सांप सीढ़ी का
सीढ़ियां सब उनकी हैं[24]

यद्यपि अंग्रेजी उपनिवेशवादी व्यवस्था को समाप्त करके उसके स्थान पर लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था पर आधारित नये शासन की स्थापना की जा सकती थी। लेकिन देश के विभाजन की समस्या और देशी रियासतों के समस्या में उलझे रहने के कारण देश के अनुभव हीन नेतृत्व ने बचे हुये आई० ए० एस० अफ़सर वर्ग के सहारे एक निर्जीव प्रशासन का सूत्रपात किया। यही प्रारम्भिक विवशता प्रशासनकर्ताओं का स्वभाव बन गयी। आज तक वही व्यवस्था चली आ रही है। इन उच्च-अधिकारियों ने मंत्रियों की दुर्बलताओं से फायदा उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया। दूसरी ओर मंत्रियों ने अधिकारियों को अपनी मुट्ठी में बांधकर अपनी इच्छानुसार उचित अनुचित कार्य पूरा कराने में कोई कसर नहीं उठा रखी। फलस्वरूप नेतृत्व वर्ग सारे भ्रष्टाचारों का स्रोत एवं संरक्षक बन बैठा। "स्वतन्त्र भारत की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि भ्रष्टाचार ऊपर से छनकर नीचे आया है। मूलस्रोत ही जब विषाक्त है तो प्रवाह कैसे स्वस्थ रह सकता है। परतन्त्र भारत में भ्रष्टाचार निम्न स्तरीय व्यक्तियों की विशेषता समझी जाती थी। अब निम्नस्तरीय व्यक्ति सोचता है कि जब नेता लोग ही ऐश कर रहे हैं तो हमारा ऐश करना जायज़ है। पुराने सामन्त अब भले ही न रह गये हों किन्तु नेताओं के रूप में नये सामन्त पैदा हो गये हैं। जो जन सेवा की आड़ में ऐय्याशी करते हैं, नारे लगाए जाते हैं जनता की सेवा के, लेकिन सेवा सब लोग अपनी - अपनी कर रहे हैं।[25]" अब राजनीति एक धंधा बन जाने से "सत्ता की बागडोर केन्द्रीय स्तर पर बड़े - बड़े घरानों के हाथ में चली गयी है और स्थानीय स्तर पर इन दलों के प्रमुख कार्यकर्ता मुख्यतः दुकानदार, कुट्टीवाले, दूध की डेरी वाले और थोक व्यापारी मिले। ये लोग स्थानीय निकायों, प्रशासनों में प्रमुख स्थानों से लेकर झण्डा उठाने, दरियां बिछाने, नारे लगाने तक के सब कार्यों का संचालन करते रहे। इनके पक्ष में इनके संकेतों पर स्थानीय राजनीति चलती पलती है यह दूषण क्रम ऊपर की राजनीति तक चला गया है।[26]" राजनीति के इस दोगलेपन से जो विषाक्त वातावरण पैदा हुआ है उसमें प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व ग्रस्त हो गया है जिससे यह निर्णय कठिन हो गया है कि कौन क्या है?

आईना पर आईना मेरे अक्स हैं कितने
खुलता ही नहीं मुझपे मैं कौन हूं क्या हूं।।[27]

स्वतन्त्रता के बाद जनता ने प्रजातन्त्र से यह आशा लगाई थी कि अब उनके अधिकारों की रक्षा उनके चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे। किन्तु जनता के ये प्रतिनिधि ही उसे झूठे प्रलोभनों और वादों में फंसाते गये। वर्ग संघर्ष समाप्त करने के लिए इन्होंने साम्राज्यवाद के झूठे नारे लगाये। लेकिन देश का पूंजीवादी वर्ग निरन्तर समृद्ध होता गया और निर्धन वर्ग और भी निर्धन होता गया। मुख्यमंत्री के चुनाव से लेकर साधारण चुनावों में भ्रष्ट पद्धति अपनाई जा रही है। कोई भी अयोग्य प्रत्याशी पैसे धन के बल पर चुनाव जीत सकता है। आज का कवि इस पूरी व्यवस्था को नग्न करना चाहता है—

हर एक अपने खोल में नंगा मिला है मुझे।
मैंने बहुत क़रीब से देखा है हर एक को।[28]

जिस देश के राजनीतिक इतने भ्रष्ट हों उस देश की परिस्थितियों में सुधार होना असम्भव है। नये कवि ने राजनीति में फैले इस भ्रष्टाचार को नग्न ही नहीं किया बल्कि उसका सशक्त रूप से विरोध भी किया। मृत्यु पर भी राजनीति की छाया देखकर कवि व्यंग्य करता है—

किसी मृतक के परिवार का शाप न
लो—
इस भय से
कफ़न विक्रेताओं ने
आपस में चन्दा करके
नगरपालिका को कर दिया दान शहर में बनाकर
एक नया श्मशान

प्रतीक्षा की जा रही है
कोई नेता मरे
तो उनको जलाकर उद्घाटन करें[२९]

जब जनता अपने अधिकारों की मांग करती है, रोटी-वस्त्र और निवास की मौलिक आवश्यकताओं को जुटाने के लिए सरकार से मांग करती है, इसके लिये जुलूस, नोटबाजी और हड़ताल जैसे शान्तिपूर्ण तरीकों का सहारा लेती है, तब उत्तर में वैसा ही दमनचक्र चलता है वैसा ब्रिटिश शासन काल में चलता था। सिपाही का डण्डा अब भी ब्रिटिश काल के समान ही चलता है[30]। इसके लिये जनता में सत्ताधारियों के लिये रोष उमड़ता है किन्तु असन्तोष की दिशा सही न होने के कारण उसका रोष व्यर्थ चला जाता है। अधिकारी पैंतरा बदलकर साफ़ बच जाते हैं और जनता का क्रोध उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता-

मैं जानता हूं मेरे दोस्त
हमारा तुम्हारा और सबका गुस्सा
कांटे सुअर की तरह तेजी से दौड़ते हुए निकल जायगा।
और उस शिकार का कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा
जो पैंतरा बदल लेता है[31]।

अधिकारी बहुत ही चालाकी से जनता के रोष पर विजय प्राप्त करते हैं। थोड़ी-बहुत मांगों को स्वीकार करके दूसरे तरीकों से पुनः जनता का ही शोषण होता है[32]। इस प्रकार की व्यवस्था ने सांस्कृतिक स्तर पर गहरे संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी है। राष्ट्रीय स्तर के दोगलेपन ने जिस विलास संस्कृति का निर्माण किया है[33], उसमें हर तरफ नोच खसोट, स्वार्थ, चोरबाजारी का ही बोलबाला दिखाई पड़ता है। स्वतंत्र आशा के विपरीत देखकर युवा पीढ़ी इस व्यवस्था के अन्याय को देख स्तब्ध रह जाती है[34]। क्योंकि राजनीतिशास्त्र में पढ़ी हुई हर पुस्तक उसे झूठी नजर आने लगती है। हृदय में यह विचार आता है कि जो आजादी हमें मिली है

यह झूठी तो नहीं है ? यह विचार स्वतन्त्रता पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है-

> क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
> जिन्हें एक पहिया ढोता है
> या इसका कोई खास मतलब होता[35]

किन्तु इस सारी व्यवस्था को, अन्याय को, शोषण को बुद्धिजीवी वर्ग मूकदर्शक बना देखता रहता है। कवि व्यंग्य करता-

> बौद्धिक वर्ग है क्रीत दास
> किराए के विचारों का उद्भास
> बड़े - बड़े चेहरों पर स्याहियां पुत गयीं,
> नपुंसक श्रद्धा
> सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी[36]।।

वस्तुत: नयी पीढ़ी इस अव्यवस्था और भ्रष्टाचार को बहुत सजगता के साथ देख रही है। किन्तु किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है कि इस व्यवस्था का क्या करे, जिसमें चारों तरफ़ भूखे बेसब्र भ्रष्ट प्रजातांत्रिकलोल बोढ़े अत्याचारी लोगों की भीड़ थी जिनके पास बड़ी - बड़ी प्रोजेक्ट की फाइलें थीं, जो भाग्यशाली थे, उस अंधेरे में टटोलने पर बेसहारा लोग भी चुप थे ------ चुप और असहाय, जिन्हें उन कागज़ों में कहीं अन्न का दाना नज़र नहीं आता था। उनमें सूखते पेड़, बांझलाती नदियां भी थीं। ------ चुपके से अनायास अर्थतन्त्र के दबाव में छिन जाते स्नेह के टुकड़े भी थे। --- नई पीढ़ी ने हार कर एक तीली जलाई और जलाकर बुझा दिया। उसे सब कुछ दिख गया। इस देखने का वह क्या करे------ उस प्रजातन्त्र का, उस आजादी का, उस भाईचारे का, उस कागजी कार्यवाही का, बड़ी - बड़ी बस्तों और विशाल फाटकों के पीछे भूखे लोगों का वह क्या करे[37]। इसी स्थिति पर पहीन्द अख़्तर भी व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि -" आदर्श की बातें तो नयी पीढ़ी को पढ़ाई गई लेकिन यह नहीं बताया गया कि इन सैद्धान्तिक बातों से वास्तविक स्थिति बिलकुल भिन्न

" सिखाया सबने उसे इक नया सदाकत क्या है
पढ़ाया सबने कि है फ़र्ज़ आदमीयत क्या
मगर किसी ने न इतनी सी बात बताई
कि जिन्दगी में इन मुक़ाम को न अपनाना
वरना ठोकरें खाते रहोगे उम्र भर तमाम "[38]।

देश स्वतन्त्र है। देश में किसी शत्रु का डर नहीं है लेकिन इस भीड़ भाड़ और चहल - पहल में भी इन्सान एक दूसरे से दूर हैं[39]। इस प्रजातन्त्र से कुछ तो शानदार जिन्दगी जीते हैं और कुछ निम्न स्तर का जीवन बिताते हैं। इस प्रकार " प्रजातन्त्र ने मनुष्य को शानदार इन्सानी जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच बांट दिया है[40]।
" नये आदम " की खोज में एक नई सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई। नई पीढ़ी वर्तमान स्वतन्त्रता की निरुद्देश्यता में जीवन की सार्थकता खोजने के लिये संकल्पशील हो उठी है और इस दृष्टि से उसके सामने सबसे पहला प्रश्न है तन्त्र या व्यवस्था में मनुष्य को प्रतिष्ठित करने का-

हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति
प्रत्येक मानवीय स्वानुकूल आदर्श
विवेक प्रक्रिया क्रियागत परिणति।
खोजता हूं पठार ----- पहाड़ सुन्दर
जहां मिल सके मुक्ति
मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार्य
आत्म संभव[41]।

उर्दू काव्य भी मानव को प्रतिष्ठित करने के लिये सक्रिय है-

कई वजूद अभी तक अदम की ज़ुलमत में
भटक रहे हैं किसी लफ़्ज़ की तलाश में

वह एक उफ़क दरख़्शा जो उनका हस्म बने
कि जिसके रूप में वह ख़ुद को मुन्क़शिफ़ कर दें[42]।

इस बिगड़ी हुई व्यवस्था में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रश्न महत्वपूर्ण बन जाता है, क्योंकि जब व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व को राजनैतिक, सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठा मिलती है तभी देश की उन्नति होती है। अतः देश को उन्नत एवं सुव्यवस्थित करने के लिये सांस्कृतिक रूप में व्यक्ति को प्रतिष्ठित करना आवश्यक हो जाता है।

२- भीड़तन्त्र में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रश्न :

नेताओं की अवसरवादिता के कारण प्रजातंत्र का स्वरूप विकसित हो गया। अब राजनीति का अर्थ मात्र कुर्सी से चिपके रहना रह गया था। कुर्सी प्राप्त करने के लिये फिर चाहे उन्हें किसी भी साधन का प्रयोग करना पड़े-

जनतंत्र से कट गये हैं जन
रह गये हैं---- तन्त्र
कर्णधार मंत्र
कुर्सी से चिपके रहने के[43]

इस भ्रष्ट प्रशासन में सबकी स्थिति एक बराबर है। चाहे वह अफ़सर हो या सामान्य जन, नियति में दोनों की कोई अन्तर नहीं रह गया। ~~सत्ता में आदमी~~ सत्ता में आदमी की प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं रह गया है। इस राजनैतिक व्यवस्था में जिस जनरक्षित तंत्र का निर्माण हुआ है उसमें मानव इतना बंध गया है कि वह उस जाल से अलग होकर कुछ भी कर पाने में अपने आपको असमर्थ पा रहा है-

मैं एक दर्द, अंधी गुफा के दहाने में खड़ा हूं
बहुत ज़ोर से बोलना चाहता हूं
मगर मेरी आवाज़ मुझसे बिछड़ कर

कहीं तो गई है

कोई लफ़्ज़ मेरा मीठा नहीं है

मुझे ऐसा लगता है कि नफ़रत हूं नफ़रत मैं

हर एहसास - ए - अज़ाब का साथ मैं छोड़ दूंगा

इस अंधी गुफा में कहीं गिरके चुपचाप दम तोड़ दूंगा मैं[४४]

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की व्यवस्था की विडम्बना है कि जनतंत्र का ' जन ' केवल चुनाव के समय ही अस्तित्व में आता है और फिर पांच साल उसे कोई पूछने नहीं आता । वह भोला व्यक्ति फिर पांच वर्ष बाद वोट देने को तैयार रहता है-

मैं भी कितना भोला हूं कि हर पांचवें साल

एक पर्ची देकर बहला लिया जाता हूं

और वह पर्ची मेरे पांव से दिल्ली पहुंच जाती है

और मैं पीछे-

मतदाताओं की सूचि में केवल एक

क्रमसंख्या रह जाता हूं[४५]

इस व्यवस्था में नागरिकता का निर्माण असम्भव हो गया-

लेकिन जब मैं आरज़ुओं की चादर से

सर को छुपाता हूं तो पांव मेरा नंगा हो जाता है

कागज का पैरहन मेरे तन में

रेशम से भी मंहगा है[४६]

इस व्यवस्था में योग्य अयोग्य व्यक्ति का कोई महत्व नहीं । अफ़सर और सामान्य जन की नियति एक ही है। कवि व्यवस्था के असन्तुलन पर व्यंग्य करता है-

निर्णय नहीं लेता मैं

मेरे यहाँ कोई ख़ास फ़र्क नहीं

ट्रांजिस्टर सुनते हुए बीवी
लेकर
  बैरिस्टर
सौदागर या नेता में[४७]

इस व्यवस्था में हर स्थान पर व्यवस्था का राक्षसी पंजा व्यक्ति को दबाने में सक्रिय रहा। इस व्यवस्था की विषमता के कारण एक जीता जागता मुस्कुराता हुआ व्यक्ति व्यवस्था के आदमखोर जबड़े में नमक के ढेले सा घुलता रहा-[४८]

कितनी खतरनाक है यह शोषक संस्कृति
जो सही सोच से परे आदमी को
घिसटने पर मजबूर करती है[४९]

यह व्यवस्था किसी - न - किसी रूप में व्यक्ति को पालतू बनाने में व्यस्त रही। व्यक्ति ऐसे बन्धनों में बंधता गया जिसको तोड़ना मुश्किल है-

हजार बार चाहता हूं बंदियों को तोड़ दूं
मगर यह आदमी रतन यह ख़ून हाये बन्दगी
लिपट गये हैं पंखों से लहू में डूब सो गये[५०]

व्यवस्था ने व्यक्ति को इतना आत्मकेन्द्रित बनाया कि वह अपनी परछाईं की हद से आगे नहीं बढ़ सका-

दांये - बांये मंज़र क्या है
तेज हवा क्यों चलती है मौसम कैसा है
आगे-आगे चलने वाला अनजाना साया किसका है
इन बातों की तरफ़ कब उसका ध्यान गया है
अपनी परछाईं की हद से कब आगे उसने देखा है[५१]

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के सम्मुख चरित्रहीनता का प्रश्न सर्वाधिक भयावह रूप में आया है। किसी भी व्यक्ति का चरित्र आदर्श नहीं रह गया। सभी ओर भ्रष्टाचार का प्रदर्शन देखने को मिलता है। इस वातावरण में ईमानदारी अर्थहीन हो गई है-

ईमानदारी
दुःख का कारण है
मुझे विश्वास हो गया है
बेईमानी के प्रति मेरा विद्रोह भूंकते भूंकते
दुम दबा कर सो गया
अब
मुझे इसमें
कुछ बुरा नहीं लगता
झूठ बोलने का
धारा प्रवाह
अभ्यास हो गया है[52]

इस व्यवस्था की निरंतरता को बनाए रखने के लिए सत्ताधारी, बुद्धिजीवी, कलाकार सभी समान रूप से भागीदार बन गये हैं।[53] इस व्यवस्था में कहीं भी कुछ अनुचित नहीं है। यह अंधेर नगरी है जहां खोटे सिक्के भी आसानी से चल जाते हैं-

जेब में कुछ खोटे सिक्के
सोच के क्यों अफ़सुर्दा हो
आओ चलें तारीक नगर में
मैंने सुना है उस नगरी में
अन्धों का बाजार लगा है
आओ बनाएं अपनी किस्मत
आओ चलाएं खोटे सिक्के[54]

प्रत्येक व्यक्ति इस व्यवस्था से असन्तुष्ट है, इसकी घृणा भी करता है फिर भी नैतिक स्तर पर व्यवस्था के साथ जुड़ा रहता है।

पिछले साल मैंने एक नारा लगाया था
तुरन्त दुकानदारों ने मुझे बुलाया ।।
और जाली राशन देकर एक सिगरेट पिलाया[55]

समाज का बुद्धिजीवी वर्ग जिससे यह आशा की जाती थी कि वह इस व्यवस्था पर अंकुश लगाने का प्रयास करेगा, किन्तु वह वर्ग भी एक मौन नपुंसक समझौता कर लेता है। समाज में फैले भ्रष्टाचार दिन-दहाड़े होने वाली लूट, मार, अन्याय, अनीति की ओर से यह वर्ग कतरा कर निकल जाना चाहता है-

आपकी घोषणा बड़ी वाजिब है
किन्तु मेरी मजबूरी है
मैं आदमी बनकर जीना चाहता हूं
न कि एक क्रम संख्या[56]

नई पीढ़ी देख रही है कि शहर बढ़ रहे हैं। नई - नई सड़कों, इमारतों का निर्माण तो तेजी से हो रहा है लेकिन इस भीड़ में एक आदमी नहीं बन पा रहा है जिसकी अपनी समाज में कोई पहचान हो सके[57]। इसीलिए धूमिल के मोचीराम को इस व्यवस्था में हर व्यक्ति एक जोड़ी जूता के रूप में दिखाई देता है, जो जूते की नाप से बाहर नहीं है। इसीलिये वह यह घोषणा करता है कि यदि जीने का कोई सही उद्देश्य नहीं है तो रामनामी बेंचकर और वेश्या की दलाली करके रोजी कमाने में कोई अन्तर नहीं[58]। उर्दू काव्य में भी मूक और अन्धे बनकर हाकिमों के गुनाहों पर पर्दा डालने वाली प्रकृति को नग्न किया गया है जिसमें सब कुछ देखकर भी व्यक्ति को चुप रह जाना पड़ता है-

बहुत जमाने से इस दस्तखामोशी में हम

यह देखती हूँ कि हर रोज़ एक जिन्दा लफ़्ज़
किसी गुनाह के क़ैद खाने में
सिसक - सिसक के खामोशी का ज़हर पीता है
फिर उसके बाद सारे वे ज़बां अफ़रिवत
कुचने वास्ता के गूंगे गुलामों की मानिन्द
झुकाए आंख कफ़न उसका सीता करते हैं
कि हाकिमों के गुनाह का पर्दा रह जाए[५९]

इस स्थिति के कारण प्रजातन्त्र पर दिन पर दिन हीनता और भाग्यवाद की भावना हावी होती जा रही है। सामान्य व्यक्ति इसे को अपना भाग्य मानकर चुपचाप सब कुछ सह रहा है। पिछले २० वर्षों में एक ऐसी राजनीतिक मशीनरी का निर्माण हुआ जिसमें घुसकर सत्य असत्य बन कर बाहर आता है। जिसने फड़कती हुई भुजाओं तथा सिसकती हुई आंखों को टाट फाइलों में कसकर काली दराज़ों के निश्चल एकान्त में बंद कर दिया[६०]। स्वतन्त्रता के तीस - पैंतीस वर्षों बाद भी बदलाव की स्थिति नहीं आ पाई -

फिर वह आंखें भीगी भीगी दामने शब ये उदास
फिर वह उम्मीदों के मदफ़न ज़िन्दगी के आस पास
फिर वही फ़रदा की बातें फिर वही बेदार ख़्वाब[६१]

इस प्रकार व्यक्ति भीड़ तंत्र का पुर्जा बनता जा रहा है और उसकी प्रतिष्ठा समाप्त होती जा रही है। नई पीढ़ी इस स्थिति को सहन नहीं करना चाहती, वह नहीं चाहती कि यह काली व्यवस्था उनके दिमागों को भी पैरों तले रौंद कर अपने वायकन में डाल दे। ऐसा होने से पहले ही वह एक नई समझ कायम करना चाहता है[६२]।

बार हो सके तो सच सुनने के क़ाबिल बनो
और सिर्फ़ सच कहो[६३]

इस प्रकार हिन्दी और उर्दू काव्य अलग - अलग दृष्टि से व्यवस्था में व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्थापित करने में लगे हुए हैं। किन्तु इस क्षेत्र में भी क्रान्ति और विद्रोह का स्वर हिन्दी काव्य की अपेक्षा उर्दू काव्य में कम है। जबकि उग्र स्वर से ही जन समर्थन प्राप्त होता है और बिना जन शक्ति का समर्थन प्राप्त किये व्यवस्था से अपनी बात नहीं मनवाई जा सकती। क्योंकि एक स्वर अकेला कभी भी इस तंत्र में परिवर्तन नहीं ला सकता है-

> इकाइयां भी कभी ज़म हुई हैं कसरत में
> बिखर - बिखर के सिमटता रहूंगा वहदत में[64]

हिन्दी काव्य व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिये तीव्र स्वर में विद्रोह करता है-

> आदमी नहीं होते खूटियां
> जो चाहे आकर कहीं टांग दे[65]

इस प्रकार नई पीढ़ी ने इस काली व्यवस्था के आगे सर नहीं झुकाना चाहा और न ही भीड़ में यह गुम होना चाहता है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा के प्रश्न को लेकर नये कवि संघर्षरत हैं।

**३- प्रतिक्रिया से उत्पन्न विद्रोह : जन शक्ति का उदय :**

जब व्यक्ति भीड़ में स्वयं को खोजने के लिये उठा तो वर्षों से चले आ रहे डरों का बोझ उसके सर पर था-

> लेकिन जब जागा तो देखा
> धूप कड़ी थी लोग खड़े थे
> बीस बरस का बोझ था सर पर
> आंखें झुकी - झुकी खोई - खोई सी[66]

आंख खोलते ही नई पीढ़ी ने देखा कि एक ओर व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने वाले नपुंसक हड़तालों हैं दूसरी ओर वादा पूरा करने वाले झूठे आश्वासनों के नाम पर फुसफुसी गाली है।[67] इसके बाद भी आवाज उठाने वालों को निराशा ही मिलती है। ऐसे में सर्वत्र आग ही आग दिखाई पड़ती है और उसकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करे-

दोपहर धूप में जलता नंगा रास्ता
किसी अब्र का साया न किसी पेड़ का छांव
सर पे सूरज है,
भटके हुए कदमों के तले फर्श दहके हुए अंगारों का[68]

नई पीढ़ी उस व्यवस्था के हर बन्धन से मुक्त होना चाहती है जिसमें उसका भविष्य रेहन रखा है।[69] वर्षों पहले जो व्यवस्था बनाई गई थी उसने व्यक्ति के स्वर को भी खरीद लिया था-

खरीद लिये गये हैं--- हमारे स्वर
और व्यवस्था के हाथों चला गया
हमारा सम्पन्न बोध[70]

वर्षों की बनी हुई व्यवस्था में हर नियम कानून इतना रूढ़ हो गया है कि उसके आगे कोई विकल्प भी नहीं रह गया-

और इतिहास के बीस साल का मतलब
ऐसी दीवार हो गया
जिसके सामने विकल्प की जगह भी सिर्फ दीवार है।[71]

लोकतंत्र अब केवल नाम मात्र को रह गया क्योंकि वास्तविक रूप से सत्ता कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में सीमित हो गयी है। लोकतंत्र मात्र एक नारा बनकर रह गया है। फलस्वरूप नई पीढ़ी में विद्रोह कौंध गया है-

क्या मैं पूछ सकता हूं-
कि आपके संविधान के छाते के नीचे
कितने लोग आ सकते हैं ?
यदि बुरा न मानें तो, बरसों पहले आपको
इसे बता देना चाहिये था
जिसे बीस बरसों बाद आज मुझे पूछना पड़ रहा है
वह भी इसलिये
कि आगामी अस्सी बरसों में भी
आप इसे------
शायद ही बता पायें[७२]

भारतीय जनता भूख और बेकारी से जूझती रही और सत्ताधारी सिर्फ वादों के सहारे उसे बहलाती रही। बड़ी - बड़ी योजनाएं बनीं लेकिन सब कागज़ी ही बनकर रह गयीं -

क़रार दादों की मन्जूरियां भी मिलती हैं
क़लम से फ़ाका ज़दों के शिकम भी भरते हैं
यहां तो सींचते हैं खेत काग़ज़ी घोड़े
लिबास बनती हैं तक़रीरों की दिलकशी
अब इससे बढ़कर शराफ़त चाहिये किसको
मेरे ख़ुदा
तू मेरा हाफ़ज़ा ही छीन ले अब
कि ऐसे तल्ख़ हक़ायक़ से वास्ता न पड़े[७३]

हिन्दी काव्य में भी इन झूठे वादों के विरुद्ध आक्रोश की अभिव्यक्ति मिलती है। हर पांच वर्ष बाद यही लगता है कि इस बार सारे इरादे और उम्मीदें पूरी की जायेंगी, इसी आशा में जनता वर्षों से अन्याय को सहती चली आ रही है-

हर बार यही होता है।
हर बार उम्मीदें बांधी जाती हैं और वायदे किये जाते हैं।
हर बार लगता है कि अब।
हां अब आ गया वह ऐतिहासिक क्षण जो एक पुल बन जायेगा।
और जिस पर सब लोग बिना अनुवाद के चल सकेंगे।
या फिर आखिर में हर बार यही होता है कि सारी उम्मीदें और
सारे इरादे लाट्री के टिकट बन जाते हैं।
और -----[74]

सत्ताधारी का ये आम हुक्म था कि यहां सब आज़ाद हैं और स्वयं गरीबों का खून चूसते रहे। इस प्रकार सत्ताधारी वर्ग बेफिक्र देश को खोखला करते रहे और देश के बचे हुये कंकाल को रौंदते रहे।[75] स्वतन्त्रता के पश्चात् गांधीवादियों ने जिस प्रकार का भ्रष्ट आचरण अपनाया उसे देखकर जनता के विश्वासों की नींव हिल गयी। नगर के चौराहों, सचिवालय, कार्यालय, न्यायालय आदि सभी स्थानों पर गांधी जी के चित्र लटकाए गये। मार्गों का नामकरण किया गया। पर यह केवल बाहरी दिखावा था। गांधी जी की मूर्ति के नीचे उनके ही आदर्शों की हत्या करते रहे।[76] गांधी के सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ाई जाती हैं। सत्ताधीन गांधीवादियों के तानाशाही अत्याचारों का चित्रण कवि ने तीखे शब्दों में किया है-

बापू की प्रतिमा वाली बटनें चमकाते
फौजी वर्दी में तानाशाह पधारेंगे
सच बोलोगे तो जीभ काट ली जायेगी
चौराहे पर वे तुमको गोली मारेंगे[77]

इन सारी विसंगतियों के पीछे सत्ता की भूमिका ने पीढ़ी को जागरूक बनाया और उसका आक्रोश व्यवस्था के प्रति तीव्र हो उठा-

तुम सड़क के बीचोबीच

अपनी कुटिलता का तमग़ा झुलाते हुए
अपने राजाड़ के सिपाहियों का सलाम
आज भी ले सकते हो
लेकिन तुम चाहो तो महसूस कर सकते हो
कि तुम्हें हवा के दबाव से सुरक्षित
रखने वाले थे एयरकण्डीशन कमरे
समय को ब्लैकमेल करती हुई मोटर गाड़ियां
और जनतंत्र की बलि चढ़ाकर
उठाए गये तुम्हारे वह महल
एक सख़्त नफ़रत और प्रतिशोध की आग से घिरते जा रहे हैं[७८]

जनमानस के इस आक्रोश को हिन्दी कवियों ने अत्यन्त तीव्र शब्दों में अभिव्यक्त किया-

क्या दिया तुमने ?
महज़ जयहिन्द
फ़क़त फ़ाका कशी
आंकड़े का आसमानी आंकड़े
और गुत्थमगुत्थई राशन की कभी कतारें
बेरोजगारी, दफ़्तर की मीलों लम्बी क्यू की चिपचिपाती बांझ दोपहरी[७९]

विद्रोही नई पीढ़ी ने नग्न राजनैतिक यथार्थ को काव्य में प्रस्तुत किया-

एक विशाल कोल्डस्टोरेज बना दिया गया अपना देश
बर्फ की तहों में
सुरक्षित रखी जाती है यहां मरी हुई
परम्पराएं संस्कृति और नपुंसकता और
कुर्सियों पर चूतड़ों में गोंद लगाकर चिपके कुछ लोग
कर रहे हैं स्थापित नया कीर्तिमान[८०]

उर्दू काव्य में व्यवस्था जनित विद्रोह कुछ इस तेवर में उभरा-

यह मकां
मुर्दा रूहों के आबाद है
सर ब सजदा अक़ीदत यहां सर उठाती नहीं
मुर्दा रूहों से आंखें मिलाती नहीं
और परछाइयां
रात भर चीख़ती, रोती, चिल्लाती, झगड़ती
झगड़ती फिरा करती हैं हर तरफ़
एक परछाईं के हाथ में बान है और त्रिशूल है
हीरों का ताज उसके सर पर उठाते हुए खुन्दाज़न
उसकी खूनी ज़बां मुंह से लटकी हुई [81]

जनता सदैव व्यवस्था के लिये उपहास का विषय बनी रही।[82] व्यवस्था की नीतियों ने व्यक्ति को इतना चेतनाहीन कर दिया है कि वह व्यवस्था को विध्वंस करने की अपेक्षा अपनी इस स्थिति को अपनी नियति मानकर जीता रहा। परन्तु आहत होते - होते उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और उसने उधार लिये हुए दिमाग से कार्यकरने की प्रवृत्ति को छोड़ने का निश्चय किया। जन मानस के इस बदलाव ने कवि को नये दायित्व, नये कर्म के लिये प्रेरित किया। फलतः कवि ने बिना प्रतीक्षा के जनमानस से स्वयं को जोड़ने का संकल्प किया-

मैं इस होने का इंतेज़ार किये बिना
इस जुलूस में शामिल हो जाऊंगा
जिसमें
कटी मंज़िलों की यात्रा
अंधेरी ज़िन्दगी के गीत
विगलित फेफड़ों की घुटन

और पशु जिजीविषा की संवेदना है
हम उस दिशा में बढ़ेंगे
जहां एक युग समाधिस्थ है
युग की समाधि पर अर्पित होंगे[८३]

इस प्रकार युग की समाधि पर स्वयं को अर्पित करने की भावना ने विद्रोह की चिंगारी को बुझने नहीं दिया, बल्कि निरन्तर उसे एक शोला बनाने की ओर अग्रसर करती रही। देश के शासन तंत्र में आये दिन के हेर फेर, दल बदल, इस्तीफे, अनुशासनात्मक कार्यवाहियां दलीय स्वार्थों का बोलबाला, जनतंत्र का खोखला नारा आदि स्थितियों ने एक बार पुनः देश को आसन्न मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। इस स्थिति में आकर समस्त जनतांत्रिक मूल्यों की मृत्यु हो गयी और राजनैतिक व्यवस्था द्वारा जन जीवन का हनन किया जाने लगा। पुलिस अत्याचार, नृशंस दमनकारी मनोवृत्तियां बढ़ने लगीं। यह मोह भंग की दूसरी स्थिति थी। जो विद्रोह बनकर व्यक्त हुई—

जैसे तुमने जो कुछ कहा था ( मैं तुम्हारी जिन्दगी बदल दूंगा ) कर दिया
सचमुच तुम्हारी आत्मीयता ने मुझे गन्दे मवाद में बदल कर रख दिया
तुम्हारी कला में जहां मैंने अब सुख निकाल लिया है
अब यह वक्त है कि न तुम रहम कर सकते हो
और न मैं तुम्हें जीवित छोड़ सकता हूं[८४]

युवा पीढ़ी सब कुछ बदल देने के लिये आक्रामक रूप से व्यग्र हो उठी। क्योंकि सब कुछ इतना बहुरूपिया और उलझा हुआ और अनैतिक था उसके सामने युवा पीढ़ी की आस्था और नीति के सब आधार चूर - चूर हो गये। राजनीति व्यवस्था इतनी आततायी हो गयी थी कि किसी भी व्यक्ति का जीवन सुरक्षित नहीं था। फलतः जो विद्रोह अब तक दन्दूफन से व्यक्त होता था उसका स्वर सक्रियता आक्रोश और आक्रामकता में बदल गया। पीढ़ी ने नवीन संस्कृति का निर्माण करने के लिये

पूंजीवादी शोषण करने वाले राजनैतिक तंत्र की धज्जियां उड़ाने का संकल्प किया-

अब देश किसी
नेहरू गांधी की
बपौती नहीं माना जायगा
ख़रीद व फ़रोख़्त में बिक जाने वाली आवाज़
आज सरे आम घोषणा करती है
अब ये किसी नमकहराम कुत्ते के लिये रोटियां नहीं बनेंगी[८५]

विद्रोह का इतना आक्रामक स्वर इसलिये भी आवश्यक हो गया क्योंकि जनता इन सारी विसंगतियों को देखते समझते सह रही थी और उसका विरोध करने के स्थान पर गहरी नींद सो रही थी[८६]। ऐसे आदमी को नींद से जगाना आवश्यक था। कवियों ने इस बात को तीव्रता से अनुभव किया कि जब तक विद्रोह की आग जन - जन के हृदय में नहीं भड़केगी तब तक कोई परिवर्तन नहीं हो सकेगा। यही कारण है कि हिन्दी काव्य में सातवें दशक के उत्तरार्द्ध से विद्रोह की भावना प्रारम्भ हुई,जो निरन्तर बढ़ती रही और अन्ततः आज उसने सक्रिय रूप ले लिया जिससे जनता किसी निर्णय का संकल्प लेने में सक्षम हुई।

उर्दू काव्य में परिस्थिति को बदल देने का संकल्प बहुत क्षीण रूप में अभिव्यक्त हुआ। इसका कारण यह रहा कि उर्दू कवि ख़ामोश इन्क़लाब में विश्वास करते रहे—

मुझे न छेड़ो अभी गुम हूं इज़्तराबों में
शरर पलता है ख़ामोश इन्क़लाबों में।[८७]

लेकिन उर्दू काव्य में भी यह स्थिति थोड़े दिन ही रही। अन्ततः उसका भ्रम टूटा क्योंकि एक ही आश्वासन की स्थिति देखते - देखते वह ऊब गया और विद्रोह का संकल्प किया-

नन्दरोज़ और फ़कत चन्द ही रोज़ है तौबा
मेरी उमराज़ क़रीब और किसी को देना
मुझको आता नहीं तालाब में किश्ती खेना
आज है मेरी जां वरना कभी और नहीं
ज़िन्दगी गुज़रती अकताल के आईने में
अपना मुंह देखेगी और शरमायेगी
सर उठायेगा नया वलवला हर सीने में [८८]

इस विद्रोह ने एक नई जनशक्ति को जन्म दिया जिससे एक नई संस्कृति की शुरुआत हुई। सहनशीलता एक सीमा तक तो मानवीय गुण माना जाता है किन्तु एक सीमा विशेष के आगे अत्याचार सहन करना कायरता का प्रतीक हो जाता है। जनता व्यवस्था के हर उचित अनुचित कार्य को सहते - सहते नपुंसक बन चुकी थी। इस हीन भावना को नष्ट किये बिना न तो सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन किया जा सकता था न राजनीतिक क्षेत्र में। किसी परिवर्तनकारी मन्तव्य तक पहुंच कर जागरूक जनतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है। अतएव हीन भावना के स्थान पर आत्मविश्वास जागृत करना आवश्यक था। उनमें आत्मविश्वास तभी पैदा किया जा सकता है जब व्यवस्था के प्रति घृणा जागृत हो। क्योंकि जिस व्यवस्था का विराट वैभव देश में फैला था उसमें युग धर्म की सार्थकता के बीच लड़ाई में शरीक आदमी व्यवस्था के विरुद्ध होकर भी वैसी ही किसी अन्दरूनी व्यवस्था में सम्मिलित होने को मजबूर था। [८९] साधारण नागरिक अपनी थोड़ी - सी सुविधाओं की खातिर कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं था। यही कारण है कि कुंवार और पिद्दी सब एक से राशन से मरते रहे और संस्कृति के नाम पर केवल औरतों को रही करते रहे। [९०] इस दमघोटू वातावरण में अपनी नियति का सही एहसास नहीं दिलाया जाता तब तक देश को जागीरों के हाथ से निकालना कठिन था। [९१] और मानवता का चेहरा मोड़कर एक ऐतिहासिक दिन की शुरुआत असम्भव थी। जहां साधारण जनता दो टूक होकर यह कह सकती -

मुँह देखकर
अपनी जेबों के नोटे गिनके
मत ललचाओ
मेरी मजबूरियां
तुम खरीद नहीं सकोगे
जी क्या कहा तुम व्यवसायी हो ?
दुनिया की हर चीज़ ख़रीदते हो ?
लेकिन मेरी मजबूरियां बिकाऊ नहीं हैं[६२]

इसी तथ्य के आधार पर स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने अपनी व्यापक विचारधारा को जन मानस से जोड़ने का प्रयत्न किया क्योंकि जन शक्ति के जागृत किये बिना व्यवस्था को बदलना कठिन था-

समय आ गया है
जब इन्हें आदमी और गधे का
रिश्ता समझना होगा
इन्हें आदमी होने का एहसास करना होगा
और उनको गधा होने का
अब उनका और मेरा चेहरा एक हो गया है
हम सब अंगार हैं,एक लपट,एक आग
एक शब्द एक अर्थ एक राग
एक चरण, एक यात्रा,एक राह
एक संकल्प एक नारा,एक चाह
समर्पित
एक क्रान्ति को[६३]

आज कवि को ये मालूम हो गया है कि झोपड़ियों में सुलगने वाली आग जब एक जुट हो

जाती है तभी क्रान्ति सम्भव होती है, फिर उस आग को बुझाना कठिन होता है-

> तुम इन इश्तेहारों को फाड़ दोगे और जला दोगे
> लेकिन सियाही में जो हजारों आँखें हमने मिलादी हैं
> वे तुम्हें ताकती रहेंगी और तुम्हें नंगा कर देंगी[64]

उर्दू काव्य में जनशक्ति से जुड़ने का प्रयास क्षीण रहा। उर्दू कवियों का विश्वास था कि एक व्यक्ति भी आत्मशक्ति के बल पर क्रान्ति को साकार रूप दे सकता है। सम्भवतः इसीलिये वे आत्मशक्ति की सोच में लीन रहे-

> एक भिखारी भी बदल सकता है सदियों का मिजाज
> आप इस कौम में बैठे हैं यह अदा कर लेना[65]

यह सत्य है कि आत्मशक्ति ज़रूरी है। ये तभी सार्थक होगी जब हर व्यक्ति इसके लिये जागरूक हो। किन्तु इसके लिये भी जनशक्ति से जुड़ना बहुत ज़रूरी है इस वास्तविकता को अस्सी दशक के बाद के कवियों ने समझा और उन्होंने भी हिन्दी काव्य के अनुरूप स्वयं को व्यापक जन क्रान्ति का अंग बनाने की दिशा में प्रयास किया-

> तिश्ना लब पा शिकस्ता हम सफ़रो
> इस तरफ़ देखो
> मेरी बात सुनो
> दिल में उम्मीद को जगाए रखो
> मशअले फ़िक्र को जलाए रखो
> पांव पड़ती हैं जो सदाएं उन्हें
> सर पटकती हैं जो सदाएं उन्हें
> मुड़के मत देखो, मुड़के मत देखो
> दो कदम और, दूर है कितना
> शब के सहरा से सुबह का दरिया[66]

अन्तत: कवियों के सम्मिलित प्रयास से जन मानस में परिवर्तन आया । इतिहास साक्षी है कि जब भी कवियों की व्यक्तिगत अनुभूति जन मानस से सम्बद्ध होती है और स्वीकार की जाती है तो युग व्यापी परिवर्तन घटित होते हैं । इसी प्रकार आधुनिक कवियों के प्रयास से " कोऊ नृप होइ हमहिं का हानि " वाली मध्यकालीन मनोवृत्ति का अब कोई महत्व नहीं रह गया । उसके स्थान पर नये युग के निर्माण की तैयारी हो रही है । जहां व्यवहारिक रूप से आत्म निर्णय की जागरूकता व्यक्ति में आयेगी ।

> थी जो एक उम्र से सफ़बस्ता गुलामान अज़ल
> जिनकी मेहनत के पसीने से बने लाख महल
> जिनके होठों पे शिकायत थी न शिकवा न ख़रोश
> जिनके एहसास भी साकित थे ज़बां भी ख़ामोश
> जिनके माथों से टपकता था मशक्कत का अर्क़
> फिर भी तपते हुए चेहरों पे उमंगों की शफ़क़
> आज इन्सान सरफ़राज़ हुआ है ऐ दोस्त
> एक नये दौर का आग़ाज़ हुआ है ऐ दोस्त [६७]

आज जनता जागरूक हो चुकी है । उसकी राजनीतिक जागरूकता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति तक एक मंजिल पूरी दूसरी बार उसने सरकार की सामन्ती तानाशाही के विरुद्ध एकजुट होकर वर्षों से चली आ रही सरकार को बदल कर जन शक्ति का प्रमाण दिया । अब एक नये युग के निर्माण के लिये अग्रसर हो रही है । " उसने अन्याय और दमन के विरुद्ध जैसी उत्कृष्ट एकता एवं सक्रियता प्रदर्शित की उससे यह सर्वथा सिद्ध हो गया कि देश की सांस्कृतिक चेतना तथा राजनैतिक समझ तानाशाही के आगे विनत और कुण्ठित होने की जगह मुखर और आक्रामक हो गयी है । सत्य के पक्ष में जागृत युयुत्सा और युगशक्ति कविता के क्षेत्र तक ही सीमित न रहकर व्यापक जन जीवन में अपना अपेक्षित योगदान करने के लिये तत्पर हो चुकी है । ---- कवियों की अनुभूति जन चित्त से जब भी पूरी तरह स्वीकार होती है युग व्यापी परिवर्तन घटित

हो जाते हैं। जनता और कविता की वाणी सत्ता की वाणी से कहीं अधिक समर्थ और प्रेरक होती है।[९८] स्वातन्त्र्योत्तर काव्य ने जनता को जागरूक अवश्य किया लेकिन वह जागरण राजनीतिक स्तर तक ही रहा। विशेषकर हिन्दी कवियों ने अपनी सारी शक्ति व्यवस्था को बदलने में ही अधिक लगाई। किन्तु व्यवस्था को बदल देने मात्र से ही सारी समस्याओं का निदान नहीं हो सकता जब तक कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर भी अन्याय को न समाप्त किया जाय। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि देश में फैली राजनैतिक भ्रष्टाचारिता के अतिरिक्त आर्थिक विषमता साम्प्रदायिकता, स्वार्थ, बेईमानी, जातीयता आदि की कुत्सित वृत्ति के विरुद्ध भी जागरण पैदा किया जाय। ऐसे मूल्यों का निर्माण हो जिससे समस्त देशवासी ये महसूस कर सके कि-

चमन उसका है जो चमन में रहे  
वतन उसका है जो वतन में रहे  
हर एक क़ौम आज़ाद व आबाद हो  
हर एक अपने घर रह के दिलशाद हो  
हर एक अपने दिल में कुछ कहे  
सितारों से हमदोश होकर चले  
मिटे इस तरह उम्र भर का फ़साद  
वतन में हो क़ायम नया इत्तेहाद  
मुल्क में कई तरह के रंग हों  
मगर फिर भी वह सब हम आहंग हों[९९]

आजादी के बाद देश ने एक ऐसे साम्यवादी समाज के निर्माण का संकल्प लिया था जिसमें प्रत्येक जाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त के व्यक्ति को समान रूप से सुरक्षा दी जायगी और प्रगति के समान अवसर दिये जायेंगे। किन्तु स्वतन्त्रता के ४० वर्षों बाद आज तक कांग्रेस सरकार उस लक्ष्य की प्राप्ति तक जनता को नहीं पहुंचा सकी। इसके लिये प्रशासन की नीतियां तो दोषी थी ही साथ ही समाज की व्यवस्था और

देश की आन्तरिक परिस्थितियां भी इसके लिये कम जिम्मेदार नहीं हैं। विज्ञान के विकास ने अनेक पुरातन मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है फिर भी हमारा समाज पुरानी परम्पराओं से जकड़ा हुआ है। आज भी उच्च जातियों में निम्न जातियों के प्रति घृणा की भावना है। आज भी देश में हरिजनों को जिन्दा जलाने का अमानुषिक कृत्य यदा कदा होता रहता है। जातीयता न केवल हिन्दू समाज को अपना शिकार बनाये हुए है बल्कि मुसलमानों में भी अनेक छोटे - बड़े वर्ग बन गये हैं। ब्राह्मणों - हरिजनों की समस्या के साथ - साथ शिया सुन्नी, बोहरा, खोजा लोगों की भी कम समस्या नहीं है। शिया सुन्नी मतभेद से उत्पन्न झगड़े साम्प्रदायिक झगड़ों से कुछ कम नहीं होते। इसी प्रकार के जातीय मतभेदों का एक परिणाम आज खालिस्तान की मांग के रूप में देश की एकता को खण्डित करने के लिये सर उठा चुका है। यह समस्या क्या रंग लेगी ये भविष्य ही बता सकेगा। इस प्रकार ये सारी समस्याएं राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं क्योंकि राष्ट्रीय एकता की स्थापना विभिन्न जातियों के समझौते, विश्वास और भाई चारे की ठोस बुनियाद पर ही हो सकती है। इसके लिये आवश्यक है कि हम सारे मतभेदों को भुलाकर राष्ट्र की एकता को मजबूत करें-

हर कुदूरत दिल की कर दीजिये क्षमा
दिल खोल कर
अब ये अमृत जहर सीने में न रखा कीजिये[100]

हिन्दी काव्य भी इस मतभेद को मिटा देने की प्रेरणा देता है-

फिर कंटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी को शक्ति का आधार दो
प्यार तुमको हो जगत से प्यार हो[101]
प्रेरणा का यह हृदयंगम संसार हो

भारतीय संस्कार और परिवेश भी इस बात की मांग करते हैं कि समस्त देश में

समान राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना को प्रोत्साहन देने के लिये एक ऐसी सम्मिलित संस्कृति का निर्माण किया जाय जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एकता के साथ - साथ विभिन्न धर्मों, जातियों, प्रान्तों को अपने - अपने साहित्य, भाषा, धर्म और संस्कृति की उन्नति के समान अवसर दिये जांय । ये महान् तभी हो सकता है जब हम संकुचित मानसिकता को छोड़कर बाहर आयें । देश को मानसिक रूप से इस बात के लिये तैयार करने में कवि की ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है । देश की परिस्थितियों को देखते हुए कवियों को ऐसे मूल्यों का निर्माण करना है जो नवीन जन संस्कृति की स्थापना में सहायक हों । किन्तु कवियों ने नये मूल्यों का निर्माण करने के स्थान पर सारी समस्या का मूल राजनैतिक व्यवस्था के सर मढ़ कर स्वयं को कर्तव्य मुक्त कर लिया है । कुछ कवियों ने अवश्य इस दिशा में प्रयास किया है । कवि एक सुन्दर शान्त देश की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये समस्त जनों को प्रेरित करता है-

> आओ इस रौशनी की तरफ़
> नौ - ब - नौ आगही की तरफ़
> दश्त ओ वामनी से हमारे ख़ुदी की तरफ़
> ले के ज़ज़्बाते तामीर नौ सफ़ ब सफ़
> आंसुओं और कराहों से लिये हुए साबक़ा सैलाब
> अंधे मार्गों की अंधी दिशाओं में नज़रों से ओझल हुए
> और अब
> मेरा मैं कुछ मुतमइन हो गया[१०२]

हिन्दी काव्य में भी कुछ कवियों में इस बात की जागरूकता दिखाई देती है-

> श्रम के ऊर्जस्वित हाथ बढ़ेंगे
> खेत और खलिहान, गांव, कस्बे, जन संकुल नगर, वीथियां
> नयी फसल के स्वागत के मंगल गीतों से गूंज उठेंगी

नयी फसल ------ जो अन्न बनेगी,वस्त्र बनेगी

नयी फसल ------ जो बन जायेगी द्वार देहली—शान्ति स्नेह समता के

जन की होगी

सबकी होगी[103]

स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में जन संस्कृति के निर्माण में मानवतावादी भावना पर अत्यधिक बल दिया गया है। इसीलिये मानवतावादी मूल्यों के प्रति वह अत्यन्त सजग है-

सारे इन्सान एक हैं भैया

बावजूद सूरतों के आलम के

कोई वहशी हो या फिरंगी हो

वह बहरहाल इब्ने आदम है

उसकी दुनिया हमारी दुनिया है

उसका आलम हमारा आलम है

नस्ल व कौम व वतन की जंजीरें

रूह को क़ैद कर नहीं सकतीं

आदमीयत के सादा नुक्ते में

रंग तफ़रीक़ भर नहीं सकती[104]

अतएव स्वतन्त्रता के बाद काव्य में जिस मानसिकता का जन्म हुआ उसने अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर भी मानवीय समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया-

हर अन्याय के विरुद्ध बहा

और जहां जहां गिरा बना पावन तीर्थ

हजारों वर्षों के अन्तराल में इसमें मिल चुका है

सारी व्याप्त मानवता का अंश,सफेद,लाल,काले

समय की माप है हमारी सांसें

हम सबकी हैं,क्योंकि यह बहती है,रुकती नहीं[105]

४- काव्य की अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय भावना :

समकालीन काव्य ने विरोध की राजनीति को अपनाते हुए व्यवस्था की एक - एक दुर्बलता का सूक्ष्मता से अवलोकन करने के पश्चात् कवि ने उन पर तीक्ष्ण प्रहार किए। विद्रोह की यह राजनीति केवल राष्ट्रीय दुर्बलताओं का ही उल्लेख नहीं करती बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक हथकण्डों को नग्न करने का प्रयास भी इस कविता में मिल जाता है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण यह सम्भव नहीं रहा कि विश्व का एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से अलग रह सके। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भविष्य में युद्ध न करने का प्रण एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर अनुचित अधिकार न करने की प्रतिज्ञा विश्व शान्ति के लिए राष्ट्र संघ आदि की स्थापना के बावजूद संसार में युद्ध की आशंका बनी रही। एक ओर शान्ति और अमन की दुहाई दी जा रही है और दूसरी ओर शस्त्रीकरण कोबढ़ावा दिया जा रहा है। शक्तिशाली राष्ट्रों के मध्य शीत युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी और वे सीधे न टकराकर अशक्त राष्ट्रों को शिकार बना रहे हैं-

फांज के अंधेरे में
लुटी हुई बीसवीं शताब्दी का
सिर
गिरता है
चेकोस्लोवाकिया में
धड़
वियतनाम में
शेष
ढाका
चटगांव में
शुक्रिया कौन् बां

तुम्हीं की गाथा
हर मोड़ पर[१०६]

यह शक्तिशाली राष्ट्र उन बहुत सीमित मात्रा में आर्थिक सैनिक सहायता देकर मानसिक रूप से उन्हें दास बना रहे हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की गर्दन पर सवार है। रंग नस्ल धर्म जाति के नाम पर मानसिक रूप से वह राष्ट्र अलग हो रहे हैं-

बशर अभी असीरे दामगीन व नस्ल - व - रंग है
अभी तो हर एक नेवाए ज़िन्दगी का जंग है
क़दे ख्याल पर अभी क़ुबाये अम्न तंग है
अभी सदाए दोस्ती पर हर नफ़से जंग है[१०७]

एक ही राष्ट्र की दो जातियां एक दूसरे के अधिकारों का हनन करने लगीं और मानव मानव का रक्त बहाने को उद्यत हो गया। घृणा और भय का वातावरण विश्व राजनीति के क्षितिज पर फैल रहा है। कुछ शक्तिशाली सरमायादार राष्ट्र संघ की कुर्सी पर बैठकर सबको अपनी अंगुली पर नचा रहे हैं। उनकी कुटिलता नित्य लाखों लोगों की हत्या करती है। उनकी दुनिया विशिष्ट है जहां दो परस्पर विरोधी नीतियां एक साथ चलती हैं-

यह दुनिया बन्द तहख़ानों का एक अस्पताल
बनती जा रही है।
बन्द तहख़ानों का मुखिया एक जैसा है
हुकुम एक जैसा है।
मर्ज एक जैसा है
बन्द तहख़ानों के पास दो भाषाएं हैं
एक प्यार की दूसरी संहार की
बन्द तहख़ाने की दो परम्पराएं हैं
एक सुनीति की दूसरी अनीति की[१०८]।

ऐसे समय मानव के समक्ष यह समस्या भीषण हो गयी है कि मानवीय भाग्य का निर्माण युद्ध करेंगे या शान्ति। दूसरी ओर बढ़ती हुई मानवीय बुद्धि ने हर आने वाले युद्ध को पिछले युद्धों से अधिक भयंकर और विध्वंसक बना दिया है। यह स्थिति इतनी भयंकर है कि मानव जाति के जीवन - मरण का प्रश्न आ गया है-

क्या प्रकृति मनुज के साथ प्रलय बन जायेगी
पृथ्वी ढेले सी फूट चूर हो जायेगी
सभ्यता मनुजता संस्कृति की इतिहास राख
नभ के कोलाहल में उल्का बन खो जायेगी[१०९]

ऐसे भयानक वातावरण में शान्ति की समस्या और भी महत्वपूर्ण हो जाती है जहां मानवीय नैतिकता हिंसक बन जाता है। यदि शान्ति सौहार्द्र, विश्वबन्धुत्व की भावना शक्तिशाली राष्ट्रों में न आई तो वह दिन दूर नहीं जबकि विश्व में भय, आतंक और मृत्यु का ही तांडव होगा। जिससे सांस्कृतिक परम्परा छिन्न - भिन्न हो जायेगी। आज मनुष्य मनुष्य के बीच जो साजिश चल रही है उसने अस्तित्व की निरर्थकता महसूस करने को बाध्य किया है। मार्टिन, लूथर, कैनेडी, गांधी, शास्त्री और इन्दिरा गांधी की मौतें ऐसी ही साजिश हैं। नयी कविता शान्ति के नाम पर चलने वाली इन्हीं साजिशों का पर्दाफाश करती है-

अमन के पर्दे में ये कौजियां तैयारियां
नस्ल आदम को मिटा देने की ये तैयारियां[११०]

और शान्ति की कामना करता है-

मैं भी शान्ति चाहता हूं
लेकिन वह शान्ति नहीं
जिसमें दोस्ती और दुश्मनी का
महत्व एक जैसा हो

तुम बन्दूकों को बुरा और तलवार को अच्छा कहो
और बारूद जेब में लिये घूमो
मुझे वह शान्ति चाहिये, जिसमें
नासूरों को रोकने के लिये तुम
अंगारों से रक्त निचोड़ने का नाटक करो[१११]

लेकिन कवि को ऐसी शान्ति भी नहीं चाहिये जहां सांप को तितलियों के पंख से ढाक दिया गया हो, या फौजियों को गेरुआ वस्त्र पहना दिया गया हो वह व्यंग्य से कहता है-

क्या कमाल है मेरे दोस्त
काश कि तुमने उन सांपों के शरीर को
तितलियों के पैरों से और मढ़ दिया होता
फिर तुम्हारी यह शान्ति
असली शान्ति सी लगने लगती ।
क्या फौजी वर्दियों पर
बौद्ध भिक्षुओं का गैरिक वसन
नहीं ओढ़ाया जा सकता था[११२]?

वास्तव में कवि ऐसी शान्ति चाहता है जहां मानव यह प्रतिज्ञा कर सके कि हम संसार में अब जंग न होने देंगे[११३]। एक ऐसी शान्ति कवि लाना चाहता है जहां मानव कहे-

भय से ठण्डी इस खामोशी की लाश पर
बन्दूकें तुम्हें नहीं लाने दूंगा[११४]।।

यह तभी सम्भव होगा जब इस घृणित आतंकित वातावरण में शान्ति विश्वबन्धुत्व को बल देने वाले मूल्यों का निर्माण किया जायगा। मानव - मानव के बीच धर्म जाति, नस्ल, रंग की खाई न हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मानव विशिष्टता को

एक मूल्य मान कर चला है। वह विशिष्ट मानव किसी धर्म, राष्ट्र से न जुड़ा होकर विश्व मानव रहने की कामना रखता है। इसी सन्दर्भ में कवियों ने एक ऐसे विश्व समाज की रचना का प्रयत्न भी किया है जिसमें सदियों से पीड़ित मानवता को मुक्ति प्राप्त हो और जहां मजहबी फ़सादों का जहरीला बाज न हो। सारी विसंगतियों से परे एक सुन्दर समाज की रचना में कवि प्रयत्नशील है-

सब प्यार अमन की दुनिया में
खुशबू की लहरों में बहकें
केसर की क्यारी को चूमें
मलयज की बाहों में झूमें[११५]

ऐसे ही संसार की कामना उर्दू कवियों ने भी की है-

आओ नफ़रत के सब कांटों को चुन लो
और दुनिया को प्यार से भर दो[११६]

सरदार जाफ़री भी इस घृणित और आतंकित वातावरण में मुहब्बत और नेकियों की आवाज देते हैं[११७]। यही मुहब्बत, विश्वबन्धुत्व समानता और भाई चारे की भावना संसार में युद्ध रोकने का निमित्त बन सकती है और मानव इस तथ्य को मानने को निश्चय ही बाध्य होगा कि-

न तेरे लिये है न मेरे लिये है
यह दुनिया सबकी है सबके लिये है[११८]

लेकिन यह दुनिया सबकी तभी बन सकती है जबकि हर राष्ट्र का निवासी विश्व समाज के निर्माण की भावना से ओत प्रोत हो। सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एक ऐसा है जो विश्व बन्धुत्व पर आधारित समाज की प्रयोगशाला बन सकता है क्योंकि यहां विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, नस्लों, वर्गों, जातियों, प्रान्तों के लोग रहते हैं। जहां यह बात हमारे लिये गर्व की है वहीं भारत के सामने एक चुनौती भी है-

भारत को बहुत बड़ी चुनौती है
जिसने कबूतरों को बचाया था बाजों से
अपना गोश्त तौल दिया था
तराजू के पलड़ों पर[119]

इसी सन्दर्भ में आवश्यकता है कि देश अपनी समस्याओं का समाधान करे क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर ही अन्तर्राष्ट्रीयता का भवन निर्मित होता है। भारत को पहले स्वयं अपने को सुदृढ़ बनाना होगा। स्वतन्त्रता के बाद के हिन्दी उर्दू काव्य में विश्व मानव को दृष्टि में रखते हुए मानवीय एकता को प्रोत्साहन दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी युद्ध और शान्ति का समाधान खोजने का प्रयत्न काव्य में दिखाई देता है। लेकिन जब अपने ही देश में बहुत सी समस्याएं हैं तो केवल विश्व की समस्याओं पर विचार करते रहना बुद्धिमानी नहीं है। इसके लिये सबसे पहले देश को सुदृढ़ बनाना होगा और देश तभी सुदृढ़ होगा जब सभी व्यक्ति राष्ट्र निर्माण के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझेंगे।

यह है मेरा हिन्दोस्तां
मेरे सपनों का जहां
इससे प्यार मुझको[120]

लेकिन आज किसी भी व्यक्ति में देश प्रेम की भावना नहीं मिलती देश की अखण्डता, स्वतन्त्रता, सम्पन्नता की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता-

राष्ट्र की शक्ति सम्पदा गौण
मुख्य है व्यक्ति व्यक्ति का धन
नहीं रंग कोई अपनी जाह
राष्ट्र की दुखती है नस नस[121]

देशवासी अपनी जिम्मेदारी का ध्यान किये बिना केवल अपने लिये सुख सुविधाएं जुटाने

में लगा है-

गांधी का शिष्य मैं
कोई अनुशासन कानून नहीं मानता
दरअसल
मैं पूरी तरह स्वतन्त्र हूं
मुझे यह भी चाहिये
मुझे वह भी चाहिये[122]
उर्दू के कवि भी इस स्वार्थपरता पर प्रकाश डालते हैं-
जिस मुल्क के लोगों में मुहब्बत नवफ़ा हो
हुब्बुल वतनी का तो निशां तक न रहा हो
ऐ काश बताये कोई उस मुल्क का क्या हो
जिस मुल्क का हर बच्चा उसे लूट रहा हो।[123]

उर्दू कवियों में उन्वान चिश्ती के काव्य में देश भक्ति और राष्ट्रीयता सबसे अधिक मिलती है-

ऐ करमने इल्म व फ़न व-तहज़ीबे कुहनजाग
ऐ मथुरा एखलास व भवानी व - पुजन जाग
ऐ मौजूद पाकी ज़ागिर गंग-व-जमन जाग
ऐ पैकेर मस्तिार गुल व - सर्व-व-सुमन जाग
ऐ ख़ाके वतन दरे कुंदन मुल्के ख़ुतन जाग
ऐ अर्ज वतन, अर्ज वतन, अर्ज वतन जाग[124]

आज ऐसे ही प्रगाढ़ देश प्रेम की आवश्यकता है जो मानव को उसके स्वार्थ से ऊपर उठा सके। क्योंकि जियो और जाने दो की भावना ही देश में फैली जातीयता, साम्प्रदायिकता को मिटा सकती है। यही देश प्रेम की भावना देश को समृद्ध बना

सकेगी और तभी नई पीढ़ी को अपने सपनों का वह भारत मिल सकेगा जिसे वह खोज नहीं पा रही है[125]— ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी देश से तादात्म्य का अनुभव नहीं कर पाती क्योंकि ऐसे परिवेश में जहां व्यक्तिगत स्वार्थ का बोलबाला हो उसका भविष्य असुरक्षित है। नये कवियों में से अधिकांश ऐसे हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के पश्चात् आंख खोली है। इसलिये उनमें राष्ट्रीयता के स्थान पर एक नयी मानसिकता ने जन्म लिया है। वह है अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना। इन कवियों के अनुसार राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति व्यक्ति को बांटती है-

उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम

अलग - अलग हर घेरा

दुख के नाम हजारों

मेरी कुटिया तेरा आंगन

वैतनाम हमारो

कमरा - कमरा पूरी धरती

जगह - जगह बंटवारों[126]

इन कवियों ने देश का जो गौरवगान किया है वह भी विश्व की पीठिका पर आधारित है। " संशय की एक रात " इसका ज्वलन्त उदाहरण है। गिरिजाकुमार माथुर का " धूप के धान " की कुछ कविताएं राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत हैं-

एशिया के कमल पर तुम भारती सी

पूर्व के जन जागरण की आरती सी

इस सदी के साथ केशर चरण धर कर

आ गई तुम भूमि स्वर्ग संवारती सी

— — —

क्रान्ति वाली पत्र के ज्वाला कमल पर

मुक्ति के कंचन कलश लेकर रंगीले[127]

अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त करने के लिये हमारे देश के सामने सबसे भीषण समस्या है नैतिक चरित्र निर्माण की क्योंकि जिस राष्ट्र का कोई चरित्र नहीं वह विश्व संस्कृति को क्या दे सकेगा। चाहे उसके पास कितनी भी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा क्यों न हो। वास्तव में व्यक्ति के चरित्र की अच्छाइयां ही राष्ट्र का आधार बनती हैं और सांस्कृतिक क्रम में नये अध्याय जोड़ती हैं[128] किन्तु इसके लिये यह जरूरी है कि कवि मानव विशिष्टता के साथ - साथ देशवासियों को राष्ट्र के प्रति जागरूक करें ताकि देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो-

यह ज़मीं यह हसीं सरज़मीं
इससे रिश्ता मेरा
मेरी फिकरों की दहलीज भी
सोच का खूब सूरत सा आईना
मेरे तफ़्फुज व नवा के लिये मुस्तकिल साचवां
जिसके साये तले
आज मेरा वजूद
हरते का की नई मंजिलों के तअक्कुन में मसरूफ़ है[129]

यह एक सुखद भविष्य का संकेत है। कवि राष्ट्र निर्माण की चेतना का संचार करते हुए कहता है कि-

नारों को हकीकत का मलबूस पिन्हा देंगे
भारत से गरीबी का हर नक्श मिटा देंगे
भारत की मशीयत को मज़बूत बनाना है
दीवारे वतन को यूं सीसा पिलाना है
सच करके दिखादेंगे हम हिन्द का हर सपना
गर राह नुमाओं ने कुछ साथ दिया अपना[130]

इसप्रकार समकालीन कवि राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बद्ध है और उसके राजनीतिक

दृष्टिकोण का आयाम पूर्ववर्ती कवियों से व्यापक है। उसके विचार राष्ट्रव्यापी ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों से भी सम्बद्ध है।

(ब) सामाजिक पक्ष :

औद्योगिक संस्कृति ने मानव को जीवित प्राणी न समझ कर मात्र एक मशीनी पुर्जा बन जाने के लिए विवश कर दिया है। यद्यपि भारतीय समाज में औद्योगिक संस्कृति की भौतिक सुविधाएं पर्याप्त उपलब्ध नहीं हो सकी हैं जैसा कि पश्चिमी देशों में है। फिर भी औद्योगिक और पूंजीवादी व्यवस्था की समस्त बुराइयों को समाज ने तेज़ी से अपना लिया है। दूसरी ओर प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था घिसी पिटी परिपाटी पर चलना चाहती है और मानव को जागरूक प्राणी न मानकर केवल निर्जीव अंग समझता है। फलस्वरूप व्यक्ति के लिये विवेक का कोई अर्थ नहीं रह गया और वह विवश होकर इस लिजलिजी व्यवस्था को सहने को बाध्य है। " आज व्यवस्था का अर्थ है आत्म स्वत्व इकाई के पौटेन्शल को गिरवी रख कर जीना।[231] " आज स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं रह गया। ऐसी स्थिति में कवि के सामने विवेक और स्वतन्त्रता को सम्पूर्ण दायित्वबोध के साथ व्यक्ति में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि अब तक की व्यवस्था में अपनी समस्त चेतना को अर्पित करने के बाद भी मानव के स्वाभिमान और विवेक की हत्या ही होती रही और उसकी नियति में कोई अन्तर नहीं आ सका था-

> सुलताने मज़हब - व - जात - जबान की पूजा
> न जाते आदमें ख़ाकी का हर जगह चर्चा
> पर आदमी का दूर-दूर तक पता नहीं चलता[232]

इतिहास में प्रत्येक सांस्कृतिक सौन्दर्य और यथार्थ के सन्दर्भ में मानव विशिष्टता बदलती है। ऐसा इसलिये होता है कि यथार्थ में विकसित सत्य को और गतिशील सभ्यता को परम्परागत विचारधारा वहन नहीं कर पाती। मूल्यों के महत्व नष्ट होते जाते हैं। संक्रमण की स्थिति होती है। संस्कार और प्रगति दोनों एक दूसरे

के विरोध में प्रस्तुत हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में मानवीय स्तर पर परिवर्तन होते हैं। यथार्थ के नूतन पक्ष को स्वीकार करके मानव विशिष्टता अपने को स्थापित करती है।[133] स्वातन्त्र्योत्तर काव्य अपने इसी ऐतिहासिक दायित्व का निर्वाह करते हुए विशिष्टता की स्थापना के लिये प्रयत्नशील है और नये मानव की खोज में संलग्न है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में एक ओर सभी नैतिक आस्थाओं से हीन मानव की स्थापना लघु मानव के रूप में कर रहे हैं तो दूसरी ओर मानव की सहज प्रवृत्तियों के गुण दोषों और आन्तरिक भावों से युक्त एक नवीन मानव की कल्पना भी साकार रूप ले रही है। यद्यपि ऐसे मानव का रूप स्पष्ट होकर सामने नहीं आया है, लेकिन एक नये युग की शुरूआत जरूर करते हैं—

कल उगूंगा मैं
आज तो कुछ भी नहीं हूं
एक नन्हा बीज मैं अज्ञात नययुग का
समूचा विश्व होना चाहता है[134]

उर्दू काव्य में भी इस भावना को देखा जा सकता है—

मैं नयी तहज़ीब का बेशक तनावर पेड़ हूं
लेकिन अभी तो एक नन्हा बीज हूं ढूंढ उपजाऊ जमीन
आबयारी के लिये ले आ कहीं से जुए खूं
मुझको बो दे सींच, कोंड़ों से बचा
नीलगूं ऊंचाइयों पर जीना जीना चढ़ने दे
कद कशानों को मेरा मंजा बना
और उस कोशिश के बाद
आरजूओं की लकीरें चेहरा की तख्ती पे खींच[135]

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू - हिन्दी दोनों काव्य एक ही दिशा की ओर अग्रसर हैं। दोनों ही काव्य मानव के स्वस्थ स्वरूप को खोजने में

संलग्न है। एक जागरूक आत्म चेता मानव से ही संस्कृति स्थायी होती है।

१- मानव विशिष्टता : सांस्कृतिक मानव की तलाश :

आज का मानव इतिहास के उस धरातल पर पहुंच गया है जहां उसने नाश और निर्माण पर एक साथ विजय प्राप्त कर ली है। एक ही क्षण में वह सम्पूर्ण सृष्टि का नाश कर सकता है। इसलिये आज के सन्दर्भ में सबसे बड़ी सांस्कृतिक समस्या यही है कि लघुता और कृत्रिमता के पंक में डूबे हुए मानव को पुनः उसके गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाय और उसके खोये आत्मविश्वास की रक्षा की जाये क्योंकि " अब तक की विभिन्न कोणों से देखी गयी आदमी की तस्वीर आउट आफ़ फोकस हो चुकी है।[१३६] प्राचीन एवं मध्यकालीन सभी धर्म और दर्शन अब तक यह मानते चले आये हैं कि मनुष्य में देवत्व को प्राप्त करने की असीम क्षमता है। किन्तु आधुनिक काल में महायुद्धों की भीषणता तथा उसके बाद मानवीयता का हनन करने वाली एक के बाद एक निरन्तर घटित घटनाओं ने इस मान्यता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। जैसे कि हिरोशिमा नागासाकी पर गिराये गये बम, कोरिया का संहार, हंगरी की यातना वर्तमान फिलिस्तीन एवं ईरान, ईराक आदि की घटनाओं ने मानव की पूर्व निर्मित मूर्ति को खण्डित कर दिया। स्वयं भारत में देश के विभाजन के समय घटित अमानुषिक कृत्यों तथा उसके बाद होने वाले साम्प्रदायिक दंगों तथा देश को खण्डित करने वाली वर्तमान मानसिकता ने निरन्तर मानव की प्रतिष्ठित समस्त आदर्शवादी विचारधारा को आहत किया है। ऐसी स्थिति में " नये मनुष्य की बात करना यथार्थ से भागना नहीं है क्योंकि भावी युग के मानव की विविध संभावनाओं की चिन्ता करना आज के विश्वव्यापी नैतिक संकट का परिणाम है। इस संकट के मूल में पारस्परिक अनास्था और भय निहित है। मनुष्य के भीतर की बर्बरता कब बाह्यारोपित नैतिक बन्धनों को तोड़कर महानाश की स्थिति उत्पन्न कर दे। इसकी आशंका छिपी है। यह इसलिये कि मनुष्य को मनुष्य के अन्तर में स्थित सद्भाव के प्रति विश्वास नहीं रहा है। बर्बरता सद्वृत्ति से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो सकती है। यह भयावह धारणा उत्पन्न हो गयी है। वर्तमान समय तक का

सारा इतिहास इस धारणा से झूठा पड़ गया है। ----- इसके समाधान के लिये प्राचीन या मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलनों की ओर मुड़कर देखना आज शायद उपादेय नहीं होगा। कारण यह कि इन आन्दोलनों का आरम्भ तो बहुधा उदारता के आश्रय से किया गया, पर उनका अन्त क्रूरतापूर्ण कट्टरता एवं संकीर्णता में हुआ, जो आज हमारे चारों ओर भग्नावशेष रूप में बिखरी पड़ी है।[137] अब तक की परम्परा में मानव को राग विराग के स्तर पर विराटत्व रूप में प्रतिष्ठित किया गया था किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में मानवीयता से परे किसी काल्पनिक आदेश को महत्व नहीं दिया जा सकता। दूसरे दीर्घकालीन परम्परा ने मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व की अवहेलना की थी और उसे व्यवस्था के इशारों पर नाचने को विवश किया था। अब तक की इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण नैतिकता का स्रोत मानव न होकर कोई अदृश्य शक्ति रही है। इस प्रकार अब तक की व्यवस्था में मानव अपने मौलिक रूप में प्रतिष्ठित न होकर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित होता रहा है। सर्वप्रथम प्रगतिवाद ने मानव अस्तित्व का समर्थन किया किन्तु यहां भी मानव को वर्ग मानव का रूप दे दिया गया जिसमें उसका व्यक्तिगत रूप उपेक्षित ही रहा किन्तु आधुनिक परिवेश में विज्ञान के प्रसार से मानव का महत्व बढ़ता गया। विज्ञान ने यह भावना जागृत की कि अपनी हर होनी का नियन्ता मानव ही है। उसके लिये किसी पूर्व निश्चित आदर्शपूर्ण नैतिकता की आवश्यकता नहीं है। इस मान्यता ने नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया। धर्म और ईश्वर के प्रति भी मान्यताओं में अन्तर आया। विज्ञान ने मानव बुद्धि की श्रेष्ठता को सिद्ध किया। मानव बुद्धि सभी प्रश्नों का हल खोज सकती है। इस मान्यता ने धार्मिक मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया लेकिन विज्ञान के बुद्धिवाद ने मानव को भी पशु बना दिया। विज्ञान की दृष्टि में मानव की हैसियत भी एक जड़ से चेतन हुए पदार्थ के रूप में हो गयी। विज्ञान के प्रसार ने चेतनमनुष्य को यांत्रिक मानव बना दिया। किन्तु मनुष्य कोई जड़ शक्ति नहीं है क्योंकि उसमें चिन्तन मनन की शक्ति भी है। यह विज्ञान शायद भूल गया। क्योंकि यही शक्ति उसे पशु से ऊपर उठाती है। यहां पहुंच कर वह अपनी पाशविक वृत्तियों का उन्नयन करते हुए एक सुसंस्कृत मानव बनता है। इसलिये

" मनुष्य को सजा और विकासोन्मुख व्यक्ति मानते हुए उसकी प्रकृति को आदर्शवादी दृष्टि से न देखकर यथार्थवादी दृष्टि से देखा जाय।[138] फलत: स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में मानव विशिष्टता का मापदण्ड बदल देने का आग्रह प्रबल है क्योंकि मानवीयता के नाते छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी आज महत्व देने की आवश्यकता है, क्योंकि सामान्य मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व का हनन करके कुछ लोगों ने ही लाभ उठाया है इसलिये स्वातन्त्र्योत्तर काव्य मानव विशिष्टता को बदलने के लिये संकल्प शील हो उठा है-

मेरी प्रगति या अगति का यह मापदण्ड बदलो तुम
जुए के पत्ते सा, मैं अभी अनिश्चित हूं
मुझ पर हर ओर से चोटें पड़ रही हैं
कोंपलें उग रही हैं
मैं नया बनने के लिये खराद पर चढ़ रहा हूं
लड़ता हुआ नयी राह गढ़ता हुआ आगे बढ़ रहा हूं[139]

उर्दू काव्य भी बदलाव की यही मांग करता है-

हमारे पास कुछ नहीं
तुम्हारे पास सब सही
मगर तुम्हारा सब का सब न आज को बदल
सका है न कल के काम आयेगा
हमारे पास जो भी है
वह आज की ही आग ही है
हम अपनी खुद किताब हैं हम अपने खुद किताब खां
हम आज लिख सके अगर
तो आज की आग ही बनेगी कल की जिन्दगी[140]

हिन्दी उर्दू काव्य ने यह अनुभव कर लिया है कि जब तक मानव की प्रतिष्ठा सांस्कृतिक धरातल पर नहीं हो पाती तब तक मानव से सम्बन्धित मूल्यों का प्रश्न

अधूरा रह जाता।

स्वतन्त्र्योत्तर काव्य शुद्ध यथार्थवादी परिस्थितियों पर प्रतिष्ठित हुआ है। इस लिये मानव को भी वह यथार्थ रूप में देखता है। इसी कारण वह मानव में सत्-वृत्तियों के साथ असत् वृत्तियों को भी महत्व देने का पक्षधर है। कवियों का विचार है कि जब असत् वृत्तियां मानव में है तो जीवन में उन्हें भी अवश्य स्थान मिलना चाहिये अन्यथा इन वृत्तियों के दमन से मानव में कुण्ठायें जागृत होती हैं। कवि का विश्वास है कि असत् प्रवृत्तियां संस्कार ग्रहण कर दया, करुणा, स्नेह जैसे मूल्यों का निर्माण कर सकती हैं।[१४१] वह अशिव तत्वों से लज्जित नहीं होता बल्कि अपने अस्तित्व की पहचान के लिये घृणा को भी अनिवार्य तत्व मानकर ग्रहण करता है-

हम अपने वजूद की पहचान के लिये
अपनी नफ़रतों के मजबूर हैं[१४२]

इसलिये वह देह का हर पल छूकर भी शिव रहने की कामना करता है और मृत्यु तक अपनी विजय पताका फहराना चाहता है-

शिव रहूं देह का हर पल छूकर
मृत्यु तक मेरी विजय हो
पी गरल जब - जब मरण-सा व्योम नील में जाऊं
तब - तब उदय हो
सूर्य सन्तति
तुम मुझे मेरे सृजन में ढूंढना
मैं कौन हूं[१४३]

वह गर्भ या गर्त का ज़हर पीकर नीलकण्ठ
बन जाने की इच्छा करता है।

बन जाऊँ नीलकण्ठ न क्यों पी के मैं उसे
जो ज़हर उगल रहा है मुझे आगही का सांप[१४४]

लेकिन जब कवि गतु कत्तु प्रवृत्तियों से मुक्त मानव की विशिष्टता सिद्ध करने के लिये प्रयत्नशील हुआ तो उसने व्यक्ति टूटा हुआ, बिखरा हुआ, खण्डित एवं अलक्षित पाया। परिणामत: जिस लघुता के पंक से मानव को उठाने के लिये मानव विशिष्टता का मापदण्ड को बदलने के लिये आग्रहशील हुआ था उसने पुन: मानव को उसी दलदल में गिरा दिया।

इस प्रकार महामानव के विरोध में लघु मानव को प्रतिष्ठित करने वालों ने संघर्ष करते जूझते परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए चेतना सम्पन्न मानव के स्थान पर पराजित मानव[१४५] की प्रतिमूर्ति को मानव विशिष्टता का मापदण्ड बनाने की चेष्टा की। जिसने मानव की समस्त संभावनाओं के द्वार बन्द कर उसे जड़ पदार्थ बना डाला।

हिन्दी काव्य के समान कुछ उर्दू कवियों ने भी मानव को कमज़ात बना देने में कोई आपत्ति महसूस नहीं की। यहां आदमी अजायब घर की ममी ही बन गया-

हम कि कुरबाने हैरते तक़दीर थे
हर्फ़ नादीदा व नाशुनीदा रहे
हैरतें------
पत्थरों में तराशी हुई आंख का दायरा बन गई
हम अजायब घर की ममी बन गये
अपने मक़ाम की क़ब्र में सो गये[१४६]

कवियों द्वारा पराजय कटुता आक्रोश आदि का बोध एक हद तक ठीक दिखाई देता है। संभवत: इस प्रकार की व्यंग्योक्तियों द्वारा मानवीय चेतनाकी जड़ता को झकझोरना चाहता है। क्योंकि जब मानव की चेतना जड़ हो जाती है तब मानव के अहं पर चोट

करके ही उसे जगाया जा सकता है। इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में मानव को भ्रष्ट, पथभ्रष्ट चित्रित करने के पीछे सुप्त मानवीय चेतना को जगाना ही प्रमुख लक्ष्य है। इसमें मानव को नवीन संस्कृति की ओर मोड़ने की चेष्टा देखी जा सकती है। मानव का सुप्त विवेक ये सोचने पर मजबूर हो जाता है कि क्या वास्तव में उसकी स्थिति आज यही है? क्या वह अपने उस स्वरूप को भूल चुका है जिसमें वह सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया था? इस दृष्टि से अवश्य यह प्रयास सराहनीय हो सकता था किन्तु हुआ उसके विपरीत। कवि उस लघु मानव को ही प्रतिष्ठित करने के लिये दृढ़ संकल्प दिखाई देता है। जो मात्र सेक्स का पुजारी है और जिसकी दृष्टि में नैतिकता का कोई महत्व नहीं-

> स्कूटर पे ऑफिसर के पीछे वह बैठी है
> और उसके बालों का गजरा
> मेरी कार के शीशे में नज़र आ रहा है
> मेरे मुक़द्दर से सफ़र की छलफ़ात से महका रहा है[247]

इस मानव ने अपने को हर दायित्व से मुक्त कर लिया है और अपने को जड़ बनाता जा रहा है। किन्तु यह भी सत्य है कि अनेक बार मानव ने अपने को जड़ता के घेरे से निकाल कर नये मूल्यों का सृजन किया है। अतः आज के मानव की जड़ता में भी अनेक संभावनाएं निहित हैं-

> आप ही मैं नहीं इन्सान से मायूस अभी
> अभी फूटे हैं शगूफ़े अभी कमसिन है बहार
> शबनमी सब्ज़ लबादों से महक आती है
> ख़ाक न हूं तो ढूं मैं अभी पैरीना खुमार[248]

हिन्दी काव्य में भी मानवीय जड़ता में नूतन सृजन की कामना की गई है-

> यह सच है कि इस घड़ी

मेरे घुटने टूटे हुए हैं
यह सच है कि इस घड़ी
मेरे पैरों तले धरती नहीं है
माथे पर आकाश नहीं है
फिर भी मैं हैरान हूं यह देखकर
कि मेरी धमनियों नूतन सृजन के
अनन्त कोटि सूर्य अविकल
अविरल धारा में प्रवाहित हैं
-- -- --

मुस्कुरा रहा है कल का
दिव्य शिशु कल्प काम[१४६]

इस प्रकार कई कवियों ने जब अनुभव किया कि मानव की चेतना और सृजन शक्ति अभी नष्ट नहीं हुई तब मानव को टूटा हुआ चित्रित करना उचित नहीं लगता, क्योंकि मूल अपनी मूलप्रवृत्तियों से हट कर भी वह कुछ और है-

व्यक्ति दास नहीं देह का, स्वामी भी है
अनुशासित ही नहीं
मुक्त अनुशासन भी है इच्छाओं का
लक्ष्यहीन ऐन्द्रिय विचरण तो
साधन का उपयोग नहीं उपभोग मात्र है[१५०]

मानव में मूल प्रवृत्तियां होती हैं लेकिन संयम के द्वारा वह उन्हें सुसंस्कृत बनाता है यही मानव की विशिष्टता है। वह सदैव महानता का समर्थन करता है-

उन्नत की उजली चमकीली धूप में तपकर
मैं हर बार निखर जाता हूं
और धरती पर

सीने का एक गरम कदम लेकर आता हूँ
इस धरती का ज़र्रा - ज़र्रा
मेरे क़दमों की उल्फत को पहचाने है
चांद के चेहरे पे यह धब्बा
मेरे माजी का शाहिद है
ये बूढ़ी कमज़ोर हवाएं
फिर भी मुझको छूकर याद दिलाती हैं
कुछ बीती बातें और कहती हैं
तुम वह हो जो डेढ़ क़दम में
सारी पृथ्वी सातों सागर लांघ गये थे[२५१]

पूरी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में कहीं भी किसी भी धर्म व दर्शन ने मानव को छोटा नहीं माना और आज की वैज्ञानिक प्रगति में भयग्रस्त मानवता के लिये लघुमानव का रूप कभी भी सांस्कृतिक स्तर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यद्यपि मानव बुराइयों को जल्दी अपनाता है लेकिन उसे जागरूक बनाया जाय तो वह आत्म मंथन करके विवेकी भी बन सकता है। इसलिये उसके मन में ऐसी शक्ति जागृत करने की आवश्यकता है जहां वह संशय और भय को दूर कर सके। ऐसे में कवि की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है किन्तु स्वातन्त्र्योत्तर काव्य अपने दायित्व के प्रति जागरूक है। वह लघु मानव की भर्त्सना भी करता है।[२५२] उसके स्थान पर सशक्त और नये मानव का प्रयास भी कर रहा है। किन्तु सशक्त और सम्पूर्ण मानव कौन है ? इसकी खोज कवि कर रहा है। ऐसे काल्पनिक मानव को साकार रूप देना व्यक्ति के वश की बात नहीं, न ही कोई समय निश्चित है लेकिन कवि मानव के नये स्वरूप को मूर्त करने के लिये प्रयत्नशील है—

संशय भेद नफ़रत की
भेद झिल्लियां विराट
निकलेगा व्यक्ति नया
सूरज के टुकड़े सा[२५३]

उर्दू काव्य में भी जड़ता के अंधेरे के बीच से रोशनी की खोज का प्रयास दिखाई देता है -

मैं शहीदे जुल्मतो शब सही मेरी ख़ाक को यही जुस्तजू[१५४]
कोई रोशनी, कोई रोशनी, कोई रोशनी, कोई रोशनी

'सात्सां द२' का कवि भी मानव को आत्मिक रूप से ऊंचा उठाना चाहता है किन्तु उस मानव का स्वरूप अभी धुंधला है-

वह अभी दूर है और साया है
उसके क़रीब आओ या उसे अपने पास बुलाओ
उसको ऐसी शक्ल दो जो तुम्हें पसन्द हो
उसको ऐसा जिस्म दो जिसमें आग ही आग हो
-- -- --

उसको ऐसी रूह दो
जो अज़ीयतों और दुखों के बोझ उठा सके
जो और जिस्म की बेबाकी के
मौत की मंजिल तक जा सके[१५५]

'लोकायतन' का कवि भी मानवीय आत्मा का पक्ष लेता है-

सक्रिय हो मानव आत्मा
हृदय दीप स्वर्ग लो दीपित
त्याग समन्वित निखरे
नव मनुष्यत्व अन्तः स्मित
विचरे भू प्रेमी मानव
चित उच्च श्रेणियों में नित्य[१५६]

अमीक़ हन्फ़ी का तेवर इन कवियों से विपरीत है। वह मानव की पाशविक

वृत्तियों का उपाय बताते हुए लिखते हैं-

> सोच रहा हूं मैं
> मैं भी उसकी छाती पर बैठा सोच रहा हूं
> इस जालिम के लम्बे नाखून कैसे काटूं ?
> कैसे इसकी फितरत की तहज़ीब करूं ?
> कैसे उसकी आदत की तादीब करूं ?
> कैसे उसका जिस्म सुडौल बनाऊं ?
> कैसे इसमें अपने रूह की ज्योत जलाऊं[५५७]

किन्तु किसी बाह्य आरोपित नैतिकता के सहारे मानव की बर्बरता को समाप्त नहीं किया जा सकता। मानव आत्मिक शक्ति को तभी पहचान सकेगा जब वह स्वयं यह अनुभव करे कि वह आत्मिक शक्ति से युक्त प्राणी है। किन्तु विज्ञान की प्रगति के कारण उन्नत मानव हृदय आत्मा की सूक्ष्मता को त्याग कर बौद्धिकता का दम्भ भरने लगा है। ऐसे संक्रमण के समय नये मानव की प्रतिष्ठा का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है-" क्योंकि जितनी बड़ी भौतिक शक्तियां आज विज्ञान ने मनुष्य के हाथों में रख दी हैं उतनी बड़ी शक्तियों को संभालने की आवश्यकता यथार्थ रूप में इससे पूर्व कभी - कभी उत्पन्न ही नहीं थी। ----- इसीलिये समस्या का समाधान सम्भवत: इसी में है कि नये मानव स्तर पर मनुष्य की मनुष्य के प्रति सहज आस्था जागृत हो। इतनी विशाल इतनी प्रगाढ़ आस्था जिसे अन्तरिक्ष में स्थित ग्रहों, उपग्रहों की विजय का दर्प या इस पृथ्वी के विघात की भौतिक यान्त्रिक सामर्थ्य भी न तोड़ सके[५५८]।

किन्तु ऐसी प्रगाढ़ आस्था उसी समय उत्पन्न हो सकेगी जब मानव अपनी बर्बर वृत्तियों को त्याग कर सद्वृत्तियों का विकास करेगा। ये एक दुष्कर कार्य है क्योंकि आत्मिक शक्ति को विकसित करके इन्सान देवत्व की प्राप्ति तो कर सकता है लेकिन अपनी सम्पूर्ण मानवीय वृत्तियों के साथ इन्सान बना रहे यह बहुत कठिन है। जबकि आज विश्व को देवता की नहीं बल्कि मानव की आवश्यकता है-

धरती चाहती सिर्फ

मामूली मुस्कान शबनमी उठान लिये

महज एक इन्सान[२५९]

जीवन की समस्त भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी आज मानव जीवन अशान्त है। वह एक ऐसा जीवन चाहता है जहां सुख शान्ति हो और कुण्ठा, अवसाद का लेशमात्र भी न हो। कवि ऐसे ही मानव की तलाश में रत है-

लिये चराग़ जुस्तजू में फिर रहा हूं चार सू
कि आदमी को ढूंढना है आदमी के शहर में[२६०]

पिछली परम्पराओं की तरह नये कवि मानव को पूर्वनिर्धारित योजना में बांधना नहीं चाहते बल्कि अतीत और वर्तमान की प्रयोगशाला में एक व्यापक सत्य की खोज कर रहा है। जो मानवीयता को नया अर्थ दे सके क्योंकि वह जान गया है कि-

अग्नि का संकल्प हूं

नवदूत भी ज्योति का मैं

किन्तु नन्हा संकल्प मुझको मत कहो

इसमें अनादर निहित है उस विभा का

मैं हूं स्थापित संकेत जिसका[२६१]

कवि मानव को उस विराट को रूपाकार देना चाहता है जिसका विराट प्रकृति का यह अंश है-

तराशूंगा मैं एक पैकर

वह पैकर जो मेरे नेहां खानए फ़िक्र में [illegible] करवटें ले रहा है

उसे दूंगा नूर आंखों का ताबिन्दगी पैकर की

वह पैकर फ़क़त एक पैकर न होगा

उसे ढूंढूंगा मैं पढ़कर अपने दिल की धमक्युज लहू का
पहनाऊंगा वह रूप और बख्शूंगा वह नूर
जिसने बनाया है मुस्कार मुझे[162]

" लोकायतन " में भी ज्ञान के प्रकाश में नये मानव की सृष्टि का स्वप्न देखा गया है।[163] इसी प्रकार शहाबजाफ़री का " सूरज का शहर " औद्योगिक नगरों में बसने वाले नये मानव की खोज में रत है। यद्यपि इन प्रयत्नों के बाद भी कवि ( उर्दू हिन्दी ) को स्वस्थ मानव के निर्माण में सफलता नहीं मिली है किन्तु संघर्ष के जिस दौर से काव्य गुजर रहा है उससे यह आशा स्पष्ट होती जा रही है कि कवि को एक दिन अपने लक्ष्य में सफलता अवश्य मिलेगी।

२- अस्तित्ववाद व्यक्ति स्वातन्त्र्य :

वर्तमान परिवेश में व्यक्ति का स्वतन्त्र इकाई के रूप में जागृत होना एक सांस्कृतिक आवश्यकता बन गयी है। मानव स्वतन्त्रता के युग में मानव के अहं की प्रतिष्ठा आवश्यक हो जाती है जिससे वह भीड़ का निर्जीव अंग न बन सके। जब तक व्यक्ति भीड़ में छुपा रहता है उसका स्वतन्त्र अस्तित्व उभर कर नहीं आ पाता। अतः मानवीय गरिमा के लिये यह परम आवश्यक है व्यक्ति भीड़ का अंग न बनने पाए। क्योंकि " सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिमान इससे नहीं आंका जा सकता कि कितने समर्थ व्यक्ति सम्पन्न हैं,वरन् उसका मापदण्ड जब भी निर्धारित होगा उसमें इस बात को देखा जायगा कि जो समर्थ नहीं है अथवा दुर्बल, जो अवसर हीन है उन्हें कितना बल मिल पाया।[164] " वर्तमान सांस्कृतिक परिवेश असमर्थ व्यक्ति को भी महत्व देना चाहता है। अब तक की परम्परा में व्यक्ति को काल्पनिक दृष्टि से देखा गया। मध्यकालीन विभिन्न दर्शनों ने मानव के सद्वृत्तियों के संस्कार पर तो बल दिया किन्तु वहां पारलौकिक विचार ही छाया रहा। उसकी रहस्यात्मक परिधि में संसार का रोता, हंसता, दुख झेलता मानव नहीं आ सका वहां व्यक्तित्व की

साधकता स्वयं को ईश्वर के अस्तित्व में गुम कर देने की रही। पुनर्जागरण का मानवतावादी दृष्टिकोण भी मानव को अनुभूतियों का पुंज मानने के कारण उसे वास्तविक रूप में नहीं देख सका। फलत: अलग - अलग अस्तित्व रखने वाले मानव न होकर सब एक ही हो गये। किन्तु वर्तमान जनवादी चेतना में प्रत्येक व्यक्ति को महत्व दिया जाने लगा-

ताश और शतरंज के शाहों से बढ़कर है कहीं
वह प्यादा जो चले खुद अपनी चाल[165]।

कुमार विमल का विचार भी कुछ ऐसे ही है। वह भी व्यक्ति को स्वतन्त्र, आत्म निर्भर देखना चाहते हैं[166]।

इस व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को पाश्चात्य प्रकृतिवादी और अस्तित्ववादी दर्शन ने प्रोत्साहित किया। किन्तु हमारे देश की परिस्थितियों ने भी इस दृष्टिकोण के विकसित होने में पर्याप्त भूमिका निभाई है। यद्यपि भारत ने प्रत्यक्ष रूप से महा युद्धों की विभीषिका नहीं झेली न ही हमारे देश में औद्योगीकरण वृहद् पैमाने पर हुआ है। इन स्थितियों को हमारे देश को अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित किया। उसके साथ ही हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था ने भी काव्य में व्यक्तिवादी स्वर को उभारने में सहायता दी है-

न खेलूं कार शतरंज ऐसी गलत शर्तों पर
कि जिसमें सभी चालें बस तुम्हारी हों
न हो स्वीकार यदि यह खेल मुझको
जीतना जिसको तुम्हारी बदनियती हो
और जिसमें हारना मेरी नियति हो[167]

देश की व्यवस्था ने प्रजातंत्र के नाम पर केवल भीड़ उत्पन्न की है और प्रजातंत्र के नाम पर व्यक्ति पूंजीवादी सत्तात्मक व्यवस्था का पुर्जा बन गया है। इस व्यवस्था में केवल उसकी गिनती की जाती है, इसलिये वर्तमान परिवेश में व्यक्ति

की खोई हुई चेतना और स्थान देना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।"

अहं मानव की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु उसे सार्थकता को कभी स्वीकार नहीं किया गया। समस्त भारतीय साहित्य परम्परा में एक आदर्श नायक की ही परिकल्पना को महत्व प्रदान किया गया। उस नायक के समक्ष सामान्य मानव सदैव गौण रहा। प्रगतिवाद ने सर्वप्रथम इस समस्या को समझने का प्रयास किया लेकिन वहां भी मानव के समक्ष उसे अपने अहं को छोड़ना पड़ा। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य ने सर्वप्रथम इस महत्वपूर्ण प्रश्न को समझने का प्रयास किया और मानव के स्वाभिमान की प्रतिष्ठा के लिये अहं की बात उठायी है। खण्डित व्यक्तित्व को समग्रता प्रदान करने के लिये अहं स्वाभिमान का पर्याय बन गया-

मैं कवि हूं स्वाभिमानी
शब्दों में नया और सच्चा
जीं मरना चाहता हूं[198]

उर्दू काव्य भी अहं को स्वीकृति प्रदान करता है-

मुझे आज नया जन्म स्वीकार करना है
आज फिर एक नये मोड़ पर आई है हयात[199]

किन्तु इतने बड़े संकल्प को लेकर चलने वाले काव्य में जिस "अहं" का प्रतिपादन किया गया वह अहंवाद बदल कर अपने "स्व" अथवा मैं की अभिव्यक्ति को सार्थक मान बैठा। "मैं" अपने बौने "अहं" को लेकर किसी के कंधे पर चढ़कर अपने विवश हाथ फैलाना चाहता है-

किसी के कंधों पर चढ़कर
फिर मेरा बौना अहं
विवश हाथ फैलाएं[200]

कहीं "मैं" बन्द कमरे में छटपटाते हुए अपने पैदा होने की प्रतीक्षा कर रहा है-

बन्द कमरा
छटपटाता सा अंधेरा
और दीवारों से टकराता हुआ मैं
मुन्तज़िर हूं अपनी पैदाइश के दिन का[१७१]

कहीं मैं अनासिर का टूटा हुआ हाथ बन गया[१७२] तो कहीं क्रुद्ध सांप बन कर चुप हो गया-

ठहर - ठहर आततायी ! ज़रा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन ले
-- — —
आज जो कि क्रुद्ध सांप सा अतीत की जगा
मैं से हम हो गया[१७३]

किसी का 'मैं' कमरे के दायरे से जूझ रहा है।[१७४] तो कहीं यही 'मैं' रिरियाता कुत्ता बन जाता है-

मैं ही हूं वह पद क्रान्त रिरियाता कुत्ता
मैं ही वह मीनार शिखर का प्रार्थी मुल्ला[१७५]
मैं वह छप्पर तल का वस्त्रहीन शिशु भिक्षुक

इस प्रकार 'अहं' आत्मलीन होकर संघर्षरत मानव की अपेक्षा अहंयुक्त पराजित मानव का प्रतिनिधित्व करने लगा। जो अपनी कुण्ठा से पीड़ित भीरु कायर मानव की ही तस्वीर बन गया। अहं युक्त होने से वह सामाजिक परिवेश से कट गया। इस प्रकार और पराजित मानव को जब स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह अपनी आत्मलीनता से उबरने का प्रयास करने लगा किन्तु इस प्रयास में आत्म प्रदर्शन की भावना झलक उठी-

देख लो मगरी उठा कितना बड़ा हूं मैं
आगरे का ताज यह व्यक्तित्व मेरा है
चीन की दीवार यह अस्तित्व मेरा है[२०६]

आत्म प्रदर्शन की यह भावना हिन्दी उर्दू दोनों काव्यों में एक समान रूप से मिलती है-

मुझको यह फ़क्र कि मैं फ़क़्र व सदाक़त का अमीं
मुझको यह ज़ोम कि आगाह हूं खुद्दार हूं मैं[२०७]

यदि यही 'अहं' संशोधित रूप में उभरे तो व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। अपने संशोधित रूप में अहं समाज विरोधी नहीं रहता। किन्तु आत्म प्रदर्शन से मण्डित अहं को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया तो सांस्कृतिक विघटन होगा उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। लेकिन मानवीय स्वाभिमान की रक्षा में सहायक अहं निश्चय ही सृजनशील है।

वर्तमान संवेदना और मानवीयता की मांग यही है कि परम्परा और व्यवस्था से पृथक मानव अस्तित्व की पुनः पहचान की जाय-

क्या यही हूं मैं
अंधेरे में किसी संकेत को पहचानता सा
चेतना के पूर्व सम्बन्धित किसी उद्देश्य को
आगत किसी संभावना से बांधता सा[२०८]

शक़ूरत का कवि भी अस्तित्व की पुनर्परीक्षा करना चाहते हैं-

देखी अनदेखी छायाओं में मैं अपने को ढूंढ रहा हूं
-- -- --
पर्दों के दिल के बेनाम रब्तों का भी एक ख़ाका बना रहा हूं

और कुछ अपनी गहराई में जाने की
भवानी के दांव पैंतरे सीख रहा हूं[१७९]

यह आत्म विश्लेषण किसी कुण्ठित भावना का प्रदर्शन नहीं है बल्कि आत्मविश्वास पूर्ण दृष्टिकोण से सत्य का अन्वेषण है-

चेक बुक हो पीली या लाल
दाम सिक्के हों या शोहरत
कह दो उनसे जो खरीदने आए हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता[१८०]

स्वतन्त्रता के बाद काव्य में मानव की स्वतन्त्र निर्णय शक्ति को जागृत करने के प्रयास किये जा रहे हैं-

ओ महा प्रलय के बाद नये उगते शिखरों
तुम्हें कसम है इन ध्वस्त विंध्य मालाओं की
मत शीश झुकाना तुम अपना
जो सूर्य तुम्हारा यह तेजस्वी भाल देख
कितने अगस्त्य आयेंगे गुरु का वेश धर
आशीष वचन कहने वाले
विनत तुम्हारा मस्तक यों ही झुका छोड़
वे गुरुवर वापस नहीं लौटकर आयेंगे[१८१]

उर्दू काव्य में भी स्वतन्त्र निर्णय का समर्थन किया गया है क्योंकि इसी स्थिति में व्यक्ति किसी के सामने नतमस्तक होने को बाध्य नहीं होगा ।

फिर न होंगे किसी दर पे तेरे सज्दे पामाल
जो हर एक दर पे न झुक जाये वह सर पैदा कर[१८२]

इसी लिये स्वतन्त्र्योत्तर काव्य जिस वर्ग के लिये सक्रिय है उसका लक्ष्य मानव

स्वाभिमान की उपेक्षा करके व्यक्ति विशेष या सामाजिकता के अतिरिक्त बन्धनों की प्रतिष्ठा नहीं करना चाहता वरन् व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में मानव की सक्रियता एवं स्वाभिमान पर बल अधिक देना चाहता है। आज हमारे समाज में साहबों की जी हुजूरी करने वालों की संख्या अधिक है। किन्तु इसका कारण आज कवि ने समझ लिया है कि मानव की प्राथमिक आवश्यकताएं ही उसे कुण्ठित बनाती हैं। हमारे देश की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों के कारण अधिकांश जनता अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की अपूर्ति से त्रस्त है। इस दुख से मानव तभी मुक्त हो सकेगा जब वह व्यवस्था को तोड़ने के लिये संघर्ष करने की क्षमता पैदा करे। यह क्षमता मानव में उसी समय आयेगी जब वह यह अनुभव करे कि उसका भी कोई अस्तित्व है। सातवें दशक के बाद की कविता में मानव के स्वतन्त्र अस्तित्व को अधिक महत्व दिया जा रहा है। नयी कविता सामन्ती संस्कारों को उतार फेंकने की स्पष्ट सलाह देता है। ताकि हर व्यक्ति यह कह सके-

बोलो तुमने हमें क्यों धोखा दिया
तुम्हारे कुएं का पानी हमारा पसीना है हमारा खून है
जिसे तुम बहाते हो महज इसलिये कि घड़ा तुम्हारा है
हमारे लोग हां हमारे अपने लोग
दाना पानी तलाश करते भटक रहे हैं
वे अपने देश से निर्वासित हो रहे हैं क्यों आखिर क्यों ?

इस प्रकार सत्तर के बाद की कविताओं ने मानव को समझने में अत्यधिक सफलता पाई। हिन्दी काव्य में चेतना को अधिक व्यापक रूप मिला। उर्दू काव्य अभी तक व्यक्तिगत अस्तित्व की चेतना में सोया है किन्तु इधर कुछ कवियों ने हिन्दी का अनुकरण कर इस नवीन प्रवृत्ति को अपनाने की चेष्टा की है। फलस्वरूप हर व्यक्ति को सत्य के विवेचन की स्वतन्त्रता, विचारों के संघर्ष की स्वतन्त्रता नये मूल्यों को प्राप्त करने की छूट देने से जीवन में सक्रियता आई है। स्वतन्त्र मानव जीवन के स्वाभिमान का अविभाज्य अंग है क्योंकि " मनुष्य होने के नाते कहीं-न-कहीं

मानव मात्र इस बात की अपेक्षा रखता है कि वह अपना निर्णय स्वयं ले, अपना मत रखे, अपने विचारों को व्यक्त करे और दूसरों से भिन्न स्वर का बिना किसी भय से समर्थन कर सके। जब तक इस भिन्नता को स्वीकार नहीं किया जायगा तब तक इतिहास और संस्कृति के स्तर पर वास्तविक मानव, मानव स्वाभिमान की रक्षा नहीं हो सकती।" किन्तु वर्तमान परिवेश में स्वतन्त्रता की मूल धारणा विघटित होती जा रही है। मानव के विवेक संकल्प का कोई महत्व नहीं रह गया। इसके अतिरिक्त व्यक्ति में स्वयं स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता नहीं रही। वह विवशता की स्थिति में जी रहा है। जहाँ उसका अपना कुछ भी नहीं है। व्यवस्था उस पर जो भी थोप रही है उसे वह चुपचाप उठा लेता है। अब तक की परम्परा में निरन्तर व्यक्ति धर्म और समाज के संरक्षकों के हाथों पिसता रहा। किन्तु वर्तमान बुद्धिमूलक मनोवृत्ति के समक्ष व्यवस्था मूलक संस्कृति का ढांचा लड़खड़ा उठा-

> प्रकृति ने जिन्हें आजाद पैदा की
> हवा पानी उजाला मेघ
> वनस्पति जीव पशु पक्षी
> सभी हैं एक मौलिक सूत्र में आबद्ध
> सभी हैं किन्तु अपने दायरे में मुक्त
> इसी से मुक्त है इन्सान का भी मन
> स्वयं ही सिद्ध नैतिक और सामाजिक नियम जिसको
> प्रकृति गुणधर्म के कारण नहीं स्वीकारता उसने
> कैद नियमन क्रूर अनुशासन

इस प्रकार जब प्रकृति सबको मुक्त रखती है तो फिर कुछ लोगों को क्या अधिकार है कि वे मानव की स्वतन्त्रता का हनन करें। कोई भी सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएं व्यक्ति स्वातन्त्र्य के समर्थन के बिना स्थापित नहीं की जा सकती है। अब तक मानव को एक कृत्रिम आवरण में देखने का प्रयास किया जाता रहा है। किन्तु वर्तमान मानवीय चेतना ने यह अनुभव कर लिया है—

क्योंकि मैं यह ज्ञान पाया हूं कि मैं मुक्त बन्धनहीन
और तू है मात्र भ्रम मन जात मिथ्या वचना
इसलिये इस ज्ञान के आलोक के फल में
मिल गया है आज मुझको सत्य का आभास[१८६]

इसीलिये वर्तमान युग की मांग है कि उस विवेक को जो कि अब तक पंगु बना हुआ था मुक्ति प्रदान की जाय। आज कवि उस व्यवस्था को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। जहां मानव स्वाभिमान का मूल्य नहीं रह गया है वह मांग करता है-

माटी को हक दो
वह माजे सरसे फूटे अंकुवाये
उन मेड़ों से लेकर उन मेड़ों तक छाये[१८७]

उर्दू काव्य भी व्यक्ति स्वातन्त्र्य का हक देने के पक्ष में क्रियाशील है-

आजादी इन्सान का हक है
हर जीस्त रूह का हर इन्सा का[१८८]

बशीर बद्र भी मानव स्वतन्त्रता का समर्थन करते हैं-

आहन जैसी दीवारें हों या इन्सान का जिस्म खाकी
मिट्टी की फितरत आजादी है कैद नहीं रह सकती[१८९]

सर्वेश्वर दयाल में भी इसी घुटन की स्थिति देखी जा सकती है—वह आजाद होने के लिये पांव मांगते हैं।[१९०] आज व्यवस्था का अमानवीय चक्र जीवन के हर क्षेत्र में क्रूरता से चल रहा है। आज देश की व्यवस्था अमानवीयता की चरम सीमा पर पहुंच गया है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति स्वातन्त्र्य को एक मूल्य के रूप में सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक हो गया है। कवि आज इन्हीं परिवेशगत विसंगतियों से त्रस्त दिखाई देता है और व्यवस्था को नष्ट करने को उद्यत हो उठता है-

नेज़ामे जीस्त की तल्ख़ी से ताजावार के लिये
मुफ़्लिसी कुबूल नेज़ामे कुहन की बरबादी
हर उस नेज़ाम से लेकिन सदा इनकार हूं मैं
जो मुझसे छीन ले फ़िक्र व नज़र की आज़ादी[१६१]

ऐसी व्यवस्था को कवि नष्ट कर देना चाहता है किन्तु कुछ न कर पाने की स्थिति में वह हर दायित्व से आंख मोड़कर केवल अपने मैं को ही जीवित रखना चाहता है-

मर जायें चाहे और सभी
( उससे क्या बिगड़ता है )
केवल रहें हम और हमारा अभिमान[१६२]

व्यक्ति स्वातन्त्र्य के नाम पर मैं को जीवित रखने की भावना ने कवि को हर स्थिति से असम्बद्ध कर दिया । इसका लाभ उठाकर अनेक युवा कवियों ने यौन स्वातन्त्र्य को व्यक्ति स्वातन्त्र्य का पर्याय बना दिया और व्यक्ति स्वातन्त्र्य के सन्दर्भ में यौन अभिव्यक्ति एक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी । अकवितावादियों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य का अर्थ केवल यौनस्वातन्त्र्य स्वीकार किया । इसमें सन्देह नहीं कि " भारतीय समाज इतना धर्मनाग्रस्त विधि विधानों से ओत-प्रोत और आडम्बरी है कि यौनगत विद्रोह भी एक सीमा तक सार्थक लगने लगता है । मध्यवर्ग तो अभी तक इतना रूढ़िवादी और दुहरेपन से ग्रस्त है कि वह " एकान्त भोग " को ही स्वीकार करता है मगर सामाजिक स्तर पर परम्परा से प्रचलित यौन प्रतिमानों से वह डरता है[१६३] । कवि यौन सम्बन्धों को निरपेक्ष मानने लगा परिणामत: कवि ने स्वतन्त्रता के नाम पर स्वयं को हर नैतिकता से मुक्त कर लिया । आज व्यवस्था के नाम पर हर व्यक्ति बन्धनग्रस्त है फिर भी अवसर पाते ही वह उच्छृंखल हो उठता है और दूसरे व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन लेना चाहता है । जब हर व्यक्ति मैं " मैं " ही रहूं की भावना में जी रहा है तो निकट भविष्य में समाज की क्या गति होगी सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है । इस प्रकार

व्यक्ति स्वातन्त्र्य के नाम पर हम ऐसे मूल्यों को स्थापित करना चाहेंगे तो समाज का अनुशासन ही समाप्त हो जायेगा । इसलिये दायित्व बोध आवश्यक है । कुछ कवियों ने दायित्व बोध को जन - जन में जागृत करने का प्रयास किया है-

मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी तो दर्द हरे
सुख सौख्य भरे
यह नहीं कि
अपने तन के मन के
निजी व्यक्तिगत
दुख दर्दों में घिरे मरे[१९४]

उर्दू कवियों ने भी इस आशय की कवितायें लिखी हैं-

समझ रहे हैं आप जिसे मेरी जात का करब
जो सोचिये तो वो है पूरी कायनात का करब[१९५]

हिन्दी काव्य में दायित्व बोध का स्वर बहुत प्रखर है-

अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारे स्वर
अगर नहीं है मेरे हाथों में तुम्हारे हाथ
अगर नहीं है मेरे शब्दों में तुम्हारी आहट
अगर नहीं है मेरे गीतों में तुम्हारी बात
तो ओ रे भाई
मुझे फाड़ आये बादल की तरह
टूटने दो[१९६]

किन्तु यह कर्तव्य बोध तभी आ सकता है जबकि व्यवस्था विचारों को स्वतन्त्रता प्रदान करे । कवियों ने मानव के वैचारिक स्वत्व का समर्थन किया है-

अर्जुन ! अपने वैचारिक स्वत्व को

किसी का भी दास मत होने दो
स्वयं का भी
यदि वैचारिकता की अग्नि
स्वयं बुझाने लगे
तब भी उसे वहन करो[197]

स्वतन्त्रता की इसी भावना को कवियों ने सामाजिक स्तर पर अभिव्यक्ति दी है। क्योंकि ऐसी ही भावना उसे उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त करती है-

समाज अमूर्त होता है
व्यक्ति नहीं
और व्यक्ति के फूलत्व को कुण्ठ दोगे तो वन
गन्धमादन कैसे बन पायेगा भाई ?
फूल का एकाकीपन
अरण्य की सामूहिकता की शोभा है विरोधी नहीं[198]

यही सत्य भी है कि व्यक्ति को स्वतन्त्रता देने से समाज मजबूत होता है। क्योंकि जब व्यक्ति स्वातन्त्र्य को सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठा मिलेगी तभी वह चिन्तनशील होकर समाज और राजा के प्रति उत्तरदायित्व को समझेगा। कवि व्यक्तिगत अस्तित्व के साथ - साथ दूसरों के अस्तित्व को भी सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाना चाहता है। इसके लिये कवि संघर्ष कर रहा है जो एक नये सामाजिक निर्माण की दिशा को इंगित करता है।

मैं माध्यम हूं
मैं उन सबकी भटकी हुई आत्माओं का माध्यम हूं
जो अधूरे और अतृप्त मर गये
मेरे कण्ठ में उनके स्वर हैं
जिन्होंने सारी जिन्दगी निःशब्द गुजारी

जो अपनी आग अपने दिलों में दबाए ही चले गये
मेरे गीतों में उनका विद्रोह है
जिनकी गर्दन उठने से पहले ही झुका दी गयी[१९९]

उर्दू काव्य में हिन्दी काव्य की अपेक्षा सामाजिक चेतना बहुत क्षीण है। अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित होने के कारण इनके सामने अस्तित्व की मान्यता को स्थापित करवाना पहला कर्तव्य है। क्योंकि जब तक अस्तित्व को मान्यता नहीं मिल जाती सामाजिक दायित्व की भावना नहीं आ सकती। परिवेशगत विसंगतियों के कारण ही उर्दू काव्य व्यक्तिगत स्तर के ही अधिक महत्व दे रहा है।

३- सांस्कृतिक स्तर पर सामाजिक व्यक्तित्व की समीक्षा :

स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने व्यक्ति को समाज का अंग मानते हुए समाज की पुरातन मान्यताओं को समाप्त करके नये समाज के निर्माण का प्रयत्न किया। नये सामाजिक मूल्यों को आज का कवि प्रतिष्ठित करना चाहता है क्योंकि आज समाज जिन स्थितियों से गुजर रहा है वहां भारतीय संस्कृति का कोई रूप नहीं रह गया। यद्यपि अभी तक समाज का कोई ठोस रूप नहीं बन पाया है किन्तु कवि एक मानवीय समाज को निर्मित करने में लगा हुआ है। एक ऐसा समाज जहां वर्ग, रंग, नस्ल, जाति का भेद न हो, जहां मानव मानव में अन्तर न हो, जहां गरीबी और भूख, बेरोजगारी का ताण्डव न हो। ऐसे समाज के निर्माण के लिये कवि समाज में नवीन चेतना का संचार करता है-

उठो मेरे दोस्तों गाढ़े पसीने के मोती बिखेर कर
इस काली रात को जरखेज बनाकर
सामूहिक मुक्ति के लिये
तिमिर के प्रकाश की फसल लगा दो[२००]

कवि समाज में ऐसी आग पैदा करना चाहता है जिसमें समस्त विसंगतियां जलकर

विनष्ट हो जाएं-

आग ऐसी कि जूं चेहरों का
जिसकी लू पाशियों से घुल जाए
आग जिसकी हरारतों का गुदाज
दिल में शबनम की तरह घुल जाय
आग भड़काओ रोशनी कर लो
वरना यह रात तो अबद यूं ही
मुस्कुराएगी अहरमन की तरह[202]

अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कवि कोरे आदर्श को नहीं चुनता बल्कि क्रान्ति का आह्वान करता है। उन सारी पुरातन मान्यताओं के प्रति वह विद्रोही हो गया है जो समाज को जड़ बना रही है। उनके स्थान पर नये मूल्यों की स्थापना में कवि संलग्न है इसीलिये वह अपनी कटु वाणी तथा व्यंग्य बाणों द्वारा समाज का पर्दाफाश करने से नहीं चूकता। "द्वितीय महायुद्ध भारतीय स्वतन्त्रता वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति भयंकर अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार, यांत्रिक जीवन पद्धति औद्योगीकरण आर्थिक व्यवस्था, महानगरीय सभ्यता, बेकारी, मूल्यों की टकराहट युद्ध जनित मनोविकृतियां चारित्रिक एवं नैतिक पतन आदि के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों ने सामयिक कविता को प्रभावित किया है और कवियों ने मानव को लक्ष्य बनाकर अनेक समस्याओं को हल करने की चेष्टा की है"[203]। स्वतन्त्रता के बाद कवि इन्हीं समस्याओं से निरन्तर संघर्षरत है और नये मूल्यों की स्थापना में संलग्न है। इसके लिए यह जरूरी है कि समाज और व्यक्ति एक दूसरे से जुड़े रहकर कार्य करें क्योंकि तभी दायित्व का बोध होगा और जब व्यक्ति अपने दायित्व को पहचानेगा तो स्वयं ही उसकी चारित्रिक दुर्बलताएं दूर होंगी और उसका चरित्र उन्नत होगा। तभी देश भी उन्नति करेगा किन्तु हुआ यह कि स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक योजनाएं बनायी गयीं उनको कार्यान्वित करने के लिये जिस दायित्व

और चारित्रिक दृढ़ता की आवश्यकता थी वह दिन प्रतिदिन समाप्त होती गयी और उसके स्थान पर अवसरवादिता, स्वार्थसिद्धि, बेईमानी और घूसखोरी बढ़ती गयी पूरा देश इसी संकीर्ण परिधि में घूमने लगा। स्वयं देश के कर्णधार अपने कर्तव्य को भूलकर कुर्सी प्राप्त करने में लग गये। राजनीतिक तथा औद्योगिक शक्तियों ने मिलकर समाज को भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया परिणामतः बाहरी दिखावा और बनावटीपन ही विकसित हुआ-

आज की दुनिया में
विवशता
भूख
मृत्यु
सब सजाने के बाद ही
पहचानी जा सकती है
बिना आकर्षण के दुकान टूट जाती है
शायद कल उनकी समाधियां नहीं बनेंगी
जो मरने से पूर्व
कफ़न और फूलों का प्रबन्ध नहीं कर लेंगे[203]

समाज के इसी खोखेपन को विस्तार से वर्णित करते हुए समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश करता है जहां मनुष्य आदमी कहे जाने वाली प्रेतात्माओं को ढोता रहता है दूसरी ओर संभ्रान्त वर्ग पैसे से अपने हर कुकृत्य पर पर्दा डालने में सफल होता है।[204] ऐसे समाज को बेनकाब करना वह अपना कवि धर्म समझता है जहां पग - पग पर बेईमानी का राज्य है-

बिल्टी लेकर जो आये फ्री बोरी कुछ देता है
मरती और कुआंई के झूठे बिल बन जाते हैं

— — —

ठेके देने वालों की हर सूरत से चाँदी है
इज़्ज़त पर तो ज़ोर नहीं दौलत उनकी बाँदी है
रिश्वत और कमाने में रोग यह ऐसा फैला है
उजले कपड़े वालों का अन्तर में दामन मैला है[205]

सामाजिक बुराइयाँ इतनी फैल गयी हैं कि आज समाज का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये ईमान बेचने में भी कोई संकोच नहीं किया जाता—

कुछ झूठे वादों पर
निष्ठा बिक जाता है
ओछे बहाने पर
अपने ईमान का
दिवाला निकलता है[206]

नकली दवाइयाँ देकर जीवित मनुष्यों की मौत बुलाने से भी व्यक्ति नहीं झिझकता वह तो केवल अपनी जेब भरने में ही मग्न है—

करते हैं मिलावट जो दवा में वह हमीं हैं[207]
जो मौत पिलाते हैं शफ़ा में वह हमीं हैं

बड़ा से बड़ा गुनाह करने पर भी धन, नाम, पोशाक उसकी कलुषता को ढक लेती है—

हैं बहुत से लोग जिनके
नाम तो ठीक हैं मगर बदकार
बेचता है मादक, चरस, कोकीन
रोब मिलता है राह में फुफकार

एकबारगी हुआ है बरसों से
शान्ति व मैं को इनसे फ़रमाइश की लिये
मुल्कों कभी कि सब तैयार
कैसा माँजू हुआ है उन पर नाम[२०७]

यूं तो शराब पीना बेचना दोनों जुर्म है। शराब नहीं पीना चाहिये इसका प्रोपेगण्डा भी खूब होता है। जगह - जगह पोस्टर लगाकर, टेलीविजन और रेडियो के माध्यम से शराब पीने की बुराइयाँ उद्घाटित की जाती हैं लेकिन वही शराब की दुकानें जगह - जगह खुलने पर सरकार को कोई आपत्ति नहीं। शराब बेचने के लाइसेन्स धड़ल्ले से दिये जाते हैं। इसी तरह आज मादक पदार्थों के विरुद्ध तीव्र अभियान चलाया जा रहा है किन्तु उसकी जड़ को ढूंढने का प्रयास नहीं हो पा रहा। निकट भविष्य में कहीं शराब बन्दी वाली स्थिति न हो जाय इसी का भय है क्योंकि हम जड़ को तो सींचते रहते हैं और डालियों, पत्तियों को काटकर मार्ग बनाना चाहते हैं—

यूं बुराई मिटाई जाती है
जड़ नहीं, काटते हैं बर्ग - ब - बार[२०८]

शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में भी एक गलाजत भरती जा रही है। डिग्रियां प्राप्त करना मात्र उद्देश्य बन जाने से विद्यार्थी भी अवसरवादी बन गया है, गुरु और शिष्य का पवित्र सम्बन्ध भी इसी गन्दगी का शिकार है। परन्तु इन सबका दायित्व किस पर है यह हम नहीं समझ पा रहे हैं-

वास्तव में हमारे उन किशोर शिक्षार्थी
बालकों के विश्वास भरे चमकते चेहरों की
सहसा विषाक्त हो गयी आँखें हैं
जिनके नैतिक मान हमने आधुनिकता के विस्फोट में उड़ा दिये

और जिनके शिक्षा स्रोत इसकी अशान्ति
विषों से दूषित कर दिये हैं

—— —— ——

बालकों के भविष्य के मोटे विश्वास के प्रति
क्या मैं उत्तरदायी नहीं हूँ[२१०]

किन्तु न तो व्यवस्था का ध्यान इस ओर है न बुद्धिजीवी वर्ग इस दायित्व को समझने को तैयार है। यहां तक कि इस ओछी परम्परा ने साहित्यकार को भी बहुरूपिया बना दिया है-

बहुरूपिया बने रहना ही क्या मेरी नियति है
कब तक मैं प्यार को फूल और रोटी को कुआमक
और क्रान्ति को रेस्तरां बनाता रहूँगा
कब तक सुविधा की छत पर चढ़ा कविता के बांस से[२११]
जिन्दगी की कटी पतंग फांसने का यत्न करता रहूँगा

तात्पर्य यह कि कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार से नहीं बचा। नयी कविता की यह महान् उपलब्धि है कि उसने जहां समाज को बेनकाब किया वहीं स्वयं को भी बेपर्दा करने से नहीं झिझका और अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। कवि ने मात्र समाज का चित्रण ही नहीं किया बल्कि उसमें डूबकर समाज सुधार की दिशा भी दी-

मैं कह रहा था मैं बार बार नहीं सोता
जन्म न देता इतनी काली कविताओं को
सच में सोकर सच्चा होने की कोशिश में

—— —— ——

सोता सूरज को
बख्शता बोड़ी

छूनी रगाई
शहर में
समझ सकूं
ताकि
घाव के स्वभाव को
समझा जा सकता है
झूठ, घूस, सांठ-गांठ, जुआ, सूदखोरी, जहरबाद
भीतर ताजन खुला तस्करी
छिनाली का अर्थ [११२]

समाज का यह सांस्कृतिक पतन बहुत अधिक चिन्तनीय है किन्तु सारे भ्रष्टाचार के कारणों की खोज कवि तटस्थता से कर रहा है। समाज को सुधारने के लिये कवि ने कोई आदर्श मान्यता की स्थापना न करके सीधे उसकी पुरातनता पर कुठाराघात किया है। साफ़ सुथरे समाज को देखने की इच्छा से अभिभूत होकर कवियों ने कुछ नये मूल्यों को प्रश्रय दिया है और सांस्कृतिक पतन का कारण पुराने मूल्यों का विघटन तथा नयी पुरानी पीढ़ी का संघर्ष माना है। वर्तमान भारतीय समाज में औद्योगीकरण के कारण भारतीय संस्कृति में एक आयाम और बढ़ गया है जो महानगरों की संस्कृति का था। काव्य ने समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि इस ग्राम प्रधान देश में महानगर ही संस्कृति के केन्द्र बन गये हैं।

## ४- मूल्य संघर्ष : पुराने मूल्यों का विघटन तथा नये मूल्यों की स्थापना :

जीवन गतिशील है और समय के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। इन परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना की जाती है यही जीवन मूल्य किसी भी समाज की संस्कृति एवं सभ्यता के आधार बनते हैं। वर्तमान युग तीव्रगामी परिवर्तनों का युग है जहां पुराने आदर्शों और आस्थाओं

की परम्परा जिसे मानव ने शताब्दियों में संचित किया था वे महायुद्धों की भयंकरता के बीच निर्जीव से दिखाई देने लगी-

> सारे आदर्श पाश पाश हुए
> ज़िन्दगी के निखार आने में
> हर कलन्दर ने जिसकी पूजा की
> हर ज़माने में जो रहा बाकी
> वह उम्मीदों का भी बुत टूट गया
> ज़िन्दगी के निखार आने में[२१३]

इन परिस्थितियों के बीच नई एवं पुरानी पीढ़ियों का संघर्ष भी चलता रहा है। पीढ़ियों का यह संघर्ष अनादि काल से चला आ रहा है। सामान्यतः नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी के मूल्यों को ग्रहण करती रही है किन्तु इस सामान्य प्रक्रिया में कभी-कभी संघर्ष की स्थिति उस समय आती है जब पुरानी पीढ़ी अपने निर्जीव जीवन मूल्यों को नई पीढ़ी पर लादना चाहती है। कभी - कभी समाज में ऐसे अवसर भी आए हैं जबकि पुरानी पीढ़ी के आदर्श इतने खोखले हो गए हैं कि वे अनुकरणीय होने के स्थान पर उपहास्य बनने लगते हैं और यहीं पर दोनों पीढ़ियों के मध्य कथनी और करनी की खाई पैदा हो जाती है।

" पुरानी पीढ़ी समझौते एवं लेन- देन में व्यक्ति के अधिकारों को नष्ट करती है और अपने स्वार्थ हेतु नैतिक आदेशों के पालतू मुहावरों के नीचे ईमान के चोर दरवाजे से एक नया व्यापार करती है। यदि नई पीढ़ी उसके कृत्यों पर अपनी असहमति प्रकट करती है तो उसे विद्रोही एवं विधर्मी कहकर प्रताड़ित किया जाता है। नई और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष यहां से तीव्र होता है। पुरानी पीढ़ी के कृत्यों ने नयी पीढ़ी का मोह भंग कर दिया है। नई पीढ़ी का जीवन आज असन्तोष से भरा सूटकेस बन गया है।[२१४] फलतः वह समस्त आस्थाओं से मुक्त होना चाहता है-

आडम्बरों को अवसर दो ।  सहिष्णुता को आचरण दो
कि बुद्धि सिर ऊंचा रख सके
उसे हताश मत करो कायरों स्वार्थों से डरा डरा कर
अविनय को स्थापित मत करो
उपेक्षा से खिन्न न हो जाये कहीं मनुष्य की साहसिकता[225]

नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के प्रति आस्थावान है किन्तु तभी तक जब तक कि उसे अपनी बात कहने की छूट मिले-

मेरे बुजुर्ग मेरे मेहरबां
जो तू कहे तो रहज़न को रहनुमां कह दूं
खता माफ़, मगर इस क़दर इजाज़त दे
कि मेरे दिल में जो कुछ है उसे बरमला कह दूं[226]

वह अपने पूर्वजों के कटु सत्य की तह तक पहुंच चुका है ।  वह सत्य जिसने आदर्शों के नाम पर विश्व मानवता को दो - दो महायुद्धों में उलझा दिया ।  नयी पीढ़ी इस ढोंग और जादू से बाहर आना चाहती है ।  यह रोशनी मगर पुराने अर्थहीन आश्वासनों पर विश्वास नहीं करना चाहती ।  अपने बेतरतीब मगर सार्थक उसूलों पर ही चलना चाहती है-

मेरे उसूल बेतरतीब किन्तु सार्थक हैं
मुझे नफ़ा से नुक़सान ज्यादा पसन्द है
मुझे अपनी पुरनम ज़िन्दगी से प्यार है
मुझे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र व्यक्तित्व की कामना है[227]

लेकिन पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी के इस स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करना चाहती । " जबकि आज नयी पीढ़ी उस पुंसत्वहीनता और हीन ग्रन्थि की केंचुली से मुक्त होकर न केवल प्राचीन जीवन मूल्यों को उनकी अपनी सम्पूर्ण नग्नता में

अस्वीकार रही है अपितु युगीन स्थितियों और विज्ञान के स्थूल प्रदर्शों के प्रति भी विद्रोह का भाव लेकर व्यक्ति को अपनी सम्पूर्णता में प्रतिष्ठित करने के लिये आकुल है। यह अपना संसार स्वयं जीना चाहती है। जो उसका अपना यथार्थ है उसे बिना लाग लपेट के जीना चाहती है[218]। नयी पीढ़ी ने एक स्वतन्त्र समाज में आँखें खोलीं लेकिन उसने समाज में चारों ओर झूठ फ़रेब ही पाया। इसलिये वह व्यवस्था की बागडोर अपने हाथों में लेकर सत्य की खोज करना चाहता है। ऐसे में विरासत में मिली धरोहर अर्थहीन लगने लगती है—

क्या है धरोहर जिसकी रक्षा आप चाहते हैं
क्या है परम्परा जो आगे बढ़ाई जाये उत्तराधिकार
भूखा नंगा आसमानी छप्पर निराधार
बरसात के अनगिनत छेदों के मारे
कांपते हैं भयभीत तारे
न रक्षा करता है
न वज्र बन
धरा पर गिरता है
जिसके साये में न मौत है न जिन्दगी[219]

उर्दू काव्य भी इस खोखली धरोहर को संचित करने से इन्कार करता है—

तुम्हारे पास और क्या है
मुस्तआर फ़लसफ़े
जो मीठी गोली की तरह घुल सके
न मुंह का ज़ायक़ा ख़राब हो न हलक़ हो जवां
तुम्हें दिया ही क्या है ज़िन्दगी ने
दूर अक्सर भटकते रहने कूचों गिले
और दूसरों के ज़ुल्म की हंसी उड़ाते रहने के सिवाय[220]

सामाजिक विसंगतियों के कारण यह अपना संसार अलग निर्मित करना चाहता है इसीलिये आज उसे विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा है। अतः नयी पीढ़ी के लिये परम्परा से प्रचलित मान्यताओं का विरोध करना अनिवार्य हो गया है।

> दौरे रफ़्तां का सम्याज़ुर नाटक कब तक
> आये हम रोज मुझे क्यों नहीं पीने देते
> अपने वक़्तों के खुदा अफ़कार कुछ अंजाम यह लोग
> मेरे वक़्तों में मुझे क्यों नहीं जीने देते [221]

विजयदेवनारायण साही का भी यही प्रश्न है-

> कबतलक पूर्वजों से मिली प्रतिहिंसा
> कबतलक बूढ़े तपस्वी कब तलक अजनबी पीढ़ियों पर
> कबतलक नत सिर कंधों पर चढ़ा यह सीधे संयम
> कबतलक यह हर नई आवाज़ का वनवास [222]

आवाज की मुक्ति के लिये ही नयी पीढ़ी पुरानी मान्यताओं को मानने से इन्कार करती है और भयंकर संघर्ष की स्थिति से उसे गुजरना पड़ा है-

> तुम मेरे सिर पर अपनी टोपी मढ़ देने की
> बार-बार कोशिश क्यों करते हो ?
>
> --        --        --
>
> और आज तुम चाहते हो कि मैं
> ( तुम्हारे लिये भी जो अपरिचित थे )
> उन्हीं पूर्वजों के भार को ढोता चलूं
> ढोता चलूं और जब हार कर बैठूं
> तो उसे अपने पुत्र के कंधों पर डाल दूं

और वह भी सिर्फ इसलिये कि तुमने मुझे
जन्मा था और मैंने उसे
नहीं यह सुन्दरी नहीं होगा
न आज न कल न परसों[223]

नयी पीढ़ी अपने माता पिता की ही नहीं वरन् पूर्वजों से चली आती परम्पराओं और कुण्ठाओं से स्वयं को मुक्त करने के लिये बिल्कुल विद्रोही हो गयी है। वह अपने पुत्र और पत्नी को छोड़कर जेल में जाने वाले तथा अपना दूसरा गाल थप्पड़ के लिये बढ़ाने वालों को नपुंसक मानती है।[224] वह किसी भी कुण्ठित वासना को आदर्श बनाने को तैयार नहीं-

तैयार नहीं हूं तुम्हारी धर्म रक्षा के लिये अपने पुत्र का आधा कफ़न
फ़ाड़ कर देने या जलते हुए डेक पर खड़े रहने को
अपने पुत्र या पुत्री के बढ़ते हुए पावों में
तुम्हारे वंश बेल बांधने को तैयार नहीं हूं[225]

यह मूल्य संघर्ष इसलिये भी हुआ क्योंकि महायुद्धों के परिणामों से मानव त्रस्त हो चुका था और देश में विभाजन के समय होने वाले दंगों ने सारे भावात्मक और रागात्मक सम्बन्धों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया था। वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने ईश्वर धर्म और नैतिकता और आचार-विचार में एक क्रान्ति ला दी और एक बार पुनः विचार करने के लिये बाध्य किया। अब तक सभी धर्मों और विचारधाराओं ने मनुष्य को ही श्रेष्ठ बताया था किन्तु विज्ञान के नवीन निष्कर्षों के समक्ष व्यक्ति को अपना अस्तित्व श्रेष्ठता दर्शन आध्यात्मिक जीवन सभी कुछ पुराना एवं पिछड़ा हुआ जान पड़ा। फलतः पुराने मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गयी। जिस शीघ्रता से विज्ञान ने मानव जीवन को परिवर्तित किया उसी शीघ्रता से पुराने मूल्य विघटित हुए उतनी शीघ्रता से नये जीवन मूल्यों का विकास नहीं हुआ जिससे वर्तमान के प्रति असन्तोष उत्पन्न हुआ और भविष्य के प्रति कुछ निश्चय नहीं रहा।

संशय की स्थिति ने एक नयी मानसिकता को जन्म दिया और मानव के समक्ष संभावनाओं के नये द्वार खुले। " सामाजिक मूल्यों के विघटन और नयी आस्थाओं के प्रस्फुटन में संस्कृति सापेक्ष रूप से बहुत कुछ प्रभावित होती है उसकी बहुत-सी मान्यताएं टूटती हैं और उनके विस्तार से नयी संभावनाएं विकसित होती हैं।[226] कवि की दृष्टि में भविष्य निश्चित न होने के कारण वह जीवन के एक एक क्षण को और क्षण के अंश को भी जी लेना चाहता है-

हमें किसी कल्पित अमरता का मोह नहीं
आज के विविक्त अद्वितीय इस क्षण को
पूरा हम जी लें पी लें आत्मसात् कर लें
उसकी विविक्त अद्वितीयता
आपको किमपि क्षण को
अपनी ही पहचनवा सकें[227]

इसलिये कवि क्षण को ही जीवन की गति मानता है[228]। हर क्षण के रस का वह आनन्द लेना चाहता है-

एहसास की डाल पर
मांजे यूं में लटकती हुई
कोई आवाज यह कह रही है
देख कि हर लम्हा कुछ पके लटके डाल है
और रसदार पके हुए फल की मानिन्द गिरने को तैयार है[229]

कवियों का एक बड़ा वर्ग क्षणवाद का समर्थक बन गया जिसने क्षणवाद को एक सामाजिक मूल्य बना दिया। इस क्षणिक सुख की परिणति भोग के रूप में उपस्थित हुई जहां शरीर तृष्णा ही शेष रह गयी और उसके आगे सब निरर्थक हो गया। कवि हर उस नैतिकता का विरोधी हो गया जो उसके शरीर सुख में बाधा डालती थी। पुराने नैतिक मूल्यों का धीरे - धीरे विघटन हुआ।

क्षणवाद हिन्दी काव्य में बर्बर यौन के रूप में बदल गया किन्तु उर्दू काव्य में यह बर्बरता को नहीं पहुंचा इस जीवन दृष्टि से केवल शरीर या वर्तमान तक ही उसकी पकड़ रह गयी ।

मूल्यों के विघटन की स्थिति ने जहां क्षणवाद को जन्म दिया वहीं एक वर्ग अत्यन्त निराशावादी बन गया जो न तो जीने में समर्थ था न मरने में । फलतः आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ी । आत्महत्या कायरता मानते हुए भी कवि उस अनुभव के मोह से नहीं बच पाता-

> मानता हूं ख़ुदकुशी को कायरों का काम
> निश्चय ही आत्मघाती भावना से घृणा करता हूं
> मगर इस घड़ी न जाने क्यों यही जी चाहता है
> झांक लूं उस अन्धतम आवृत अनजाने लोक में
> जिसमें हजारों प्रेत जाते हैं
> बहुत संभव है वहीं कुछ शान्ति मिल जाय[230]

भारत की पूर्व जन्म की परम्परा में आत्महत्या में शान्ति ढूंढना बड़ा विचित्र लगता है । इसके विपरीत उर्दू कवियों का विचार है-

> भले या बुरे हम अभी हैं सलामत
> अभी टूटने को है लेकिन क़यामत
> अगर मां रुस्वाए की आरज़ू आख़िरी फ़िक्र ठहरी
> अभी एक बेजान माज़ी के सहरा में खो जायेंगे हम[231]

इस भावना ने उर्दू काव्य में आत्महत्या की अनुभूति को आने नहीं दिया । उर्दू कवि निराश ज़रूर है लेकिन अपने को दफ़न नहीं करना चाहते । वह वर्तमान में जीना चाहता है और भविष्य में भी उसे जीना है-

> मौत के अंधेरे में एक दिया जलाता हूं

मुन्हदिम इमारत को फिर से मैं बनाता हूं
दिल के उन ख्वाबों को फिर से मैं सजाता हूं
जलजले तो आते हैं जलजले तो आयेंगे
फिर जमीन कांपेगी फिर मकान उजड़ेंगे
जलजले तो मोकद्दर हैं वादिये मोहब्बत के
जलजले तो आते हैं जलजले तो आयेंगे[232]

इस भावना से वह पुनः आशावान होता है। नचिकेता इसी अन्तर्द्वन्द्व में से जीवन के रहस्य को पकड़ने की चेष्टा करता है। नचिकेता निराशा की चरम स्थिति में आत्महत्या को स्वीकार बैठता है लेकिन अन्त में जीवन के अन्तिम रहस्य को पा जाने के बाद पुनः नया जीवन जीने का अर्थ उसे मिल जाता है जिससे मृत्यु कोई नाशक वस्तु नहीं रह जाती। वरन् वह जीवन की निरर्थकता से सार्थकता की ओर बढ़ने लगता है-

एक समाप्ति
सारे अस्तित्व की इति नहीं
स्थूल की क्षति
सार की क्षति नहीं[233]

' शिलापंख चमकीले ' में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति है-

जो बीज धरा ने लिया वह न मुरझा सकता
माटी का तेज नहीं माटी को खा सकता[234]

इसी प्रकार बलराज कोमल की ' सफर मदाम सफर ' मखमूर सईदी की ' शायरी के बैरी ' रफत सरोश की नई सुबह कुमार पाशी की ' सुकूं कल्ब का दश्त में है न घर में, ' पंत का रूपक ध्वंसशेष, भारत भूषण की जीवन धारा, माथुर की सूरज का पहिया कवितायें जीवन की सार्थकता को सिद्ध करती हैं। सारी सृष्टि को

लेकर जीने का प्रश्न आज मानवीय समस्या बन गया है ' ईश्वर ' की मृत्यु की घोषणा से सृष्टि का भार मानव पर आ गया और अपनी घुटन, कुण्ठ के बीच से उसे जीने की राह ढूंढनी पड़ी । क्योंकि मानव जीवन बिना मूल्यों के अधिक दिन नहीं रह सकता । इसलिये कवि को इन्हीं विषम परिस्थितियों में कुछ मूल्यों का निर्धारण करना पड़ा ।

' वंशाकुर ' से वर्तमान जीवन के मूल्यों की समस्या के प्रश्न को ही उठाया गया है-

पर एक तत्व है बीज रूप स्थित मन में
साहस में स्वतन्त्रता में नूतन सर्जन में
वह है निरपेक्ष उतरता है जीवन में
दायित्व युक्त मर्यादित मुक्त आचरण में[२३५]

कवि युग सत्य के अनुरूप मानव में दायित्व भावना लाना चाहता है । " आज मानव ने अनुभव कर लिया कि पिछले आदर्श वर्तमान परिवेश का भार वहन करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं । अब उन्हें परिवर्तित करना होगा । युग आवेगों के कटु कोलाहल में उसको नवजीवन की स्वर संगीत भरनी है[२३६]। नवजीवन के संचार के लिये नवीन मूल्यों की स्थापना परम आवश्यक हो गयी । पंत ने इस दिशा में बहुत अधिक सफलता दिखाई है । ' लोकायतन ' तो नये मूल्यों के अन्वेषण और स्थापना का ही महाकाव्य है । ' लोकायतन ' के सुन्दरपुर ग्राम को सुन्दर बनाने की कथा मानव जीवन को सुन्दर बनाने की कथा है । ' लोकायतन ' मानव को इस योग्य बनाना चाहता है कि वह जाति, राष्ट्र देश की सीमाओं को लांघ, सम्पूर्ण मानव जाति के भार को वहन करने में सफल हो सके-

तुम मन: स्वर्ग के शिल्पी
नव कविता वनिता के वर
फिर गढ़ो कर से नूतन
जनलोक रचो चिर सुन्दर[२३७]

किन्तु मानव एक सुन्दर लोक की रचना तभी कर सकता है जब वह इन्द्रिय, प्राण, मन, आत्मा सभी स्तरों पर अपनी बर्बरता का संस्कार करे। इस प्रकार भीतर से बदलने के बाद ही बाह्य जगत का निर्माण हो सकता है। अभी तक मानव के आत्मिक विकास पर ही बल दिया जाता था जिससे समय आने पर उसकी बर्बरता उभर आई थी किन्तु आज कवि मनोवृत्तियों के विकास पर बल देता है। समस्त रागात्मक मूल्यों के विकास पर लोकायतन में बल दिया गया है। आधुनिक आध्यात्मवाद वैराग्य की मांग नहीं करता बल्कि सामूहिक चेतना की शुद्धि पर बल देता है-

वैराग्य नहीं भव दुख विनाश का साधन
अनुराग मूर्त हो सामूहिक जन जीवन
विधि लक्ष्य न आत्मिक शुद्धि मात्र यम संयम
मन के साथ भू प्रांगण का भी करना तम[238]

'अमीक इन्की' भी 'शक्ल-ए-इश्क' में मानव के आन्तरिक विकास के लिये प्रयत्नशील हैं। वे मानव को मानवीयता का पाठ पढ़ाना चाहते हैं[239]। वह ऐसे मूल्यों की खोज करना चाहते हैं जिससे सभी मानवीय समस्याओं का हल हो सके-

मगर फिर कुछ अदायें
धुन्धले पैकरों की तीरगी को चीर कर
गुज़र कर के ज़िन्दगी के ज़खीरे कांटों से
नये ज़मात के भी कुछ बीजों को
बयाबाने खमोशी पर बिछाती जा रही है
बहारे गुलशने ना आफ़रीदा
तसव्वुर में यक़ीं का नक्श बनती जा रही है
मेरा हर एक कुसुम चश्म नरगिस बन रहा है[240]

जब मानव की रागात्मक चेतना को विकास का अवसर मिला तभी वह दूसरों के

लिये द्रवीभूत हो उठेगा । जीवन की सारी समस्या अपरिष्कृत संकुचित रागवृत्ति के कारण ही है। नयी पीढ़ी इसीलिये परम्परा का खण्डन करके नये मूल्यों के निर्माण में संलग्न है।

## ४- नारी स्वातन्त्र्य : उससे जुड़ा परिवार एवं यौन दृष्टिकोण :

मानवीय सम्बन्धों में क्रान्ति की एक दिशा नारी स्वातन्त्र्य है। प्राचीन काल से अब तक की समाज व्यवस्था में नारी के प्रति जितना दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है उतना किसी और मानवीय सम्बन्ध में परिवर्तन नहीं आया। उसकी स्थिति में निरन्तर चढ़ाव उतार होता रहा है। वैदिक काल नारी के विकास की चरमावस्था थी। धीरे - धीरे पुरुष प्रधान समाज ने उसकी स्वतन्त्रता छीन ली और मध्यकाल तक आते आते वह मात्र भोग्या बनकर रह गयी किन्तु आधुनिक काल में पुनर्जागरण के बाद उसकी स्थिति में सुधार शुरू हुआ। नारी के इन सभी विकासात्मक चरणों को काव्य ने प्रति बिम्बित किया। अब नारी दुर्बलता का नाम नहीं रह गया। जीवन के कटु अनुभवों ने नारी को जागरूक किया और उसने समस्त शंकाओं भय एवं नैराश्य को छोड़कर अपने जीवन की बागडोर अपने हाथों में लेने का निश्चय किया। नारी के इस बदलते सन्दर्भ में पुरुष का आ जाना स्वाभाविक है यहीं से मुख्य समस्या आरम्भ होती है क्योंकि पुरुष मनोवृत्ति नारी के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण नहीं बदल सका। नारी आज पुरुष की लोलुप दृष्टि पर व्यंग्य करने में अवश्य सक्षम हुई है।

> ऐसी तल्लीनता से गौर से क्या देखते हैं
> ( औरत हूं पहेली नहीं )[२४१]

लेकिन यही नारी जब काव्य में प्रतिष्ठित हुई तो स्वयं अपनी काम वासना तृप्त करने के लिये पुरुषों को आमंत्रित करने लगी-

देती कि
मैं भी क्या चीज़ हूं
जमाने में देखने के काबिल

-- -- --

घड़ी भर यहां बैठो नाता जोड़ो
मैं तुम्हारा मनोरंजन करूंगी
अपनी बनाई हुई शराब से
आज मुख्य मेहमान तुम
रात के इस फ़कीर शो में
एक बार बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर[२४२]

आज की नारी मानसिक शान्ति के निमित्त शरीर तुष्टि को आवश्यक समझती है-

दोस्तों
पियो
नाचो
उंगलियों से कह दो
आज रियायत न करें तनिक भी
किन्तु पेश आएं
मुनासिब बेरहमी से[२४३]

प्रिय की बाहों में आबद्ध होना बुरा नहीं मानती -

वक्षस्थल पर इसी भांति मेरे कपोल रहने दो
कसे रहो बस इसी भांति उस पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर पुट को कठोर चुंबन से[२४४]

यदि नहीं पुरुष उसे लूटना चाहता है तो वह भी उसके तन मन बुद्धि एवं प्राणों

पर शासन करना अपना पूर्ण अधिकार समझती है। आवश्यकता पड़ने पर अपने रूप यौवन की आड़ लेकर अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में भी नहीं चूकती।[२४५] नारी की इस मानसिकता को देखते हुए प्रश्न यह उठता है कि क्या आज नारी का यही ध्येय रह गया है और वह भी ऐसे पुरुष समाज के प्रति जो आज भी उसके लिये ऐसे भाव रखते हैं-

> फूल को प्यार करो
> पर झरे तो झर जाने दो
> जीवन का रस ले। देह मन आत्मा की रसना से
> पर मरे जो उसे मर जाने दो[२४६]

तब आज की नारी और सामन्ती युग की नारी सांस्कृतिक दृष्टि से क्या कोई अन्तर रह गया है? वह पहले भी भोग की सामग्री थी और आज भी उसकी स्थिति यही है। खेद तो यह है कि स्वातन्त्र्योत्तर कवियों के साथ कवियित्रियाँ भी इसी में प्रसन्न हैं और पुरुष की कलुषित मनोवृत्ति को जानकर भी उसे आमंत्रित करती है। पुरुष की स्वार्थपरता ने उसे खुली क्या का कैदी बना दिया है। पुरुष यह नहीं चाहता कि नारी उसकी समता करे। पुरुष ने उसे कुत्सित मनोवृत्ति का शिकार बनाने के लिये दूसरी चाल चली। और नारी को स्वतन्त्रता दिलाने का ढोंग करने लगा। नारी इस झूठी स्वतन्त्रता को पाकर अपने जीवन की सार्थकता मान बैठी। उसने यह सोचने की चेष्टा ही नहीं की कि-

> कहीं
> यह किसी का
> बेहद गहरा दांव तो नहीं? कहीं
> यह बिना झुके बहं को झुकाने का नया पेंच तो नहीं?
> — — —
> यह क्यों है?

क्या है ?

भी भी है

खतरनाक है ?[247]

इससे तो समाज के उच्छृंखल होने की संभावना है---- जिस समाज में नारी नितान्त असंयमी हो जायगी उसके विकास और समृद्धि की संभावना क्या की जा सकती है ? नये कवियों ने जिस नारी रूप का चित्रण किया है उसे समाज में कितना सम्मान दिया जा सकता है ? उसके साथ वासना तृप्ति तो की जा सकती है क्या उसे पत्नी भी बनाया जा सकता है ? जबकि समाज में अनैतिक कर्म करने वाला व्यक्ति भी पवित्र पत्नी की कामना करता है। तब नारी का ऐसा घृणित रूप प्रस्तुत करने का क्या अर्थ है। वस्तुत: आज नारी स्वतन्त्रता से अधिक समस्या नारी सम्मान की हो गयी है। स्वातन्त्र्योत्तर उर्दू काव्य में नारी का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। एक लम्बे युग तक उर्दू काव्य पर नारी छाई रही थी। अत: स्वतन्त्रता के पश्चात् उर्दू में जो नई चेतना आई उसने नारी को काव्य से दूर ही रखा। इसलिये नारी से सम्बन्धित समस्याओं को उर्दू में उठाया ही नहीं गया। जहां कहां जो चित्रण हुआ उसमें वह प्रेमिका या पत्नी का रूप उभरा जिसमें चहार दीवारी में रहने वाली मुस्लिम समाज की प्रतिनिधि पत्नियों का स्वरूप ही मुखर हुआ है। पर्दा प्रथा उन्मूलन के बाद भी मुस्लिम नारियां पीछे ही रहीं। उर्दू कवियों ने भी इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया। मजहर इमाम की कुछ कविताओं में नारी का सामाजिक चित्रण अवश्य हुआ है। लेकिन उर्दू काव्य में अभी तक नारी का कोई स्वस्थ स्वरूप उभरकर सामने नहीं आया। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कवियों ने अवश्य नारी के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है-

तुम्हें शब्द के-कूट पाश में जकड़ना चाहता है

सखा-बन्धु- आराध्य

शिशु दिव्य सहचर

और अपने को नई व्याख्या देनी चाही है

सखी- साधिका-बांधवी -मां-वधू सहचरी[248]

लोकायतन में पन्त ने विभिन्न स्थानों पर नारी सम्बन्धी विचारों की स्थापना की है और नारी को नयी व्याख्या देने की चेष्टा की है। पन्त नारी पुरुष के सम्बन्धों को देह की सीमा से उठकर देखने की चेष्टा की है-

मैं मानवी आज जन धात्री
मानव सहचरी जीवन छात्री
भीत न होओ-प्रिय अब नारी
लेती जागृति की अंगड़ाई
मुझको अब नारी तन धोना
देह मोह निज तुमको खोना
मैं यदि फिसलूंगी युग पथ पर
प्रिय तुम होगे उत्तरदायी
खिसका आज देह की छाया
वामा पुन: बनेगी माया
संस्कारों की क्रांति धरा पर
स्वर्ण शान्ति लायेगी स्थायी [२४६]

यह एक नयी चेतना का घोतक है। अशोक वाजपेयी की ठंड की एक रात, पागल औरत में यही भाव व्यक्त किया गया है। रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वर दयाल, मलयज, धूमिल आदि ने स्त्री पुरुष सम्बन्धों के भीतरी बाहरी व्यवहारों का समकालीन सन्दर्भों में अत्यन्त सूक्ष्मता से सफलता से वर्णन किया है। इन कविताओं में वर्णित स्त्री पुरुष सम्बन्ध हमारे समय की ठोस पहचान देते हैं-

तुम में कहीं कुछ है
कि तुम्हें उगता सूरज, मेमने, गिलहरियां कभी कभी का मौसम
जंगली फूल पत्तियां टहनियां भली लगती हैं
आओ उस कुछ को हम दोनों प्यार करें
एक दूसरे के उसी विगलित मन को स्वीकार करें [२५०]

प्रेम की सहज अनुभूतियों का कवि ने वर्णन किया है।[२५१] नारी संवेदनाओं को नये सन्दर्भों में स्थापित करने का सफल प्रयत्न युग्म में किया गया है।

तुम कुछ भी नहीं हो
फिर भी सब कुछ हो
क्योंकि तुम
मेरी संवेदना का वह सूक्ष्मतम बिन्दु हो
जहां से सृष्टि आरम्भ होती है[२५२]

नारी से जुड़ा एक प्रश्न है यौन भावना का। यद्यपि समय के अनुसार दृष्टि बदली है और नयी समस्याओं ने जन्म लिया। अब तक भारतीय संस्कृति में प्रेम को अशरीरी माना जाता रहा और छायावाद तक यही स्थिति बनी रही। प्रेम के आदर्शात्मक रूप पर बल दिया जाता रहा किन्तु जैसे हर क्षेत्र का ढांचा बिखरा वैसे ही इस क्षेत्र में भी यथार्थ की मांग बढ़ी और मान्यताएं परिवर्तित हुई। जिस काम के संयम के रूप में संस्कृति प्रतिष्ठित कर रही थी वहीं अब दमित इच्छा के रूप में विकृत रूप लेने लगा। कवि की दृष्टि में गुनाह एक उलझन हो गया-

अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो ?
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझपर शाप कैसे हो ?[२५३]

इस मानसिकता ने नये प्रकार के स्त्री पुरुष सम्बन्धों की मांग की-

अफलातूनी प्रेम से अधिक
मैं देह की गंध को प्यार करता हूं[२५४]

उर्दू काव्य में ऐसी अनुभूति नहीं मिलती। कारण कि उर्दू काव्य में प्रेम एवं प्रणय के सम्बन्ध में वैसी वायवीयता नहीं थी जैसी कि हिन्दी काव्य में।

उर्दू में गज़ल की एक विशाल परम्परा रही है जिसका अर्थ ही औरत से बातें करना। अतएव उर्दू में प्रेम की कल्पना अशरीरी नहीं रही। काव्य में इसी शरीर प्रेम को अपना विषय बनाया गया।

आओ मेरे जिस्म में घुल जाओ खुशबू की तरह।
जिन्दगी से मांग लाया हूं बस एक रात ?[२५५]

गुनाहों की लज्जत लेने के लिये कवि बेचैन है-

आज की रात गुनाहों की भी लज्जत ले लो
फाकिर इश्क़ से एक रात तो परहेज़ करो[२५६]

फाकिर इश्क के परहेज़ ने तत्कालिक सुख की भावना को प्रोत्साहन दिया-

आ मैं तेरा अंग भी छू दूं छोड़ ये भेदभाव की बात
मैंने वो सरहद छू ली है जहां अमर हो जाय प्रान
इन आंखों में खुलने वाली जाने कौन कहां रह जाये
जीवन की इस दौड़ में पगली हम दोनों हैं अन्जान
लेकिन ए सपनों की माया तू चाहे तो रोग मिटे
मैंने दुनिया देखी है तू मेरी बातें झूठ न मान[२५७]

जिन्दगी की भाग दौड़ में जो भी क्षण मिले उन्हें वह जी लेना चाहता है। किन्तु कुछ कवि स्वस्थ दृष्टि को लेकर चले हैं-

कि मोहब्बत में तेरी
रूह का नग़मा भी शामिल है
फ़कत गोश्त की फरियाद नहीं[२५८]

वास्तव में स्वातन्त्र्योत्तर उर्दू काव्य इसी स्वस्थ दृष्टि को लेकर चला था लेकिन कवियों ने प्रेम का जो रूप उपस्थित किया वह स्थूल वासनात्मक प्रेम का पक्षधर बन गया। हिन्दी काव्य की भी यही स्थिति हुई। कभी प्रिया के फिरोजी

होठों पर जीवन बर्बाद करने की कल्पना के रूप में अभिव्यक्त हुआ[२५६], तो कभी अंग प्रत्यंग को चूमने को लालायित हो उठा-

मैं चूमता हूं
तुम्हारा मस्तक
तुम्हारी भौंहें
तुम्हारी आंखें
तुम्हारे कपोल
तुम्हारे अधर
तुम्हारा चिबुक
तुम्हारा कंठ
तुम्हारा वक्ष
तुम्हारा उरोज
तुम्हारी नाभि
तुम्हारा प्रजनन पुष्प[२६०]

कभी उसका उत्तप्त श्वास और धमनियों का लहू नारी को पुकारता है-

आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहां हो नारी[२६१]

कभी वह नारी को मुवस्सिम बहार बनकर आने को आमंत्रित करता है[२६२] कभी यह वासना तन की हाय छोड़ने को विवश करती है।[२६३] इतनी बर्बर वृत्ति को स्त्री समाज को स्वीकृत नहीं हो सकती। इसलिये कुछ कवियों ने रागात्मक चेतना के परिष्कार पर बल दिया-

अनिवार्य स्वतन्त्र बने प्रणयी नारी नर

कटु काम द्वेष से दग्ध न हों जन अन्तर
भू स्वर्ग सत्य बन विचरे जीवन मूर्तित
सित स्नेह-मुक्त स्त्री पुरुष शील से अर्जित[254]

अत: मानवीय सम्बन्ध की ऐसी ही उदात्त भूमि की आवश्यकता है जिसकी ओर पंत ने संकेत किया है। नये कवियों का कर्तव्य है कि वे नये युग के अनुरूप संस्कारी प्रेम को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करें।

नर नारी सम्बन्धों से जुड़ी हुई वर्तमान संक्रमण कालीन युग की एक समस्या परिवार भी है। परिवार समाज की एक इकाई है किन्तु आज व्यक्ति परिवार व्यवस्था का एक अंग मात्र रह गया। आधुनिक व्यक्ति ने इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया-

अब्बा मुझसे रोज यही फ़रमाते हैं
अम्मा भी हर रोज़ शिकायत करती हैं
क्या यह जवानी पढ़े - पढ़े काटोगे
भाई किताबों को रोता रहता है सदा
बहनें अपना जिस्म चुराए रहती हैं[255]

रागात्मक प्रवृत्तियों में संस्कार होने से वह परिवार को महत्व देने लगा-

मैं अब घर जाना चाहता हूं
मैं विवाह करना चाहता हूं
और
उसे प्यार करना चाहता हूं
मैं उसका पति
उसका प्रेमी
और उसका सर्वस्व
उसे देना चाहता हूं

' नया अहदनामा ' में कवि एक सुन्दर घर की कल्पना करता है जहां पत्नी, बच्चे, सम्बन्धी सभी के साथ वह जश्न मनाते, हंसते, खेलते रहना चाहता है।[267] नेदा फ़ाजली के काव्य में जगह जगह परिवार के विघटन का दु:ख दिखाई देता है-[268]

लेकिन इतना निश्चित है कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक जीवन में यौन भावनाओं को अनिवार्य घोषित किया गया। काम जीवन को शक्ति और शान्ति प्रदान करने वाला माना गया है-

हे काम रूप
ऐसे हो तुम अद्भुत अनूप
हे काम रूप
यह ज्वालाओं की शमित शान्ति
यह यौन वरन कमनीय कान्ति[269]

नर नारी का सम्बन्ध अनिवार्य तथा निश्चित है-

जिन्स तो जिन्दगी है ताबिन्दगी
कैसरे जिन्दगी
रौनकें बाग है नुक्ते राग है
यह न समझो कि यह जीस्त का दाग है[270]

काम की अनिवार्यता देखकर उसे एक मूल्य मान लिया गया। किन्तु जैसे-जैसे नारी आगे आयी वैवाहिक ढांचे की बुनियाद खोखली पड़ती गयी। हिन्दी काव्य की अपेक्षा उर्दू काव्य में परिवार की कल्पना अधिक है। हिन्दी काव्य में छोटे परिवार की कल्पना की गयी है-

अब मैं सुखी हूं
यह चन्द बच्चे बीवी

ये थोड़ी सी तन्ख्वाह
मेरी परिधि है जिसमें जीना है
यही तो मैं हूं [२७१]

आज के विघटनकारी युग में मानव अत्यधिक दु:खी है इसलिये आवश्यकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर कवि अब ऐसे परिवार मूल्यों की स्थापना करें जिसके आधार पर परिवार में सुख शान्ति की नींव दृढ़ हो। जिससे मानवीय गुणों से सम्पन्न युवक युवतियां समाज में आगे बढ़कर सामाजिक समस्याओं के निदान में भाग ले सकें।

६- महानगरीय संस्कृति का वर्णन :

सभ्यता संस्कृति के केन्द्र वर्तमान जीवन नगर संस्कृति से ही जुड़ा हुआ है। नगर की प्रधानता होने का मुख्य कारण औद्योगिक प्रगति है। जंगलों को काटकर महानगरों की क्रोड में नगर, उपनगर बनाये जा रहे हैं। महानगरों के विकास के कारण जीवन की परम्परागत संहिता बदल गयी। जीवन के मानदण्ड बदल गये हैं। महानगरों के निवासियों पर आज दोहरे - तेहरे दबाव हैं। मानवीय व्यवहारों में परिवर्तन से व्यक्ति त्रस्त एवं शंकित है। उसके पांव मशीन बन गये हैं दिल रेफ्रिजरेटर में रखे हुए हैं। [२७२]

तुम्हारा दिल मांस का भी नहीं
सिर्फ प्लास्टिक का है
उसमें खून नहीं शैम्पेन बहती है
किन्तु, ब्लड प्रैशर से ही उसमें गर्मी रहती है
तुम्हारी भावनाएं नायलान का स्पंज हैं
तुम तांबे जस्ते रांगे सोने चांदी की सांस लेते हो
क्योंकि तुम जवाहरात के कुत्तों की फैक्ट्री हो [२७३]

महानगरीय जीवन मात्र दिखावा रह गया है। " उसकी सार्वभौम धर्म की बातें

केवल बिड़ला मन्दिर तक सुरक्षित रह जाती है। शुक्रवार की प्रातः रेडियो पर गांधी प्रार्थना सुनना और ड्राइंगरूम में अरविन्द की पुस्तकों का सेट सजा लेना धर्म और आध्यात्म के लिये पर्याप्त है।[२७४]

हिन्दी उर्दू काव्य में मध्य वर्ग की समस्याओं का अधिक उद्घाटन हुआ है। मध्यवर्ग की हीन दशा के विरोध को उभारने के लिये ही उच्चवर्गीय संस्कृति का उद्घाटन हुआ है। अतः अधिकांशतः उच्चवर्गीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा का भाव ही है।

> आपने ये पागल कुत्ते छोड़े
> ताकि ये
> -- -- --
> चीखें चिल्लाएं
> नकली काले चश्मे
> रूज लिपिस्टिक शीशे वाले हैंड बैग
> नकली बाल नैलपालिश
> चुस्त सिल्कन ब्रेसियर्स के पैकेट
> फेंक फेंक उन्हें मारें
> और गलियों में घुस जायें
> दायें बायें
> ऊपरी तड़क भड़क के
> ये कफ़न फाड़कर
> अन्तर के सौन्दर्य की लाश देखें[२७५]

महानगरों के क्रोड में निवास करने वाले निम्न वर्ग और उच्च तथा निम्न वर्ग के बीच पिसते मध्यवर्ग को कवि ने अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है। " खोलियों में दो तीन परिवार एक साथ रहते हैं। फलतः मनोविनोद के दो ही साधन

उसके पास बचते रहते हैं। कच्ची, पक्की शराब ताड़ी कुछ भी पीकर नाच गाने, मारकाट, कच्ची चोलियों और अधनंगी छातियों से भरपूर कोई उत्तेजक फिल्म देख लेना और अपनी औरत के साथ सो रहना कैसे भी कहीं भी[२७६] इसके अतिरिक्त उसके लिये और कोई काम नहीं रह जाता। उसका जीवन दौड़ की मशीन बन गया है।[२७७] स्वतन्त्र्योत्तर काव्य में भीड़ में अकेले व्यक्ति की वेदना मुखर हुई है। हर व्यक्ति जहां भागती दौड़ती लाश है किसी के भी पास इतनी फुर्सत नहीं कि क्षण भर को उदास हो गया।[२७८] इस भीड़ में कोई किसी का नहीं–

होटल की दिलकश तारीकियों में
कहकहे
बातें
छलकते जाम
बाजारों की यह हंगामा आराई
दफ्तरों के साफ सुथरे लोग
मशविकार
मश्के गुफ्तगू
मश्के यकीं
तहजीब के पुर्जे
और बाहर
चिलचिलाती धूप में
तपती चटखती
अक्त से बोझिल चट्टानें
पैकरे दर्द तमन्ना
इस्तेरावी रूह के संगीत फसाने[२७९]

आत्मा की व्याकुलता की दारूण स्थिति ही आज महानगरीय जीवन की समस्या बन गयी है। मशीनीकरण ने मानव को दूसरों के आगे निकल जाने

की होड़ भी है प्रत्येक व्यक्ति को आगे निकलने की धुन है। काव्य इसी महानगरीय जीवन में व्याप्त आत्मीयता से त्रस्त है। उसमें कहीं व्यंग्य है तो कहीं क्षोभ-

इतना मरुस्थल घुस गया है नस नस में कि बोलना तक
मुझे अस्वाभाविक लगता है
जाने क्यों ? जाने क्यों कुछ भी आकर्षित नहीं करता
प्रेयसी या सिक्के या फल या अमरता[२८०]

खलीलुर्रहमान आज़मी का 'नया अहदनामा' शहाब जाफ़री का 'सूरज का शहर' मोहम्मद अल्वी तथा अख्तरुल ईमान ने कई कविताओं में इस महानगरीय जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्ति दी है। उम्मतुल एक राम तो शहर छोड़कर जंगलों में शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं-

दीवानो ! आओ जानिबे सहरा चलें
यह शहर चाहता है दिलबन्द से खिराज
मस्कन बनाये गैसूए इन्सां है शहर में
इन्सां है और कशाकशे जिन्दा है शहर में[२८१]

उर्दू काव्य में महानगरीय जीवन की विषमताओं के वर्णन के बीच से संत्रास स्थिति से मुक्ति का समाधान भी किया गया है। कुमार पाशी पुराने मौसमों को आवाज देते हैं ताकि पुराने और नये मौसमों के सम्बन्ध से एक नये मौसम का निर्माण किया जा सके-

यह नीला सा आकाश क्या कुमकुमा है
मुझे आज कितने हंसी लग रहे हैं सितारे
मुझे सितारों के पीछे का गुमगश्ता मंजर दिखादे
मुझे सोचने दे कि उल्फत की दुनियाओं
की सरहदें खत्म होंगी कहां पर

कहां उठ होगा हुस्न सफ़र का
यहां जा के मलकूत करने दे मुझको
कमी और कितनी है मुझमें ( कि तुझमें )[558]

ऐसे अनुपात को विकसित करके ही महानगरों में एक नवीन सामाजिक संगठन को साकार किया जा सकता है ।

स- धार्मिक पक्ष :

विज्ञान की उन्नति के साथ जैसे जैसे प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन होता गया मानव का मूल्य बढ़ता गया । मानवेतर शक्तियों का ह्रास होता गया । अब नैतिकता की परिकल्पना बाह्यारोपित अथवा ईश्वर परक न होकर मानव की ओर उन्मुख होने लगी । अब तक की परम्परा मानव को पाप पुंज स्वीकार करती थी किन्तु वैज्ञानिक तर्क बुद्धि के परिप्रेक्ष्य में मानव ने एक नयी चेतना अर्जित की जिसमें मानव अपनी नियति का नियन्ता है । अब तर्क बुद्धि विश्वसनीय हो गयी ।

तर्क से धर्म के प्रति आस्था नहीं रह गयी जिसे बीसवीं शताब्दी के मानव का आध्यात्मिक संकट कहा जाता है । वह संकट यही है । बुद्धिवाद ने ईश्वर को नकार कर धर्म पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है किन्तु उसके स्थान पर नवीन दृष्टिकोण बनाने में असमर्थ है-

मूर्ति तो टूटी परन्तु उठा था प्रश्नचिन्ह यह
मूंद ले ये आंखें या कि प्रतिमा गढ़े नई ?
हर अन्धी श्रद्धा की परिणति है यह खण्डन
हर खण्डित मूर्ति का प्रसाद है यह प्रश्नचिन्ह[559]

प्राचीन धार्मिक मूल्यों के झूठे पड़ जाने से आस्था का ज्वलन्त प्रश्न उठ खड़ा हुआ है-

एक एक कर सारे पक्षी

हैं उतर गये जिसके
वह बिल्कुल निकम्मी धुरी
तुम हो
क्या तुम हो प्रभु ?[३८४]

मानव के समक्ष जो यथार्थ उपस्थित हुआ उसने यही दृष्टि प्रदान की । आज मानव जिस इतिहास मोड़ पर खड़ा है वहां बुद्धि तर्क ही महत्वपूर्ण बन रहे हैं । संक्रमण से जो विघटन हुआ है उससे मानव मूल्य भी प्रभावित हुए हैं । ऐसे में आवश्यक है कि हमारी आस्था प्रकाश की ओर केन्द्रित हो ' अंधायुग ' का याचक इसी मर्यादा संस्कार की खोज करता है-

मैंने अपनी प्रेत शक्ति से
सारे प्रवाह को
कथा की गति को बांध दिया है
और सब पात्र अपने स्थान पर
स्थिर हो गये हैं
क्योंकि मैं चीर फाड़ के हर एक
की आन्तरिक
असंगति समझना चाहता हूं ?[३८५]

नैतिक मूल्य अपने धुंधले आवरणों को हटाकर सत्य रूप दिखाए यही आज के युग की मांग है। अंधायुग इसी नवीन सत्य की व्याख्या प्रस्तुत करता है।[३८६] क्योंकि नैतिकता ही वह मूल्य है जो मानव को नियन्त्रित करती है । ' महाप्रस्थान ' में इन्हीं नैतिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास है । युधिष्ठिर की दृष्टि में मूल्यों का प्रश्न सदा ही महत्वपूर्ण रहता है । वह मनुष्य के लिये देवता में विश्वास करते हैं । यह देवता कुछ और नहीं मनुष्य की सद्वृत्ति तथा नैतिक वृत्ति ही है । युधिष्ठिर में नैतिकता की पराकाष्ठा है-

सामने वाला यदि आवेग में

पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते
प्रतीक्षा करो
उसके पुनः मनुष्य होने की[२८७]

वर्तमान परिवेश में नैतिकता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया है। ईश्वर अब प्रश्नों का उत्तर नहीं बन पा रहा।[२८८] नवीन आस्था के निर्माण के लिये परम्परागत मूल्यों में रूपान्तर के लिये प्रयत्नशील है-

मैं शहीदे जुल्मते शब सही
मेरी खाक को यही जुस्तजू
कोई रोशनी कोई रोशनी कोई रोशनी[२८९]

हिप्पी भी नयी नैतिकता का मार्ग खोलते हैं।[२९०] किन्तु पाप पुण्य से रहित मानव खोखला होता जा रहा है। नई नैतिकता ने मानव को पशु बना दिया है। यह सत्य है कि पुराने मूल्य लागू नहीं किये जा सकते किन्तु नैतिकता का कुछ तो मापदण्ड होना ही चाहिये। इसीलिये कवि पाप पुण्य का आधार बनाना चाहता है किन्तु पाप पुण्य का आधार वह अपने मध्य ढूंढना चाहता है-

चलो अपनी मोहल्ले का बगीचा देख आयें
रुपहले बैंजनी पीले
यह शोख रंग शमीले
परिन्दे या फुदकते रंग
चमकते सुर सवेरा जिनसे जागी ना
रूहों के ये फरिश्ते
चलो माली से इनके नाम पूछें
इन्हें पहचान लें
यह दुनिया रूह व खून व खैर से
खाली नहीं अब भी[२९१]

पाप पुण्य नीति अनीति की यही अनुभूति मानव की आत्मिक शक्ति की प्रतीक है। क्योंकि आत्मिक शक्ति के आधार पर ही पाप पुण्य भले बुरे का निर्णय हो सकता है तभी मनुष्य पाप की अपेक्षा पुण्य को आत्मसात् करता है। यही चेतना जब विकसित होकर अस्तित्व का अतिक्रमण करती है तो मानव आत्मा सृष्टि से तादात्म्य स्थापित करती है जो आध्यात्मिक स्तर पर जीने की सीख देती है। यही नैतिकता की चरम सीमा है।

> मानव चेतना हो सके मुक्त
> चाहिये दृढ़ नैतिक आधार[२६२]

यही नैतिकता उसे दूसरे का अस्तित्व स्वीकार करने की बुद्धि देती है-

> कर सको तो तुम भी
> अपने सत्य को प्रमाणित करो
> निर्भय निःशंक हो
> आत्मानुप्रेरित कर्म को करो
> कोई नहीं है मार्ग इसके सिवा[२६३]

आत्मानुभूत सत्य को ही कवि मानता है व्यवहारिक जीवन में प्राप्त जीवन अनुभूतियों के माध्यम से नैतिकता की स्थापना चाहता है-

> दियों की जोत जगाओ बहुत अंधेरा है
> नजर नजर से मिलाओ बहुत अंधेरा है[२६४]

कवि जिस दिशा में प्रयत्नशील है उसमें निश्चय ही एक नई नैतिकता को नई दिशा मिलेगी जिसका केन्द्र मानव होगा।

स्वतन्त्र्योत्तर कवियों ने बुद्धि द्वारा परम्परागत धार्मिक अतिरंजनाओं का संशोधन भी किया है। वैज्ञानिक दृष्टि ने धर्म द्वारा की गयी धरती के स्थिर रहने की विभिन्न मान्यताओं का खण्डन किया है-

सोचता हूं कि अभी का मत्सर
बैल के सींग है या कछुए के पीठ
या किसी नाग का खिलता हुआ फन[२६५]

ऐसा ही विचार धर्मवीर भारती का भी है-

सुनते हैं तुम किसी अवतार में कछुए थे
अपनी इसी वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकाई थी
-- -- --

याद करो
जब तुम भी कछुए थे
धरती उठाई थी
सबका बोझ
अपने पर लेने की ताकत कहां पाई थी ?[२६६]

वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति और मनुष्य का नया सम्बन्ध स्थापित किया। वर्षा क्यों होती है ? बिजली क्यों चमकती है ? का जवाब आज मानव को मिल गया है। देवताओं की स्थिति का आज आभास मिल गया है-

न आकाश
न उसके देवता और
न देवताओं के देवता
किसी के पास
प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं
यह सिद्धियां
अप्सरियां
देवलोक

वह उन्हीं
उत्तर नहीं प्रश्नों के
केवल प्रलोभन हैं
अपना विवेक सौंप देने के लिये
केवल प्रलोभन है [२८७]

इन परिस्थितियों में आज धर्म की रूढ़ परिभाषा बदल गई है। यह न तो अब आरती चन्दन चाहती है न देवी देवता की मनौती चढ़ावा आदि पर विश्वास करती है। मानव अपना नियंता है इसलिये उसे स्वयं धार्मिक अतिरंजनाओं से मुक्त होना पड़ेगा-

क्षमा कर माता मुझे क्षमा कर
किसी अज्ञात नियन्ता के पाश में बंधा मैं
अहेरी के तीर सा
अपने अपकर्म का भागी नहीं हूं मैं [२८८]

इन धार्मिक अतिरंजनाओं से मुक्त होकर कवि मानवतावादी धर्म की स्थापना चाहता है। सभी धर्म नैतिकता पर बल देते हैं। कवि मानव को स्वयं अपने आप पर आश्वस्त रहने की प्रेरणा देना चाहता है-

मैं आस्था हूं
मैं तो निरन्तर उठते रहने की शक्ति हूं
मैं व्यथा हूं
मैं तो मुक्ति का श्वास हूं
मैं गाथा हूं
मैं तो मानव का अलिखित इतिहास हूं
मैं साधना हूं
मैं तो प्रयत्नों में कभी शिथिल न
होने का निश्चय हूं

मैं संघर्ष हूं जिसे विश्राम नहीं
जो है उसे बदलता हूं [299]

वह मानव के रक्त पीने वाले आडम्बरों के विरुद्ध आवाज उठाता है-

वह धर्म नहीं है निश्चय
जो पीता मानव शोणित [300]

धर्म वर्ण जाति के नाम पर हिंसा भड़क रही है। एक राष्ट्र दूसरे को हड़पना चाहता है और मानवतावाद की दुहाई देने वाले समाधि लगाये बैठे रहते हैं-

कल सुना मानवता बीमार है
उसके शरीर में जहर फैल गया है
और एक सौ चार डिग्री बुखार है
बेचारी डेरातो अस्पताल में पड़ी है
बस किसी तरह जी रही है। [301]

नया कवि महान् उदार आदर्शों को लेकर चला है। वह भ्रातृत्व समता के आदर्श पर मानवता का निर्माण करना चाहता है-

सारे इन्सान एक हैं गोया
आदमी एकसाथ बाहम के
कोई हब्शी हो या फिरंगी हो
वह बहरे हाल इब्ने आदम है
उसकी दुनिया हमारी दुनिया है
उसका आलम हमारा आलम है
नस्ल व क़ौम वतन की जन्जीरें
रूह को कैद कर नहीं सकती
आदमीयत के सादा खाके में
रंग तफ़रीक भर नहीं सकती [302]

इस प्रकार हिन्दी उर्दू काव्य धार्मिक अतिरंजनाओं में संशोधन करके एक आदर्श मानवीय धर्म को जन्म देना चाहते हैं।

कोई काबा तराशूं
जहां हर सांस हर लम्हा इबादत हो
जहां आंखों की
दिल की
जेहन की
होठों की हर जुम्बिश परस्तिश हो
जहां हर फिक्र में एहसास की लज़्ज़त हो
और एहसास में फिक्रों की गहराई
जहां तख़य्युल की नज़रें
हक़ीक़त गर
हक़ीक़त बीं
हक़ीक़त आशना हों
जहां अफ़कार लौ दें
और अक़्ल इश्क़ बन जाये[३०२]

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

१- दिनकर : जनतंत्र का जन्म, चक्रवाल, पृष्ठ- ३५२

२- आनन्द नारायण मुल्ला : उर्दू का टीका- मेरी हदीसे उम्र गुरेजां, पृष्ठ-३३७-३३८

३- अशोक वाजपेयी : कविता और राजनीति- फिलहाल, पृष्ठ-१२२

४- रशीदुज्जमा : नई शायरी की मीमांसा- नई शायरी, पृष्ठ-२२४

५- वहीद अख्तर : शब का रंजमिया, पृष्ठ-७०

६- धूमिल - मोचीराम : संसद से सड़क तक, पृष्ठ-४६

७- फैज़ अहमद फैज़ : सुबहे आज़ादी - दस्तेसबा, पृष्ठ-९८

८- कमाल अहमद सिद्दीकी : क़रीब आज़ादी - गुफ्तौरां, पृष्ठ-६४

९- नरेश कुमार शाद : इन्हेराफ़ , पृष्ठ- ६४

१०- जांनिसार अख्तर : आज़ादी गुये दौरां, पृष्ठ- ५७

११- साहिर लुधियानवी : आज - गमे दौरां, पृष्ठ- १४६

१२- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : गर्म हवाएं, पृष्ठ- २४

१३- बच्चन : देश के नेताओं से - धार के इधर - उधर, पृष्ठ- ८६

१४- अली मजरियानी : जश्न आज़ादी - इक़्तदार, पृष्ठ- ४३ - ४४

१५- - वही - पृष्ठ- ४५

१६- कैलाश वाजपेयी : देशान्त से हट कर, पृष्ठ- २६

१७- गिरिजा कुमार माथुर : पन्द्रह अगस्त - धूप के धान, पृष्ठ- ४०

१८- संयम से बांधू त्याग की विपुल कलाऊं
    विकल मन की मरु धारा को बहकता नन्दन बनाऊं
    कुछ उठाऊं झोपड़ियों को कुछ महलों को भी झुकाऊं
    तब नये युग का नया भारत बनाऊं ।
    कमलेश : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य, पृष्ठ- ७६

१९- वामिक जौनपुरी : गजल - जरस, पृष्ठ- १५१

२०- शील : आदमी का गीत, लावा और फूल, पृष्ठ २७

२१- नीरज : मौसम अंगारों का - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २६ जनवरी, १९७५

२२- आनन्द नारायण मुल्ला : अंधेर नगर में दीप जले - स्याही की एक बूंद, पृ०-२०६

२३- - वही - पृष्ठ-२०८-६

२४- कैलाश वाजपेयी : संक्रान्त, पृष्ठ- ३२

२५- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - ४२

२६- विद्रोह और साहित्य, पृष्ठ-१३७

२७- मखमूर सईदी : ग़ज़ल - आवाज का जिस्म, पृष्ठ- १०

२८- जहीर गाजीपुरी : गजल अल्फ़ाज का सफ़र, पृष्ठ- ४६

२९- मानिक वर्मा : धर्मयुग ( १६ मार्च १९६९ ) पृष्ठ- २२

३०- केदारनाथ अग्रवाल : आग का आईना, पृष्ठ-६७

३१- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : गर्म हवाएं, पृष्ठ- २१

३२- एक आदमी दूसरे को अकेले

अंधेरे में ले जाता है और

उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है

ठीक उसी मोची की तरह जो चौक से

गुजरते हुए देहाती को

प्यार से बुलाता है और मरम्मत के नाम पर

लोहे की तीन दर्जन कुल्लियां

ठोंक देता है और उसके मना नहीं के बावजूद

डपट कर पैसा वसूलता है

धूमिल : पटकथा - संसद से सड़क तक, पृष्ठ- ११६

३३- कैलाश वाजपेयी : पिशाच संस्कृति: संक्रान्त, पृष्ठ- ६४ - ६५

३४- खुदा की चोट से पुख्ता है जब्र - व - इख्तियार

उभारे न बन सके मेरी जिन्दगी के उभार

यह इश्क़ व वस्ल का मौसम भी तू चखा है बहुत
लहू लुहान मेरी शाखे जिस्म व जां है बहुत
जहीर गाजीपुरी : आईना - २ - जुंबिशें - अल्फाज का सफ़र, पृष्ठ-१२६

३५- धूमिल : बीस साल बाद - संसद से सड़क तक, पृष्ठ-१२

३६- मुक्तिबोध : अंधेरे में - चांद का मुंह टेढ़ा है, पृष्ठ- ३११

३७- दूधनाथ सिंह : अपनी शताब्दी के नाम, पृष्ठ- १३१ - ३२

३८- वहीद अख्तर : सहराए सुकूत - पत्थरों का मोगन्नी, पृष्ठ- २३८

३९- है चहल पहल बहुत शहर है खूब आबाद
मगर कहीं नहीं मिलती कहीं आदम जाद
किसी करीब से देखो यही मुर्ग व नजाद
चमन में आज नहीं कोई ताइर बेबुनियाद

खलीलुर्रहमान ? आजादी - शहरे आशोब - नया अहदनामा, पृष्ठ-१५५

४०- रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरुद्ध, पृष्ठ-८१

४१- मुक्तिबोध : अंधेरे में - चांद का मुंह टेढ़ा है, पृष्ठ-३१७

४२- मखमूर सईदी : बात का सफ़र - आवाज का जिस्म, पृष्ठ- १११

४३- श्यामिल : सूरज के फूल - श्री-१, पृष्ठ- ७६

४४- मखमूर सईदी : अंधे गुफा में मौत - आवाज का जिस्म, पृष्ठ- १६

४५- कुमार विमल : जनतंत्र और मैं - निर्णय, पृष्ठ- १६४

४६- जहीर गाजीपुरी : काली आंधी का खौफ़ - अल्फाज का सफर-
अल्फाज का सफर, पृष्ठ-१२७

४७- कैलाश वाजपेयी : एक नया राष्ट्रगीत - देहान्त से हटकर, पृष्ठ-१३५

४८- धूमिल : मकान - संसद से सड़क तक, पृष्ठ-५७

४९- श्यामिल : शेष फल - शिविर, पृष्ठ- ६३

५०- अख्तरुल ईमान : नकरया - यादें, पृष्ठ- २०

५१- राज नारायण राज : आओ चलें तारीक नगर में : चांदनी असाद की - पृष्ठ-८६

५२- सुरेन्द्र तिवारी : धारा प्रवाह - कूकते हुए, पृष्ठ- ४२

५३- यहाँ तो

द्रोणाचार्य के वंशजों ने

लोभ के कमण्डल में

एकलव्यों के अंगूठे भर लिये हैं

मोक्ष माँगता है क्यों उसी के द्वार

जो उसके सोने के दाँतों को

विदेशों में बेच आया है

ललित शुक्ल : अग्निकोण - श्री-१, पृष्ठ- ८९

५४- राजनारायण राय : आओ चलें तारीक नगर में- चाँदनी असाढ़ की, पृ०-८६

५५- लीलाधर जगूड़ी : इस व्यवस्था में - नाटक जारी है, पृष्ठ- ४९

५६- कुमार विमल : जनतंत्र और मैं - निर्णय, पृष्ठ- १६५

५७- विनय : निर्माण - निर्णय, पृष्ठ- ५९

५८- धूमिल - मोचीराम : संसद से सड़क तक, पृष्ठ- ४१

५९- वहिद अख़्तर:सहराए सुकूत - पत्थरों का मौगन्नी, पृष्ठ- २३७

६०- धूमिल : जनतंत्र के सूर्योदय में, संसद से सड़क तक, पृष्ठ- १३

६१- अख़्तरुल ईमान : कसबुर - यादें, पृष्ठ- ६६

६२- अजामिल ? गीता - शिविर, पृष्ठ- ६०

६३- राजकुमार कुम्भज : समुद्र के विरोध में - शिविर, पृष्ठ- ८०

६४- मुज़फ़्फ़र हन्फ़ी : ग़ज़ल - हरतेक़ाफ़, पृष्ठ- २१

६५- कैलाश वाजपेयी ; तानाशाही - तीसरा अँधेरा, पृष्ठ- ८२

६६- राजनारायण राय : बारिश के बाद - चाँदनी असाढ़ की, पृष्ठ- ७२

६७- कैलाश वाजपेयी : मिथ्याचार - देहान्त से हटकर, पृष्ठ- २७ - २८

६८- मख़मूर सईदी : जलती दोपहर का सफ़र - आवाज़ का जिस्म, पृष्ठ- १२

६९- मेरा भविष्य रेहन रखा था

किसी की मर्ज़ी के नाम

चन्द्रकान्त देवताले : मकड़ी के जाले में - आलोचना, अप्रैल - जून १९६९

७०- अजामित्र : इस देश में - अभी-१, पृष्ठ- ५२

७१- परमानन्द श्रीवास्तव : दीवार - आलोचना,( अक्टूबर - दिसम्बर १९६८ )

७२- देवेन्द्रकुमार : कत्लगाह की ज़मीन में - आलोचना ( अक्टूबर - दिसम्बर १९६८ )

७३- ज़हीर ग़ाज़ीपुरी : दुआ - अल्फ़ाज़ का सफ़र, पृष्ठ- १५६

७४- भारत भूषण अग्रवाल : हर बार यही होता है- एक उठा हुआ हाथ,पृ०-७३

७५- कैलाश वाजपेयी : देश एक शोक गीत, देहान्त से हटकर,पृष्ठ- २६

७६- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : पंच धातु - गर्म हवाएं,पृष्ठ- ३१

७७- नागार्जुन : प्यासी पथराई आँखें, पृष्ठ- ५६

७८- नीलम श्रीवास्तव : मैं अकेला ही नहीं हूं - आवेग,पृष्ठ- १४

७९- कैलाश प्रसाद चौरसिया : विद्रोही पीढ़ी, पृष्ठ- २१

८०- डा० महेश्वर : अपना देश, समकालीन कविता की भूमिका,पृष्ठ- २१६

८१- वहीद अख़्तर : रात का मकान - शब का रज़्मियां, पृष्ठ- ३६

८२- आओ मत आओ होश में
लगाए जाओ अंगूठा
दिये जाओ वोट

कैलाश वाजपेयी : तीसरा अंधेरा - पृष्ठ - ३१

८३- शलभ : युग की समाधि पर - विद्रोही पीढ़ी, पृष्ठ- ४२

८४- लीलाधर जगूड़ी : शिविर, पृष्ठ- १००

८५- अजामित्र : बनता हुआ आकार - शिविर, पृष्ठ- ९८

८६- पर सोता रहता है वह आदमी
मरियल मरभुखा अपनी स्वाभाविक नींद में

ओमप्रकाश निर्मल : कुछ तो रहा है- समकालीन कविता की भूमिका,पृष्ठ-२०७

८७- ज़हीर गाज़ीपुरी : ग़ज़ल - अल्फ़ाज़ का सफ़र, पृष्ठ- १०६

८८- अली जवाद ज़ैदी : फ़ैसला - दयारे सहर,पृष्ठ- ३४

८९- रामकुमार कृषक : कांच सीमाओं के अन्तर्गत - शिविर,पृष्ठ- ८१

९०- लीलाधर जगूड़ी : इस व्यवस्था में - नाटक जारी है,पृष्ठ- ५०

९१- अजामिल : बीता - शिविर,पृष्ठ- ६२

९२- सुरेन्द्र पाल : नेकालाह - विद्रोही पीढ़ी,पृष्ठ- २८

९३- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कोल का दर्द - पृष्ठ- ९५

९४- सतीश वर्मा : मिलावट कुआं और कपूर - अनु चौकोर और अन्य कविताएं, पृष्ठ- ३४

९५- मुजफ्फर हन्फ़ी : गजल - हर्तेकाज़, पृष्ठ- २०

९६- शहरयार : हम सफरी - इस्मेआज़म - पृष्ठ- ४७

९७- अली जवाद जैदी : शिकस्ते तिलिस्म - दयारे सहर, पृष्ठ- २८

९८- जगदीश गुप्त : नयी - २ का निवेदन

९९- अली सरदार जाफ़री : जमहूर - नई दुनिया को सलाम, पृष्ठ- १९९

१००- बशर नेवाज़ : हर तेकाल,पृष्ठ- ६५

१०१- गिरिजाकुमार माथुर : तेंती सवीं वर्ष गांव - धूप के धान, पृष्ठ- ९३

१०२- जहीर गाजीपुरी : मेरा मैं कुछ मुसलसल हो गया - अल्फ़ाज़ का सफर, पृष्ठ- १५५

१०३- प्रयागनारायण त्रिपाठी : यात्रा - नयी कविता - ३, पृष्ठ- ८५

१०४- मख़मूर सईदी : गुफ़्तगी, पृष्ठ- ५७ - ५८

१०५- लक्ष्मीकान्त वर्मा : रोशनी एक नदी है - तीसरा पक्ष,पृष्ठ- ३२

१०६- श्रीकान्त वर्मा : ढाका बेतार केन्द्र - जलसाघर, पृष्ठ- ६७

१०७- आनन्द नारायण मुल्ला : जादए अमन - मेरी हदीसे उम्र गुरेज़ां,पृ०-२१८

१०८- रामदेव आचार्य : बन्द तहख़ाने , नयी-१,पृष्ठ- २५

१०९- गिरिजा कुमार माथुर : माटी और मेघ- शिला पंख चमकीले,पृष्ठ- ११

११०- मख़मूर सईदी : अमनबाग - गुफ़्तगी,पृष्ठ- ५३

१११- लक्ष्मीकान्त वर्मा : शान्ति किसकी है - अतुकान्त, पृष्ठ- १३२

११२- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : पीस पगोडा - काठ की घंटियां,पृष्ठ- २६७

११३- कैसर रिज़्वी : नाला परचम - लहर लहर नदिया गहरी, पृष्ठ- ११७

११४- सर्वेश्वर दयाल: सिपाहियों का गीत - काठ की घंटियां,पृष्ठ- ३७६

११५- शिवमंगल सिंह सुमन : मिट्टी की बारात, पृष्ठ- १७०
११६- अख्तरुल ईमान : एक कहानी - यादें, पृष्ठ- १४१
११७- अली सरदार जाफ़री : दुआ - पैराहने शरर, पृष्ठ- ४३
११८- आनन्द नारायण मुल्ला : मेरी हदीसे उम्र गुरेजां, पृष्ठ- ३३१
११९- शिवमंगल सिंह सुमन : कताई ताना - मिट्टी की बारात, पृष्ठ- १०१
१२०- जुबैर रिज़वी : यह है मेरा हिन्दोस्तां - लहर लहर नदिया गहरी, पृष्ठ-१२१
१२१- नरेन्द्र शर्मा : भारत पवन कुमार - बहुत रात गये , पृष्ठ- [illegible]
१२२- कैलाश वाजपेयी : एक नया राष्ट्रगीत, देहान्त से हट कर, पृष्ठ- १३३
१२३- महेन्द्र सिंह बेदी : ग़रीबी हटाओ - गंग व जमन, दिसम्बर १९७५, पृष्ठ-८
१२४- उन्वान चिश्ती : ऐ अकीदत नाम - नामक्रम, पृष्ठ- ५६

१२५- सुरेन्द्र तिवारी : आह्वान - कूकती हूक, पृष्ठ- ४८
१२६- नेदा फ़ाजली नया गीत, शब खून जु लाई, १९७१
१२७- गिरिजा कुमार माथुर : नई भारती- धूप के धान, पृष्ठ- १
१२८- - वही - भरित्र की बेयार - धूप के धान, पृष्ठ- ११५
१२९- जहीर गाज़ी पुरी : रिश्ता - बल्काब का सफर, पृष्ठ- १४७ - ४८
१३०- शबाब ललित : तजदीद - सच की प्यास, पृष्ठ- ८८
१३१- लक्ष्मीकान्त वर्मा; नये प्रतिमान पुराने निकष, पृष्ठ-११८
१३२- वहीद अख्तर : लहराये सुकूत - पत्थरों का मौग़न्नी, पृष्ठ- २२६
१३३- लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- १३३
१३४- केदार नाथ सिंह : निराकार की पुकार - तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १४३ -४४
१३५- अमीक हन्फ़ी : नई पौध का ब्ल्यू प्रिंट - शबरे सदा, पृष्ठ- ८
१३६- गिरिजा कुमार माथुर : शिला पंख चमकीले ( भूमिका ) पृष्ठ- ३
१३७- जगदीश गुप्त : नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृष्ठ- २८
१३८- लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- १५७
१३९- दुष्यन्त कुमार : मापदण्ड बदलो - सूर्य का स्वागत, पृष्ठ- ९
१४०- वहीद अख्तर - मानी की तलाश - शब का रज़्मिया, पृष्ठ- ९२
१४१- जगदीश गुप्त : विकार स्वीकार- शब्द दंश, पृष्ठ- १०

१४२- शहरयार : नज़्म १४, सातवाँ दर, पृष्ठ- ११०

१४३- कुंवर नारायण : सूर्य सम्पाति, चक्रव्यूह, पृष्ठ- ११६

१४४- करामत अली करामत : शुआओं की सलीब, पृष्ठ- ११३

१४५- हम सब के दामन पर दाग

हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके माथे पर शर्म

हम सबके हाथों में टूटी तलवार की मूठ

धर्मवीर भारती : पराजित पीढ़ी का गीत, सात गीत वर्ष, पृष्ठ-४२

१४६- साजदा ज़ैदी : एक नज़्म - आतशे सैय्याल - पृष्ठ- १०२ - ३

१४७- कृष्ण मोहन : ख्वाब के आइने में - शीराज़ए मिज़गां, पृष्ठ- १५८

१४८- अख़्तरुल ईमान : ख़ाक व खून - यादें, पृष्ठ- ८२६

१४९- वीरेन्द्र कुमार जैन : धुंधर महासूर्य, यातना का सूर्य, पुरूष, पृष्ठ- ७५

१५०- कुंवर नारायण : आत्मजयी, पृष्ठ- ७६ - ७७

१५१- कुमार पाशी : बूढ़ी कहानी - पुराने मौसमों की आवाज़, पृष्ठ- ४८

१५२- आज के बौने उड़ाते हैं हिमालय का मजाक

हाथ में पत्थर बहुत हैं सर कोई ऊंचा नहीं

मजहर इमाम : रिश्ता गूंगे सफ़र का, पृष्ठ- ७७

१५३- गिरिजा कुमार माथुर : नई आग की खोज - शिलापंख चमकीले, पृष्ठ-८५

१५४- खलीलुर्रहमान आज़मी : नया अहदनामा, पृष्ठ- ५६

१५५- शहरे यार : नज़्में - सातवां दर, पृष्ठ- १०१ - १०२

१५६- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- १७६

१५७- अमीक़ हन्फ़ी : फाउण्डी पर - सन्नाटा, पृष्ठ- १००

१५८- जगदीश गुप्त : नयी कविता स्वरूप और समस्यायें, पृष्ठ- ८८

१५९- शिवमंगल सिंह सुमन : राष्ट्र की जवानी की कहानी वह बन गया -

मिट्टी की बरात, पृष्ठ- १२०

१६०- करामत अली करामत : शुआओं की सलीब, पृष्ठ- १३६

१६१- जगदीश गुप्त : दीप का वक्तव्य - शब्द दंश, पृष्ठ- ४२

१६२- शरमतुल इकराम : आदमी और पत्थर - शह पर, पृष्ठ- १२५

१६३- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- ५७३

१६४- लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- २२५

१६५- अमीक़ हन्फ़ी, सन्नाटा, पृष्ठ- ४१

१६६- कुमार विमल ? ये सम्पुट सीपी के, पृष्ठ- २२

१६७- कुंवर नारायण : शतरंज - तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १६४

१६८- जगदीश गुप्त : शब्द और अर्थ के बीच - युग्म, पृष्ठ- ३०

१६९- जाहिदा जैदी : जहरे हयात, पृष्ठ- १०४

१७०- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : काठ की घंटियां - तीसरा सप्तक, पृष्ठ-२२६

१७१- नैदा फ़ाजली : फैसला - लफ़्जों का पुल, पृष्ठ- ५४

१७२- जाहिदा जैदी : हिकायाते गुरेजां - जहरे हयात

१७३- अज्ञेय : जनाह्वान - तार सप्तक, पृष्ठ- २८०

१७४- केदारनाथ सिंह : कमरे का दानव - तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १३८

१७५- अज्ञेय : उषा काल की भव्य शान्ति - तार सप्तक, पृष्ठ- २८५

१७६- रामअवतार चेतन : मैं एक व्याख्या - नवनीत ( नवम्बर १९६० ) पृष्ठ- १८५

१७७- ख़लीलुर्रहमान आज़मी : नया अहदनामा, पृष्ठ- ९१

१७८- कुंवर नारायण : क्या वही हूं मैं - नयी कविता-३, पृष्ठ- ३६ - ३७

१७९- अमीक़ हन्फ़ी - शब-गश्त - पृष्ठ- ११७ - ११८

१८०- धर्मवीर भारती : एक वाक्य - सात गीत वर्ष, पृष्ठ- ८६

१८१- विजयदेवनारायण साही : नये शिखरों से - तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १८१

१८२- मन्सूर सईदी : गुफ़्तनी, पृष्ठ- १०८

१८३- ऋतुराज : दिनचर्या - समकालीन कविता की भूमिका, पृष्ठ- १७५

१८४- लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- २२७

१८५- गिरिजा कुमार माथुर : धूल - शिला पंख चमकीले, पृष्ठ- २७ - २८

१८६- भारत भूषण अग्रवाल : चुनौती - ओ अप्रस्तुत मन

१८७- केदारनाथ सिंह : माटी को हक दो - नयी कविता, अंक-२, पृष्ठ- ७०-७१

१८८- अख़्तरुल ईमान : एक कहानी - यादें, पृष्ठ- १४१

१८९- बशीर बद्र : ग़ज़ल - इकाई, पृष्ठ- ८१

१९०- सर्वेश्वर दयाल : पंख दो - कल्पना, अक्टूबर १९५३

१९१- मन्सूर सईदी : चौथरी बाड़ की हस्त क्या ख्वाबें सुदर्शकाश गुफ़्तनी, पृ०-३२

१९२- तारानन्द झा : हम और हमारा अहम - शताब्दी, नवम्बर १९७१, पृ०-२४

१९३- सम्पादक विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन कविता की भूमिका, पृष्ठ-६४

१९४- कीर्ति चौधरी : प्रस्तुत तीसरा सप्तक, पृष्ठ- ४९

१९५- करामत अली करामत : शुआओं की सलीब, पृष्ठ- ११४

१९६- केदारनाथ सिंह : टूटने दो - तीसरा सप्तक, पृष्ठ- १३२

१९७- नरेश मेहता : महाप्रस्थान, पृष्ठ- ११३ - ११४

१९८- - वही - पृष्ठ- ११२ - ११३

१९९- रणजीत : मध्यम - समकालीन कविता की भूमिका, पृष्ठ- २३६

२००- कुमार विमल : दीवाली - यह सम्पुट सीपी के, पृष्ठ- ५५

२०१- हुरमतुल इकराम : आग - शहपर - पृष्ठ- ६७

२०२- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ -२३४-५

२०३- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : सौन्दर्य बोध- काठ की घंटियां, पृष्ठ-४१०

२०४- विश्वनाथ प्रीतेश : खून टपकते तख्ते - भंगिमा, अक्टूबर १९७२, पृष्ठ-३४

२०५- अली महलियानी - रिश्वत का बाजार - हफ़्तख़्वां, पृष्ठ- ५२ - ५३

२०६- गिरिजा कुमार माथुर : कार्निक मरीच़ - शिला पंख चमकीले, पृष्ठ- २३

२०७- कुंवर महेन्द्र सिंह बेदी : ग़रीबी हटाओ - गंगयमन, दिसम्बर १९७५

२०८- अब्दुल्ल ईमान : मेरा नाम - यादें, पृष्ठ- २३८

२०९- - वही - यादें, पृष्ठ- २३९

२१०- अज्ञेय : इतिहास की हवा - इन्द्र धनुष रौंदे हुए, पृष्ठ- ३३ - ३५

२११- भारत भूषण अग्रवाल : चीरफाड़ - आलोचना अक्टूबर - दिसम्बर, १९६८ पृ०-८

२१२- कैलाश वाजपेयी : जोड़बाकी - तीसरा अंधेरा - पृष्ठ- ४१ - ४२

२१३- बाकर मेंहदी : निगार ख़ाने में - काले काग़ज़ की नज़्में, पृष्ठ- २८

२१४- कुमार विमल ? नयी पीढ़ी की एक प्रतिनिधि आत्मकथा - ये सम्पुट सीपी के, पृष्ठ- ८

२१५- कुंवर नारायण : आत्मजयी, पृष्ठ- ९

२१६- मख़्मूर सईदी : तीसरी बार की हस्तक्षेप ख्वाएं कुछ , गुफ़्तगी, पृष्ठ- ३१

२१७- कुमार विमल : नयी पीढ़ी की एक प्रतिनिधि आत्म कथा - ये सम्पुट सीपी के, पृष्ठ- ९

२१८- डा० कृष्णवल्लभ जोशी : नयी पीढ़ी और मूल्यों की समस्या - निरन्तर अक्टूबर - सितम्बर, १९७२

२१९- राजीव सक्सेना : विलुप्त पीढ़ी का गीत - गंधदीप १९६४, पृष्ठ- २४६

२२०- वहीद अख्तर : पानी की तलाश - शब का रज़मिया, पृष्ठ- ९१

२२१- मख़्मूर सईदी : ज़िन्दगी - गुफ़्तगी, पृष्ठ- ३३

२२२- विजय देवनारायण साही : एक छोटी सी केवड़ी - नई कविता-६,पृ०-२००

२२३- रमेश गौड़ - पिता के लिये एक कविता - निर्णय, पृष्ठ- १८१ - १८२

२२४- - वही - वंश बेल, निर्णय, पृष्ठ- १८३ - ८४

२२५- - वही - पिता के लिये एक कविता- निर्णय, पृष्ठ- १८०

२२६- लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- ४४

२२७- अज्ञेय : नयी कविता एक सम्भाव्य - भूमिका इन्द्र धनुष रौंदे हुए,पृष्ठ-४४

२२८- इब्नराज़ा : एक नज़्म - सुराबों के सफ़ीर, पृष्ठ- ११

२२९- जाहिदा ज़ैदी : उम्हार लाल - बहरे ख़्याल, पृष्ठ- ८२

२३०- जगदीश गुप्त : आत्महत्या - एक अनुभूति - शब्ददंश, पृष्ठ-१६

२३१- बलराज कोमल : एक नज़्म - सफ़र मुदाम सफ़र , पृष्ठ- ६३

२३२- एहतेशाम अख्तर : तामीरे नौ-सुराबों के सफ़ीर,पृष्ठ- २६

२३३- कुंवर नारायण : आत्मजयी - पृष्ठ- ८५

२३४- गिरिजा कुमार माथुर : माटी और मेघ - शिलापंख चमकीले, पृष्ठ-११

२३५- धर्मवीर भारती : अंधायुग, पृष्ठ- १३०

२३६- पंत : अप्सरा रूपक - शिल्पी, पृष्ठ- १०१

२३७- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- १८६

२३८- - वही - पृष्ठ- २३०

२३९- अमीक हन्फ़ी : शबगश्त - पृष्ठ- १७५

२४०- अमीक हन्फ़ी : नग़मात केबीच, शबगश्त, पृष्ठ- ११- १२

२४१- डा० देवराज : नूरजहां - इतिहास पुरुष, पृष्ठ- ७५

२४२- शान्ति सिन्हा : तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर समानान्तर धुनें,पृ०-५२-५३

२४३- - वही - स्वत्व की लय पर - समानान्तर धुनें,पृष्ठ- २६

२४४- दिनकर : उर्वशी - तृतीय अंक, पृष्ठ- ६१

२४५- डा० देवराज : नूरजहां- इतिहास पुरुष, पृष्ठ-६६

२४६- अज्ञेय : विज्ञप्ति बावरा अहेरी, पृष्ठ- ६१

२४७- इन्दु जैन : यह असम्पृक्तता क्या है - चौंसठ कविताएं, पृष्ठ- २८

२४८- धर्मवीर भारती : कनुप्रिया, पृष्ठ- ४०

२४६- पंत : मानसी - स्वर्णधूलि- पृष्ठ- १४७

२५०- रघुवीर सहाय : स्वीकार - सीढ़ियों पर धूप में, पृष्ठ- ६६

२५१- - वही - आओ नहाएं - सीढ़ियों पर धूप में,पृष्ठ-१२७

२५२- जगदीश गुप्त : सृष्टि केन्द्र - युग्म, पृष्ठ- ६१

२५३- धर्मवीर भारती : गुनाह का गीत, ठंडा लोहा,पृष्ठ- २२

२५४- कुमार विमल : नयी पीढ़ी की एक प्रतिनिधि आत्मकथा- ये सम्पुट सीपी के, पृष्ठ- ६

२५५- जाँ निसार अख्तर : कजरा - खाकेदिल, पृष्ठ- ६६

२५६- - वही पृष्ठ- ४०

२५७- अल्लामा इकबाल : जानेशीरीं - यादें,पृष्ठ- ७१

२५८- मजहर इमाम : शौहरत का नग़मा - रिश्ता गूंगे सफ़र का,पृष्ठ-३६

२५९- धर्मवीर भारती : फिरोजी होठ, ठंडा लोहा, पृष्ठ- १६

२६०- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : देह का संगीत, जंगल का दर्द, पृष्ठ-१११

२६१- अज्ञेय : सावन मेघ - इत्यलम - पृष्ठ- १५४

२६२- शमशेर बहादुर : आओ - कुछ कविताएं,पृष्ठ- ६०

२६३- शान्ति सिन्हा : तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर-समानान्तर सुरें,पृष्ठ-५२

२६४- पंत : लोकायतन - पृष्ठ- २२३

२६५- मो० अली : घर - नई नज़्म का सफ़र - पृष्ठ- २६८

२६६- श्रीकान्त वर्मा : धरधाम - मायादर्पण, पृष्ठ- १५ - १६

२६७- खलीलुर्रहमान आज़मी : साया दीवार - नया अहदनामा,पृष्ठ-१०३-१०४

२६८- नेदा फ़ाजली - लफ़्ज़ों का पुल, पृष्ठ- २०

२६९- रवीन्द्र भ्रमर : कायाकल्प - गंधदीप, पृष्ठ- ६४

२७०- किशन मोहन : मैं क्षिप्रम - कुशमलामत - पृष्ठ- ८४

२७१- दुष्यन्त कुमार : ओ मेरे प्यार के अजेय बोध - आवाज़ों के घेरे,पृष्ठ-२६

२७२- अमीक़ हन्फ़ी : शबगश्त - पृष्ठ- १३

२७३- वीरेन्द्रकुमार जैन : तुम एयर कन्डीशन में बैठते हो-यातना का सूर्य पुरुष,पृ०-४६

२७४- -वही- ,, पृष्ठ-४७

२७५- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : काठ की घंटियां, पृष्ठ- ३८६ - ३८७

२७६- अमृत राय : आधुनिक भावबोध - विकल्प मई १९६७ पृष्ठ-२५-२६

२७७- शहाब जाफ़री : सूरज का शहर, सूरज का शहर - पृष्ठ- १२

२७८- - वही - पृष्ठ- १७६

२७९- ज़ाहिदा ज़ैदी : चट्टानों के बदन - ज़हरे हयात, पृष्ठ- ६७ - ६८

२८०- कैलाश वाजपेयी : एक अधूरा संगीत - संक्रान्त - पृष्ठ- ९२

२८१- हुरमतुल इकराम : शहर से चले - शहर पार, पृष्ठ- ५७

२८२- कुमार पाशी : नजात - पुराने मौसमों की आवाज, पृष्ठ-२५

२८३- भारतभूषण अग्रवाल : मूर्ति तो टूटी परन्तु - ओ अप्रस्तुत मन- पृष्ठ-१२५

२८४- भारती : अन्धायुग - पृष्ठ- ५९

२८५- भारती : अंधा युग - पृष्ठ- ७३

२८६- - वही - पृष्ठ- १३०

२८७- नरेश मेहता : महाप्रस्थान, पृष्ठ- ९९

२८८- कुंवर नारायण : प्रश्न का विस्तार, कवितान्तर, पृष्ठ- १९५

२८९- ख़लीलुर्रहमान आज़मी : नया अहदनामा, पृष्ठ- ५६

२९०- अमीक़ हन्फ़ी : ग़ज़ल - शबगश्त - पृष्ठ- १७५

२९१- - वही - चलो वापस चलें- शजर सदा, पृष्ठ- ५९

२९२- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- २५९

२९३- जगदीश गुप्त : मानव पन्थ, कुम्भ, पृष्ठ- २६४

२९४- मख़मूर सईदी : ग़ज़ल - गुफ़्तनी - पृष्ठ- ११३

२९५- अमीक़ हन्फ़ी : साये का जिस्म- शबगश्त, पृष्ठ- ५१

२९६- भारती : तीन पूजा गीत- नयी कविता-३, पृष्ठ- ५७-५८

२९७- नरेश मेहता : संशय की एक रात - पृष्ठ- १०४ - १०५

२९८- भारत भूषण अग्रवाल : इतिहास का कलंक - ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ-१३४

२९९- अज्ञेय: मैं वहां हूं - इन्द्र धनु रौंदे हुए ये पृष्ठ- २१

३००- पंत : लोकायतन, पृष्ठ- २२२

३०१- सुरेन्द्रपाल : एक सार्वजनिक समाचार, विद्रोही पीढ़ी, पृष्ठ-२७

३०२- मख़मूर सईदी : गुफ़्तनी - पृष्ठ- ५७ - ५८

३०३- साजिदा जैदी : तलाश - आतशे सैय्याल, पृष्ठ- ७०-७१

# अष्टम् अध्याय

## बीसवीं शताब्दी के हिन्दी उर्दू काव्य की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में काव्य - भाषा की भूमिका

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश की भाषाओं में उसी समय परिवर्तन हुआ है जब देश के धार्मिक अथवा राजनैतिक जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन आया है। भाषा का कलात्मक सौन्दर्य भी सांस्कृतिक मूल्यों के समानान्तर देश काल की बदलती मान्यताओं के साथ विकसित होता चलता है। अपने समय की नवीन अनुभूतियों, संघर्षों एवं यथार्थ को अभिव्यक्त करने में जब कवि को पुरानी अभिव्यंजना शैली बेमानी प्रतीत होने लगती है तो वह उन पुराने मुहावरों से विद्रोह करता है और अभिव्यक्ति के नये मापदण्डों की सर्जना करता है। जो कवि ऐसा कर पाने में असमर्थ होते हैं उनका युग उन्हें बहुत पीछे छोड़ देता है। आदिकाल में कवियों ने वीर भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये घनाक्षरी जैसे लम्बे - लम्बे छन्दों की योजना की और भक्तिकाल तथा रीतिकाल में इसके सर्वथा विपरीत सवैया, दोहा, सोरठा जैसे कोमल छन्दों को प्राथमिकता दी गयी। रीतिकालीन कवियों की शिल्प पर पकड़ आवश्यक थी क्योंकि शिल्प का चमत्कार ही कवि प्रतिष्ठा का प्रश्न था। किन्तु अब तक की काव्य परम्परा में साहित्य का सम्बन्ध या तो धार्मिक सम्प्रदायों से रहा था या फिर राजदरबारों के वैभव से। जब सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ और साहित्य में जन सामान्य को प्रतिष्ठित किया गया तो काव्य भाषा तथा शिल्प में भी परिवर्तन आवश्यक हो गया। इसी कारण आधुनिक कवियों ने अपने समय और मनुष्य को देखने परखने उसकी समस्याओं से तादात्म्य स्थापित करने के लिये नया काव्यशास्त्र निर्मित किया। इस प्रकार बदली हुई सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियां अनुभूति और शिल्प परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिये आधुनिक कवियों के लिये परम्परागत समूची काव्य-दृष्टि एवं उसके बुनियादी तत्वों को नये सिरे से परिभाषित करना आवश्यक हो गया।

आधुनिक युग में भारतेन्दु, द्विवेदी और छायावाद युगों के काव्यादर्श युगीन अन्तर लिये हुए है।

रीतिकालीन काव्य की अलंकरण की प्रवृत्ति अनुभूति विहीन होकर अतिवाद की सीमा पार कर चुकी थी दूसरी ओर समय की पुकार कुछ और थी फलतः कवि को उस झिलमिलाते ताने बाने को तोड़कर जन मानस से जुड़ना पड़ा। राष्ट्रीय जागरण के उस युग के अनुरूप आधुनिक कवियों की दृष्टि केवल कल्पना लोक में ही आत्म केन्द्रित नहीं रही उनमें राष्ट्रीय सांस्कृतिक उद्बोधन की चेतना अत्यन्त प्रबल थी जो मुख्यतः दो रूपों में अभिव्यक्त हुई—पहली भारत के अतीत के गौरवगान के रूप में दूसरी परतन्त्र राष्ट्र के वर्तमान दयनीय अवस्था पर करुणा और क्षोभ की अभिव्यक्ति के रूप में। अतीत का गौरवगान इन कवियों ने भारतीय संस्कृति की भव्यता और भारतीय वीरों के यशोगान द्वारा किया। भारतमाता के स्थूल प्रतीक ने छायावादी काव्य में अत्यन्त भावमय रूप धारण कर लिया। दूसरी ओर दृढ़ सामाजिक एवं नैतिक बन्धनों और राजनीतिक तंत्र की उथल - पुथल एवं असफलता तथा जीवन के संघर्षों ने छायावादी काव्य को निकट स्थूल यथार्थ से दूर रहस्यमय कल्पना जगत में पहुंचा दिया। द्विवेदी युगीन कवियों की बाह्य स्थूल जगत में प्रसार पाने वाली बहिर्मुखी दृष्टि आत्म की अन्तर्मुखी दृष्टि में परिवर्तित हो गयी। छायावाद की यह सूक्ष्म के प्रति आग्रह की प्रवृत्ति अनेक रूपों में व्यक्त हुई। कल्पना का महत्व इतना बढ़ा कि वह कविता का प्राणरूप बन गयी। यही मोह इस काव्य के पतन का मुख्य कारण बना। यहां से कविता ने यथार्थ की ओर प्रस्थान किया। सामाजिक स्थितियों के साथ काव्य में वैयक्तिक अनुभूतियों का भी महत्व बढ़ा। पाश्चात्य प्रभाव और औद्योगिक पूंजीवाद के प्रभाव के कारण व्यक्ति की स्वाधीन इकाई प्रस्थापित हुई। फलतः किसान मजदूर और दलितों एवं शोषितों को काव्य में स्थान दिया गया क्योंकि सभी कवियों का उद्देश्य एक ही था। राष्ट्र की प्रगति और परतन्त्रता से मुक्ति। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुए। आज हमारे देश में सांस्कृतिक संक्रमण की प्रक्रिया जारी है। मूल्यों की आवश्यकता

संक्रमण काल में अधिक होती है। फलत: आज के कवि के समक्ष भी यही समस्या उपस्थित है। अत: काव्य तत्वों को पुन: नये सिरे से संघर्ष करना पड़ा—

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे गढ़ और मठ सब
पहुंचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार[1]।

कवियों के सम्मुख निरन्तर टूटते बिखरते मूल्यों तथा बढ़ते हुए यांत्रिक दबावों का संसार था और सबसे जटिल प्रश्न था सामान्य व्यक्ति इस टूटते बिखरते परिवेश में किन आस्थाओं को लेकर जीवित रहे—

खामोश है एक जहाने मानी
कि उसके बासी
कतारे गन्दुम में अपनी शहरों की
फ़ाकाकश वाक़िफ़यत को लेकर
नये जहानों के अजनबी रास्तों पे
आंखों में प्यास लेकर भटक रहे हैं[2]।

स्वातन्त्र्योत्तर काव्य का समस्त संघर्ष कविता एवं कविता के बाहर इन्हीं मूलभूत समस्याओं का संघर्ष बन गया। निश्चित मूल्यों के अभाव के कारण कवियों ने किसी आदर्श विचार या दर्शन को अपनाने की अपेक्षा जिस संसार में वह जी रहा था उसी के सत्य को व्यक्त करने का अभियान प्रारम्भ किया और काव्य को जीवित समस्याओं से जोड़ना अपना कवि धर्म समझा।

यदि दुर्बलता दर्प में बदल जाये
व्यथा अन्तर्दृष्टि दे
खण्डित आत्माएं
संचित कर सकें शक्ति की समिधाएं
जो जलकर अग्नि को भी

गन्ध ज्वार बना दे
तो मैंने अपना कविधर्म पूरा किया[3]।

उर्दू काव्य भी नवीन समस्याओं के समाधान एवं मूल्य निर्माण के लिये प्रयत्नशील है—

एक दिया उसको अलग चाहिये इस नगरी को।
वरना होगा न किसी ख़्वाब का साया रौशन[4]।।

इस नवीन अनुभूति ने काव्य को पुरातन काव्यधर्मिता के बंधे बंधाये दायरे से बाहर निकाला और मानवीय जीवन की अनुभूतियां काव्य का विषय बन गये। उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न - यौन भावनाओं से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कठ पुतली तक, अवचेतन से लेकर स्थूल अनुरंजित चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार शायद पहले किसी वाद की कविता का न हुआ होगा[5]।

सांस्कृतिक परिस्थितियों और सामाजिक परिवेश का दबाव जब कवि की अनुभूतियों पर पड़ता है तो काव्य भी जीवन की वास्तविकताओं से उलझता है संघर्ष की यह प्रक्रिया जीवन की अनुभूति को काव्यानुभूति बना देती है और कविता अपने समय और मनुष्य को प्रतिबिम्बित करने में सक्षम होती है। " अपने जीवित संसार और उसके वास्तविक अनुभवों को कविता में चरितार्थ करने की प्रतिज्ञा ने नये कवि को तत्कालिक मनुष्य की हालत से उलझने और उसके साक्षात्कार को साहसपूर्वक उजागर करने की ओर प्रेरित किया जिससे व्यापक और गहन स्तर पर मानवीय नियति को पहचानने और परिभाषित करने का प्रयत्न हुआ[6]।" कवियों के इस प्रयास से काव्यवस्तु में भारी परिवर्तन आया क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों की अभिव्यक्ति में पुरानी विषयवस्तु अपर्याप्त थी—

किसी ने सोचा नहीं है शायद मगर मैं अक्सर सोचता हूं
पुराने लफ़्ज़ों के साथ एक पुरानी दुनिया भी खो गई है
ख़ामोशियों के स्याह लिबास में जाके रूपोश हो गई है[7]

हिन्दी काव्य में भी नवीन परिवर्तनों की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की जाने लगी —

और अब तुम्हारे पास
वे शब्द भी नहीं हैं
जिनसे तुम
उस कथा की आवृत्ति कर सको
जो तुम्हारा जला हुआ कबीर मांगता है।

आज के कवि का वातावरण वह नहीं रहा जिसमें वह पहले साहित्य रचना करता था। वह आज नितान्त भिन्न दृष्टि से मानव समाज को देखता है। वह आदर्श के स्थान पर यथार्थ को महत्व देने लगा है। यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के परिणाम स्वरूप काव्य में दैनिक जीवन के छोटे - छोटे विषयों एवं कार्यों का भी चित्रण मिलता है। उदाहरण के लिये सूप की फटकन, खाली बोतल, टूटी प्याली, ठण्डा चूल्हा, फटी साड़ी और चूड़ी का टुकड़ा आदि भी आज काव्य का विषय बन गये हैं और मानवीय अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में सफल हुए हैं। यदि अपने परिवेश और उसमें रहने वाले मनुष्य की समस्त जटिलताओं को उजागर करना कविता का कार्य है तो वर्तमान युग में राजनीति के साक्षात्कार के बिना कवि अपने इस कर्म के प्रति अनुत्तरदायी रहेगा। युवा कवियों ने इसे तीव्रता से अनुभव किया क्योंकि १९६० ई० के बाद सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को परिचालित करने में राजनीति जिस प्रकार सक्रिय हुई,उससे मनुष्य त्रस्त होने लगा। अतएव आवश्यक हो गया कि कवि किसी कल्पित या अद्वितीय अस्तित्व के लिये संघर्ष न करके साधारण मानव के अस्तित्व के लिये संघर्ष करे। परिणामतः कविता एक आवश्यकता बन गयी —

स्वतन्त्रता के अंधेरे में
स्थगित कविता के उजाले में
पसरी हुई टांगों के बोझ से दबकर
जीभ निकल आयें पूरे देश की

कविता जमीन से निकलकर
एक जलूस बन गयी[९]

नये कवियों ने अपने दायित्व को समझा और काव्य का विषय अपने ही समान रोते गाते हंसते बोलते तड़पते समय की ठोकर खाते जीवन में संघर्ष करते हुए मानव को बनाया—

हमारे लोग हां हमारे अपने लोग
दाना - पानी तलाश करते भटक रहे हैं
वे अपने देश में निर्वासित हो रहे हैं
क्यों आखिर क्यों ?[१०]

इस क्यों ? ने जिस मानव को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया वह कोई अमूर्त मानव या महामानव नहीं था और न ही उसका सम्बन्ध देश के किसी विशेष स्थान से था । वरन् देश के किसी भी भाग का वह मानव है जो आज के जीवित यथार्थ को भोग रहा है । फलत: प्रजातन्त्र, समाजवाद, संसद, मतदान, वोट, सड़क, चौराहा, मंच, राशन, भीड़, शान्ति, पंचशील, विश्व शान्ति जैसे विषय पहली बार काव्य के विषय बने । हिन्दी काव्य की तुलना में उर्दू काव्य में राजनीति से इतना सीधा साक्षात्कार नहीं मिलता । यही कारण है कि उर्दू साहित्य में राजनीतिक विषय काव्य वस्तु का रूप धारण नहीं कर सके । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उर्दू काव्य समकालीन यथार्थ से अनभिज्ञ है या उसे इन सच्चाइयों की अनुभूति नहीं है । हां यह सच था कि उर्दू काव्य ने राजनीतिक सन्दर्भों को कलात्मक स्तर पर स्थान नहीं दिया किन्तु समकालीन सच्चाइयों के रहते लम्बे समय तक वे तटस्थ नहीं रह सके । आठवें दशक की उर्दू कविता ने हिन्दी के अनुरूप राजनीति से साक्षात्कार प्रारम्भ किया और आगे इस प्रभाव के विकसित होने की आशा है क्योंकि उर्दू कवियों ने भी यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिये अपनी मान्यताएं बदल दी हैं—

मुझे अपनी ओर अपने जैसे
यह बस्ती इन्सानों की गुलशन है
ख़ुदा के लिये मुझको इतना तो बता दो
कि इस रास्ते पर
मुझे मंज़िले आख़िरी की लगन में
यूं ही भटकना है कब तक[११]

उर्दू काव्य की यह बिल्कुल ही नयी विषय वस्तु है जहां उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक सन्दर्भों में ग़रीब जनता के दु:ख दर्द से रिश्ता जोड़ने का प्रयास किया है।

९- विभिन्न मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति तथा मानवीय सम्बन्धों की खोज :

जब कवि को परम्परा से प्राप्त जीवन और साहित्य सम्बन्धी मूल्य और आस्थाएं निरर्थक प्रतीत होने लगीं तो कवि के सामने यही उपाय शेष रह गया कि वह मानवीय समस्याओं और उसकी जटिलताओं से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करे—

अभी मेरी आख़री आवाज़ बाक़ी है
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमीयत का मगर आग़ाज़ बाक़ी है
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देता हूं
नया इतिहास देता हूं
कौन कहता है कविता मर गई[१२]?

आदमीयत के आग़ाज़ के एहसास को स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने दायित्व के रूप में ग्रहण किया। युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करके अपने काव्य को समकालीन मनुष्य से जोड़कर काव्येतिहास में एक नयी चेतना का प्रारम्भ किया—

मेरे फ़न से भी ऐसी ही शर्त बंधी है
इसको भी दुनिया भर के
दु:ख सुख को
ज्ञान ध्यान को
कुछ अपने एहसास पे सहना पड़ता है
अपना किस्सा बना कर
दुनिया का किस्सा कहना पड़ता है[23]

काव्य की इस नवीन चेतना का कारण देश के सांस्कृतिक जीवन में आया संक्रान्ति का मोड़ है। "प्रत्येक मोड़ संक्रान्ति युग होता है जिसमें पुराने और नये के बीच संघर्ष अनिवार्य हो उठता है। यह संघर्ष विध्वंसक लगता है किन्तु इसके बीच से गुज़र कर पुराना नये का निर्माण करता है पुरानी आस्था पुरानी मर्यादा और पुराना विश्वास नयी मर्यादा और नये विश्वास को जन्म देता है। पहले युग का सांस्कृतिक जीवन विच्छिन्न होकर नये युग की सांस्कृतिक उपलब्धि की भूमिका तैयार करता है।"[24] इस दृष्टि से युगीन संवेदना को अभिव्यक्ति देने वाले कवियों का कर्म अत्यधिक बढ़ गया क्योंकि उनके समक्ष न केवल संक्रान्ति युगीन परिस्थितियों को संवेदना के स्तर पर ग्रहण करना आवश्यक है परन्तु परिस्थितियों का अतिक्रमण कर नवीन मूल्य सृष्टि करना भी ज़रूरी है—

नये आलोके ज़माना के असर से बुझ गई है दिल की उमंग
यह न सोचे कि शोलों का दामने रंगीं तंग है[25]

हिन्दी काव्य में भी मूल्य निर्माण का दायित्व बोध स्पष्ट है—

मैं कर्मठ
मैं जागरूक
दायित्व संभाले बैठा हूं
जब होना तो मुझसे होना
इस आशा में[26]

मूल्यों की दृष्टि आज इसलिये भी आवश्यक हो गई है कि " वर्तमान युग में यथार्थ और उससे सम्बन्धों के प्रति हमारी धारणा जीवन के प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण सन्दर्भ में बदली है सबसे मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन विज्ञान के क्षेत्र में हुआ है जहां दिक् और काल की सारी परम्परागत धारणा बदल गई है। दर्शन की तरह अब विज्ञान यथार्थ के बुनियादी रूप को निर्धारित करता है। सामाजिक सन्दर्भों में भी यथार्थ का रूप धीरे - धीरे पर काफ़ी दूर तक बदला है। उदाहरणार्थ समकालीन पारिवारिक और सामाजिक जीवन में व्यक्ति की बाहरी शालीनता जितनी बढ़ी है भीतरी सहिष्णुता उतनी ही कम हुई है। इससे मानवीय सम्बन्ध में एक गहरा तनाव उत्पन्न हुआ है।[20] इस परिवर्तन ने काव्यात्मक दृष्टि का क्षेत्र विस्तृत किया है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य अनेक मानवीय सम्बन्धों की खोज में संलग्न है।

औद्योगिक संस्कृति का प्रसार जैसे - जैसे बढ़ता जा रहा है वैसे - वैसे मानवीय सम्बन्ध अपनी पुरानी स्थितियों से हटते जा रहे हैं। बदली हुई सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्थाओं के अनुरूप नवीन मानवीय सम्बन्धों की खोज काव्य के विषय बन गये और पहली बार " महामानव " की छवि से भिन्न सामान्य मनुष्य को चित्रित किया गया ।

" नया कवि मानव की जिस कल्पना को रूप प्रदान कर रहा है वह प्रगतिवादियों की तरह आदर्श नहीं बल्कि इन्सानी है। नयी कविता का मानव परिस्थिति जन्य है जो अपने भाग्य को पूर्व निश्चित आदर्शों में नहीं खोजता है। अतीत उसके लिए एक अनुभव है और वर्तमान एक प्रयोगशाला।[28] " इस प्रकार अतीत से शिक्षा ग्रहण करते हुए उसे वर्तमान को निश्चित करना पड़ रहा है। परम्परा के दबाव से अलग रहना उसके लिये संभव नहीं है इसीलिये संघर्ष और बढ़ रहे हैं। अतः आज का काव्य बदली हुई जीवन दृष्टि की कहानी बन गया है। जीवन से जूझते हुए मानवों में मानवीय सम्बन्ध की तलाश आज काव्यादर्श बन गया है। इस दृष्टि ने मानवीय सम्बन्धों को नितान्त नवीन भूमि पर ला खड़ा किया है।

परिवर्तित परिवेश में स्त्री - पुरुष सम्बन्धों की व्याख्या करना काव्य का मुख्य विषय बन गया है। हिन्दी काव्य में यह मोह इतना बढ़ा कि नर-नारी सम्बन्ध काव्य पर छा गये। उर्दू के प्रगतिवादी कवियों ने भी नारी का मोह नहीं छोड़ा। इसीलिये स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने समकालीन परिस्थितियों से सम्बन्ध जोड़ने के लिये नारी को अधिक महत्त्व नहीं दिया किन्तु समकालीन समस्याओं के सन्दर्भ में नारी का आ जाना स्वाभाविक था। स्त्री शिक्षा ने नारी जाति में नवीन जागृति उत्पन्न की और नारी सामाजिक जीवन में पुरुष की समता मांगने लगी। इस नारी चेतना को सार्थक बनाने के लिये नारी की नवीन व्याख्या काव्य विषय बन गई। "इस काल के हिन्दी काव्य में नारी के इन बदले हुए मान - मूल्यों को विस्तार से अभिव्यक्ति मिली, नारी समस्या के विविध रूपों का अंकन हुआ है। समाज में उसकी गर्हित स्थिति के सजीव चित्रों से लेकर उसके अधिकारों की मांग उसके नये स्वरूप तक का मार्मिक व सशक्त चित्रण हुआ है[१९]।

इस प्रकार पहली बार प्रेम काव्यों की कोमल एवं रीतिकालीन लिजलिजी भावना से अलग नारी का एक जीता - जागता रूप सामने आया। प्रेम को वायवीय एवं अमूर्त न मानकर मूर्त बनाया गया किन्तु इसके साथ ही प्रेम की निजी अनुभूतियां काव्य का विषय बनने लगीं जिससे स्वच्छन्दता बढ़ने लगी किन्तु काव्य पर सामाजिकता का भय भी निरन्तर बना रहा—

चलो उठें अब
अब तक हम थे बन्धु
सैर को आये
और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुंधले में दुबके प्रेमी बैठे हैं[२०]।

प्रेम सन्दर्भों में सामाजिक व्यवधान की अनुभूति उर्दू काव्य में भी दिखाई

देती है-

यूं ही कब तक फ़ोन पर बात करते रहें
यूं ही फ़ासला जिस्म का जिस्म का
एक रिश्ता फ़क़त सौत - व - आवाज का
यह रिश्ता भी जिस्या है मुंगे सफ़र का
जो कब टूट जायगा
किसे यह पता[२१]

यद्यपि उर्दू गज़ल का विषय ही नारी और प्रेम-प्रणय है किन्तु नये कवियों ने गज़लों के माध्यम से समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देना शुरु किया इससे गज़लों का विषय तो बदल गया फिर भी कुछ गज़लों में प्रेम प्रणय की तीव्र अनुभूति का रूप मिल जाता है-

कितनी करीब से भी गुज़र जाती थी किताब
जो तेरी हो के भी न तेरी हम-ब-र गई[२२]

सामाजिक जीवन की कठोरता और वर्जनाओं ने कवि को नर - नारी सम्बन्धों के प्रति विद्रोही बना दिया जिससे मुक्त यौन ( Free Sex ) काव्य का मुख्य विषय बन गया। कवि विकृत यौन भावना और नारी देह की गन्ध को एक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में संलग्न हो गये। यौन भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिये अश्लीलता का ध्यान नहीं रखा गया। बड़ी निर्लज्जता से योनि, लिंग, जंघा, स्तन, संभोग आदि को काव्य विषय बनाया गया और खुलके से काव्य में प्रयुक्त किया गया जिससे परम्परागत सौन्दर्य भावना विकृत हो गयी। जीवन की जटिलताओं और कुंठाओं से बचने के लिये कवि को यही रास्ता रुचिकर लगा। " परम्परा भंजक प्रतिगामी कविता ने जो कुण्ठाग्रस्त सौन्दर्यबोध अपनाया वह किसी भी हालत में समाज के लिये उपादेय नहीं हो सकता उनका सौन्दर्यबोध यौनाश्रय, वामाश्रय, मर्माश्रय, फ्रेंच लेदर, टेस्ट ट्यूब मकाऊ,

लिपिस्टिक बोतल, झंग, हल्दी चितकबरी रात में ही उलझ गया है। वह वस्तुतः सौन्दर्यबोध न होकर विकृति बोध हो गया।[23]

हिन्दी काव्य के समान उर्दू की नयी कविता में विकृत सौन्दर्यबोध नहीं मिलता। उर्दू कवि भी सत्य का आग्रही है किन्तु वह यथार्थ चित्रण के साथ ही सौन्दर्य बोध को भी नहीं तोड़ना चाहते-

चाहता हूं कभी ख़्वाब न टूटे मेरे
कमाले हक़ीक़त का तलबगार भी हूं[24]

छायावाद के वायवीय सौन्दर्य बोध और अतिशय कोमलता से ऊबकर नये कवियों ने काव्य में मसृण और कोमल मधुर से हटकर अनगढ़ और भदेस को भी अपनाया। कवियों की मान्यता थी कि जब जीवन में सुन्दर और कुरूप दोनों ही हमारी अनुभूतियों को समान रूप से आन्दोलित करते हैं तो उन्हें काव्य विषय के रूप में स्वीकारना ज़रूरी है। "विरूपता अश्लीलता नहीं है, असुन्दर भोंड़ापन नहीं है परिवेश ओछापन नहीं है------ इन सबका सौन्दर्य पक्ष में महत्व है। यह सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं।[25] इसी लिये काव्य वस्तु के रूप में गधा, पटके, कबूतर, पागल कुत्ते, पीरत वाला गिद्ध, चूसा हुआ सूत, मवाद, कफ़न को काव्य रूप में प्रयुक्त किया।

यह सच है कि जीवन का एक पक्ष असुन्दरता भी है। परिस्थिति विशेष में एक ही वस्तु सुन्दर भी हो सकती है और असुन्दर भी क्योंकि पारम्परिक मूल्यों के विघटन के बाद जो कुछ सामने आया वह बहुत विकृत और भोंड़ा हो चुका था। सम्भवतः इसी लिये उसने अनुभव संसार को अभिव्यक्ति देने के लिये कवियों को भोंड़ेपन को भी अपनाना पड़ा। अकविता में आए इस असुन्दर ने सौन्दर्य के नये प्रतिमानों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया।

बदले परिवेश और औद्योगीकरण ने मानव सम्बन्धों की परिभाषा बदल दी क्योंकि अब सभ्यता ग्रामीण अंचलों से निकल कर नगरों और महानगरों में

केन्द्रित होने लगीं। परिणामतः कवियों ने ग्रामीण परिवेश को त्यागकर नगरों और महानगरों को अपने काव्यबोध का माध्यम बनाया। इसी सन्दर्भ में आधुनिकता काव्य बोध के रूप में सामने आई। बड़ी संख्या में गांवों से लोग शहरों में आने लगे। इस भीड़ में मनुष्य की पहचान खोने लगी और अस्तित्व का संकट काव्य का मुख्य विषय बन गया। इस भीड़ में खोए हुए व्यक्तित्व की तलाश का प्रमुख आधार कवि स्वयं बन गया। परिणाम यह हुआ कि समस्त काव्य बोध सिमटकर मध्यवर्गीय जीवन में समाहित हो गया क्योंकि अधिकांशतः कवि इसी वर्ग के थे। समस्त काव्य संसार मध्यवर्गीय जीवन की दीनता, अभाव, निराशा, कुंठा आदि का चित्रण बन गया। "नयी कविता इस बिन्दु पर मनुष्य को टूटा और लांछित, पथ भ्रष्ट, पराजित और विकृतियों से खण्डित पाती है। यह एहसास बहुत व्यापकता से आया और इसी के साथ आई उसके व्यक्तित्व की तलाश, स्वीकृत मूल्यों के प्रति अविश्वास और दिलासा देने वाले आदर्शों तथा मतों के प्रति अनास्था[25]। इन अनुभूतियों को अस्तित्ववादियों ने और भी बढ़ावा दिया। परिणामतः दुःख, संताप, क्षोभ, आक्रोश, कुण्ठा, घुटन अकेलेपन का एहसास तो काव्य विषय बन गया लेकिन काव्य जीवन की समस्याओं को समझने में असफल रहा क्योंकि "उनके सामने बदलता हुआ समाज तो है किन्तु उसकी समस्याओं को वह नहीं समझ पाये हैं। इसीलिये कवि एक रहस्यमय, काल्पनिक संसार के निर्माण में लगे हुए हैं। इसीलिये उन्होंने न मानवीय सौन्दर्य को देखा न प्रकृति और हरियाली के सुन्दर गीत गाये और न भटकते हुए बादलों को अपने काव्य का विषय बनाया है। वह तो प्रतिदिन कब्रिस्तानों, जादूगरों, धुंओं और अंधेरी रात और निराशाजन्य अनुभूतियों पर ही काव्य रचना कर रहे हैं और पलायन की अथाह गहराइयों में जाकर वह अपने को अकेला दशा का पात्र समझने लगे हैं। उनके यहां न किसी प्रकार के मूल्य हैं और न कोई स्पष्ट जीवन-आदर्श और आस्था जिसके सहारे वे काव्यात्मक स्तर पर जीवित रह सकें[26]। इस प्रकार उन्होंने समकालीन यथार्थ और मानवीय सच्चाइयों का उद्घाटन करने के स्थान पर स्वयं को हर सामाजिक दायित्व से वंचित कर लिया क्योंकि उनके लिये समाज केवल

आक्रामक भीड़ रह गया। समाज उनकी स्वतन्त्रता स्वेच्छाचारिता पर प्रतिबन्ध लगाने वाला एक समुदाय बनकर रह गया। अतः युगीन यथार्थ को चित्रित करने और सामान्य मनुष्य को काव्य में स्थान देने के जिस ध्येय को लेकर कवि चले थे वह अभियान अस्तित्ववादियों के कारण बहुत पीछे छूट गया तथा अकवितावादियों के बर्बर भोगवाद में तो कोई मूल्य और मर्यादा शेष रही ही नहीं। किन्तु ऐसा नहीं है कि सम्पूर्ण काव्य बोध की परिणति इसी में हो गई। कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने अपनी चेतना को बचाये रखा। इन विसंगतियों के बीच भी मानवीय मूल्यों और सद्भावनाओं को ठोस धरातल प्रदान किया। इसके लिये कवियों ने पौराणिक प्रतीकों को मूल्य निर्माण के लिये काव्य विषय बनाया।

हिन्दी काव्य के समान अधिकांश उर्दू कवियों ने इस मूल्य विहीन संसार में मानव की आस्था और विश्वास को काव्य विषय बनाया और मूल्य निर्माण की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाई एवं नये रास्ते तथा रौशनी की खोज में लग गये।

२- आधुनिक हिन्दी उर्दू काव्य का शिल्प विधान :

शिल्प सजगता भावाभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है इसके अन्तर्गत वे सभी उपकरण आते हैं जिनका प्रयोग कवि अपनी अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने तथा काव्य सौन्दर्य के शक्ति संवर्द्धन के लिये करता है। अभिव्यंजना में सौन्दर्य उत्पन्न करने वाले महत्वपूर्ण प्रसाधन हैं-- अप्रस्तुत विधान, प्रतीक विधान तथा बिम्ब आदि।

(अ) अप्रस्तुत विधान :

काव्य में प्रस्तुत का आख्यान प्रस्तुत रूप में ही न होकर अप्रस्तुत रूप में भी होता है। कवि की सबसे बड़ी जिम्मेदारी सामान्य भाषा को अनुभव की भाषा बनाने में है इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत का भी अत्यन्त महत्व होता है कविता की अभिव्यंजना शक्ति में प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत भी सहायक होते हैं। सामान्यतः "अप्रस्तुत" शब्द "उपमान" का एक पर्याय है "उपमा"

के चार अंगों में से एक अंग है[28]। आचार्य शुक्ल ने अप्रस्तुत शब्द उपमान के ही रूप में प्रयुक्त किया है। उनके मतानुसार " प्रस्तुत वस्तु और अलंकारिक वस्तु में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत ( कवि द्वारा लायी हुई ) वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग आदि में मिलती जुलती हो[29]------।" इस प्रकार " अप्रस्तुत योजना " से अभिप्राय है मानव जीवन के किसी तथ्य पदार्थ, रूप, रंग, कथन, गुण, अनुभूति को अधिक गहराई एवं व्यापक रूप से सम्प्रेषित करने के लिये जिस तुलनात्मक उपमान का प्रयोग कवि करते हैं उसे " अप्रस्तुत " योजना की संज्ञा दी जा सकती है। अप्रस्तुतों के लिये कवि अधिकांशतः उन उपादानों को लेते हैं जिनसे जन सामान्य का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। संभवतः इसी कारण काव्य में अप्रस्तुत विधान प्रकृति से ग्रहण किये जाते रहे हैं क्योंकि चिरकाल से प्रकृति और मानव का रागात्मक सम्बन्ध रहा है—

बड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख चित्र-से
सो गया सुरा स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
डूब एक कम्पन सा निद्रित
सरोवर में-[30]

" अपनी कल्पना जनित सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के द्वारा छायावादी कवियों ने एक ओर तो विराटसाम्यमूलक अप्रस्तुतों की योजना की ओर दूसरी ओर अत्यन्त सूक्ष्म अमूर्त एवं छायामय उपमान प्रस्तुत किये[31]। छायावादी अप्रस्तुत योजना विराट सूक्ष्म मूर्त- अमूर्त उपमान संयोजन की प्रवृत्ति के कारण ही रीतिकालीन निर्जीव अलंकरण के बोझ से दबी कविता कामिनी तथा द्विवेदी युगीन परम्परागत कांतिहीन अप्रस्तुत योजना से भिन्न है। छायावादी कवि मूर्त के लिये मूर्त अप्रस्तुत तथा अमूर्त के लिये अमूर्त, मूर्त के लिये अमूर्त और अमूर्त के लिये मूर्त अप्रस्तुतों की योजना की सृष्टि कर उपमानों को सजीव बनाने और उनमें वैचित्र्य की सृष्टि

करने में अत्यन्त कुशल थे।

> नीचे जलधर दौड़ रहे थे सुन्दर सुर धनु माला पहने,
> कुंजर कलभ सदृश इठलाते चमकाते चपला के गहने।[32]

मूर्त के लिये मूर्त उपमान सूक्ष्म रेखाओं को उभार कर संवेद्य बनाते हैं। स्थूल और यथार्थ से पलायन की प्रवृत्ति तथा अमूर्त वायवीयता के प्रति मोह ने कवियों को अमूर्त के लिये अमूर्त अप्रस्तुतों की रचना करने को प्रेरित किया-

> व्याकुलता सी व्यथित हो रही
> आशा बनकर प्राण समीर[33]

माखनलाल चतुर्वेदी ने मौत जैसी सूक्ष्म अमूर्त चेतना को "सिसकियों के सघन वन सी"[34] कहकर मृत्यु के कारुणिक प्रभाव को बड़ी कुशलता से उभारा है। अपनी कल्पना से अद्भुत अमूर्त अप्रस्तुतों की सृष्टि छायावादी काव्य की काव्यात्मक समृद्धि के परिचायक है-

> शून्य मन पर उमड़ घन दुःभार सी
> मेरा नभ में सघन छा जाती घटा[35]
>
> — — —
>
> किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग
> धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन
> किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन ?

जहां कवियों ने मूर्त के लिये अमूर्त की सृष्टि की वहीं कल्पना, विषाद, स्मृति, चिंता जैसे अमूर्त विषय को मूर्त उपादानों से सम्प्रेषित किया है-

> इन्द्र धनुषी मेघ सी मैं
> खींचता हूं स्मृति तुम्हारी[37]
>
> — — —

मधुर आलस सी तेरी याद[38]

इन कवियों में सूक्ष्म के प्रति आग्रह इतना बढ़ा और काव्य पर कल्पनातिरेक इतना छाया कि उनके उपमान अत्यन्त सूक्ष्म अमूर्त और वायवीय हो गये। उन्हें हृदयंगम करना दुःसाध्य हो गया। छायावादी काव्य कला और अलंकरण के बोझ से दबकर अपनी जीवन्तता और संवेदन शक्ति खोने लगा। एक बार पुनः परिवर्तन की मांग सामने आई। " कलागत मान दण्डों का ऐसा घटाटोप जो सफल अभिव्यक्ति का माध्यम न बनकर इतना दुरूह इतना अस्पष्ट और इतना वैयक्तिक हो गया कि भाषा, शैली, विचार और उसके आलंकारिक रूपों में परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। —— प्रगतिवादी शिल्प विधान छायावादी शिल्प विधान की प्रतिक्रिया के रूप में ही विकसित हुआ। विचार जगत् की उस सीमा पर पहुंच कर हिन्दी कविता को महसूस होने लगा कि अब हिन्दी कविता न रस की प्यासी है न अलंकार की इच्छुक और न संगीत की तुकान्त पदावली की भूखी है। —— अब वह चाहती है किसानकी वाणि मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी[39]। छायावाद में जिस शिल्प का विकास हुआ था वह छायावादोत्तर काल की काव्य प्रवृत्तियों के लिये अनुपयुक्त था। इस आवश्यकता को युगद्रष्टा कवियों ने तीव्रता से अनुभव किया और अपनी रचनाओं में परिष्कार किया।

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिये अलंकार[40]

प्रगतिवादी कवि शिल्प के प्रति एक प्रकार से उदासीन से रहे उनकी काव्य वस्तु विचारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रही किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शिल्पगत संस्कार उनमें थे ही नहीं इस युग के साहित्य में भी अनुभूति की गहनता को उपमान के रूप में प्रयोग किया है-

मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग
रुका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम
मैं एक स्थगित हुआ मैं अगला अध्याय
अनिवार्य
आगे ढकेली गई प्रतीक्षित
महत्वपूर्ण तिथि[51]

प्रगतिवादी काव्य के शिल्प में किसी प्रकार की क्लिष्टता या कल्पना का समावेश नहीं हुआ है जिस प्रकार भाषा की सरलता इस काव्य का गुण है उसी प्रकार अलंकार विधान में भी छायावादी विशेषताओं में सुधार किया गया और उपमान भी लोक जीवन से लिये गये जिससे उनके सम्प्रेषण में सरलता आ गई—

श्यामल धरती जैसी फैली हैं बरौनियां
पुरवाई पर उड़ते मेघों से हैं कुन्तल[52]

उर्दू काव्य में भी सरल प्राकृतिक अप्रस्तुत दृष्टिगत होते हैं किन्तु हिन्दी काव्य की तुलना में इनका प्रयोग कम ही हुआ है । प्रांजल प्राकृतिक अप्रस्तुत लिये गये हैं—

वह सुनहरी चोटियों में कसमसाते गोल उभरे सांवले
कसमसाते गोल उभरे गदराये भारी सख्त टोटे
वह सुनहरे पत्र का यों वां फाड़ कर कुछ कट पड़ा है श्याम रंग
पार से है ताक चौकि झांकता है सांवली धरती का अंग[53]

प्राचीन प्राकृतिक अप्रस्तुतों की शब्दावली बदले हुए रूप में काव्य क्षेत्र में आई । छायावाद के बाद प्रगतिवादी काव्य में शिल्प का उपेक्षित रहा किन्तु प्रयोगवादी काव्य में शिल्पगत नवीन संस्कार किया गया । प्रयोगवादी कवि पारम्परिक शिल्प तन्त्र और जड़ प्राचीनता के विरुद्ध विद्रोह करते हैं शिल्प के क्षेत्र में उनका यह विरोध छायावादी शिल्प के प्रति अधिक मुखरित हुआ है,

छायावादी काव्य दृष्टि जिस स्वच्छन्दतावादी रोमांटिक दृष्टिकोण से पूर्ण परिणति को प्राप्त हुई। उसके पश्चात् शिल्प का नया संस्कार उस रोमानी दृष्टि के विपरीत और गैर रोमांटिक भावबोध के स्तर पर ही सम्भव प्रतीत हुआ[44] इस प्रकार प्रयोगवादी शिल्प का आधार जीवन के विविध क्षेत्रों को बनाया जाना वैज्ञानिक युग के प्रणेता के रूप में अज्ञेय ने अलंकारिक रूप विधान का विरोध किया—

अगर मैं तुमको

ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता

— — —

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है

बल्कि केवल यही कि

ये उपमान मैले हो गये हैं

देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच

कभी बासन अधिक

घिसने से मुलम्मा छूट जाता है[45]

अज्ञेय की ये पंक्तियां कला के सम्बन्ध में डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन उल्लेखनीय है—" कवि के गैर रोमाण्टिक भावबोध की जांच प्रकृति और प्रणय के प्रसंगों को लेकर शायद सबसे अच्छी तरह की जा सकती है। —— नव विकसित मानवीय सभ्यता में अब पहले की तरह प्रकृति का एकछत्र राज्य नहीं है, नयी व्यवस्था में प्रकृति प्रविधि और मानव के बीच समानुपात सम्बन्ध विकसित करने होंगे[46]। अत: वर्तमान जीवन का सम्यक् बोध कराने के लिये प्रकृति, प्रणय और नारी सम्बन्धी काव्य रूढ़ियां बहुत अधिक बदल गयीं। चांदनी, चंद्रमा रात सांझ धूप प्रात: के नये - नये रूप काव्य क्षेत्र में उभरने लगे कहीं रात चितकबरी नागिन बनी तो कहीं चांद श्वेत हंसली दिखाई देने लगा। आधुनिक भाव बोध ने प्रकृति को देखने

को नयी दृष्टि दी-

चांद पूरा ताज़ा
चार्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल[47]

इस चेतना से अप्रस्तुतों की शब्दावली तो वही रही किन्तु धर्म बदल गया-

दूर क्षितिज पर महुओं की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़ कर सूरज का शैतान छोकरा झांक रहा है।[48]

मै [illegible] सूरज को एक नटखट बालक के रूप मे देखती है।[49] और सन्ध्या को एक मां के रूप मे जो बालक सूरज द्वारा बिखेरी हुई वस्तुओं को चुनती है-

शाम
थकी हारी मां
एक दिया झिलकाये
धीमे - धीमे
सारी बिखरी चीजें चुनती जाये[50]

यही नहीं प्रातः नन्हे - नन्हें पंख धारी, चिड़कुट सारी स्कूल मे पढ़ने के लिये जाने लगी है।[51] इस प्रकार काव्य में प्रकृति का मानवीकरण किया गया और कवि प्रकृति के मानवीकृत रूप द्वारा यथार्थ जीवन का चित्रण करने लगे-

सुनो मैं पराजित हूं
मैं भी बहुत भटकी हूं
सुनो मेरा भी कोई नहीं
— — —
पर न जाने क्यों
पराजय ने मुझे शीतल किया[52]
और हर भटकाव ने गति दी

आज के जीवन के भटकाव और बेदिली की सन्ध्या के मानवीकृत रूप में चित्रित किया गया—

> खेत के मेंढ़ मोड़े पे बैठी हुई शाम ने उठ के बत्ती नहीं जलाई
> रोशनी का फ़रिश्ता बड़ी देर तक दस्तकें देकर चला गया[53]

इस प्रकार प्रकृति युगीन मानस की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने लगी युग बदला परिस्थितियां बदलने लगीं जहां खेत लहलहाते थे वहां रेलवे लाइनें बनने लगीं जंगलों को साफ करके नगर - महानगर बनाये गये । गगनचुम्बी इमारतें एक दूसरे से होड़ लेने लगीं । भाग दौड़ में व्यक्ति प्रकृति के सहज रूप को भूल गया । प्रकृति उसके मन की कुण्ठाओं का रूप लेने लगी—

> मरीज़ सी
> पीली आंखों का डर सांझ भर जायेगा
> छिपकली की तरह[54]

कवि प्राकृतिक सौन्दर्य को अनगढ़ता और कुरूपता में देखने लगे जिससे काव्य शिल्प के क्षेत्र में भारी परिवर्तन आया । पुरातन मान्यताओं के स्थान पर नये युग सन्दर्भ में सौन्दर्य के नये प्रतिमान निश्चित होने लगे—

> अब तो तुम
> पतझर की धरा सी उजाड़
> सांझ सी वीरान
> बासी कपड़े सी बसाँधें[55]

हिन्दी काव्य के समान उर्दू काव्य में भी सौन्दर्य की नवीन धारणाएं विकसित हुईं ।

> हुस्न इमरोज़ को तस्वीर में ढाले कैसे
> अब वह पहले से ख़म काकुल व अबरू भी नहीं[56]

सौन्दर्य बोध की इस नवीन चेतना ने न केवल सुन्दर का चित्रण किया अपितु कुरूप एवं नग्न चित्रण को भी प्रश्रय दिया गया। सौन्दर्य बोध की इस धारणा में व्यक्तिगत दृष्टि प्रमुख होने के कारण अप्रस्तुतों का रागात्मक तादात्म्य टूटने लगा और वह विशिष्ट हो गया—

अन्तर्मनुष्य
रिक्त सा गेह
दो लालटेन से नयन दीन
निष्प्राण स्तम्भ[५७]

जैसे - जैसे व्यक्ति बुद्धिवादी होता गया वैसे - वैसे जीवन पर विज्ञान का प्रभाव भी बढ़ता गया। इसी युग को प्रतिबिम्बित करने वाले साहित्य का शिल्प भी विज्ञान से प्रभावित होने लगा। अतएव प्रकृति के स्थान पर वैज्ञानिक उपकरणों का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग किया जाने लगा—

कैमरे के लैंस सी हैं आँखें झुकी हुई
खिंचे, कमबख्त लाउडस्पीकर से
जिनके मुख निःशब्द खुले हैं।
—          —          —
दारोमदार पहिये सा दिल घूमे जाता है
—          —          —
टाइपराइटर के ' की ' की तरह
उनके पैर भारी - भारी से उठते हैं—[५८]

यांत्रिक संस्कृति से परिचालित युग में सामाजिक संत्रास और निरर्थक जीवन को अभिव्यंजित करने वाले नये अप्रस्तुत बहुत ही सफल और कल्पनाशील बन पड़े हैं। जीवन की निरर्थकता के लिये प्रयुक्त अप्रस्तुत द्रष्टव्य है—

मैं निरा विलायती स्पंज हूं
मेरे प्राण रिक्त और छिद्रमय
उनमें कहां है स्रोत ?
मैं तो मात्र बाहर के जीवन को सोख कर
फिर उगल देता हूं
तो भी तब पथ कोई आके निचोड़े मुझे—[५८]

उर्दू काव्य में भी वैज्ञानिक उपकरणों को अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त किया गया है यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम है फिर भी युग का प्रभाव तो स्पष्ट ही है और इन अप्रस्तुतों को अधिकाधिक संवेदनशील बनाया गया है—

दिन में भी बग़दाद के बाज़ार में
जिसका तसव्वुर भी न कर सकता था हारूँरशीद
बास्ते वैद्युत की कुंर मशीनें कर रही हैं रौशनी और[६०]
मुंकरों का भी चल सकता नहीं है जिस पे ज़ोर

इस प्रकार वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग करने से काव्य के अप्रस्तुत विधान में जहां नवीनता आई वहीं वृद्धि भी हुई। अप्रस्तुतों में नवीनता लाने के मोह के कारण ये अप्रस्तुत मानवीय संवेदनाओं को रूप देने में सफल नहीं हुए। अधिकांशतः कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये एक से एक बढ़कर वैज्ञानिक उपकरणों को उपमान बनाया अतएव कोरी बौद्धिकता हावी होती गयी और अप्रस्तुत विधान उक्ति वैचित्र्य मात्र बनकर रह गया। किन्तु जहां कहीं कवि ने बौद्धिकता और कल्पना का मिश्रण किया है वहां निश्चय ही सफल अप्रस्तुतों की रचना हुई है और वे सजीव हुए हैं—

ओ मेरे बफ़र
तुम्हारी एक छाजन ने मेरे जीवन की
कविता को निरर्थक कर दिया
बीच ज़िन्दगी में मैं एकाएक विधवा हो गया[६१]

वैज्ञानिक युग ने एक यथार्थवादी दृष्टि दी और सामाजिक वातावरण भी यथार्थ का आग्रही हो गया। अतः इस नवीन बोध को सजीव बनाने के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से कवियों ने अप्रस्तुतों को संचित किया। छोटे - से - छोटे दैनिक क्रियाकलाप को भी अप्रस्तुत रूप में अभिव्यक्ति मिली—

अभी ही मिले कुहासे छूट गये
वरना दुनिया भर की दाल तो अब भी है[६२]

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर कवियों ने अप्रस्तुतों के माध्यम से बदलते हुए युग को यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया जिससे अप्रस्तुतों का क्षेत्र निरन्तर विकसित होता गया। साथ ही मानव जीवन के जटिल होने से यह भौतिक वैज्ञानिक उपकरण भी जब अपर्याप्त लगने लगे तो कवियों का ध्यान भावजगत् की ओर गया और असामान्य सन्दर्भों से भी अप्रस्तुत लिये जाने लगे। हिन्दी काव्य जहां सामान्य सन्दर्भों से अप्रस्तुत ग्रहण करता था वहीं असामान्य सन्दर्भ भी उसमें प्रयुक्त होने लगे किन्तु हिन्दी काव्य की अपेक्षा उर्दू काव्य में असामान्य सन्दर्भों से अप्रस्तुत ग्रहण करने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये कवियों ने नये सन्दर्भों से अप्रस्तुत ग्रहण किये मूर्त के लिये मूर्त का उपमान भी प्रयुक्त हुआ—

नौन तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन से
मकड़ी के जाले से कोल्हू के बैल से[६३]

मूर्त के लिये अमूर्त अप्रस्तुतों की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई-

पूछो न मेरे बोल के सन्नाटों की शिकायत
तन्हाई के सहराओं में वीरान खड़ा हूं।[६४]

अभिव्यक्ति में जब मूर्त और अमूर्त अप्रस्तुत भी सहायक नहीं हुए तो विरोधात्मक विशेषताओं से युक्त अप्रस्तुतों की ओर कवियों की रुचि बढ़ी-

ओझल हो गयी

और मेरे लिये यह

धुने न रहने के

रीते न रहने की

बांझ अनुकम्पा समाज की[64]

यद्यपि अप्रस्तुतों का विकास बहुत अधिक हुआ लेकिन उनका कलात्मक सौन्दर्य समाप्त होने लगा, अभिव्यक्ति में भी धुंधलता आने लगी। हिन्दी काव्य की अपेक्षा उर्दू काव्य में अप्रस्तुतों का प्रयोग अधिक सफलतापूर्वक किया गया है। उर्दू कवियों ने एक आधारभूत अप्रस्तुत को लेकर उसके चारों ओर मूर्त सामान्य विशेष अमूर्त अप्रस्तुतों का जाल बना दिया है—

हम कि रमज़ मोहब्बत की तकसीम थे

मुन्करिम हो गये

बूढ़ी एकदार के

काले बाजार में

छन्सि बोकर अव्वली बिक गयी[65]

अपनी इस विशेषता के कारण उर्दू के अप्रस्तुत अधिक सरल और सजीव हो गये हैं।

(ख) <u>प्रतीक योजना :</u>

प्रतीक विधान काव्य का पारम्परिक उपादान है। प्रत्येक युग में नवीन भाव बोध की अभिव्यक्ति के लिये पिटी पिटी शैली संस्कारों का त्याग किया जाता रहा है और उसके स्थान पर नवीन प्रतीकों का निर्माण होता है। अतएव प्रतीक की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। प्रतीक की अर्थवत्ता उसके प्रयोग पर निर्भर करती है। प्रयोग के आधार पर कोई भी अप्रस्तुत, रूपक, बिम्ब, संकेत तथा चिन्ह प्रतीक का रूप धारण कर सकता है।

डा० सुधीन्द्र ने "प्रतीक को अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार माना है।[६७]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीक के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है— किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और विभूति की भावना चट मन में आ जाती है उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जागृत कर देती हैं, जैसे कमल पुष्प सौन्दर्य भावना जागृत करता है, कुमुदनी शुभ्र हास की, चन्द्र मृदुल आभा की, समुद्र विस्तार और गम्भीरता की, आकाश सूक्ष्मता और अनन्तता की, उसी प्रकार सर्प से क्रूरता और कुटिलता का, अग्नि से तेज और क्रोध का, [illegible] से [illegible] का, चातक से निःस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है।[६८] किन्तु यह विचारणीय तथ्य है कि प्रतीक संकेत होते हुए भी उसके समानार्थी नहीं क्योंकि संकेत रूढ़ हो जाते हैं किन्तु प्रतीक अपनी लाक्षणिकता और व्यंजना शक्ति के आधार पर मानव के मनोभावों का विकास करते हैं। मूल रूप से प्रतीक का सम्बन्ध मन से रहता है मनुष्य अपनी अनुभूतियों को प्रतीकों में ही बांधता है—

> मनुष्य प्रतीकों के घन कुंज में होकर चलता है
> प्रतीकों के घन कुंज
> जो अपरिचित भी हैं और गम्भीर भी
> फिर भी आंखों में परिचय की आभा लिये
> जो मनुष्य के पीछे - पीछे चलते हैं[६९]

मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है। किसी भी समाज की भाषा, संस्कृति, कला, धर्म सभी कुछ प्रतीकों के ताने बाने पर आधारित होते हैं। अतः प्रतीक को मानव अभिव्यक्ति का माध्यम कहा जा सकता है। हर भाषा के साहित्य में प्रतीकों को भरपूर अभिव्यक्ति दी गयी है और यह किसी न किसी रूप में मानव के मन मस्तिष्क को प्रभावित करते रहे हैं।

हिन्दी की अपेक्षा उर्दू काव्य ने प्रतीकों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम

अधिक बनाया है। एक प्रकार से उर्दू काव्य का आधार ही प्रतीक विधान है, बिम्बों की तुलना में उर्दू कवियों ने प्रतीकों को अधिक महत्व दिया। इस सन्दर्भ में उर्दू में परम्परागत प्रतीक जैसे गुल, बुलबुल, शमा, परवाना का प्रयोग तो किया है साथ ही नये परिवेश के अनुसार नये प्रतीक भी निर्मित किये हैं। हिन्दी कविता भी सन् १९५० ई० के पूर्व तक प्रतीकों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती रही है किन्तु अकवितावादियों ने प्रतीकों के नाम पर जिस फूहड़पन और खिलवाड़ का प्रदर्शन किया उसको देखते हुए हिन्दी काव्य की दिशा बिम्बों को लेकर आगे बढ़ी और उसकी स्थिति यथार्थोन्मुख होने के कारण सपाट बयानी तक आ गयी। उर्दू काव्य में हिन्दी जैसी सपाट बयानी नहीं आ पायी क्योंकि उन्होंने अभी तक प्रतीकों को अपना आधार बना रखा है।

छायावादी काव्य में प्रतीकों का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है "कामायनी" का आधार ही प्रतीक है। यह एक प्रकार से प्रतीकात्मक रचना है। इसमें बुद्धि, मन, सुख सभी के प्रतीक आये हैं। इस युग के प्रायः सभी प्रतीक भावात्मक हैं क्योंकि छायावादी कवियों की प्रवृत्ति प्रायः अन्तर्मुखी रही है। इस कारण बाह्य स्थूलता का चित्रण न होकर सूक्ष्मता का चित्रण हुआ है। प्रकृति चित्रण छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रकृति ही के बीच कवि ने अपनी शोभा और भावनाओं को देखा और अनुभव किया है। प्रकृति एक प्रकार से छायावादी कवि के वैयक्तिक जीवन का प्रतीक बन गयी। निःसन्देह इस काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। किन्तु प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता का आभास जैसा कि संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है कम मिलता है। यहाँ उसका आलम्बन रूप में प्रयोग भी बहुत कम मिलता है। प्रकृति में सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया है जिससे प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व में कमी आ गई और उसमें प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति बढ़ती ही गयी। उदाहरण के लिये फूल सुख के अर्थ में, काँटे दुःख के अर्थ में, प्रभात प्रफुल्लता के अर्थ में रजनी दुःख और उदासी के अर्थ में झकोर और गर्जन मानसिक द्वन्द्व के अर्थ में, लहरें भावनाओं के अर्थ में प्रयुक्त हुए। आध्यात्मिक एवं दार्शनिक

का प्रतीक भी कवियों ने प्रकृति को बनाया ।

ज्यों - ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विलास
हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वर जीवन नौका विहार[७०]

छायावादी कवियों ने ऐसे प्रतीकों को अपनाया जिनका साम्य निराशा, असफलता से है। इस सन्दर्भ में उन्हें दीप, शलभ, मोती, सीप, घन, शूल, अन्धकार जैसे प्रतीक अधिक प्रिय हैं—

सांस में उसकी गरल था
शूल फूल समीप
ज्वाल का मोती संजोते
मोम की यह सीप
सृजन के शत दीप थामें प्रलय दीपाधार[७१]

छायावादी कवियों ने सौन्दर्य जैसी अमूर्त चेतना को ऐन्द्रिय संवेदनाओं का स्पर्श करके सजीव बनाया है—

आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता सा
नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस घन से छा जाती हो
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का

गोधूली की सी ममता हो
जागरण प्रात सा हंसता हो
जिसमें मध्यान्ह निखरता हो[७२]

छायावादी कवियों ने यद्यपि स्थूल आधार पर निर्मित मूर्त प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है किन्तु कुछ सूक्ष्म वैचारिक प्रतीक भी मिलते हैं। कामायनी में मनु, श्रद्धा, इड़ा, मानव, लज्जा, काम आदि अपने प्रतीकात्मक अस्तित्व के कारण विशिष्ट हैं। इड़ा के सौन्दर्य वर्णन में विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग करके कवि ने उसके नारी रूप और प्रतीकात्मक रूप दोनों को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है-

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
— — — —
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा-जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल[७३]

इस प्रकार श्रद्धा को -

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया उन्मुक्त
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त[७४]

के रूप में चित्रित करने का मूल उद्देश्य प्रतिकार्थ की व्यंजना ही है। छायावादी कवियों ने कुछ ऐसे व्यंजनात्मक प्रतीक प्रयुक्त किये हैं जो रहस्यात्मक सत्ता की ओर संकेत करते हैं। ऐसे प्रतीकों की रचना में इन कवियों की कल्पना शीलता का हाथ है-

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय समीर
— — —

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक-कल-कूजन तान[७५]
— — —

मैं ऊर्म्मि विरल, तू तुंग अचल वह सिन्धु अतल
बाँधे दोनों को मैं चल - चल
धो रहि द्वैत के सौ कल्मष[७६]

यहाँ ब्रह्म, माया, जीव को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। प्रतीकों के माध्यम से शृंगारिक चेष्टाओं को मर्यादित एवं अमांसल रूप में अभिव्यक्ति दी गयी है—

खिलते द्रुम दल कल किसलय
देती गलबाँहीं डाली
फूलों का चुंबन, छिड़ती
मधुपों की तान निराली[७७]

छायावादी काव्य में कवियों ने कहीं - कहीं अपनी कोमल भावना के प्रतिकूल विध्वंसात्मक विराट प्रतीकों की सृष्टि भी की है। `कामायनी` के `चिन्ता-सर्ग` में प्रसाद ने तथा `परिवर्तन` कविता में पंत ने विराट प्रतीकों की सृष्टि की है किन्तु निराला अपने व्यक्तित्व की विराट चेतना के कारण ऐसे प्रतीकों की रचना में अधिक सफल रहे हैं—

है अमा-निशा उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न केवल जलती मशाल[७८]

राष्ट्रीय जागरण और उद्बोधन के लिये भी कवियों ने प्रकृति से प्रतीक लिये। भारतभूमि की गौरव प्रतिष्ठा और समष्टि वेदना को अभिव्यक्ति देने के लिये पौराणिक प्रतीक राम,कृष्ण, शंकर को लिया गया। इसी प्रकार राणाप्रताप के ऐतिहासिक प्रतीक के माध्यम से कवियों ने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति दी। राष्ट्रीय काव्यधारा का श्रेष्ठ प्रतीक राष्ट्रध्वज बना। उत्तर छायावाद और प्रगतिवादी काव्यधारा में शिल्प कला के अन्य अंगों के समान प्रतीक विधान भी प्राणहीन रहा क्योंकि प्रगतिवादी कवि अनुभूति कला के प्रति उदास थे इसी कारण उनके प्रतीक बहिर्मुखी है। वैसे भी संघर्ष कालीन कवि को क्रांति की भावना या कलात्मकता में से एक ही को चुनना होता है,इसलिए क्रांतिभावना की रक्षा के लिये इन कवियों को कला का बलिदान देना पड़ा क्योंकि इसके बिना जन सामान्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। इसी लिये छायावादी संस्कृत पदावली संगीतात्मकता और लाक्षणिकता के विरुद्ध विद्रोह स्वाभाविक था। उनके काव्य में उपयोगितावाद का प्राधान्य था—

> खुल गये छन्द के बन्ध प्रास के रजतपाश
> अब गीत मुक्त और युगवाणी बहती अयास
> बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप नाम
> जीवन संघर्षण देता सुख लगता ललाम
> सुन्दर शिव सत्य कला के कल्पित मापमान
> बन गये स्थूल जग जीवन से हो एक प्राण
> मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर [७६]
> करता अपूर्ण को पूर्ण असुन्दर को सुन्दर

इस प्रकार सामाजिक दृष्टिकोण प्रधान होने के कारण सभी प्रतीक जीवन और जगत से लिये गये हंसिया हथौड़ा और कुदाल काव्य प्रतीक बने मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण मार्क्स और लेनिन को भी प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया—

इस नवीन भावबोध से निराला जैसे छायावादी भाव संस्कार के कवि की दृष्टि भी परिवर्तित हुई—गुलाब को उन्होंने शोषक वर्ग के प्रतीक रूप में चित्रित किया—

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत पाई गर खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपटलिस्ट[८१]

महायुद्धों के पश्चात् न केवल यूरोप में वरन् सारे संसार में सांस्कृतिक संक्रमण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इन युद्धों ने मानव की समस्त पुरातन आस्थाओं को छिन्न - भिन्न कर दिया और एक ऐसे " अन्धेयुग " को जन्म दिया जहां सब कुछ विकृत था—

युद्धोपरान्त
जो अन्धायुग
जिसमें स्थितियां मनोवृत्तियां
आत्माएं सब विकृत[८२]

इस प्रकार मूल्य विघटन की स्थिति ने काव्य में महान् परिवर्तन किये। कवियों ने परिवर्तित परिवेश को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया। इस परिवर्तित युग में भी पुरानी आस्थायें और रूढ़ियां एवं मान्यतायें किसी न किसी रूप में उपस्थित थी जिन्हें प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया—

धरा पर गंध कैसी है
हवा में सांस भरी है
महक उस गंध की है
जो सड़ाती है मानवों को बन्द जेल में[८३]

घिसी पिटी पुरानी मान्यताओं को बन्द जेल में सड़ते मानवों के प्रतीक रूप में

के रूप में ग्रहण किया । आवाज़ को सच्चाई और जीवन की सार्थकता का प्रतीक माना—

हमारी ज़ीस्त की लौ जब तक मचलती है
हमारा जेहन है जब तक मानी का मस्कन
हमारी रूह में जब तक है ज़ौक़े शोला फ़िगन
उतारते रहेंगे रग-रग में खामोशी
नफ़स-नफ़स में अंधेरों का ख़ून क़ैद करें
यह ज़हर और ख़ून पी लिया तो मगर फिर
कोई न पायेगा सहराये दश्त व जुल्मत में[84]

इस प्रकार उर्दू काव्य में उजाला, अंधेरा, आग, पहाड़, पत्थर, जंगल, प्याला, परछाईं, फ़ानी, टापू, चेहरा, धूप, छांव, रेत, नदी, सूरज, समुद्र, खण्डहर आदि प्रतीकों के माध्यम से समसामयिक जीवन की विसंगतियों की व्यंजना की-

यह बर्फ़ की धूप हर उफ़र पर
रह जायें न कोंपलें ठिठुर कर[85]

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में नई - नई समस्याएं उठने लगीं । पुराने मूल्यों के बिखरने का एहसास तीव्रता से सताने लगा-

दूर बरगद की घनी छांव में ख़ामोश व मलूल

—— —— ——

एक वीरान सी मस्जिद का शिकस्ता सा कलश
पास बहती हुई नदी को तका करता है
और टूटी हुई दीवार पे चन्डूल कोई
मरसिया अज़मते रफ़ता का पढ़ा करता है[86]

मख़मूर सईदी ने पुराने मूल्यों के बिखराव को शिकस्त मन्दिर के प्रतीक रूप में लिया-

देवताओं का उजड़ा हुआ मस्कन जिसके
ताक व मेहराब व दर व बाम शिकस्ता होकर
सूरतें क़ाए बशरियत का पता देते हैं
नुकरई धुंध में लिपटा हुआ यूं लगता है
कोई गुमगश्ता जहां हो जैसे [८७]

उर्दू कवियों ने मूल्यों के विघटन को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया । हिन्दी काव्य में भी विघटन को तीव्रता से अनुभव किया गया किन्तु उर्दू जैसे प्रतीकों की विविधता यहां नहीं मिलती -

रुकी तपी हुई जलती दोपहर के बाद
यह धूल भरी आंधी
सब कुछ पर रेत पनी मन तक ज्यों किरकिरा रहा है [८८]

इन पुरातन मान्यताओं और रूढ़ियों और रूढ़ियों ने जीवन के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया है इसलिये स्वातन्त्र्योत्तर कवि नयी चेतना और आत्मविश्वास संचारित करना चाहता है-

अब उठो कन्धे मिलाकर
फिर नया जीवन बसाओ
गल चुके सब शीत के उत्तुंग भू पर
फिर नयी यात्रा करो आरम्भ अब
शिशिरान्त भी नज़दीक है [८९]

जैसे जैसे बौद्धिकता और विज्ञान का प्रसार हुआ महानगर बने और संस्कृति सिमट कर महानगरों में आ गई तो भौतिकता की अंधी दौड़ शुरू हो गई । इन नयी स्थितियों को चित्रित करने के लिये कवियों को नये प्रतीकों का निर्माण करना पड़ा । युगानुरूप इन प्रतीकों पर यांत्रिक युग का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है-

सूरज की धूप पी के सब इन्सान मर गये
हरसिम्त रेत कार समुन्दर दिखाई दे[६०]

जीवन में यांत्रिकता का प्रभाव इतना बढ़ा कि मानव विद्युत का गुलाम बन गया। इस स्थिति को अनीक इन्कुरी ने ट्रैफिक सिग्नल के प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त किया—

जीवन के हर चौराहे पर
यह लाल यह नारंगी यह हरे
जुगनू आंखें चमकाते हैं------
रूकना चाहो तो कहे ------ बढ़ो
बढ़ना चाहो तो कहे ------ रूको[६१]

यांत्रिकता का प्रभाव जीवन पर बढ़ने से भौतिक उपकरणों की प्राप्ति के लिये जो होड़ पैदा हुई उसने मानवीयता की परिभाषा बदल दी। इस अमानवीयता के लिये सांप का प्रतीक ग्रहण किया गया—

सांप
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं ( उत्तर दोगे ? )
तब कैसे सीखा डसना
विष कहां पाया-[६२]

काम भावना की अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी कवियों ने नये - नये प्रतीक ढूंढे स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में यौन प्रतीक काव्यादर्श बन गया और उपमान से लेकर बिम्ब विधान तक के विकास का उपादान बना।

दो अंगुरियां
भरी लाल गुलाब की तकती प्याली
पिया के ऊपर झुके उस फूल को
बाँठ ज्यों ओठों तले [63]

प्रकृतिपरक होकर भी इनका मूल स्वर काम सम्बन्धी है। इसीलिये इन प्रतीकों में यौन व्यापार का चित्र प्रस्फुटित है। भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में भी ऐसे प्रतीकों की प्रचुरता है—

विकल बिखरी बांह के भुजपाश में
बांध बिजली को कहा यों मेघ ने
खोल दो यह नीर
मुझको मुक्ति दो
समा जाओ प्राण के आकाश में [64]

प्रकृति वर्णन के सन्दर्भ में अनायास ही सभी कवि ऐसे प्रतीकों के प्रयोग की ओर बढ़ने लगे—

पूर्णमासी रात भर
पीती रही सुधा
अंक में शशी के सिमटकर
चमेली रही श्यामल बदन
चुप चुप निखार
दिन सरीखी श्वेत चादर ढांक [65]

इन प्रतीकों के द्वारा कवियों की मानसिक कुंठा, घुटन और वासनागत उलझी संवेदना चमत्कारिक कलात्मक रूप में मुखरित हुई। चमत्कार प्रदर्शन की भावना से कवियों ने ऐसे प्रतीकों की रचना की जिनका साधारणीकरण कठिन था। ऐसे प्रयोगों से काव्य असंप्रेषणीय बन गया।

नये प्रतीकों के निर्माण में उर्दू कवि अधिक सजग हैं। उन्होंने प्रतीकों को जीवन की विसंगतियों से जोड़ने का प्रयास किया-

दो सख्त खुश्क रोटियां कब से लिये हुए
पानी के इन्तेज़ार में बैठा हुआ हूं मैं [96]

डिग्रियां लेकर घूमते हुए नवयुवकों की स्थिति को उपरोक्त प्रतीक द्वारा भलीभांति स्पष्ट किया गया है। नये प्रतीकों के निर्माण में अज्ञेय बहुत सक्रिय रहे। ' बावरा अहेरी ' ऐसा ही नया प्रतीक है। अज्ञेय को बूंद, सागर और मछली के प्रतीक भी प्रिय रहे जिनका प्रयोग आध्यात्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये बूंद और जिजीविषा से संघर्ष करते मानव के लिये अज्ञेय ने मछली का प्रतीक लिया है-

अर्थ हमारा
जितना है सागर में नहीं
हमारी मछली में है
सभी दिशाओं में सागर जिसको घेर रहा है
हम उसी नहीं
वह हमें टेर रहा है। [97]

इसी प्रकार शोषण की बढ़ती मनोवृत्ति ने जीवन में निराशा की स्थिति उत्पन्न की है। इसी सन्दर्भ में ' भारती ' का ' ठण्डा लोहा ' का प्रतीक उल्लेखनीय है-

मेरे और तुम्हारे भोले निश्छल विश्वासों को
आज कौन कुचलने बढ़ा है ठण्डा लोहा
फूलों से सपनों से आंसू और प्यार से कौन बढ़ा है ठण्डा लोहा [98]

उर्दू काव्य के समान हिन्दी कवियों ने अंधकार को पुरानी रूढ़ मान्यताओं और ज्योति को नवचेतना के लिये प्रतीक रूप में ग्रहण किया-

लो फैल चली आलोक रेख
धुल गया तिमिर बह गयी निशा चहुं ओर देख
धुल रही विभा विमलाभ कान्ति
अब दिशा - दिशा
सस्मित
विस्मित
खुल गये द्वार हंस रही उषा [99]

हिन्दी काव्य में " दीप " का प्रतीक भी बहुत से कवियों ने लिया है। उर्दू में यह प्रतीक कम प्रयुक्त हुआ किन्तु हिन्दी काव्य में " दीप " [100] कहीं नव चेतना के लिये प्रतीक बना तो कहीं मानव अस्तित्व का प्रतीक बना-

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता
इसको भी पंक्ति को दे दो [101]

जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्ति देने में मुक्तिबोध के प्रतीक अत्यन्त सफल हुए हैं। कवि मन की पीड़ा और सृजनात्मक क्षमता से मिल कर जो प्रतीक बने वे युग की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है-

हरिजन गलियों में
लटकी है पेड़ पर
कुहासे के भूतों की सांवली चूनरी
चूनरी में अटकी है कंजी आंख गंजे सिर
टेढ़े मुंह चांद की [102]

इस प्रकार विभिन्न प्रतीकों का निर्माण करके कवियों ने युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति दी। उर्दू कवियों ने नये प्रतीक भी बनाये और परम्परागत प्रतीकों को भी ग्रहण किया—

तभी से जहां के सफ़्हों में
अब किस्सए शाही ख़त्म हुआ
चिड़ियों का फ़साना आया है[103]

यहां चिड़िया सामान्यजन का प्रतीक है और शाहीं वर्ग का हिन्दी में भी तोता, गिद्ध, शारिक, तेंदुआ आदि के प्रतीक ग्रहण किये गये हैं।

समाज में नैतिक मूल्यों के विघटित हो जाने से जो विसंगतियां पैदा हो रही हैं उन्हें नयी कविता ने तीव्रता से अनुभव किया। निरन्तर इस स्थिति से गुजरते रहने के कारण मन में कुण्ठा आना स्वाभाविक है। इसीलिये नयी कविता ने स्वयं को पौराणिक प्रतीकों से जोड़ा। वैसे भी देवमालाएं और पौराणिक चरित्र हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। बेकारी के दौर से गुजरते युवक की मनःस्थिति निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है—

अहदे स्पूतनिक के शहरी रामहुन का एक बंजारा
दोश पर असनाद और कुतुबखानों का भारी पुश्तारा
नगरी-नगरी सहरा-सहरा मारा-मारा फिरता है
उसको भी बनवास मिला है बारह न चौदह
उम्र तमाम की कुन्हा कंद के बोझ से जख्मी चूर निढाल[104]

शिव के प्रतीक को जीवन की विसंगतियों को झेल जाने का उत्साह देता है—

पीकर क्यों न बन जाऊं नीलकण्ठ
उगल रहा है ग़मे आगही का जो ज़हर[105]

उर्दू कवियों ने राम कथा के चरित्रों को सुन्दर अभिव्यक्ति दी। सीता के चरित्र को जीवन को समकालीन जीवन की विडम्बना के लिये प्रयुक्त किया गया[106]। इसी प्रकार महाभारत के चरित्र भी काव्य प्रतीक बने—

मेरी कुण्ठा
रेशम के कीड़े से ताने बाने बुनती
स्वर से शब्दों से भावों से
और वाणी से कहती सुनती
तड़प तड़प कर बाहर आने को सिर धुनती
गर्भवती है-
मेरी कुण्ठा क्वांरी कुंती ?
बाहर आने दूं तो लोक लाज मर्यादा
भीतर रहने दूं तो घुटन[१०७]

वर्तमान जीवन में भौतिकता को अधिक महत्व देने से व्यक्ति की नैतिकता का पतन हुआ है क्योंकि व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे समाज की चिन्ता किसी को नहीं है । इस यथार्थ को कवियों ने विभिन्न प्रतीकों में बांध कर प्रस्तुत किया-

यहां तो
द्रोणाचार्यों के वंशजों ने
लोभ के कमण्डल में
एकलव्यों के अंगूठे भर लिए हैं
भीख मांगता है कर्ण उसी के द्वार
जो उसके सोने के दातों को
विदेशों में बेच आया है[१०८]

नैतिक पतन का सबसे अधिक शिकार स्त्री बनी है । स्त्री सतीत्व खेल बन गया है । सीता और द्रौपदी के माध्यम से इस स्थिति को कवियों ने सजीव बनाया है-

गरीब सीता के घर पर कब तक रहेंगी रावन की कुमन रानियां
द्रौपदी का लिबास उसके बदन से कब तक छिना करेगा[१०९]

इन प्रतीकों के साथ उर्दू काव्य में यूसुफ, जुलेखा, खीज़ शिम्र के प्रतीक भी लिए

गये हैं। किन्तु हिन्दी में यह प्रतीक नहीं मिलते क्योंकि यह विदेशी प्रतीक है। जो फारसी - अरबी परम्परा से उर्दू ने ग्रहण किया है—

उनकी नज़रों में जुलेखा की मुहब्बत कुछ नहीं
उनके बाजारों में कुछ यूसुफ की कीमत कुछ नहीं [110]

किन्तु लम्बे समय तक मुसलमानों के साथ - साथ रहते हुए हुसैन, यजीद जैसे नाम नाम संवेद्य हो चुके हैं—

दोनों को प्यासा मार रखा है कोई यज़ीद
यह ज़िन्दगी हुसैन है और मैं फ़रात हूं [111]

मानवीय जीवन की भाग दौड़ और यातनाओं को सहते मानव की स्थिति के लिये हिन्दी उर्दू दोनों काव्यों ने ईसा मसीह के चरित्र को प्रतीक बनाया—

दफ़्तर में वक्त पर पहुंचने दो
नहीं तो फिर रजिस्टर पर लग जायेगा
लाल क्रास का निशान
मजबूर सलीब है आज का हर इन्सान [112]

अज्ञेय की " मैं तुम्हारा प्रतिभू हूं " में भी सलीब का प्रतीक है। वहीद अख्तर ने भी जीवन की यातनाओं के लिये " सलीब " का प्रतीक ग्रहण किया है—

बहुत ज़माने से दश्त खामोशी में हम
यह देखते हैं ज़मीं की कुंवारी मां हर रोज़
किसी सलीब पे लटकी सदा की लाश लिये
कफ़न का कर्ब लिये बांझ में सिसकती है [113]

इस प्रकार पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक जीवन की विसंगतियां, व्यक्तिगत स्थितियों, नैतिक पतन और युगीन जटिलताओं यांत्रिक भौतिक सभ्यता

को इन प्रतीकों के माध्यम से उभारा है किन्तु यथार्थ चित्रण और नवीनता के आग्रह ने प्रतीकों का क्षेत्र विकसित किया और कवि देश की सीमाओं को लांघ कर विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों को भी प्रतीक बनाने लगे-

ओ तुम
एक अजगर की तरह लिपटे हुए
हिटलर तैमूर यथवा बीरो मुसोलिनी
तुम्हारे न जाने क्या-क्या नाम हैं [१२४]

इस प्रकार के चरित्रों को प्रतीक बनाना कवि की अंतराष्ट्रीय दृष्टि के प्रतीक हैं।

(ख) बिम्ब योजना ?

आधुनिक हिन्दी काव्य में बिम्ब विधान को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राचीन भारतीय काव्य में बिम्ब के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं किन्तु इसके कलात्मक स्वरूप की पहचान पाश्चात्य विद्वानों ने कराई और यह सिद्ध किया कि यदि कविता अपने को अधिक जीवन्त रूप देना चाहती है तो बिम्बों की अवहेलना नहीं कर सकती। केदारनाथ सिंह के अनुसार " बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानस अभिव्यक्ति का अस्तित्व ही असम्भव है।[१२५] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " जो मूर्तवस्तु प्रतिबिम्ब या छाया फेंकती है शास्त्रीय भाषा में वही बिम्ब कहलाती है।[१२६] एक प्रकार से बिम्ब काव्य की वह शक्ति है जो पाठक के मानस में काव्यगत भाव का प्रतिबिम्बात्मक रूप प्रस्तुत करता है। हिन्दी साहित्य में बिम्ब का मूल्यांकन सर्वप्रथम छायावाद युग में हुआ। छायावाद ने बिम्बों के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। छायावाद तक यह अलंकारिक रूप में काव्य में प्रयुक्त होता था किन्तु छायावादी काव्य में अलंकारों के स्थान पर बिम्बों की प्रतिष्ठा हुई। ऐन्द्रियता से सम्बद्ध संश्लिष्ट एवं सरल बिम्बों की रचना इस युग में हुई।

छायावादी काव्य बिम्ब का मुख्य आधार नारी है। कल्पना के प्रति विशेष मोह होने के कारण कल्पना रचित बिम्बों की अधिकता है। मूर्त विषयों को भी कवियों ने अपनी कल्पना से कल्पनात्मक समृद्ध बिम्ब बना दिया है-

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग

— — — —

अरुण शिशु के मुख पर सविलास सुनहली लट घुंघराली कांत

कौन मद मधु धारा सी तरल, विश्व में बहती हो किस ओर ?[197]

सुदिनमणि वलय विभूषित उषा सुन्दरी के कर का संकेत

नेत्रों की मादकता और कांति को तीव्रतर बनाने के लिये कवि अत्यन्त समृद्ध एवं संश्लिष्ट बिम्ब की रचना करता है—

काली आंखों में कितनी

यौवन के मद की लाली

मानिक मदिरा से भर दी

किसने नीलम की प्याली[198]

श्रद्धा के अधरों की रक्तिमता और कोमलता को पूर्ण रूप से अभिव्यंजित करने के लिये सुन्दर बिम्ब का विधान दर्शनीय है—

और उस मुख पर वह मुस्क्यान

रक्त किसलय पर ले विश्राम

अरुण की एक किरण अम्लान

अधिक अलसाई हो अभिराम[199]

महादेवी वर्मा ने जुगनू और तारों से युक्त जगमगाती रात के प्रभाव को अधिक मूर्त बनाने के लिये मकोने दुकूल से लिपटी रूप सी का बिम्ब ग्रहण किया है—

सौरभ भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंचल सा दुकूल
चल अंचल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास
रूपसि तेरा घन केश पाश[120]

पंत की कविता " नौका विहार " में सुन्दर बिम्बों की योजना की गयी है। वास्तव में पूरी कविता का सौन्दर्य उसके बिम्ब ही हैं—

मृदु मंद मंद मंथर मंथर लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर
— — —
मां के उर पर शिशु सा समीप
सोया धारा में एक द्वीप[121]

इस बिम्ब से नदी में तैरती नौका का पूरा चित्र मूर्त हो उठता है। सौन्दर्य चेतना जैसे अमूर्त भाव को अभिव्यक्ति देने के लिये छायावादी कवियों ने अनेक सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं—

नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस घन से छा जाती हो
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की सी ममता हो
जागरण प्रात सा हंसता हो[122]
जिसमें मध्यान्ह निखरता हो

श्रद्धा में उभरते लज्जा भाव को प्रसाद ने अनेक सूक्ष्म बिम्बों के द्वारा दर्शाया है।[123]

कहीं कहीं काव्य के ध्वन्यात्मक सौन्दर्य के माध्यम से सुन्दर बिम्बों की रचना की है—

नव इन्द्र धनुष सा चीर
महावर अंजन ले
अलि गुंजित मीलित पंकज
नूपुर रुनझुन ले[१२४]

— — —

द्रुम समीर-कम्पित थर-थर-थर
झरतीं धाराएं झर झर झर
जगती के प्राणों में स्मरशर
बेध गये, कसके[१२५]

इस प्रकार बिम्बों के माध्यम से छायावाद ने जिस आदर्श की स्थापना की उसके बाद के कवियों ने उसे खण्डित कर वैयक्तिक सुख दुःख को काव्य का माध्यम बनाया। प्रेम और प्रिया जैसे अमूर्त कल्पनात्मक विषयों को ठोस आकार दिया। काव्य भाषा, जन-भाषा के निकट पहुंच गयी। इस लिये सौन्दर्य का स्थान पीड़ित मानव और जीवन के असुन्दर तत्वों ने ले लिया। इस काल के कवियों में राष्ट्रीय चेतना व्यक्तिगत सुख- दुःख वर्तमान जीवन के अभावों और असन्तोष की सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। युगीन जटिलता निराशा और जीवन की असफलता से बचने के लिये इस युग के कवियों ने आत्म प्रशंसा, रोमांच, राष्ट्रीय-चेतना और मधुकाव्यों का सहारा लिया-

पिंजर मुक्ति मिलेगी
जब तुम निश्चल शांत सौम्य होकर
लेकर बाहर आसन
अंतरिक्ष नापोगे नयनों से[१२६]

— — —

थी । यह सारी स्थितियां प्रयोगवादी साहित्य में प्रखर रूप से अभिव्यक्त की गयी हैं । इस युग के कवियों में अनास्था, आशंका और दुविधा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है । किसी ठोस भावभूमि के अभाव में जब कवियों को मानसिक द्वन्द्व से मुक्ति का कोई आधार न मिला तो आत्मशक्ति का संचय कर मानसिक घुटन पर विजय पाई और जब वहां भी मुक्ति नहीं मिली तो यौन भावनाओं को मानसिक तुष्टि का साधन बनाया गया । १९५० ई० के बाद काव्य में आतुरता की भावना कम हुई किन्तु स्वतन्त्रता के बाद अन्य समस्याओं से सामना करना पड़ा । इसी लिये नयी कविता में आस्था और अनास्था दोनों के स्वर पाये जाते हैं । वर्तमान पर आक्रोश होते हुए भी नवयुग के प्रति आशा का भाव है । निरन्तर संघर्ष में रहते हुए बिखरते मानव को एक ठोस आधार देकर उबारने के लिये आज कवि व्याकुल दिखाई देता है ।

प्रयोगवाद और नयी कविता का युग बिम्ब बहुलता का युग है । इस युग के बिम्ब कवि के नये भावबोध का परिचय देते हैं । क्योंकि बिम्बों के माध्यम से जहां निराशामय और आशंका का संकेत मिलता है वहीं जीने की आतुरता और आशा का संकेत भी मिलता है । तत्कालीन विडम्बना युक्त परिवेश की विसंगतियों को माध्यम बनाकर एक व्यापक जन क्रान्ति का आह्वान आवश्यक हो गया ।

वह पागल स्त्री सोती है
मैली दरिद्र स्त्री अस्त व्यस्त
उसके बिखरे हैं स्तन है लटका सा
अनगिनत वासना ग्रस्तों का मन अटका था
उनमें जो उच्छृंखल था विशृंखल भी था
उसने काले पल में इस स्त्री को गर्भ दिया
शोषित व व्यभिचारिता आत्मा की पुत्र हुआ
स्तन मुंह में डाल बड़ा बालक उसकी परछाई
अब तक लेटी है पास उसी की परछाईं
आधुनिक सभ्यता संकट की प्रतीक रेखा[१३०]

काव्य में बिम्बों के माध्यम से यथार्थ चित्रण को अभिव्यक्ति मिली । हिन्दी काव्य के समान उर्दू काव्य में भी इस प्रकार के संश्लिष्ट बिम्बों द्वारा समकालिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई-

एक बजा घड़ियाल में पहरेदार की सीटी
दोश हवा पर बैठ के लम्बी सैर को निकली
आंखें मलीं बच्चों ने कोई शायर चौंका
एक फ़क़ीर को चोर समझ के कुत्ता भौंका
माँ के कलेजे से लिपटा एक नन्हा बच्चा
किसी भयानक ख्वाब को देख के चोर से चीखा
दीवारों को तोड़ के सन्नाटे दर आये
जाने कुछ दो आंखों में आंसू भर आये[131]

संश्लिष्ट बिम्ब अपनी सूक्ष्मता और लाक्षणिकता के कारण जन सामान्य के लिये संवेदनीय नहिं थे अतः काव्य में इकहरे बिम्बों का प्रयोग होने लगा । सीधे और सरल बिम्ब सामाजिक यथार्थ को अधिक संवेदनीय बनाने की शक्ति रखते थे अतः ऐसे बिम्बों की ओर कवियों का रुझान बढ़ा-

गठरी है सिर पर
कन्धे पर बालक
फटे हुए अंगौछे से बंधी हुई
बच्ची है बंधी हुई पीठ पर
बोझ है कई मन[132]

सादे बिम्बों द्वारा भूखे व्यक्ति का चित्र सहज ही संभव है-

स्टेशन पर सन्नाटा है
रेलें आकर चली गयी है
( और शराबे साथ ही लेकर )

कुछ काट रहे हैं
कुछ रहे हैं काट रहे हैं
और से सब कुछ देख रहा है
एक फ़कीर[133]

आज मानवीय सम्बन्धों में जिस प्रकार परिवर्तन आया है और अमानवीयता, क्रूरता बढ़ती जा रही है उसे कवियों ने सरल बिम्बों में बांध कर चित्रित किया है-

आदमी के प्यार पर विश्वास कर
एक लावारिस कुत्ता
एक घर की देहरी से बंधा रहा
और कल शीत में ठिठुर कर मर गया[134]

काम भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति से बिम्ब लिये गये और रूप, रस, गंध की ऐन्द्रिय संवेदना इन बिम्बों की विशेषता है-

तुम्हारा देह
मुझको कनक चम्पे की कली
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देता है[135]

— — —

तुम्हारी सुधि आते ही पहुंची
ऐसी ठण्डक इन प्राणों में
ज्यों सुबह ओस भीगे खेतों से आती है
मीठी हरियाली सुरभ मन्द झकोरों में[136]

नयी कविता में यांत्रिक युग से प्रभावित कुछ बिम्ब भी हैं जिनमें औद्योगिक जीवन की संस्कृति का चित्रण हुआ है-

इंजन की हेड लाइट सा शोरगुल के बीच
सूरज निकल गया ।
गाउं की रोशनी सा पीछे गुम सुम अब
शुक्र तारा आ रहा[137]

महानगरीय संस्कृति ने मानव को उसकी पहचानों से निकाल कर उसे जिस स्थिति में पहुंचाया है जहां की भीड़ में वह मात्र एक नम्बर रह गया है-

रोड नं० हाउस नं० फाइल नं० मेरा नाम
कागजों का पेट भरना मेरा काम
सैकड़ों आकाओं के कदमों में है मेरा मुकाम
मैं गुलाम[138]

हिन्दी काव्य ने भी जीवन की भाग दौड़ से परेशान व्यक्ति का चित्र खींचा है-

और तब धीरे - धीरे ज्ञान हुआ
मूड़ से मैं सिर औड़ आया हूं दफ्तर में
हाथ बस में ही टंगे रह गये
आंखें फंसकर फाइलों में उलझ गईं
मुंह टेलीफोन से चिपका पड़ा होगा
और पैर तो न जाने क्यू में रह गये होंगे ।[139]

इस प्रकार कवियों ने सामाजिक,राजनैतिक, वैयक्तिक जीवन की विषमताओं को बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी । इस सन्दर्भ में कवियों ने अपनी संवेदना को विश्व स्तर पर भी सम्प्रेषित करना चाहा है और अपनी काव्यात्मक प्रतिभा से विश्व मानवता से सम्बन्धित समस्याओं को अभिव्यक्त किया किन्तु बाह्य और आन्तरिक जीवन के हर पक्ष को अभिव्यक्ति देने के मोह ने कवि को काव्य की मूल चेतना से दूर कर दिया और कविता विविध बिम्बों की एक कड़ी मात्र बन गयी-

रात के कड़ाह में

खून टपकता है

उल्टी टँगी है बीमार गाय

　　　बछड़ों से

　　　मांस खाती है

　　　यह होना भर बाकी है-

—　　　—　　　—

मालिक की श्वेताम्बर देह पर

दांत ही दांत हैं

कौन बचाये

अब

सुरक बांत गाय को [१५०]

बाकर मेहन्दी के " पैग़ाम [१५१] " की " जन्म [१५२] के सूर्योदय में भी बिम्बों का आयोजन इसी रूप में देखा जा सकता है। अतएव युगीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देते हुए भी कविता संवेदना हीन होती गयी और पाठक के लिये उसे संवेदनात्मक रूप में ग्रहण करना कठिन हो गया। वह ढेर सारे चमकते बिम्बों में फंस गया। वर्तमान सामाजिक जीवन की बढ़ती जटिलता को जब यह बिम्ब अभिव्यक्ति देने में असमर्थ होने लगे तो कविता बिम्बों के दायरे को तोड़ कर सपाट बयानी की ओर बढ़ी।

(घ) सपाटबयानी :

बिम्बों के साथ ही सपाटबयानी की प्रक्रिया भी चल रही थी किन्तु उसका स्पष्ट आभास नहीं हो पाया था। सन् १९६० ई० के बाद जो मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हुई और सारी आस्थाएं बिखरने लगीं। सामाजिक और राजनैतिक जीवन की जटिलताएं इतनी बढ़ीं कि उस उलझाव में बिम्ब कविता पर भार लगने लगा और बिम्बों की सार्थकता संदिग्ध लगने लगी तब कवियों का झुकाव सपाट बयानी के

तरफ़ बढ़ा-

टूटते - टूटते। जिस जगह आकर
विश्वास हो जायगा कि बीस साल तक
धोखा दिया गया
वहीं मुझसे कहा जायगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला भाला मन्त्री
मामला बताओ हम कार्यवाई करेंगे
हाय - हाय करता हुआ, हां - हां करता हुआ
        हैं - हैं करता हुआ दल का दल
        पाप छिपा रखने के लिये एक जुट होगा
        जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायगा देश को[२४३]

कविता में सपाटबयानी के तेवर पर प्रकाश डालते हुए डा० नामवर सिंह ने लिखा है कि " इस बिम्ब मोह के टूटने का कारण सामाजिक और ऐतिहासिक है छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के आरम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिये अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा[२४४]" फलत: कविता सपाटबयानी की ओर बढ़ी। सपाट भाषा में युगीन विसंगतियों की जटिलता की अभिव्यक्ति अधिक सफलता से हुई। इसे और अधिक मर्मस्पर्शी बनाने तथा समकालीन यथार्थ से सीधा सम्पर्क स्थापित करने के लिये कवियों ने नाटकीय शैली को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे मेढ़े बफाते
समारोह भद्द - भद्द कोई नहीं हो सकती राष्ट्र की
संसद एक मंदिर है जहां किसी को द्रोही कहा नहीं जा सकता
दूध पिये मुंह पोंछे आ बैठे जीवन दानी
गोंद दानी, सदस्य तोंद सम्मुख धर

बोले कविता में देश प्रेम लाना, हरियाणा प्रेम लाना
आइसक्रीम लाना है[२५५]

इस सपाट कथन में राजनीतिज्ञों के घिनौने चेहरे मुखर हो उठे हैं। राजनीतिक नेता राजनीति और कुर्सी की आड़ में किस प्रकार अपनी पोशाक सफेद बनाये रखते हैं इस स्थिति को रघुवीर सहाय ने स्पष्ट किया है। इस नाटकीयता को और भी अधिक जीवन्त बनाने के लिये सहाय जी ने व्यक्तिवादी नामों को प्रश्रय दिया-

दिन रात सांस लेता ट्रांजिस्टर लिये खुशनसीब
खुशीराम
फुरसत में अन्याय सहने में मस्त
— — —
एक दिन आखिरकार दुपहर में छुरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन था राजनीति का मसला
देश में उस वक्त पेश नहीं था। खुशीराम
बन नहीं सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना उसने
जैसा किया वैसा भरा[२५६]

रघुवीर सहाय का अनुकरण करते हुए बहुत से कवियों ने नाटकीयता को काव्य का आधार बनाया और इसी तेवर की बहुत सी कविताएं प्रकाश में आयीं। आज की अवसरवादिता और स्वार्थ को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

जो भी आयेगा चला जायेगा
मटका कर कूल्हा
हाथ लिया खिचड़ी
बलम भैया चूल्हा
कालिख लगी ईंट से

पड़े रहेंगे हम राह में
एक काला झण्डा लिये
अपनी अपनों उखड़ी बांह में
— — —
जो भी आयेगा
समाजवाद और समानता के नाम की
ईंट फेकेगा
मनमाने बेडौल सांचों में
ढालेगा कच्ची मिट्टी
पर कुछ पड़ा रहेगा बांचा
नाम गुलकिया सुघर सांचा[१५७]

इस प्रकार की नाटकीयता के माध्यम से कवियों ने समकालीन विसंगतियों को मार्मिक रूप से प्रेषित किया और इस नवीन शैली को पूर्णरूप से हिन्दी कविता ने ग्रहण किया है। व्यक्तिवादी नामों को भी कवियों ने अपनाया। विनोद कुमार शुक्ल का सैय्यद गुफ़राम अहमद और धूमिल का मोची राम इसी शृंखला की कड़ी हैं।

हिन्दी काव्य के समान उर्दू कविता की प्रवृत्ति बिम्बों को त्याग कर सपाटबयानी की ओर नहीं बढ़ी। उर्दू काव्य भावाभिव्यक्ति के लिये आज भी बिम्बों अप्रस्तुतों को आवश्यक समझता है किन्तु कुछ नये कवियों का रुझान सपाटबयानी की ओर बढ़ रहा है। सामाजिक पक्ष को चित्रित करने के लिये बशीरुल ईमान की सपाटबयानी और नाटकीय क्रीड़ा विधि द्रष्टव्य है—

हैं बहुत ऐसे लोग भी जिनके
नाम तो ठीक है मगर अतार ?
देखता है मादक बदस कोकिन
रोज मिलता है राह में मक्कार

एक कछुआ है बरसों से
शाहिद व मैं के उनसे फरमाइश
कीजिये, चुटकी बजी कि वह तैयार
बैठा माँदे हुआ है नाम[१९८]

इसी परम्परा को बशीर बद्र ने अपनी गज़लों में " बाबा " शब्द के प्रयोग से आगे बढ़ाया है इससे गज़लों में एक नवीनता आई है। किन्तु हिन्दी की तुलना में उर्दू काव्य सपाट बयानी अपने विकास के चरम पर नहीं पहुँची है लेकिन उर्दू काव्य ने बिम्बों प्रतीकों और अप्रस्तुतों को काव्याभिव्यक्ति का आधार बनाते हुए भी अपनी भाषा को जनमानस से जोड़े रखने का प्रयास निरन्तर बनाये रखा है।

(अ) भाषा :

भाषा भावाभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। किसी भी भाषा का जन्म उस देश विशेष की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण होता है तत्पश्चात धीरे - धीरे उस भाषा में साहित्यिक कृतियों के प्रवेश से भाषा की पहचान बनती है। भारत में भी जब - जब देश के सांस्कृतिक राजनीतिक और धार्मिक जीवन में परिवर्तन हुए तो यहाँ की भाषाओं का प्रभावित होना स्वाभाविक था। आर्यों की भाषा संस्कृत थी। प्राचीन काल में यही राष्ट्रभाषा भी थी। इसी भाषा में धर्म दर्शन तथा साहित्य से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना होने से यह भाषा समृद्ध से समृद्धतर होती चली गयी किन्तु ब्राह्मणवादी संस्कृति धार्मिक बन्धनों में कसती गयी और ब्राह्मण इस भाषा को पवित्र व शुद्ध बनाने के लिये व्याकरण के कठोर नियमों में बांधने लगे तो यह भाषा जन सामान्य से दूर होती गयी। कोई भी भाषा जब जन सामान्य से दूर होती है तो उसे पीछे हटना पड़ता है अत: जब बौद्ध और जैन धार्मिक क्रान्तियां हुईं तो संस्कृत को भी पीछे हटना पड़ा। भारतीय भाषा के

भारतीय भाषा के इतिहास में महान् परिवर्तन हुआ। यहां से संस्कृत के .. प्राकृत का भी विकास शुरू हुआ। गौतम बुद्ध ने समस्त जन को उनके उपदेशों को अपनी मातृभाषा में ग्रहण करने की स्वतन्त्रता दे दी जिससे बोलियों को साहित्यिक रूप में स्थापित होने में बहुत मदद मिली। कुछ समय बाद प्राकृतों में संस्कृत तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दावली विकसित होने लगी और यहां से अपभ्रंशों का युग शुरू हुआ। भाषा के क्षेत्र में एक महान् परिवर्तन उस समय हुआ जब मुसलमान भारत में आये। तब भारतीय धर्म, दर्शन, सामाजिक मान्यताओं तथा संस्कृति के क्षेत्र में महान् परिवर्तन आये। अत: भाषा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रही। इस प्रकार इस सांस्कृतिक उथल पुथल और सामाजिक ऐतिहासिक आवश्यकताओं ने कई बोलियों को भाषा का रूप दे दिया और कुछ भाषाओं की बाढ़ रोक दी। मुसलमानों के आगमन से भारतीय सामाजिक जीवन एक नये रास्ते पर चलने लगा। लम्बे समय तक यहां साथ - साथ रहने से दोनों जातियों की कटुता कम होने लगी। उनके बीच की खाई को सूफी सन्तों और कवियों ने और भी पाट दिया। यहां शासन करने के लिये मुसलमानों को एक ऐसी भाषा की आवश्यकता हुई जो दोनों के लिये ग्राह्य हो जो मुसलमान भारत आये उनकी मातृभाषा अरबी - फारसी और तुर्की थी। अत: उन्होंने अपनी भाषा के कुछ काम आने वाले शब्दों और भारतीय भाषाओं के मेल से एक नई भाषा को जन्म दिया जिसकी लिपि फारसी और व्याकरण हिन्दी की थी। दिल्ली राजधानी थी। अत: आस पास की बोलियों से ही अरबी - फारसी का संगम हुआ। डा० एहतेशाम हुसैन के शब्दों में " इतना ही ठीक है कि उर्दू एक आर्य भाषा है जो खड़ी बोली, शौरसेनी, अपभ्रंश, शौरसेनी प्राकृत के अन्दर होकर बोलचाल की उस भाषा से सम्बन्ध जोड़ती है जो संस्कृत के साथ - साथ बोली जाने वाली प्राकृतिक बोलियों के रूप में लगभग ढाई हजार वर्षों पूर्व से जीवित और प्रचलित थी। ऐतिहासिक कारणों से अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसने फारसी - अरबी और संस्कृत की शब्दावली से भी काम लिया। इसका मूलाधार खड़ी बोली है।

किन्तु एक मिश्रित भाषा होने के कारण उसमें उन सभी भाषाओं के शब्द आ गये जिनसे उसका सम्पर्क रहा है।[१४६] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू का जन्म देश की विशुद्ध सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुआ।

आधुनिक युग में भाषा संस्कार भारतेन्दु और द्विवेदी युग से प्रारम्भ हो गया था। अब तक की काव्य परम्परा में ब्रजभाषा का आधिपत्य था। भाषा संस्कार द्विवेदी युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इन्होंने ब्रजभाषा को काव्य क्षेत्र से हटाकर खड़ी बोली को साहित्य के दोनों क्षेत्रों गद्य और पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया। किन्तु अभी तक खड़ी बोली को परिष्कार और संस्कार की आवश्यकता थी जिसे द्विवेदी जी, मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध आदि कवियों ने पूरा किया। द्विवेदी जी ने उर्दू और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को हिन्दी में लिखने को प्रोत्साहित किया और खड़ी बोली के व्याकरण सम्मत प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया, वाक्य विन्यास को शुद्ध किया और विभक्तियों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। इस प्रकार खड़ी बोली के भाषा परिमार्जन का श्रेय द्विवेदी जी को ही है। छायावाद युग की कोमलता, कलात्मकता और अभिव्यक्ति की क्षमता के लिये बहुत कुछ भूमि द्विवेदी युग में तैयार हो गई थी।

हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का विकास एक जैसी सामाजिक धार्मिक राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुआ। सामाजिक उतार - चढ़ाव ने दोनों को प्रभावित किया। अतः दोनों भाषाओं ने अपने युग को प्रतिबिम्बित करने के लिये लगभग एक जैसे प्रतीकों बिम्बों अप्रस्तुतों का चुनाव किया। यद्यपि उर्दू काव्य को उन संस्कारों से एक को जोड़ना पड़ा जो हिन्दी काव्य में स्वतः ही आते चले गये। फिर भी उर्दू कवियों ने अपने काव्य को युगीन सन्दर्भों से जोड़ने की यथा संभव चेष्टा की। हिन्दी भाषा को निःसन्देह द्विवेदी जी ने संस्कार दिये किन्तु उसमें सौन्दर्य की सृष्टि छायावादियों ने दी थी। कविता के लिये चित्रात्मक भाषा आवश्यक होती है तभी उसमें बिम्बग्राहिता की शक्ति आ पाती है। छायावादी कवियों ने सीधी सादी भाषा से हटकर लाक्षणिक और चित्रात्मक अप्रस्तुतों तथा संश्लिष्ट बिम्बों से

युक्त भाषा का प्रयोग किया और मौलिकता का परिचय दिया। मूर्त में अमूर्त विधान छायावादी कलात्मकता का प्रमुख अंग बना। छायावादी कवियों में पंत जी ने काव्य भाषा के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। " कविता के लिये चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिये जो बोलते हों। सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सके जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो। जिसका भाव संगीत विद्युत धारा की तरह रोम - रोम में प्रवाहित हो सके। जिसका सौरभ सूंघते ही सांसों द्वारा अन्दर हृदयाकाश में समा जाय। जिसका रस मदिरा की फेनराशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उठे उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे अर्थ निशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावलि अपनी मौन जड़ता के अंधकार को भेदकर अपने ही भावों की ज्योति में दमक उठे।[१५०] पंत जी ने काव्य में जिन गुणों की अपेक्षा की है वे गुण छायावादी काव्य में स्पष्ट दिखाई देते हैं— इन कवियों ने द्विवेदी युगीन प्रचलित शब्दों को अद्भुत चमत्कार और अर्थव्यंजकता प्रदान की—

> चौंके निद्रित,
> रजनी अलसित
> श्यामल पुलकित कम्पित कर में
> दमक उठे विद्युत के कंकण[१५१]
>
> — — —

आदिकाल में बाल प्रकृति जब
थी प्रसुप्त, मृतवत्, अज्ञान
शस्य शून्य वसुधा का अंचल
निश्चल जलनिधि रवि शशि म्लान[१५२]

छायावादी कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सामासिक रूप प्रदान करके

काव्य में नयी शक्ति का संचार किया-

> बाण का तीक्ष्ण - शर विधृत - क्षिप्र-कर वेग प्रखर
> शतशेलसंवरणशील, नील नभ गर्जित स्वर
> प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-क्रुद्ध कपि विषम हूह
> विच्छुरितवह्नि- राजीव - नयन- हत - लक्ष्य-बाण
> लोहितलोचन - रावण - मदमोचन - महीयान[२५३]

स्वर सन्धि के द्वारा तत्सम शब्दों को विशाल आकार प्रदान करना भी छायावाद की काव्य भाषा का गुण है-

> और चकोर ने निशाभिसार
> सारस ने मृदु-ग्रीवालिंगन[२५४]
>
> — — —
>
> सघन मेघों का भीमाकाश
> गरजता है जब तमसाकार[२५५]
>
> उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार[२५६]

तत्सम शब्दों के संयुक्ताक्षरों की सत्योजना भाषा को नवीन नई कान्ति देती है-

> छोड़ रहे जग के विक्षत-वक्षःस्थल पर !
> शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
> मृत्यु तुम्हारा गरलदन्त कंचुक कल्पान्तर
> अखिल विश्व ही विवर
> वक्रकुण्डल
> दिङ्मण्डल[२५७]

भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति देने के लिये सांस्कृतिक शब्दावली का प्रयोग भी

छायावादी काव्य भाषा में हुआ है। ऐसा प्रयोग प्रसाद के काव्य में मुख्य रूप से दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिये " पुरोडाश ", " तिमिंगल ", " वैश्वानर " आदि निराला ने भी " पुरश्चरण " " यज्ञ कुण्ड " जैसे सांस्कृतिक शब्द चुने हैं। यद्यपि छायावाद लोकजीवन की गोद में नहीं पला बढ़ा किन्तु अपनी जीवन्तता के कारण ये कवि लोक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सके और अपनी भाषा में माधुर्य एवं चित्रात्मकता की सृष्टि के लिये पुरनिमा ( पूर्णिमा ) कन ( कण ) पांति ( पंक्ति ) छाय ( छाया ) भीख ( भिक्षा ) सुर ( स्वर ) सपना ( स्वप्न ) सूना ( शून्य ) जैसे तद्भव शब्द रूपों का भावानुकूल प्रयोग किया और दूसरी ओर आस - पास की प्रादेशिक भाषाओं के देशज शब्दों का भी काव्य में मिश्रण किया। उदाहरण के लिये— टटोली, डोले, बटोरते, ठसक, झुरमुट उकसाया हुलास और दुलराना, बाट, रुनझुन आदि। इसके साथ ही हिन्दी के समान विकसित एवं समृद्ध उर्दू भाषा से भी इन कवियों ने शब्द लिये। जैसे नादान, खुमार, छाले, बेताब, जालिम, दर्द, ख्वाब, फरियाद आदि एक ही भाव भूमि पर विकसित होने के कारण यह भाषिक आदान - प्रदान स्वाभाविक था। इस प्रकार विभिन्न भाषिक शब्दावली से छायावादी काव्य का शब्द भण्डार समृद्ध होता गया। नवीन भावबोध की अभिव्यक्ति के लिये इन कवियों ने कुछ नये शब्दों का भी निर्माण कर डाला— फेनिल, रंगिणि, रोमिल, सुहागिनी, तन्द्रिल, धूमिल, आदि ऐसे ही शब्द हैं किन्तु नवीनता तथा अमूर्त चित्रात्मकता एवं अतिशय लाक्षणिकता के कारण यह भाषा धीरे - धीरे कठिन हो गयी और जनसामान्य से दूर होने लगी जबकि तत्कालीन क्रांति युग में जन मानस से जुड़कर काव्य रचना करना आवश्यक हो गया था।

भाषा का युगानुरूप परिवर्तन एक स्वाभाविक नियम है। जहां तक भाषा जन चेतना के संस्कारों को लेकर चलती है वहां तक उसकी अर्थवत्ता में किसी प्रकार की जड़ता या खोखलापन नहीं आ पाता किन्तु छायावादी भाषा बदले हुए भावबोध को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो रही थी। संक्रान्ति काल के युगद्रष्टा कवियों ने इस कमी को पहचाना निर्वीर्य और जड़ होती हुई भाषा का विरोध करते

हुए जनवादी भाषा के निर्माण की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की—

कितनी संकुचित जीर्ण वृद्धा हो गई आज कवि की भाषा

—— —— —— ——

कवि तोड़ो बन्धन शब्दजाल जो आज खोखला शून्य हुआ

—— —— —— ——

हमको न ज़रूरत आज देववाणी के रूप कुछ ढालें
जीवन की मट्टी में भाषा, भी ढाला रूप बना लें[१५८]

छायावादी भाषा का विरोध उसकी क्लिष्टता कल्पना युक्त सूक्ष्मता के कारण हुआ। कवि भाषा की सरलता का ध्यान किये बिना अपनी अनुभूतियों को ही सामने रखना चाहते थे इसके लिये वे कठिन से कठिन शब्दों का प्रयोग करने से भी नहीं झिझकते थे। अतः छायावाद के बाद सरल भाषा का आग्रह होने लगा था। प्रगतिवादी भाषा में नवीनता और चमत्कार लेकर नहीं आये। इस युग की कविता एक प्रकार से प्रचारात्मक थी। काव्यात्मक संस्कार इसमें बहुत कम थे। प्रगतिवादी कवि इसी कारण जनभाषा के शब्दों और आंचलिक बोलियों को काव्य में महत्व देते थे। प्रगतिवादियों का शब्द भण्डार दैनिक बोलियों के शब्दों, शहर, गांव, गली, उर्दू और अंग्रेजी आदि के शब्दों से बढ़ा है। मुख्य रूप से उर्दू मिश्रित सरल भाषा को इन्हीं कवियों ने अपनाया है-

हारा हूं सौ बार गुनाहों से लड़ लड़ कर
लेकिन बारम्बार लड़ा हूं मैं उठ " उठकर
इससे मेरा मन, हर गुनाह भी मुझसे हारा
मैंने अपने जीवन को इस तरह उबारा[१५९]

अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का भी इस युग में खुलकर प्रयोग हुआ—

पार्लमेंट के प्रतिनिधियों से आदर लो सत्कार लो
मिनिस्टरों से शेक हैंड लो जनता से जयकार लो
दायें बायें खड़े हजारों आफिसरों से प्यार लो[१६०]

प्रयोगवादियों ने भाषा के सरलीकरण के प्रयास में उसे इतना सीधा सपाट, नीरस बना दिया कि एक बार फिर भाषा संस्कार की आवश्यकता दिखाई दी । इस अभियान के प्रथम सूत्रधार अज्ञेय थे । इस सम्बन्ध में अज्ञेय ने कहा कि " कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है । शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं । ——— भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे बड़े टाइप से सीधे या उल्टे अक्षरों से लोगों और स्थानों के नामों से अधूरे वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि उसकी संवेदना की सृष्टि पाठकों तक अक्षुण्ण पहुंचा सके । ——— भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है[१६१]। शब्दों के सामान्य अर्थ से भी बड़ा अर्थ देने वाली योजना के प्रति अज्ञेय सजग थे-

अर्थ दो, अर्थ दो
मत हमें रूपाकार इतने व्यर्थ दो
हम समझते हैं इशारा जिन्दगी का
हमें पार उतार दो
रूप मत बस सार दो[१६२]

धर्मवीर भारती भी भावानुकूल भाषा में परिवर्तन चाहते हैं । उनके मतानुसार " भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिये, वह न तो पत्थर का ढोंका बनकर कविता के गले में लटक जाय और न रेशम का जाल बनकर उसके पंखों में उलझ जाय[१६३]। भाषा के समाजीकृत रूप की दृष्टि से कवि काव्य में सभी प्रकार के शब्दों का चयन करने लगे थे । संस्कृत के तत्सम तद्भव देशज, उर्दू अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ लोक प्रचलित बोलियों से भी शब्द ग्रहण किये जाने लगे । संस्कृत

की जटिलता के विरोधी होते हुए भी कहीं कहीं कवियों ने संस्कृतनिष्ठ भाषा को प्रयुक्त किया है-

> विपिन और निर्झर
> तिमिर के घनावरण में भावना के उत्त मरण में
> है हुए भय स्तब्ध तन निस्पंद दिकहीन
> क्योंकि आलोड़ित हुआ विक्षुब्ध गीतों का महा तूफान[१५४]

स्वयं अज्ञेय ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं-

> डोलती डाली प्रकम्पित पात पाटल स्तम्भ विकम्पित
> खिल गया है सुमन मृदु दल बिखरते किंजल्क प्रमुदित
> स्नात मधु से अंग रंजित राग केशर अंजलि से
> स्तब्ध सौरभ है निवेदित[१५५]

उर्दू और फारसी भाषा की सरलता और माधुर्य के कारण खड़ी बोली से उसका नाता जुड़ गया है। यह शब्दावली प्रेम और रोमांस के भाव की अभिव्यक्ति देने में अत्यन्त सफल है। प्रयोगवाद और नयी कविता में प्रेम और यौन भावना काव्यादर्श बन गये थे। अतः इन भावों की अभिव्यक्ति के लिये कवियों ने उर्दू शब्दों का चयन किया-

> गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तरुणाई
> सितारों की जलन से बादलों पर आंच कब आई
> न चांद को व्यापी अमा की घोर कजराई
> बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पण भी
> हमेशा आदमी मजबूर होकर लौट आता है[१५६]

भारती की " गुनाहों के गीत " कविता पर उर्दू शायरी का गहरा प्रभाव है। शमशेर बहादुर, मुक्तिबोध, आदि के काव्य पर भी उर्दू का प्रभाव देखा जा सकता है

अंग्रेजी भाषा मध्यमवर्गीय समाज के द्वारा अधिक निकटता से पहचानी जा सकती है। उनकी बातचीत के मध्य अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग होता है। इसलिये जिस प्रकार बोलचाल में अंग्रेजी शब्द खपे उसी के अनुरूप उनका काव्य में आना स्वाभाविक है-

केरियर टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में हैं फाइलें हर दिन मुड़ी[१६७]

भारत भूषण अग्रवाल के काव्य में अंग्रेजी शब्द प्रतीकात्मक रूप में आये हैं-

मैं निरा विलायती स्पंज हूं[१६८]

इस युग के अन्य कवियों ने भी अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग खुलकर किया है-

बाज उचटा था हृदय
साइरन बज गया उसके बाद[१६९]

लोक भाषाओं और बोलियों में इन कवियों ने ब्रज और अवधी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है लेकिन इन शब्दों का प्रयोग भाषा के परिमार्जन के लिये ही हुआ है। अज्ञेय की कई कविताओं में ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है-

शरद चांदनी बरसी
अंजरी भर - भर पीते
उठी ललक
हिय उमगा
अकुली
अकुलायी

छुई लाजा

पाहुन मन माने[२७०]

लोक भाषाओं में जन बोलियों से लिये गये शब्द कवि की संवेदना से जुड़कर भाषा में प्रवाह उत्पन्न करने में सहायक हुए हैं।

प्रयोगवादी कवियों ने पुराने शब्द रूपों में परिवर्तन करके अपने ढंग से कुछ नये शब्दों का निर्माण किया। अज्ञेय भारती और गिरिजाकुमार माथुर ने इस प्रकार के सफल प्रयोग किये है। अज्ञेय में नये शब्द बहुत मिलते हैं। उदाहरण के लिये " उषा की अरुणाली थी सब का सींचे " अरुणिमा के लिये अरुणाली शब्द का प्रयोग सर्वथा नवीन है। इसी प्रकार " अनफिप " " सोनमछली " आदि ऐसे ही शब्द हैं। गिरिजा कुमार माथुर ने भी कुछ शब्दों को तोड़ मरोड़ के प्रस्तुत किया है-

खिली चांदीली रात कि कभी सुहावनी

— — —

छिटक रही है पूरनिमा की चांदनी

— — —

नयनों में मदभरी छलौंई झुकती[२७१]

" चंदीली " पूरनिमा ""छलौंई" शब्दों का प्रयोग भाषा को नवीनता प्रदान करता दिखाई देता है

प्यारों को रक्त सींच सींच कर दे दे
सब उलीच कर दे दे[२७२]

रक्त के साथ सींच - सींच का प्रयोग बिल्कुल नया है किन्तु इस नवीन के आग्रह मे धीरे धीरे भाषा को अस्पष्ट बनाना शुरू कर दिया मात्र कुछ सांकेतिक शब्दों

से जब कवियों ने काम लेना शुरू किया तो शब्दों का साधारणीकरण दुरूह होता चला गया। प्रयोगवादी कविता में अस्पष्टता दुरूहता और क्लिष्टता की प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।

नयी कविता की भाषा प्रयोगवादी काव्य भाषा से बहुत भिन्न तो नहीं लेकिन प्रयोगवाद में जिस प्रकार विभिन्न भाषाओं और बोलियों की मिलावट हुई वह रूप नयी कविता में नहीं दिखाई देता। नयी कविता की भाषा में खड़ी बोली का सरल व सुगम रूप दिखाई देता है। किन्तु वर्तमान काव्य की भाषा सरल होने के साथ इतनी मध्यम होती जा रही है कि भाषागत शुष्कता और नीरसता एक समस्या बन गई है। इस मध्यम भाषा के परिष्कार के लिये लयमान गद्य और तुकतात सम्बन्धी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

हिन्दी के समान उर्दू काव्य की भाषा भी युगीन परिवर्तनों के अनुरूप बदलती रही। आलोच्यकालीन कवियों ने जहां एक ओर फारसी गर्भित अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया वहीं हिन्दी शब्दों को भी प्रयोग किया है। जफर अहमदाबादी जैसे फारसी भाषा के ज्ञाता ने भी हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी एक कविता में उर्दू फारसी और हिन्दी का प्रयोग द्रष्टव्य है -

तेरा देवस्थान देवी दिल के काशीन में है
तेरी तस्वीरें मुकद्दस हर सनम खाने में है
लक्ष्मी है तू जमाने में उजाला है तेरा
हर कमल का फूल पानी में शिवाला है तेरा
सरस्वती का रूप है दुर्गा का है अवतार तू
नुत्फ दानिश की है देवी मादरे गमख्वार तू[१०२]

इकबाल जैसे शायर के यहां भी हिन्दी फारसी उर्दू भाषा के शब्दों का मिश्रित प्रयोग देखा जा सकता है-

दुनिया के तीरथों से ऊंचा हो अपना तीरथ

दामन आसमा से अपना कलश मिला दें

हर सुबह उठ के गायें मंतर वो मीठे - मीठे

सारे पुजारियों को मैं प्रीत की पिला दें

— — —

शक्ति भी शान्ती भी भक्तों के गीत में है

धरती के वासियों की मुक्ति प्रीत में है [१७४]

जोश ने प्रकृति को नारी रूप में वर्णन करते हुए फारसी शब्दावली में भी अपने सृजनात्मक व्यक्तित्व से भाषा को सुन्दर प्रवाह दिया है—

नौरोज़ क्यों बलंद बाला

ओढ़े हुए सुरमई दुशाला

अफसुर्दा के निगाहों ज़ुल्फ बरदोश

झुके में खड़ी हुई है खामोश [१७५]

कुछ शब्दों को तोड़कर जोश ने उन्हें नया रूप दे दिया है—

आ रही है बाग से मालन वो इठलाती हुई

— — —

ऐन्ठती मुड़ती हुए अपनी कमसिनी से खेलती

भागती रुकती ठिठकती बात बिखराती हुई

गुनगुनाती मुस्कुराती खड़खड़ाती झूमती

मिस्ल अब्र बहने के पर कुछ फैलन आती हुई [१७६]

इन कवियों की भाषा माधुर्य गुण से तो युक्त थी किन्तु फारसी के कठिन शब्दों के कारण कठिन होती जा रही थी । प्रगतिवादी और नये कवियों ने भाषा को सरल रूप दिया—

समस्यात्मक यथार्थ की अभिव्यक्ति देने के लिये हिन्दी के समान ही प्रतीक बिम्ब और अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ । हिन्दी भाषा के समान ही यह देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में योग देती रही है ।

## सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची


१- मुक्तिबोध : अँधेरे में - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ-२६६

२- वहीद अख्तर : जवान की मौत- शब का रज़मिया, पृष्ठ-८३

३- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : मैंने कब कहा- तीसरा सप्तक, पृष्ठ- २१६

४- कुमैलुल इकराम : ग़ज़ल - शहपर, पृष्ठ- १५६

५- मदन वात्स्यायन : [illegible] - तीसरा सप्तक

६- गोविन्द द्विवेदी : नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ-१६७

७- मख़मूर सईदी : लफ़्ज़ों का अलमिया - सब रंग, पृष्ठ- १३

८- विजयदेवनारायण साही : अर्थ मत्स्य दिग्दाल - मछली घर, पृष्ठ- ५६

९- ज्ञानेन्द्रपति : अथवा अंक - १ अगस्त १९७२

१०- नीलाभ : जंगल ख़ामोश है - समकालीन कविता की भूमिका, पृष्ठ-१७५

११- शहरयार : इरफ़ान - इस्मे आज़म, पृष्ठ- ३१

१२- धर्मवीर भारती : कविता की मौत - ठंढा लोहा, पृष्ठ- ४६

१३- अमीक़ हन्फ़ी : शहरज़ाद ( क़िस्सा गो ) सन्दूरस, पृष्ठ-७७

१४- डा० रघुवंश : नयी कविता का सामाजिक परिप्रेक्ष्य- नयी कविता, अंक-२, पृ०-१२

१५- करामत अली करामत : ग़ज़ल - शुआओं की सलीब, पृष्ठ-१०५

१६- कीर्ति चौधरी : दायित्व भार - तीसरा सप्तक, पृष्ठ-७१

१७- रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ-१५३

१८- अनीस नागी : नई नज़्म का मन्सूबा - नई शायरी, पृष्ठ-५४

१९- डा० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृष्ठ- ३४

२०- अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर - हरी घास, पर क्षण भर-पृष्ठ-५६

२१- मज़हर इमाम : रिश्ता गूँगे सफ़र का - रिश्ता गूँगे सफ़र का, पृष्ठ-१६

२२- ख़लीलुर्रहमान आज़मी : ग़ज़ल - नया अहदनामा, पृष्ठ- ३५

२३- डा० गोविन्द रजनीश : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता, पृष्ठ-२४७- ४८

२४- मख़मूर सईदी : ग़ज़ल - गुफ़्तनी - पृष्ठ- ६

२५- लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ- ७६

२६- गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता सीमायें और संभावनायें, पृष्ठ-१३४
२७- अहमद नदीम कासमी : उर्दू शायरी आज़ादी के बाद- नई शायरी, पृष्ठ-२८-२६
२८- सम्पा० डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश - पृष्ठ-४२
२६- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा, ( अप्रस्तुत रूप विधान ) पृष्ठ-३६२
३०- निराला : जागृति में सुप्ति थी - परिमल - पृष्ठ-१६५
३१- प्रतिमा कृष्णबल : छायावाद का काव्यशिल्प, पृष्ठ-२५६
३२- प्रसाद : रहस्य सर्ग - कामायनी - पृष्ठ- २०५
३३- - वही - पृष्ठ- २८
३४- माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिणी - पृष्ठ- ७
३५- महादेवी वर्मा : यामा - पृष्ठ- ७६
३६- प्रसाद : झरना - पृष्ठ- ११
३७- रामकुमार वर्मा : आकाश गंगा - पृष्ठ-६२
३८- महादेवी वर्मा : यामा : पृष्ठ- ५४
३६- डा० टी० एन० मुरली : कृष्णम्मा - छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ१२८
४०- पन्त : युगवाणी, पृष्ठ-
४१- मुक्तिबोध : चम्बल की घाटी में चांद का मुंह टेढ़ा है- पृष्ठ-५७
४२- रामविलास शर्मा : रूपतरंग, पृष्ठ-२६
४३- अमी कृष्णकी : कंवल एक रुक्त पल्लू - सब्ज़रस - पृष्ठ-२०
४४- डा० टी०एन०मुरली कृष्णम्मा : छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियां, पृष्ठ-२१०
४५- अज्ञेय : कली बाजरी की -हरी घास पर क्षण भर - पृष्ठ- ५७
४६- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ-८
४७- गिरिजा कुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ-८८
४८- रघुवीर सहाय : सायंकाल, दूसरा सप्तक, पृष्ठ- १७०
४६- केदार कृपालि : एक दिन ठकुर्जी का पुल - पृष्ठ- २८
५०- - वही - पृष्ठ- २८
५१- - वही - पृष्ठ- ४१

५२- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, आज पहली बार - तीसरा सप्तक, पृष्ठ-२३५

५३- बशीर बद्र : गज़ल - इमेज - पृष्ठ- १५

५४- इस्लाम अख़्तर : रोशनी दफ़नाने से पहले - सुरागों के तक़रीर, पृष्ठ-२०

५५- शरद देवड़ा : आधुनिक कविताएं विवेचन और संचयन, पृष्ठ-२

५६- कुंवर रिज़वी - गज़ल - सिलसिला - ए - दीवार, पृष्ठ-१८

५७- मुक्तिबोध : विचार - तारसप्तक, पृष्ठ- ५६

५८- भारतभूषण अग्रवाल, कार्टूनों का जुलूस-ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ-६६

५९- - वही - ,, पृष्ठ-५६-५७

६०- अमीक़ हन्फ़ी : हर्फ़ आशना - शबगश्त, पृष्ठ-१०२

६१- मदन वात्स्यायन : सरकारी कारखाने में कर्मचारी की चिन्ता-
तीसरा सप्तक - पृष्ठ- ११२

६२- बशीर बद्र : गज़ल - इमेज, पृष्ठ- ५१

६३- प्रभाकर माचवे : निम्न मध्यवर्ग - तार सप्तक - पृष्ठ-२०४

६४- कुंवर रिज़वी : गज़ल सिलसिलए दीवार, पृष्ठ-४१

६५- अज्ञेय - आंगन के पार द्वारा, पृष्ठ-२४

६६- सावन्त कैफ़ी : एक नज़्म - आतशी पैकर, पृष्ठ-१०२

६७- डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृष्ठ-३६८

६८- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि-भाग-२, पृष्ठ-१२

६९- दिनकर : शुद्ध कविता की खोज - पृष्ठ- २१७

७०- पंत : गुंजन, नौका विहार, पृष्ठ-

७१- महादेवी वर्मा : दीपशिखा - पृष्ठ- ७४

७२- प्रसाद : लज्जा सर्ग - कामायनी, पृष्ठ- ४३

७३- - वही - श्रद्धा सर्ग-कामायनी, पृष्ठ-७२

७४- - वही - श्रद्धा सर्ग- ,, पृष्ठ-२१

७५- ७५- निराला : परिमल- पृष्ठ- ७७-७८

७६- महादेवी वर्मा : दीपशिखा- पृष्ठ- ७२

७७- प्रसाद : आंसू - पृष्ठ- २५

७८- निराला : राम की शक्तिपूजा - अनामिका- पृष्ठ- १५०

७९- पन्त : युगवाणी - पृष्ठ- ३४

८०- फ़िराक : दास्ताने आदम - गुलेनग्मा - पृष्ठ- १७६

८१- निराला - कुकुरमुत्ता

८२- धर्मवीर भारती : अन्धायुग , पृष्ठ- १०

८३- शकुन्तला माथुर : ताजा पानी - दूसरा सप्तक, पृष्ठ- ५२

८४- वहीद अख्तर - उतरोए सुकूत - पत्थरों का मुगनी ,पृष्ठ-२५८

८५- बशीर बद्र : गज़ल इरतेकाब - पृष्ठ- ६७

८६- अख्लाक इमाम : मक्तल - यादें, पृष्ठ- ३०

८७- मख्मूर सईदी : गुफ़्तनी - पृष्ठ- ३८

८८- भारत भूषण अग्रवाल, फूल भरी आंधी - ओ अप्रस्तुत मन,पृष्ठ-११

८९- हरिनारायण व्यास : शिशिरान्त - दूसरा सप्तक,पृष्ठ-७८

९०- निदा फ़ाज़ली : गज़ल - इरतेकाब, पृष्ठ- १२

९१- अमीक हन्फ़ी : सफ़र के मुक़री - शबगश्त,पृष्ठ-५५-५६

९२- अज्ञेय : सांप - इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - पृष्ठ- ५१

९३- - वही - हरी घास पर क्षण भर-पृष्ठ-२७

९४- भारत भूषण अग्रवाल, ओ अप्रस्तुत मन,पृष्ठ-३४

९५- शकुन्तला माथुर : दूसरा सप्तक, पृष्ठ-४४

९६- बशीर बद्र : गज़ल - इमेज, पृष्ठ- ६३

९७- अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय, पृष्ठ- १३८

९८- धर्मवीर भारती : ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएं,पृष्ठ- ६

९९- भारत भूषण अग्रवाल : जीवनधारा - तार सप्तक- पृष्ठ-६३

१००- जगदीश गुप्त : दीप का वक्तव्य - शब्द दंश - पृष्ठ-४२

१०१- अज्ञेय : यह दीप अकेला - बावरा अहेरी ,पृष्ठ-२७

१०२- मुक्तिबोध : चांद का मुंह टेढ़ा है - पृष्ठ-२७

१०३- आनन्दनारायण मुल्ला : चिड़ियों का गीत : स्याही की एक बूंद, पृ०-२५२

१०४- वहीद अख्तर : कबाब - पत्थरों का मौगन्नी,

१०५- करामत अली करामत : शुआओं की सलीब - पृष्ठ- ११६

१०६- कुरमुल एकराम : कल से कल तक - शहर पर, पृष्ठ-१३१

१०७- दुष्यन्तकुमार : सूर्य का स्वागत - पृष्ठ-११

१०८- अजित शुक्ल ? अग्निकोण - नयी - १, पृष्ठ- ८८

१०९- अली सरदार जाफ़री - नई नज़्म का सफ़र-पृष्ठ- ११६

११०- मख़मूर सईदी -गुफ़्तनी - पृष्ठ- ९३

१११- बशीर बद्र : इकाई - पृष्ठ- ७४

११२- वीरेन्द्र कुमार जैन : संगीत की पुल की सीढ़ियां चढ़ा - यातना का
सूर्य पुरुष, पृष्ठ-१२

११३- वहीद अख्तर : सहराये कुर्बत - पत्थरों का मौगन्नी, पृष्ठ-२३८

११४- कैलाश वाजपेयी : तानाशाहि के नाम - तीसरा अंधेरा, पृष्ठ- ७६

११५- केदारनाथ सिंह - तीसरा सप्तक- पृष्ठ- १८४

११६- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-२, पृष्ठ-१

११७- प्रसाद : झरना - पृष्ठ-११

११८- - वही - आंसू - पृष्ठ- २१

११९- - वही - श्रद्धा सर्ग-कामायनी - पृष्ठ-२२

१२०- महादेवी वर्मा : नीरजा, पृष्ठ- १४०

१२१- पंत : नौका विहार - गुंजन - पृष्ठ- १०२ - १०३

१२२- प्रसाद : लज्जा सर्ग, कामायनी, पृष्ठ- ४३

१२३- - वही - पृष्ठ- ४२

१२४- महादेवी वर्मा : यामा, पृष्ठ- १४६

१२५- निराला : अपरा, पृष्ठ- ६४

१२६- बालकृष्ण शर्मा नवीन : हम विषपायी जनम के - पृष्ठ-२१

१२७- बच्चन : मिलनयामिनी, पृष्ठ- ४५

१२८- केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं- पृष्ठ- ३३

१२९- शिवमंगल सिंह सुमन, विन्ध्य हिमालय, पृष्ठ- ११

१३०- मुक्तिबोध : वो काव्यात्मक फणिधर - चांद का मुंह टेढ़ा है-पृष्ठ-१३५

१३१- लहरधार : ख्वाब से पहले ख्वाब के बाद - ताल्लांदर, पृष्ठ- २७-२८

१३२- मुक्तिबोध : चांद का मुंह टेढ़ा है- पृष्ठ- २४६

१३३- नहीं गाजीपुरी : मूक - बरकरार का सफ़र, पृष्ठ- १३३

१३४- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : बांस का पुल, पृष्ठ-६४

१३५- अज्ञेय : बावरा अहेरी, पृष्ठ- ३५

१३६- गिरिजाकुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ-५

१३७- मदन वात्स्यायन : तीसरा सप्तक, पृष्ठ-

१३८- अनीक हम्फ़ी : शबगुस्त - शबगुस्त - पृष्ठ-८५

१३९- भारत भूषण अग्रवाल, अनुपस्थित लोग, पृष्ठ-७८

१४०- कैलाश वाजपेयी : गणतन्त्र-देहान्त से हटकर, पृष्ठ-२४-२५

१४१- बाकर मेहन्दी : बेनाम - काले कागज़ की नज़्में, पृष्ठ- ७२

१४२- धूमिल : जनतन्त्र के सूर्योदय में- संसद से सड़क तक, पृष्ठ- १०-१४

१४३- रघुवीर सहाय : एक अधेड़ भारतीय आत्मा - आत्महत्या के विरुद्ध, पृ०-८६

१४४- डा० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ- १३३

१४५- रघुवीर सहाय: शिल्प के बाद बीस-आत्महत्या के विरुद्ध, पृष्ठ-७५-७६

१४६- - वही - कोई एक मतदाता- आत्महत्या के विरुद्ध, पृष्ठ-६८-६६

१४७- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, स्थिति यही है- गर्म हवाएं-पृष्ठ-१८

१४८- अब्दुल्लाह कैमान : मेरा नाम, यादें - पृष्ठ- २३८

१४९- डा० एहतेशाम हुसैन : उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ- ३३

१५०- पंत : पल्लव की भूमिका, पृष्ठ- १७ - १८

१५१- महादेवी वर्मा : यामा, पृष्ठ- १८२

१५२- पंत : पल्लव, पृष्ठ- ३८

१५३- निराला : राम की शक्ति पूजा, अनामिका, पृष्ठ- १५८

१५४- पंत : पल्लव - पृष्ठ- ४१

१५५- पंत : पल्लव, पृष्ठ- ५७

१५६- निराला : राम की शक्ति पूजा, अनामिका, पृष्ठ- १५८

१५७- पंत : परिवर्तन : पल्लव - पृष्ठ- १२०

१५८- डा० रामविलास शर्मा : अपने कवि से - तार सप्तक, पृष्ठ-८८-८९

१५९- केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ- ३८

१६०- नागार्जुन : सतरंगे पंखों वाली - पृष्ठ- ४१

१६१- अज्ञेय : वक्तव्य - तार सप्तक, पृष्ठ- २७६

१६२- [illegible] वही - [illegible] मैं - अरी ओ करुणा प्रभामय, पृष्ठ-१९

१६३- धर्मवीर भारती : वक्तव्य-दूसरा सप्तक, पृष्ठ- १७९- ८०

१६४- मुक्तिबोध : तार सप्तक - पृष्ठ- ७१

१६५- अज्ञेय : तार सप्तक - ७९

१६६- धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा, पृष्ठ- १९

१६७- गिरिजा कुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ-४५

१६८- भारत भूषण अग्रवाल, तार सप्तक, पृष्ठ-५९ - ६०

१६९- नेमिचन्द्र जैन : तार सप्तक, पृष्ठ- १८

१७०- अज्ञेय : बावरा अहेरी; पृष्ठ- ५६ - ५७

१७१- गिरिजाकुमार माथुर : धूप के धान, पृष्ठ- ६७

१७२- दुष्यन्त कुमार : सूर्य का स्वागत, पृष्ठ- ५९

१७३- सुकर जहानाबादी : मादरेवतन, इन्तेख़ाब, मन्जूमात भाग-१, पृष्ठ-२६

१७४- इकबाल; नया शिवाला, कुल्लियाते इकबाल, पृष्ठ- ७८ - ७९

१७५- जोश मलीहाबादी - जमना के किनारे, नक्शो निगार, पृष्ठ- १९

१७६- - वही - मातम - नक्शोनिगार, पृष्ठ- २२

१७७- आनन्दनारायण मुल्ला : हिन्दुस्तानी दरिन्दे - मेरी हदीसे उम्रे गुरेज़ां, पृ०-१६४

१७८- मज़हर इमाम : रिश्ता गूँगे सफ़र का : पृष्ठ- १०

१७९- मोहसिनी तबस्सुम : पहली किरन का बोझ - पहली किरन का बोझ, पृ०-१०

## उपसंहार

साहित्य का विकास देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिवर्तनों के कारण होता है क्योंकि साहित्य किसी भी समाज में रहने वाले एक संवेदनशील व्यक्ति की उस समाज के बारे में एक वैचारिक प्रतिक्रिया का नाम है अर्थात् समाज से अलग साहित्य अथवा कलाओं का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। जैसे जैसे ये परिस्थितियां परिवर्तित होती हैं उसी के अनुरूप साहित्यकार की दृष्टि भी बदलती चलती है। आर्थिक सम्बन्धों के साथ बदलते हुए समाज को प्रतिबिम्बन करने के लिये साहित्य भी नया रूप धारण करता चलता है। यों तो देश के परिवर्तन प्रत्येक देशवासी को कम या अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं किन्तु साहित्यकार अपनी संवेदनशीलता के कारण समाज के बदलाव को गहराई से अनुभव करता है और उसे अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित करता है। साहित्यकार की यही संवेदनशीलता उसे समाज से जोड़े रखती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि सामाजिक विकास के समानान्तर ही साहित्य भी विकसित होता है।

हमारा प्राचीन साहित्य भक्ति वीरत्व या विलास से सम्बन्धित रहा। एक तरफ़ यह साहित्य सामन्ती समाज व्यवस्था की देन है तो दूसरी तरफ़ आश्रमों में बैठकर लिखा गया साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसी कारण वर्षों साहित्य या तो अनेक धार्मिक सम्प्रदायों ( भक्ति ) से सम्बन्धित रहा अथवा चमत्कारिक वीरत्व और विलास से। इस प्रकार आठ सौ वर्षों तक हमारी सामाजिक व्यवस्था में जो परिवर्तन दिखाई देता है वह इन्हीं परिवेश से कमोबेश जुड़ा हुआ है। अत: उसे प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य भी इन्हीं दो या तीन दिशाओं से सम्बद्ध रहा—भक्ति, वीरत्व, विलास और मनोरंजन। इसी विकास क्रम में ` संस्कृति ` शब्द का अर्थ भी परिवर्तित होता रहा है किन्तु संस्कृति का मूल स्वर पूर्ण रूप से काव्य में समाहित है। उदाहरण के लिये—अनेक चिंतन और दर्शन आदि का निर्माण काव्य में किया गया जिन्होंने हमारी संस्कृति के स्वरूप को

बनाया । वेद से लेकर वेदांग तक और उसके बाद दार्शनिकों की एक सशक्त परम्परा इसदेश में रही है जिन्होंने अपनी विचारधारा को काव्य का स्वरूप प्रदान कर उसे परमात्म चिन्तन से लेकर मनुष्य मात्र की चिन्ता तक एक सूत्र में बांधा । कवि समाज के समस्त आदर्श की योजनाएं तैयार करता हुआ किसी महापुरुष या अवतारी जीवन की प्रकृति को काव्य में उतार लाता था । काव्य में राम, कृष्ण, शिव की प्रतिष्ठा का यह कारण भी है । भक्तिकालीन काव्य हमारी भारतीय संस्कृति का बहुत बड़ा सम्वाहक बनकर आया । वर्ण, जाति, भाषा आदि को प्रथम बार इन मनीषियों ने चुनौती दी और प्रकारान्तर से एक जीवन्त समाज, धर्म,वर्ग की स्थापना पर बल दिया । इसका प्रतिबिम्बन उस समय के कवि सूर, तुलसी, कबीर और जायसी, मलूक, रैदास, नानक आदि के काव्य में भलीभांति देखा जा सकता है जहां धर्म, दर्शन और भक्ति को सामाजिक सन्दर्भ में देखने और परखने की चेष्टा की गई । तमाम प्रचलित मान्यताएं, संस्कार और भारतीय संस्कृति के मूल आधार समाप्त नहीं किये गये वरन् उन्हें युग की आवश्यकता के अनुसार स्वीकार किया गया तथा काव्य दीरत्व एवं विलास की सीमित परिधि से बाहर आया । कवि अब झिलमिलाते ताने बाने को तोड़कर जनमानस की संवेदनाओं से जुड़ गया । यहां आकर पहली बार साहित्य जन संवेदना का साहित्य बना । कबीर की साखी, सबद, रमैनी, सूर के पद, जायसी का पद्मावत, तुलसीकृत मानस, मीरा के भक्तिगीत इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं-

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ।।

इस पुष्ट दृष्टि ने हमारी सांस्कृतिक परम्परा को और समृद्ध किया किन्तु फिर भी यह नितान्त धर्मनिरपेक्ष नहीं हो सकी । इसकी समन्वयात्मक प्रकृति के कारण समय - समय पर आने वाली जातियां और धार्मिक क्रान्तियां इसका अंग बन गयीं । इसी क्रम में भारतीय संस्कृति इस्लाम और मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क में आई ।

प्रारम्भ में दोनों संस्कृतियों को मिलने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई किन्तु दीर्घकाल तक साथ रहते हुए दोनों जातियां एक दूसरे के निकट आईं। उस समय के साहित्य, भाषा, दर्शन, कला और धर्म सम्बन्धी बातों के आधार पर हमें यह मानना पड़ेगा कि मुसलमानों और हिन्दुओं ने सदियों एक साथ रहकर एक भावना एक रहन-सहन और एक मिली जुली सभ्यता का विकास कर लिया था। एक सी आर्थिक पद्धति के आधार पर उन्होंने मिली जुली विशाल मानसिक और आध्यात्मिक संस्कृति का निर्माण किया। चाहे मुगल सम्राट के अधीन लोगों को देखा जाय या किसी सूबे के नीम आज़ाद सूबेदार के अधीन रहने वालों को पर मराठा, राजपूत, सिख और जाट लोग रीति - नीति में सदाचार में, धार्मिक आदर्शों में राजनैतिक और शासन सम्बन्धी बातों में,शिल्प और कलाओं में तथा सम्पूर्ण जीवन की दृष्टि में दूसरे हिन्दुस्तानियों से ज़रा भी अलग न थे[१]। दोनों संस्कृतियों के सांस्कृतिक समन्वय का फल उर्दू भाषा थी जो धीरे - धीरे साहित्यिक भाषा बन गयी और देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी।

भक्तिकाल की स्वस्थ मानसिकता और काव्य संस्कार तथा आधुनिक पुनर्जागरण काल के मध्य एक ऐसे युग का दर्शन साहित्य में होता है जो अपनी काव्य कलात्मक संभावनाओं में तो पूर्ण है किन्तु जहां तक व्यक्ति संस्कार, आचार-विचार और महान् चिन्तन का प्रश्न उठता है वहां वह सचमुच एक अन्धकार काल या पापी युग के रूप में हमारे सामने आता है। रस, छन्द, अलंकार, शृंगार और कला की बात यदि छोड़ दें तो भारतीय संस्कृति की वह पूरी सम्मानित परम्परा इस काल में गहरे आघात का सामना करती है। उदाहरण के लिये इस युग की संस्कृति और उसका काव्य पर प्रभाव एक ऐसी विडम्बना है जिसे देखकर ऐसा लगता है कि कवि इतने बड़े मानव समाज से ओझल होकर केवल ऐश्वर्य और वैभव में ही डूबा रहा।

- - - - - - - - - - ----- - - --

१- डा० सैय्यद महमूद : इतिहास के आइने में हिन्दू और मुसलमान,पृष्ठ- ३२

निश्चय ही यह तत्कालीन परिस्थितियों का दबाव भी था। जैसा कि रीतिकालीन काव्य में हमने देखा।

शान्ति और वैभव से समाज में भोग विलास बढ़ता गया किन्तु दूसरी तरफ़ इस निश्चिंतता के भयावह परिणाम भी सामने आये। जन सामान्य निष्क्रिय एवं भाग्यवादी होता गया, इसके साथ साहित्य भी विलासिता का प्रतिरूप बन गया। साहित्येतिहास में यही काव्य रीतिकाल के नाम से जाना गया। कालान्तर में देश की विषम परिस्थितियों ने साहित्य को झकझोर कर रख दिया। वर्षों की गुलामी और शोषण ने साहित्य को भोग विलास की परिधि से बाहर आने को प्रेरित किया और पुनः काव्य जनमानस की संवेदना से जुड़ा।

किसी भी गुलाम देश के इतिहास में स्वतन्त्रता प्राप्ति मात्र एक घटना नहीं होती बल्कि उसके पीछे सामूहिक मुक्ति जैसा महान् संकल्प छुपा होता है। जो जन-जन की स्वतन्त्रता के लिये होता है। क्योंकि मानवीय स्वतन्त्रता के आधार पर ही नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक अति मानवतावादी मूल्यों का भवन टिका होता है। भारतीय संस्कृति सदैव से इन मूल्यों को दृष्टि में रखती आई है। इसलिये स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी स्वतन्त्रता को एक मानवीय मूल्य स्वीकार करते हुए सामूहिक मुक्ति और स्वतन्त्रता पर अत्यधिक बल दिया गया, जिससे देश में एक नवीन चेतना जागृत हुई। इस नवीन चेतना ने साहित्य चिन्तन बोध को अत्यधिक गहराई से प्रभावित किया। फलतः छायावादी युग के कवि व्यक्तित्व को समाज के प्रत्यक्ष दबाव एवं आग्रहों ने अनुप्राणित किया। द्विवेदी युगीन तथा छायावादी कवियों ने राजनैतिक, सामाजिक दबावों का अनुभव किया और उसके प्रति क्रान्ति की भावना से आन्दोलित हुए। उस समय के कवि ने स्वयं को जनमानस की छोटी - से - छोटी संवेदना से जोड़ा। सांस्कृतिक जागरण में हिन्दी उर्दू दोनों भाषा के कवियों ने समान रूप से भाग लिया। पुनर्जागरण के लिये हिन्दी कवियों ने मुसलमानों और अंग्रेजों के शासन काल में आये हुए प्रभावों को

छोड़कर जातीय स्वाभिमान को जगाया और भारतीय मानव में जागृति उत्पन्न की। देश की जनता को जागृत करने के लिये कवियों ने प्रकृति को माध्यम बनाया क्योंकि प्रकृति अनादि काल से साहित्य का विषय रही है। प्रकृति हमारी संस्कृति का एक अंग है। धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताएं सीधे प्रकृति से जुड़ गयी हैं। आधुनिक काल का पूरा छायावादी काव्य एक प्रकार से प्रकृति का ही काव्य है। यहां कवियों ने प्रकृति के शुद्ध रूपों के चित्रण के साथ ही उसे आध्यात्मिकता की उदात्त भूमि पर भी चित्रित किया। भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्ति देने के लिये यहां के फूल, पत्ती, पहाड़, नदी, झरने, तारे, आकाश, सूर्योदय तक को कवि ने काव्य में प्रश्रय दिया। समाज को सुधारने के लिये कवि सामाजिक विषमताओं और पुरानी मान्यताओं के साथ ताल-मेल करने लगा। समाज के साथ ही साथ निजी व्यक्तिगत अनुभूतियों और मान्यताओं को भी प्रधानता दी गई। पाश्चात्य प्रभाव के कारण व्यक्ति का अस्तित्व केन्द्र में आया। इन सारे उतार चढ़ावों घुटन और टूटन के बाद अन्तत: स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यद्यपि स्वतन्त्रता खण्डित थी। जिस अखण्ड भारत की स्वतन्त्रता का स्वप्न हम लेकर चले थे वह पूरा नहीं हो सका फिर भी देशवासियों ने स्वतन्त्रता का हृदय से स्वागत किया।

स्वतन्त्रता के बाद जो भारत प्राप्त हुआ था वह हर दृष्टि से छिन्न-भिन्न हो चुका था। बहुत-सी समस्याएं सामने थीं जिनका समाधान बहुत कठिन था। ऐसे समाज में साहित्यकार का दायित्व बढ़ गया था। स्वतन्त्रता के बाद टूटे-फूटे देश को फिर से खड़ा करना कवि के लिये बहुत जरूरी हो गया था। अत: उस काल के काव्य में दायित्व बोध की चेतना का आगमन हुआ। इसी कारण स्वातन्त्र्योत्तर काव्य के लिये सामूहिक मुक्ति एवं व्यक्ति स्वातन्त्र्य पर आधारित नवीन संस्कृति के निर्माण की भावना क्रियारत रही।

व्याकुल मानवता की संस्कृति की रक्षा का उसके ऊपर आज भार है
उसके ऊपर आज भारत है

भूत भविष्यत् वर्तमान को देख रहा वह आर-पार है
वह ज्ञाता है
दानवता से रौंदे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि[1]

समाज में व्यापक परिवर्तन आने से कवि का दायित्व बढ़ गया। संक्रमण की प्रक्रिया से देश को गुज़रना पड़ा। इस संक्रमण का प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश की एक बहुत ही प्राचीन विशाल विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा रही है। जो समय के प्रकोपों को सहते हुए विजातीय प्रभावों को आत्मसात करती हुई भी अपनी विशिष्टता को बनाये रख सकी है। बीसवीं शताब्दी का पाश्चात्यीकरण चुनौती बनकर आया पाश्चात्य प्रभावों के साथ परम्परागत संस्कारों के समीकरण की समस्या स्वतन्त्रता से पूर्व जितनी नहीं थी उतनी आज हो गयी है। पहले हम प्रकारान्तर से यूरोपीय सभ्यता से भी लड़ रहे थे। लेकिन अंग्रेज जो संस्कार छोड़ गये वह युग व्यापी प्रभाव के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। उन्हें स्वतन्त्रता के बाद तिरस्कृत करना या टाल जाना सम्भव नहीं रहा। आन्तरिक आवश्यकता के कारण भी और स्वतन्त्र भारत की अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के कारण भी। इस प्रकार परम्परा के दबाव को झेलने - टूटने बनने का एक क्रम भारतीय संस्कृति की इस कालावधि में दिखाई पड़ता है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य इसी सांस्कृतिक विकास को इंगित करता है। प्रत्येक संक्रमण पिछले युगों के विध्वंस पर नवीन युग का निर्माण करता है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण युग चेतना को संवेदित करके उसको अभिव्यक्त करने वाले साहित्यकार एवं कवि का दायित्व भी बढ़ जाता है क्योंकि वही समस्त संक्रमण को झेलकर नवीन आस्थाओं एवं मूल्यों का निर्माण करता है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उर्दू दोनों काव्यों ने अपने दायित्वका सजग रूप से अनुभव किया है।

इसी कारण आज की युग चेतना को संवेदित कर उसे अभिव्यक्ति देने वाले

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१- नेमिचन्द जैन : कवि गाता है - तार सप्तक, पृष्ठ- ११

कवि का कर्म भी अत्यधिक बढ़ गया है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं ने उसे चारों ओर से जकड़ लिया है। चाहने पर भी आज का कवि उससे भाग नहीं सकता। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय परिवेश में सांस्कृतिक संघर्ष अपनी विशिष्ट भंगिमाओं के साथ प्रकट हुआ है।

औद्योगिकता और विज्ञान ने हमारी संस्कृति को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज हम जिस युग में जी रहे हैं वहां वह सब कुछ संभव दिखाई देता है जो कभी देवताओं के वश की बात थी। आज विज्ञान की यह आशातीत सफलता सृष्टा को एक गम्भीर चुनौती के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। साहित्य में वह युग ऐसा था जहां प्रकृति की अंधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने का स्वप्न देखा जा रहा था। इस वैज्ञानिक दृष्टि ने पुराने मूल्यों का ध्वंस तो कर दिया किन्तु नये मूल्य निर्मित नहीं हो पा रहे हैं। इस प्रकार प्रगति की अंधी दौड़ में मन-मस्तिष्क से पीछे छूट गया जिससे अभ्यांतरिक जगत की जटिलताएं बढ़ती गयीं और तनाव उत्पन्न होते गये। हमारे देश में भी इस रुग्ण मानसिकता की अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक दंगों सेक्स अपराधों तथा समाज के दुर्बल वर्ग के शोषण में सबसे अधिक मुखर हुई है। इन सारी परिस्थितियों को स्वातन्त्र्योत्तर काव्य ने सजगता से पकड़ा और अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि स्वातन्त्र्योत्तर काव्य देश की सांस्कृतिक चेतना के संघर्ष एवं संस्कार का प्रतिनिधित्व करता है। उसके माध्यम से हम देश के परिवर्तित होते संस्कारों के निर्माण एवं सृजन प्रक्रिया का ज्ञान व्यापक एवं सत्य रूप में देख सकते हैं। एक ओर उसने स्वयं को विश्वव्यापी मानवीय सांस्कृतिक चेतना से व्यापक रूप से जोड़ा है तो दूसरी ओर अपने देश के विशिष्ट संस्कारों एवं उससे उत्पन्न जातीय सांस्कृतिक चेतना के विकास का पूरा भार भी वहन किया है। इसीलिये उसकी सांस्कृतिक चेतना का संक्रमण अधिक अनिश्चित स्थितियों को झेलने वाला रहा है। यही कारण है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उर्दू काव्य में सांस्कृतिक दृष्टि से नवीन चेतना के पूर्व का विध्वंसात्मक एवं नकारात्मक पक्ष ही अधिक उभर कर सामने आया। सांस्कृतिक विघटन के जिस दौर से देश गुजर

रहा है उसे कवि ओजस्वी वाणी देते रहे। विघटन के वातावरण में नई संस्कृति का दृष्टा प्रज्ञा पथ, शायद ही कोई कवि बन सका हो। नवीन संस्कृति के लिये जिस तटस्थता की ज़रूरत है उसका अत्यन्त क्षीण रूप ही हिन्दी उर्दू काव्य में मिलता है।

इस युग की संस्कृति का बना बनाया रूप नहीं मिलता लेकिन सांस्कृतिक चेतना का संघर्ष अवश्य मिलता है जो उसे वैज्ञानिक युग की जागृत प्रज्ञा ने दिया। वैज्ञानिकता के कारण ही नया कवि लौकिक जीवन का पक्षधर है। कवि मानव कल्याण कामना से प्रेरित होकर सृष्टि की समस्त भौतिक समृद्धि को उसके लिये बटोर लेना चाहता है। इस वैभव की वितरण आवश्यकता के लिये कवि विरोध करता है। उसकी आकांक्षा है कि समस्त भौतिक उपलब्धियां समस्त मानव समाज के उपयोग में आए केवल विशिष्ट वर्ग ही इसको अर्जित न करे। वह सबके लिये सा समान रूप से धरती को स्वर्ग बनाना चाहता है--

राग जायें दिशाओं में बिखर
पथ हो जाये उज्ज्वल
और उस पल
इस धरा पर स्वर्ग का गन्धर्व आए उतर
बस इतनी प्रतीक्षा मुझे भी तुम्हें भी[1]।

उर्दू काव्य में भी मानव के लिये इस धरती को स्वर्ग बनाने का संकल्प दिखाई देता है--

इंसानियत को बरक़ा का आला करेंगे हम
अब ~~चलके~~ खाके हुस्न को पूरा करेंगे हम
हर दिल को कारगाहे मोहब्बत बनायेंगे
दुनिया को एक हसीन सी जन्नत बनायेंगे[2]।

- - - - - - - - - - - - - - - -

१- अजितकुमार : दो बातें और एक तर्क- अकेले कण्ठ की पुकार, पृष्ठ-१२
२- शहाब जाफ़री : यह मेरी दुनिया मेरी जन्नत-पूरब का शहर-पृष्ठ- २१८

आस्था का यह लौकिक पक्ष आज के कवि की महान् उपलब्धि मानी जा सकती है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य मानव को अस्तित्व की सार्थकता की दिशा दिखाता है। मानव के प्रति मानव की आस्था को काव्य ने समझा और सामाजिक दायित्व के प्रति भी जागरूकता दिखाई। वह परम्परा से चली आती रूढ़ियों और विसंगतियों को तोड़ने को उद्यत दिखाई देता है। अपनी इच्छा के अनुरूप परिवर्तन करने में जब कवि नाकाम हुआ तो मानसिक तनाव की स्थिति बढ़ती गयी। यह असफलता या खीझ तत्कालीन साहित्य में साफ दिखाई देती है। अपने क्लेश को समाप्त करने के लिये नशा या सेक्स ही दो माध्यम रह गये। बदलती हुई भारतीय परिवेश की सही - सही तस्वीर उस काल के काव्य में लगातार देखने को मिलती है और निश्चय ही सांस्कृतिक संघर्षों की एक नई तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करती है—जो हमें मुक्तिबोध, अज्ञेय, सर्वेश्वरदयाल, भारती आदि के काव्य में साफ़ - साफ़ दिखाई देता है।

बीसवीं शताब्दी हमारे देश में सांस्कृतिक स्तर पर संक्रमण के रूप में प्रस्तुत हुई है। एक तरफ़ पुराने सांस्कृतिक मापदण्ड के आधार पर जीवन और जगत को देखने की परम्परित दृष्टि दूसरी तरफ पाश्चात्य प्रभाव एवं वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टि आज आधुनिकता के प्रभाव में आकर हर व्यक्ति दूसरे से आगे निकलना चाहता है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में यह समस्या और भी जटिल है। यह आधुनिक प्रभाव विशेषकर बहुत अधिक शिक्षित, गुण सम्पन्न और प्रतिभाशाली वर्ग में इस तरह व्याप्त हो गया है कि हमारे समाज को एक तरफ खोखला कर रहा है तो दूसरी तरफ चिन्तन प्रक्रिया को भी नये सिरे से सोचने को बाध्य कर रहा है। क्योंकि ऐश्वर्य और विलासिता की भी एक सीमा होती है। इसकी चरम परिणति व्यक्ति को कभी - कभी सन्यासी भी बना देती है। पश्चिम में जिस नयी संस्कृति का उदय हुआ है वह इसी का परिणाम है। स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य इन परिस्थितियों का स्पर्श करता चल रहा है। हमारे देश में भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव साहित्य में देखने को मिलता है। कवि के मन की कुण्ठा यौन भावना

साहित्य में देखने को मिलता है। कवि के मन की कुण्ठा यौन भावना के रूप में प्रकट हुई। परिवेश की विषमताओं से बचने के लिये कवियों का एक वर्ग नारी देह में मुक्ति खोजने लगा और दूसरा वर्ग प्राचीन सामाजिक मूल्यों और आस्थाओं के साथ वर्तमान परिवेश को जोड़कर देखने लगा। इस चेतना ने हमारी सांस्कृतिक जड़ता को तोड़ा है और मूल्यों में बदलाव लाने का प्रयत्न किया है। यह नवीन दृष्टि उस मानव से जुड़ रही है जो साथ - साथ रहकर भी आत्मिक दृष्टि से दूर हैं। इसी उद्देश्य से स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में सहज प्रवृत्तियों से युक्त आन्तरिक भावों गुण दोषों से युक्त एक नवीन मानव की कल्पना साकार रूप ले रही है जो रुग्ण मानसिकता से सर्वथा मुक्त हो--

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उर्दू काव्यधारा जिस दायित्व और उद्देश्य को लेकर चली है वह पूरा होना कठिन है किन्तु हिन्दी उर्दू कवि एक सुनहरे भविष्य के प्रति आशावान है और एक नयी संस्कृति का जन्म निकट भविष्य में अवश्य होगा इसकी भी उसे आशा है--

धुएं की स्याह बदलों में उभरती हुई
रौशनी की शुआएं सुस्त सी हैं
मगर एक तरफ़ फैलती जा रही है
उफ़ुक से ता उफ़ुक तक जो छाये हुए थे
कुहासे छटने लगे

अपनी वैचारिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिये कवि को अभिव्यक्ति पद्धति में बंधकर काव्य रचना का निर्माण करना पड़ता है। काव्य के सन्दर्भ में अभिव्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत भाषा शैली बिम्ब और प्रतीक आदि आते हैं जिन्हें हम पारम्परिक समीक्षाशास्त्र में कला पक्ष कहते हैं, किन्तु बीसवीं शताब्दी का काव्य बदलती हुई सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण परिवर्तित होती हुई रचना प्रक्रिया

और रूपाकृति को लेकर चला है। इसलिये अपने युग की परिवर्तित मान्यताओं मूल्यों को प्रतिबिम्बित करने के लिये कवियों ने परम्परा से हटकर नये काव्यशास्त्र का निर्माण किया अतएव " यदि नई कविता को कविता के रूप में जांचना - परखना है तो काव्यानुभूति की इस बदली हुई बनावट को ध्यान में रखकर ही कविता की परिभाषा करनी पड़ेगी [१]। अत: सांस्कृतिक परिवर्तन के अनुरूप काव्य भाषा, बिम्ब प्रतीक सभी कुछ बदलते गये। आधुनिक काव्य में जहां परम्परागत बिम्ब और प्रतीक लिये गये वहीं सर्वथा नवीन प्रतीक और बिम्बों का चुनाव भी किया गया। विज्ञान और बौद्धिकता का दबाव यहां भी कवियों पर है। जीवन की भागदौड़ और औद्योगिक युग को अभिव्यक्त करने के लिये इस युग के प्रतीक, बिम्ब सीधे विज्ञान एवं बौद्धिकता से जुड़ गये किन्तु यहां भी एक संक्रमण और संघर्ष की स्थिति दिखाई देती है। एक ओर अपने संस्कार और परम्परा को कवि ने वर्तमान जीवन के साथ जोड़कर देखा है जैसे सीता, राम, अभिमन्यु, कुन्ती, बुद्ध, हुसैन, ईसा, मरियम जैसे पात्र सीधे जीवन की विषमताओं के प्रतीक बन गये हैं और दूसरी ओर वर्तमान परिवेश से लिये गये प्रतीक और बिम्बों को भी काव्य में अभिव्यक्ति दी गयी है।

इस प्रकार इस पूरे युग में लगातार कवियों पर परम्परा का दबाव और उसके साथ वर्तमान जीवन की जटिलताओं के ताल मेल की समस्या रही है। " भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि यहां प्राचीन काल से इतिहास पूर्व की बात छोड़ भी दें तो बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, नानक, कबीर, तिरुवल्लुवर, ज्ञानदेव, तुकाराम आदि का समता ज्ञान और प्रेम से पूरित मार्गदर्शन मिलता रहा [२] विभिन्न युगों में पैदा हुए मनीषियों ने एक ऐसी सांस्कृतिक परम्परा प्रदान की जो हजारों वर्षों बीत जाने के बाद भी इसकी मान्यताएं इतनी ठोस हैं कि भिन्न - भिन्न युगों में उठने वाले तूफान के झोंके जो आज तक लगातार इस देश में उठते रहे इसकी दीवारों को नहीं हिला सके। अत: इस परम्परा और वर्तमान परिवेश का समीकरण आज के साहित्य का मुख्य प्रश्न है। आधुनिक विश्व की समस्याएं आज भारतीय संस्कृति

के लिये एक चुनौती बनकर खड़ी हैं और कवि के सामने प्रश्न है " वसुधैवकुटुम्बकम् " के आदर्श को किस प्रकार बनाए रखा जाये जबकि स्थितियां इतनी जटिल होती जा रही हैं। इसलिये इस युग में " संस्कृति " का बना बनाया रूप तो नहीं दिखाई देता लेकिन परम्परा के दबाव को झेलने और इसके बाद टूटने तथा पुन: बनने का एक सांस्कृतिक क्रम अवश्य स्पष्ट है।

## सन्दर्भ तथा सहायक ग्रन्थों की अनुक्रमणिका

### १- मूल ग्रन्थ हिन्दी तथा उर्दू


| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १- | अतुकान्त | लक्ष्मीकांत वर्मा | १९६८ | भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी |
| २- | अन्धा युग | धर्मवीर भारती | १९५५ | किताब महल प्रयाग |
| ३- | अपरा | सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` | चतुर्थ सं० २०१७ वि० | प्रयाग साहित्यकार संसद |
| ४- | अरी ओ करुणा प्रभामय | अज्ञेय | १९५५ | भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन,वाराणसी |
| ५- | अंधेरी आकृतियों के पास | सत्यपाल | १९७० | इकाई प्रकाशन पुरुषोत्तमनगर, इलाहाबाद |
| ६- | अंजलि | रामकुमार वर्मा | -- | साहित्य भवन प्रयाग |
| ७- | अनामिका | निराला | २०१५वि० | भारती भण्डार इलाहाबाद |
| ८- | अकेले कण्ठ की पुकार | अजित कुमार | १९५८ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ९- | अपनी शताब्दी के नाम | दूधनाथ सिंह | १९६७ | भारती ज्ञानपीठ वाराणसी |
| १०- | अनुपस्थित लोग | भारतभूषण अग्रवाल | १९६५ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ११- | अम्न का सितारा | अली सरदार जाफरी | १९५० | कुतुब पब्लिशर्स लि० बम्बई |
| १२- | अल्फाज़ का सफर | बशीर गाजीपुरी | १९७६ | मकतबए आदर्श गया, बिहार |
| १३- | आंसू | जयशंकर प्रसाद | १९८२ | भारती भण्डार इलाहाबाद |
| १४- | आकाशगंगा | रामकुमार वर्मा | | |
| १५- | आतिशे सैय्याल | साजदा जैदी | १९७२ | मक्तबे जामिया दिल्ली |
| १६- | आत्मजयी | कुंवरनारायण | १९६५ | भारती ज्ञानपीठ-प्रकाशन, वाराणसी |
| १७- | आंगन के पार द्वार | अज्ञेय | १९६१ | भारती ज्ञानपीठ-प्रकाशन, काशी |
| १८- | आवाज़ का जिस्म | मंसूर सईदी | १९७२ | मकतबए जामिया दिल्ली |
| १९- | आवाजों के घेरे | दुष्यन्तकुमार | १९६३ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| २०- | आख़िरी दिन की तलाश | मुहम्मद अल्वी | १९६८ | शबखूं किताब घर रानी मण्डी, इलाहाबाद |
| २१- | आत्म हत्या के विरुद्ध | रघुवीर सहाय | १९६७ | भारती ज्ञानपीठ-प्रकाशन, वाराणसी |
| २२- | आत्मोत्सर्ग | सियारामशरण गुप्त | -- | चिरगांव, साहित्य सदन झांसी |
| २३- | इतिहास पुरुष | डा० देवराज | १९६५ | भारती ज्ञानपीठ वाराणसी |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| २४- | इकाई | बशीर बद्र | १९६६ | कालेज एण्ड यूनिवर्सिटी - बुकस्टाल, अलीगढ़ |
| २५- | इन्द्र धनु रौंदे हुए ये | अज्ञेय | १९५७ | सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद |
| २६- | इस्मे आज़म | शहरयार | १९६५ | इण्डियन बुक हाउस अलीगढ़ |
| २७- | इमेज | बशीर बद्र | १९७४ | नुसरत पब्लिशर्स विक्टोरिया स्ट्रीट, लखनऊ |
| | इत्यलम् | अज्ञेय | | प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली |
| २८- | उर्वशी | दिनकर | १९६१ | उदयाचल प्रकाशन, पटना |
| २९- | एक ख्वाब और | अली सरदार जाफ़री | १९६५ | -- |
| ३०- | एक कण्ठ विषपायी | दुष्यन्तकुमार | १९६३ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |
| ३१- | एक उठा हुआ हाथ | भारत भूषण अग्रवाल | १९७० | ,, |
| ३२- | एक पुरुष और | डा० विनय | १९७४ | ,, |
| ३३- | ओ अप्रस्तुत मन | भारत भूषण अग्रवाल | १९५८ | भारती भण्डार लीडरप्रेस, इलाहाबाद |
| ३४- | कलामे फैज़ | फैज़ अहमद फैज़ | १९८२ | एजूकेशनल बुक हाउस, मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ |
| ३५- | कुंकुम | बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' | १९३६ | गणेश शंकर विद्यार्थी-प्रकाशन, कानपुर |
| ३६- | कुकुरमुत्ता | निराला | १९६७ नया संस्करण | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |
| ३७- | कविताएं | कीर्ति चौधरी | १९५८ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ३८- | कामायनी | प्रसाद | १९७५ | ,, |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ३९- | कबीर ग्रन्थावली | सं० डा० श्यामसुन्दर | ८वां संस्करण | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| ४०- | कानन कुसुम | प्रसाद | | |
| ४१- | कबीर वचनावली | सं० अयोध्या सिंह उपाध्याय- | प्र०सं० १९०८ | भारती भण्डार काशी |
| ४२- | कुरुक्षेत्र | दिनकर | सं० २००३ | उदयाचल प्रेस, पटना |
| ४३- | कुल्लियाते अकबर भाग-१,२,३,४ | अकबर इलाहाबादी | १९५२ | अकबर मेमोरियल कमेटी इलाहाबाद |
| ४४- | काले कागज़ की नज़्में | बाकर मेहन्दी | १९५७ | गोशए अदब आर्कीड्या बिल्डिंग, बम्बई |
| ४५- | किसान | मैथिली शरण गुप्त | प्र०संस्करण | चिरगांव, साकेत प्रकाशन झांसी |
| ४६- | कुरामलामत | कृष्णमोहन | १९७६ | नेशनल एकेडमी दरियागंज, दिल्ली |
| ४७- | कागज़ी पैरहन | ख़लीलुर्रहमान आज़मी | १९५५ | आज़ाद किताब घर कला महाल, दिल्ली |
| ४८- | कला और बूढ़ा चांद- | पंत | १९५९ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ४९- | कनुप्रिया | धर्मवीर भारती | ,, | भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ५०- | काठ की घंटियां | सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | ,, | भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ५१- | कुरान (उर्दू अनुवाद एवं व्याख्या सहित) | मौलाना शाह मो० अहमद खान, सैय्यद मो० नईमुद्दीन | | कुतुब खाना, इशाअतुल इस्लाम दिल्ली |
| ५२- | कुआनो नदी | सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | १९७३ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ५३- | कुल्लियाते इकबाल | डा० इकबाल | -- | न्यूताज आफिस बरकी प्रेस, दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ५४- | खाबे तमाशा | कुमार पाशी | १९६८ | नाजिश बुक सेण्टर दिल्ली |
| ५५- | खाली मकान | मुहम्मद अल्वी | १९६३ | मकतबए, सौगात बलाक्यारोड, बंगलौर |
| ५६- | खिस्तर दीवार | कुँवर रिज़वी | १९७९ | मकतबए शोअ्रम जाहि मार्केट, हैदराबाद |
| ५७- | गीतिका | निराला | २०१८ वि० | भारती भण्डार प्रयाग |
| ५८- | गन्धे सोख़्ता | शम्सुर्रहमान फारूकी | १९६९ | शबखू किताबघर रानी मण्डी, इलाहाबाद |
| ५९- | गुले नग़मा | फिराक़ गोरखपुरी | १९७२ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |
| ६०- | ग्राम्या | पंत | २०१२ वि० | भारती भण्डार प्रयाग |
| ६१- | गुंजन | ,, | १९४१ | भारती भवन, प्रयाग |
| ६२- | ग्रन्थि | ,, | १९३९ | इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग |
| ६३- | गीत फरोश | भवानी प्रसाद मिश्र | १९५९ | नयाहिन्द प्रकाशन हैदराबाद |
| ६४- | गर्म हवाएं | सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली |
| ६५- | गुफ़्तनी | मख़मूर सईदी | १९६० | मकतब ए तहरीक दरियागंज, दिल्ली |
| ६६- | गुरुकुल | मैथिलीशरण गुप्त | १९८५ | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| ६७- | चक्रवाल | दिनकर | १९५६ | उदयाचल प्रकाशन, पटना |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ६८- | चन्द्रगुप्त मौर्य | प्रसाद | सं० २००२ | भारती भण्डार, प्रयाग |
| ६९- | चक्रव्यूह | कुंवरनारायण | १९५६ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| ७०- | चांद का मुंह टेढ़ा है | मुक्तिबोध | १९६४ | भारती ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली |
| ७१- | चौंसठ कविताएं | इन्दु जैन | १९६४ | भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ७२- | चिदंबरा | पंत | १९५९ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| ७३- | चांदनी आषाढ़ की | राजनारायण राज़ | १९६७ | मकतबए मख्वर नई दिल्ली |
| ७४- | चुभते चौपदे | अयोध्यासिंह उपाध्याय | १९२४ | खड्गविलास प्रेस, पटना |
| ७५- | जज़्बे ख्यात | ज़ाहिदा जैदी | १९७० | मकतबे जामिया जामियानगर, दिल्ली |
| ७६- | जरस | वामिक जौनपुरी | १९५० | दानिश महल, लखनऊ |
| ७७- | जयद्रथ वध | मैथिली शरण गुप्त | २०२२ | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| ७८- | जूझते हुए | सुरेन्द्र तिवारी | १९७१ | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली |
| ७९- | जायसी ग्रन्थावली | पं० रामचन्द्र शुक्ल | २०१७ वि० | नागरी प्रचारिणी सभा, काशी |
| ८०- | जो बंध न सका | गिरिजा कुमार माथुर | १९६८ | भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ८१- | जंगल का दर्द | सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | १९६७ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| ८२- | जलता घर | श्रीकान्त वर्मा | १९७३ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| ८३- | जम्हूर | अली सरदार जाफ़री | १९७८ | नयायुग पब्लिकेशन्स चांदनी चौक, दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| ८४- | विरह | श्रीकान्त वर्मा | द्वितीय संस्करण | संभावना प्रकाशन, हापुड़ |
| ८५- | झरना | प्रसाद | 2008 वि० | भारती भण्डार, प्रयाग |
| ८६- | टूटे शीशे की आख़री नज़्में | बाक़र मेहन्दी | १९७२ | गोशएअदब, बम्बई |
| ८७- | ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएं- | धर्मवीर भारती | १९५२ | साहित्य भवन, इला० |
| ८८- | तराशीदा | शाद तमकनत | १९६६ | नेशनल बुक डिपो हैदराबाद |
| ८९- | तीसरा अंधेरा | कैलाश वाजपेयी | १९७२ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ९०- | तीसरा पथ | लक्ष्मीकान्त वर्मा | १९७५ | भारती ज्ञानपीठ दिल्ली |
| ९१- | दस्तख़त | सादिक़ | १९७३ | दकन पब्लिशर्स मक़बूल गेट औरंगाबाद |
| ९२- | दस्तेसबा | फ़ैज़ | १९७१ | एजूकेशनल बुक हाउस मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ |
| ९३- | देहान्त से हटकर | कैलाश वाजपेयी | १९६७ | अक्षर प्रकाशन, दिल्ली |
| ९४- | दयारे सहर | अली जवाद ज़ैदी | १९६० | हाली पब्लिकेशन, दिल्ली |
| ९५- | दीवारों पर ख़ून | चन्द्रकान्त देवताले | १९७५ | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली |
| ९६- | द्वापर | मैथिलीशरण गुप्त | २००५ सं० | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| ९७- | दो चट्टानें तथा अन्य कविताएं | हरिवंशराय बच्चन | १९६५ | राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली |
| ९८- | दीपशिखा | महादेवी वर्मा | सं०२०११ | भारती भण्डार, इला० |
| ९९- | धूप के धान | गिरिजाकुमार माथुर | १९५५ | भारती ज्ञानपीठ, काशी |
| १००- | धरती का लिम्स | वाजिदा ज़ैदी | १९७५ | ज़ाकिरबाग मुस्लिमयूनिवर्सिटी अलीगढ़ |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १०१- | धार के इधर-उधर | हरिवंशराय बच्चन | १९५७ | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली |
| १०२- | नग्माज़ार | हफ़ीज़ जालन्धरी | प्र०सं० | दफ़्तर शाहनामए इस्लाम, माडल टाउन, लाहौर |
| १०३- | नीरजा | महादेवी वर्मा | १९४१ | इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद |
| १०४- | नाव के पांव | जगदीश गुप्त | १९५५ | विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर |
| १०५- | नये सुभाषित | दिनकर | १९५७ | उदयाचल प्रकाशन पटना |
| १०६- | नक्शो निगार | जोश | १९५४ | कुतुबख़ाना ताज, बम्बई |
| १०७- | नया अहदनामा | ख़लीलुर्रहमान आज़मी | १९६५ | इण्डियन बुक हाउस अलीगढ़ |
| १०८- | नाटक जारी है | लीलाधर जगूड़ी | १९७२ | अक्षर प्रकाशन, दिल्ली |
| १०९- | नवाए तीशा | ज़फ़र हमीदी | प्र० सं० | लेबिल लेथू प्रेस, पटना |
| ११०- | नये पत्ते | निराला | १९६२ | निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग |
| १११- | नीमख़्वाब | उन्वान चिश्ती | १९६८ | उर्दू समाज जामियानगर दिल्ली |
| ११२- | नयी दुनिया को सलाम | अली सरदार जाफ़री | १९७२ | मकतबए जामिया लि० दिल्ली |
| ११३- | नकुल | सियारामशरण गुप्त | 2003 वि० | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| ११४- | पैराहने शरर | अली सरदार जाफ़री | १९६६ | सत्कार सदन, बम्बई |
| ११५- | प्रिय प्रवास | अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध | सं० २०२१ | हिन्दी साहित्य कुबेर |
| ११६- | पद्य-प्रबन्ध | मैथिलीशरण गुप्त | 2026 वि० | चिरगांव, साहित्य-सदन, झांसी |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ११७- | पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं | अज्ञेय | १९७४ | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली |
| ११८- | प्रभाती | सोहनलाल द्विवेदी | १९४६ | प्रयाग साहित्य भवन |
| ११९- | पत्थरों का मौसम्मी | वहीद अख्तर | १९६६ | उर्दू घर, अलीगढ़ |
| १२०- | पल्लव | पंत | १९२६ | इण्डियन प्रेस, प्रयाग |
| १२१- | पता पता, बूटा-बूटा | फरहत कैफ़ी | १९७२ | शालीमार पब्लिकेशन इलाहाबाद |
| १२२- | पद्म प्रसून | अयोध्यासिंह उपाध्याय | १९८२ वि० | खड्गविलास सराय हिन्दी पुस्तक भवन |
| १२३- | परिवेश हम तुम | कुंवरनारायण | २०१८ वि० | भारतीय भण्डार, इला० |
| १२४- | पृथ्वी राज रासो | चन्द्रबरदाई | १९१२ | नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी |
| १२५- | पथिक | रामनरेश त्रिपाठी | १९५६ | प्रयाग हिन्दी मन्दिर |
| १२६- | पलकों किरन का बोझ | मोहनी तबस्सुम | १९७० | माडर्न पब्लिशिंग हाउस दिल्ली |
| १२७- | परिमल | निराला | १९६८ | गंगा पुस्तक माला लखनऊ |
| १२८- | प्रलय सृजन | शिवमंगल सिंह | १९४५ | प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद |
| १२९- | प्यासी पथराई आंखें | नागार्जुन | १९८२ | नामिका प्रकाशन नया बैरहना, इलाहाबाद |
| १३०- | पुराने मौसमों की आवाज़ | कुमार पाशी | १९६६ | नाशिश बुक सेन्टर दिल्ली |
| १३१- | पल्लविनी | पंत | २००४ वि० | प्रयाग, भारती भण्डार इलाहाबाद |
| १३२- | प्रारम्भिक रचनाएं | बच्चन | १९४३ | भारती भण्डार, प्रयाग |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १३३- | पद्मावत | जायसी, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल | २०१२ वि० | |
| १३४- | फिलहाल | अशोक वाजेपयी | १९७० | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| १३५- | फूल नहीं रंग बोलता है- | केदारनाथ अग्रवाल | १९६५ | परिमल प्रकाशन, इला० |
| १३६- | बंगाल का काल | हरिवंशराय बच्चन | १९४३ | सेन्ट्रल बुक डिपो, इला० |
| १३७- | बापू | सियारामशरण गुप्त | प्र०सं० | साहित्य सदन, झांसी |
| १३८- | बिहारी सतसई | बिहारी | -१८८१ | खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई |
| १३९- | बापू | दिनकर | १९४७ | उदयाचल प्रेस, पटना |
| १४०- | बयाज़े शाम | शादतम कनत | १९७३ | मकतबए शेर व हिकमत हैदराबाद |
| १४१- | बावरा अहेरी | अज्ञेय | १९४७ | सरस्वती प्रकाशन, काशी |
| १४२- | बिन्त लम्हात | अख्तरुल ईमान | १९६६ | रखशंदा किताबघर बम्बई |
| १४३- | बेला | निराला | १९४३ | निरुपमा प्रकाशन, इला० |
| १४४- | बांस का पुल | सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | -१९६३ | सम्भाव प्रकाशन, लखनऊ |
| १४५- | बशारत | अख्तर अंसार | १९७५ | बनाम बुक डिपो, बम्बई |
| १४६- | भारतेन्दु ग्रन्थावली | सं० शिवप्रसाद मिश्र | सं० २०२७ | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| १४७- | भैरवी | सोहनलाल द्विवेदी | १९४१ | इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग |
| १४८- | भारत भारती | मैथिलीशरण गुप्त | सं० २०२६ | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| १४९- | मेरी हदीसे उम्र गुरेज़ां- | आनन्दनारायण मुल्ला | १९६३ | इण्डियन प्रेस, इला० |
| १५०- | मछलीघर | विजयदेवनारायण साही | १९६६ | भारती भण्डार, इला० |
| १५१- | मंगल घट | मैथिलीशरण गुप्त | १९९४ वि० | साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी |

| क्रमांक पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| १५२- महाप्रस्थान | नरेश मेहता | १९७५ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |
| १५३- महाराणा का महत्व | प्रसाद | सं० २०२५ | भारती भण्डार, इला० |
| १५४- मिलन | रामनरेश त्रिपाठी | १९८५ वि० | हिन्दी मन्दिर, प्रयाग |
| १५५- मिलन यामिनी | बच्चन | १९५६ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| १५६- मिट्टी की बारात | शिवमंगल सिंह सुमन | १९७२ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| १५७- मौर्यविजय | सियाराम शरण गुप्त | प्रथम सं० | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| १५८- मानसी | रामनरेश त्रिपाठी | १९३४ | हिन्दी मन्दिर, प्रयाग |
| १५९- माया दर्पण | श्रीकान्त वर्मा | १९६७ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी |
| १६०- यातना का सूर्य पुरुष | वीरेन्द्रकुमार जैन | १९६६ | अतीना प्रकाशन बम्बई |
| १६१- यादें | अख्तरुल ईमान | १९६१ | रक्षन्दा किताब घर बम्बई |
| १६२- युग्म | जगदीश गुप्त | १९७३ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली |
| १६३- यामा | महादेवी वर्मा | १९५७ | भारती भण्डार, इला० |
| १६४- युग की गंगा | केदारनाथ अग्रवाल | १९४७ | हिन्दी ज्ञान मन्दिर बम्बई |
| १६५- युगपथ | पंत | २००६ वि० | भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद |
| १६६- युगवाणी | ,, | १९९६ वि० | प्रयाग, भारती भण्डार |
| १६७- युगान्त | ,, | १९३६ | इण्टर प्रिंटिंग वर्क्स, अल्मोड़ा |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १६८- | ये सम्पुट सीपी के | कुमार विमल | १६७२ | अनुपम प्रकाशन, पटना |
| १६९- | रेणुका | दिनकर | १९५४ | अजन्ता प्रेस, पटना |
| १७०- | रिश्ता गूँगे सफर का | मज़हर इमाम | १९७४ | शबस्तां किताब घर, इला० |
| १७१- | रक्त चन्दन | नरेन्द्र शर्मा | २००६ वि० | प्रयाग भारती भण्डार |
| १७२- | रोशनी के दरीचे | एहतेशाम हुसैन | १९७३ | एहतेशाम एकेडमी नूरउल्ला रोड, इला० |
| १७३- | रेती के फूल | दिनकर | १९५४ | उदयाचल प्रकाशन, पटना |
| १७४- | रूप तरंग | रामविलास शर्मा | १९५६ | विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा |
| १७५- | रात और शहनाई | रामनाथ अवस्थी | १९५४ | लहर प्रकाशन मिण्टो रोड, इला० |
| १७६- | रामचरित मानस | तुलसी | १५वां सं० | गीताप्रेस, गोरखपुर |
| १७७- | लफ़्ज़ों का पुल | निदा फ़ाज़ली | १९६९ | न्यू राइटर्स पब्लिकेशन बम्बई |
| १७८- | लम्हां | गुलाम मुर्तज़ा राही | -- | -- |
| १७९- | लोकायतन | पंत | १९६४ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| १८०- | लावा और फूल | शील | १९५७ | संस्कार प्रकाशन, कानपुर |
| १८१- | लहर | प्रसाद | २०१३ सं० | भारतीभण्डार, इला० |
| १८२- | लहर-लहर नदिया गहरी | कुँवर रिज़वी | १९६४ | मकतबए सबा, हैदराबाद |
| १८३- | विडम्बना | शिवमंगल सिंह सुमन | १९४८ | सरस्वती प्रेस, बनारस |
| १८४- | विलास यात्रा | कुमार पाशी | १९७१ | नेशनल एकेडमी, दिल्ली |
| १८५- | विन्ध्य हिमाचल | शिवमंगल सिंह सुमन | १९६६ | आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली |
| १८६- | शबगश्त | अमीक़ हन्फ़ी | १९६९ | शबस्तां किताब घर रानी मण्डी, इलाहाबाद |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १८७- | शीशों की सलीब | करामतअली करामत | १९७२ | शब्दं किताबघर रानी मण्डी, इला० |
| १८८- | शब का रज़्मिया | वहीद अख़्तर | १९७३ | मकतबए शेरो हिकमत बाज़ार नूरुलउमरा, हैदराबाद |
| १८९- | शंबरे सदा | रफ़ीक़ हन्फ़ी | १९७५ | नुसरत पब्लिशर्स, लखनऊ |
| १९०- | शिवाबावनी | भूषण | -- | -- |
| १९१- | शब्द दंश | जगदीश गुप्त | १९५९ | भारती भण्डार, प्रयाग |
| १९२- | शीराज़ए-मिज़गाँ | कृष्णमोहन | १९७१ | शब्दं किताब घर रानी मण्डी, इला० |
| १९३- | शिला पंख चमकीले | गिरिजाकुमार माथुर | १९६१ | साहित्य भवन, इला० |
| १९४- | शोल-ए-तिश्नगी | जावेद वशिष्ट | १९६२ | हल्क़ए अरबाबे फ़िक्र दिल्ली |
| १९५- | शिल्पी | पंत | १९५२ | सेन्ट्रलबुक डिपो, प्रयाग |
| १९६- | शोल-ए-तूर | जिगर मुरादाबादी | — | उस्मानिया बुक डिपो हैदराबाद |
| १९७- | शहर अब भी संभावना है | अशोक वाजपेयी | १९६६ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| १९८- | शहपर | हुर्मतुलइकराम | १९७३ | पी०के० पब्लिकेशन दरियागंज, दिल्ली |
| १९९- | संसद से सड़क तक | धूमिल | १९७२ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| २००- | स्वाति की एक बूंद | आनन्दनारायण मुल्ला | १९७३ | जश्न मुल्ला कमेटी अकबर मैन्शन, लखनऊ |
| २०१ | संक्रान्त | कैलाश वाजपेयी | १९६४ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी |
| २०२- | साकेत | मैथिलीशरण गुप्त | २०२६ सं० | साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी |

| क्रमांक पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| २०३- सफ़र मदाम सफ़र | बलराज कोमल | १९६६ | शब्बू किताब घर रानी मण्डी, इला० |
| २०४- सबरंग | मजरूर सईदी | १९७५ | अन्जुमन तरक्की उर्दू हिन्दी, दिल्ली |
| २०५- संशय की एक रात | नरेश मेहता | १९६२ | हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई |
| २०६- सतरंग पंखों वाली | नागार्जुन | १९५९ | यात्री प्रकाशन, कलकत्ता |
| २०७- स्कन्द गुप्त | प्रसाद | १९७३ | भारती भण्डार, प्रयाग |
| २०८- सुबहेवतन | मखमूर | १९५५ | इण्डियन प्रेस लि० इलाहाबाद |
| २०९- सन फ्लावर और अन्य कविताएं | सतीश वर्मा | १९७५ | साहित्य संघ, मानसिंह हाल्वे, जयपुर |
| २१०- समानान्तर सुने | शान्ता सिन्हा | १९५८ | संज्ञा प्रकाशन, पटना |
| २११- स्वर्ण धूलि | पंत | १९४७ | भारती भण्डार, इला० |
| २१२- सात गीत वर्ष | धर्मवीर भारती | १९५९ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी |
| २१३- समुद्र फेन | रमासिंह | १९५७ | उदयन प्रकाशन, लखनऊ |
| २१४- सूरज का शहर | शहाब जाफ़री | १९६७ | मुमताज दारुरौर माडल टाउन, दिल्ली-९ |
| २१५- सहरा की प्यास | शबाबललित | १९७३ | पी०के०पब्लिशर्स दरियागंज, दिल्ली |
| २१६- स्वदेश संगीत | मैथिलीशरण गुप्त | प्र० सं० | साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी |
| २१७- सुमन-व-सबा | जोश मलीहाबादी | -- | मुफीदे आम प्रेस निकल्सन रोड, दिल्ली |
| २१८- सामधेनी | दिनकर | २००९ सं० | अजन्ता प्रेस, पटना |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| २१९- | सातवाँदर | शहरयार | १९६९ | शब्दं किताब घर इलाहाबाद |
| २२०- | सूर्य का स्वागत | दुष्यन्तकुमार | १९५७ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| २२१- | सीढ़ियों पर धूप में | रघुवीर सहाय | १९६० | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी |
| २२२- | हिमतरंगिनी | माखनलाल चतुर्वेदी | १९५५ | भारतीभण्डार, इला० |
| २२३- | हरी घास पर क्षण भर | अज्ञेय | १९४९ | प्रगति प्रकाशन, दिल्ली |
| २२४- | हल्दीघाटी | श्यामनारायण पाण्डेय | १९४० | इण्डियन प्रेस, इला० |
| २२५- | हुंकार | दिनकर | १९५५ | अजन्ता प्रेस, पटना |
| २२६- | हिमकिरीटनी | माखनलाल चतुर्वेदी | १९६३ | भारती भण्डार, प्रयाग |
| २२७- | हम विषपायी जनम के | बालकृष्ण शर्मा नवीन | प्र०सं०१९६४ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन [illegible], काशी |
| २२८- | हिन्दू | मैथिलीशरण गुप्त | २०२६ सं० | साहित्य सदन चिरगाँव, झांसी |
| २२९- | एक तरंग | बसंत सियानी | -- | -- |

## अंग्रेजी पुस्तकें


| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १- | आक्सफोर्ड शब्दकोश | | | आक्सफार्ड,लन्दन |
| २- | अवर हैरिटेज | हुमायूं कबीर | | |
| ३- | इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज़ भाग-४ | सं० सल्विन जानसन | | द मैकमिलन कम्पनी एम०सी ०एम०एल० १०१, न्यूयार्क |
| ४- | इन्साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटानिका वाल्यूम XII | | | इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका लि० शिकागो, लन्दन टोरेण्टो |
| ५- | इन्फ्लुएन्स आफ़ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर | डा० ताराचन्द | १९६३ | इण्डियन प्रेस,इला० |
| ६- | ए डिफेन्स आफ पोयट्री | शैली | १९३२ | आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस,लन्दन |
| ७- | एन्थ्रोपालाजी | दे० ए० एल० क्रेबर | १९४८ | जार्ज जी हेरेप रोड कम्पनी लि०,लन्दन |
| ८- | डिस्कवरी आफ इण्डिया | पं० जवाहरलाल नेहरू लन्दन एडीशन- | | |
| ९- | द पोलटिक इमेज | सी० डे० लुइस | १९४६ | जानथन केप,लन्दन |
| १०- | प्रिंसिपल आफ लिटरैरी क्रिटीसीज़्म | आइ० ए० रिचर्ड्स | १९४७ | राउतलज एण्ड की गेन लन्दन |
| ११- | प्रिमिटिव कल्चर | ई०वी० टायलर | १९०३ | जानमेर प्रेस,लन्दन |
| १२- | मेक इट न्यू | एज़रा पाउण्ड | | |
| १३- | वर्ल्ड आफ़ इमेजरी | स्टीफ़ेन जे ब्राउन | | |
| १४- | शारटर इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम | | १९५३ | नीदरलैण्ड्स एकेडमी |

## 2- आलोचनात्मक ग्रन्थ हिन्दी उर्दू

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १- | अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य | कुमार विमल | १९६५ | पराग प्रकाशन, पटना |
| २- | अशोक के फूल | हजारीप्रसाद द्विवेदी | १९४८ | सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली |
| ३- | अस्तित्ववाद और नई कविता- | प्रकाश दीक्षित | पु०सं० | अनादि प्रकाशन कटरा, इलाहाबाद |
| ४- | अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या | रामस्वरूप चतुर्वेदी | १९६८ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी |
| ५- | आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ | नरेन्द्रमोहन | १९७३ | आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली |
| ६- | आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास | केदारनाथ सिंह | १९७१ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली |
| ७- | आधुनिकता और राष्ट्रीयता | रामकमल बोहरा | १९७३ | मारवाड़ विश्वविद्यालय औरंगाबाद |
| ८- | आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प | कैलाश वाजपेयी | १९६३ | आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली |
| ९- | आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग | शंकरदेव अवतरे | १९६२ | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली |
| १०- | आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना | डा० सुधाकरशंकर कलवडे | -१९७३ | पुस्तक संस्थान नेहरूनगर, कानपुर |
| ११- | आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां | डा० नगेन्द्र | १९६२ | गौतम बुक डिपो दिल्ली |
| १२- | आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास | बच्चन सिंह | १९८६ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १३- | आधुनिक हिन्दी साहित्य | लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय | १६५२ | हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रकाशन, इला० |
| १४- | आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका | शम्भूनाथ पाण्डेय | १६६४ | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा |
| १५- | आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत | केसरी नारायण शुक्ल | प्र०सं० | वाराणसी विद्यामन्दिर, वाराणसी |
| १६- | आधुनिक साहित्य | नन्ददुलारे वाजपेयी | २०१३ वि० | भारती भण्डार, इला० |
| १७- | आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास | श्रीकृष्णलाल | १९६५ | हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रकाशन, इला० |
| १८- | इस्लाम के सूफी साधक | निकल्सन अनु०- नर्मदेश्वर चतुर्वेदी | १९६१ | मित्र प्रकाशन, इला० |
| १६- | इतिहास के आइने में हिन्दू मुसलमान | सैय्यद महमूद | १६७५ | हिन्दुस्तान कल्चर सोसायटी, साउथ मलाका, इलाहाबाद |
| २०- | उर्दू शायरी का समाजी पसमंजर | डा० एजाज़ हुसैन | १६६८ | कारवां पब्लिशर्स मिण्टोरोड, इला० |
| २१- | उर्दू शायरी का मिज़ाज | वज़ीर आगा | -- | -- |
| २२- | उर्दू शायरी में जदीदियत की रवायत | उन्वान चिश्ती | १६७० | उर्दू समाज जामियानगर दिल्ली |
| २३- | उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | प्रो० एहतेशाम हुसैन | १६८४ | लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद |
| २४- | कौमी तहज़ीब का मसला | आबिद हुसैन | १६५५ | अंजुमन तरक्की ए उर्दू, अलीगढ़ |
| २५- | कविता के नये प्रतिमान | डा० नामवर सिंह | १६७४ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| २६- | काव्य बिम्ब | डा० नगेन्द्र | १६६७ | नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| २७- | काव्य की भूमिका | दिनकर | १६५८ | उदयाचल,आर्यकुमार रोड, पटना |
| २८- | कला साहित्य और समीक्षा | भगीरथ मिश्र | प्र०सं० १९६३ | भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली |
| २९- | काव्य कला तथा अन्य निबन्ध | प्रसाद | १९७२ | अशोक प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद |
| ३०- | कामायनी में काव्य,संस्कृति और दर्शन | द्वारिकाप्रसाद सक्सेना | २०१४ वि० | वि०पु०म०, आगरा |
| ३१- | कला और संस्कृति | वासुदेव शरण अग्रवाल | १९५२ | प्रयाग-साहित्य भवन |
| ३२- | काव्य में अप्रस्तुत योजना | रामदहिन मिश्र | सं०-२००५ | ग्रन्थमालाकार्यालय, पटना |
| ३३- | चिन्तामणि भाग-२ | रामचन्द्र शुक्ल | १९७३ | इण्डियन प्रेस, प्रयाग |
| ३४- | छायावादोत्तर काव्य में बिम्ब-विधान | डा० उमावंश | १९७४ | आर्यबुक डिपो, नईदिल्ली |
| ३५- | छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि | डा० कमलाप्रसाद पाण्डे | १९७२ | १९७० रचना प्रकाशन इलाहाबाद |
| ३६- | छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ | डा० टी०एन० मुरली कृष्णाम्मा | १९८६ | वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली |
| ३७- | छायावाद का काव्य शिल्प | प्रतिमा कृष्णाबल | १९७१ | राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली |
| ३८- | जन समाज और संस्कृति :एक समग्र दृष्टि | विष्णुप्रभाकर | १९८१ | प्र०वि०सूचना और प्रसारण विभाग, दिल्ली |
| ३९- | जदीद उर्दू अदब | मुहम्मद हसन | १९७५ | मकतबा जामिया, दिल्ली |
| ४०- | जायसी की बिम्ब योजना | सुधा सक्सेना | प्र०सं० १९६६ | अशोक प्रकाशन, दिल्ली |
| ४१- | द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास | लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय | १९७३ | राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ४२- | नई कविता के प्रतिमान | लक्ष्मीकान्त वर्मा | सं० २०१४ | भारतीय प्रेसप्रकाशन इलाहाबाद |
| ४३- | नया साहित्य नये प्रश्न | नन्ददुलारे बाजपेयी | १९५६. | भारती भण्डार, इला० |
| ४४- | नई कविता स्वरूप और समस्याएं | जगदीश गुप्त | १९७१ | भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली |
| ४५- | नई कविता रचना प्रक्रिया | ओमप्रकाश अवस्थी | १९७२ | पुस्तक संस्थान नेहरूनगर, कानपुर |
| ४६- | नई कविता संस्कार और शिल्प | उमाशंकर मिश्र | १९६४ | साकी प्रकाशन, सागर |
| ४७- | नया हिन्दी काव्य | शिवकुमार मिश्र | १९६२ | अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर |
| ४८- | नया अदबनामा | अलीउर्रहमान आज़मी- | १९६५ | इण्डियन बुक हाउस, अलीगढ़ |
| ४९- | नई कविता सीमाएं और सम्भावनाएं | गिरिजाकुमार | प्र० सं० | अन्तर प्रकाशन, दिल्ली |
| ५०- | नये प्रतिमान पुराने निकष | लक्ष्मीकान्त वर्मा | १९६६ | भारतीय ज्ञानपीठ, काशी |
| ५१- | नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य | डा० गोविन्द द्विवेदी- | १९७५ | मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि०, दिल्ली |
| ५२- | प्राचीन भारतीय संस्कृति | बी० एन० लूनिया | १९७२ | लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन, आगरा |
| ५३- | पूर्व और पश्चिम कुछ विचार | डा० राधाकृष्णन | १९५१ | शिवलाल कम्पनी, आगरा |
| ५४- | प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि | डा० प्रेमदत्त शर्मा | १९६८ | जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर |
| ५५- | फलसफ़ा और अदबी तन्क़ीद | डा० वहीदअख्तर | १९७२ | मकतबए शेर हिकमत बाजार नूरुल उमरा, हैदराबाद |
| ५६- | भाषा और संवेदना | रामस्वरूप चतुर्वेदी | १९६४ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता |
| ५७- | भारतीय संस्कृति महाकाव्यों के आलोक में | डा० बैराग | -- | -- |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ५८- | भारतीय संस्कृति | गुलाब राय | १९६६ | रवीन्द्र प्रकाशन ग्वालियर |
| ५९- | भारतीय संस्कृति के आधार | अरविन्द घोष अनु० जगन्नाथ वेदालंकार | १९६८ | श्री अरविन्द सोसायटी पाण्डीचेरी-२ |
| ६०- | भारतीय संस्कृति का विकास | डा० मंगलदेव शास्त्री | १९५६ | समाज विज्ञान परिषद् काशी विद्यापीठ, वाराणसी |
| ६१- | भारतीय संस्कृति | डा० बलदेव प्रसाद | प्र०सं० १९६८ | रामनारायणलाल प्र प्रयाग |
| ६२- | भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास | सत्यकेतु विद्यालंकार | १९५३ | सर०स०मसूरी |
| ६३- | भारत की राष्ट्रीय संस्कृति | आबिद हुसैन अनु०- महेन्द्र चतुर्वेदी | २०१५ वि० | साहित्य सदन चिरगांव, झांसी |
| ६४- | भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य | डा० वैद्यनाथ पुरी | १९५८ | मालवीय प्रकाशन गणेशगंज, लखनऊ |
| ६५- | भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव | डा० असदअली | १९७७ | एस०ई०एस० प्रकाशन दिल्ली |
| ६६- | भारतीय संस्कृति का उत्थान | डा० रामजी उपाध्याय | १९६६ | रामनारायण बेनीमाधव प्रेस, इलाहाबाद |
| ६७- | भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता | डा० प्रसन्नकुमार आचार्य | २०१४ वि० | हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग |
| ६८- | भारतीय संस्कृति के मूल तत्व | डा० रामनारायण पाण्डेय | प्र०सं० | साहित्य निकेतन, कानपुर |
| ६९- | मजहब और शायरी | डा० एजाज हुसैन | १९५५ | उर्दू एकेडमी सिंध, कराची |
| ७०- | मध्यकालीन भारतीय संस्कृति | डा० आशीर्वादीलाल | १९७९ | शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० |
| ७१- | मेरी कहानी | जवाहरलाल नेहरू | १९५४ | सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ७२- | मार्क्सिज़्म एक मुताला | ज़फर इमाम | १९७१ | मुसलमानों का सोशलिस्ट सेन्टर डिफेन्स कालोनी दिल्ली |
| ७३- | मध्यकालीन हिन्दी काव्य भारतीय संस्कृति | डा० मदनगोपाल गुप्त | १९६८ | नैशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली |
| ७४- | रस मीमांसा | रामचन्द्र शुक्ल | २०२३ वि० | नागरी प्रचारणी सभा काशी |
| ७५- | रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना | बच्चन सिंह | २०१५ वि० | — ,, ,, |
| ७६- | राष्ट्रीयता और समाजवाद | नरेन्द्रदेव | प्र०सं० २००६ | ज्ञानमण्डल लि० बनारस |
| ७७- | स्वायत्त और बगावत | प्रो० एहतेशाम हुसैन | १९६१ | — |
| ७८- | शुद्ध कविता की खोज | दिनकर | १९६६ | उदयाचल प्रकाशन, पटना |
| ७९- | शब्द साधना | रामचन्द्र वर्मा | १९५६ | बनारस साहित्य प्रकाशन काशी |
| ८०- | स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता | गोविन्द रजनीश | १९७६ | मंगल प्रकाशन, जयपुर |
| ८१- | संस्कृति का दार्शनिक विवेचन | देवराज | १९५७ | प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश |
| ८२- | साहित्य के नये सन्दर्भ | डा० गोपाल शर्मा "दिनेश" | १९७६ | प्रभात प्रकाशन, दिल्ली |
| ८३- | साकेत एक अध्ययन | डा० नगेन्द्र | १९७० | साहित्य रत्न भण्डार, आगरा |
| ८४- | सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य | शान्ती जोशी | १९७७ | राजकमल प्रकाशन दिल्ली |
| ८५- | संस्कृति एक समाजशास्त्रीय समीक्षा | डा० गौरीशंकर भट्ट | १९६५ | साहित्य सदन, देहरादून |
| ८६- | संस्कृति के चार अध्याय | दिनकर | १९६२ तृतीय सं० | उदयाचल, आर्य कुमार रोड पटना |
| ८७- | सामयिक जीवन और साहित्य | रामरतन भटनागर | १९६३ | साथी प्रकाशन, सागर |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| ८८- | हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा | देवराज शर्मा पथिक | १९७९ | इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन कृष्णनगर, दिल्ली |
| ८९- | हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास | डा० नगेन्द्र | १९७३ | नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, दिल्ली |
| ९०- | हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियां | गोविन्दराम शर्मा | १९६१ | हिन्दी साहित्य सं०, पटना |
| ९१- | हिन्दी कविता में युगान्तर | डा० सुधीन्द्र | १९५० | आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली |
| ९२- | हिन्दी साहित्य कोश | डा० धीरेन्द्र वर्मा | सं० २०२० | ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी |
| ९३- | हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश | हरदेव बाहरी | १९८६ | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली |
| ९४- | हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास | हजारी प्रसाद द्विवेदी | १९६४ | [illegible] अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली |
| ९५- | हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां | डा० शिवकुमार शर्मा | ७वां सं० १९७७ | अशोक प्रकाशन, दिल्ली |
| ९६- | हिन्दी वीरकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति | डा० राजपाल शर्मा | १९७४ | आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली |
| ९७- | हिन्दी साहित्य का इतिहास | रामचन्द्र शुक्ल | ८वां सं० सं० २०१२ | काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी |

## ३ - सम्पादित व संकलन पुस्तकें हिन्दू उर्दू

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १- | आधुनिक कविताएं विवेचन तथा संचयन | रणधीर सिन्हा | -- | -- |
| २- | इन्तेख़ाब मन्ज़ूमात, भाग-१ | | १६८५ | उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडमी लखनऊ |
| ३- | इश्तेकाफ़ | अब्दुर्रहीम नश्तर | | नया बाजार कमेटी नागपुर |
| ४- | कवितान्तर | जगदीश गुप्त | १६७३ | ग्रन्थम रामबाग, कानपुर |
| ५- | गर्मदीरां | गुलाम रब्बानी ताबां | | नागरी प्रचारणी माला सीरीज-काशी |
| ६- | गंधदीप | महेन्द्र कार्तिकेय | १६६४ | चितरंजन प्रकाशन, बम्बई |
| ७- | जदीदियत और अदब | प्रो० आल अहमद सुरूर-१६६६ | | शोबा ए उर्दू मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ |
| ८- | तार-सप्तक | अज्ञेय | १६६६ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ६- | दूसरा सप्तक | ,, | १६५१ | प्रगति प्रकाशन, दिल्ली |
| १०- | तीसरा सप्तक | ,, | प्र०सं० १६५६ | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी |
| ११- | नई कविता अंक१-६ | जगदीश गुप्त | | किताब महल, प्रयाग |
| १२- | निकष | जगदीश चतुर्वेदी | १६७२ | ज्ञान भारती प्रकाशन दिल्ली |
| १३- | नई शायरी | इफ्तेख़ार | -- | -- |
| १४- | नई नज़्म का सफर | खलीलुर्रहमान आज़मी -- | | मकतबए जामिया, दिल्ली |

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | लेखक | संस्करण | प्रकाशन |
|---|---|---|---|---|
| १५- | विकल्प | शैलेश मटियानी | १९६७ | -- |
| १६- | शिविर | विनोद शाही<br>अशोक सुधांशु | | सौरभ प्रकाशन, पटियाला |
| १७- | समकालीन कविता की भूमिका | विश्वम्भरनाथ अग्रवाल | | मैकमिलन इण्डिया लि० दिल्ली |
| १८- | सुराहों के सफ़ीर | अकील शादाब | . | मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी, दिल्ली |
| १९- | हिन्दुस्तान हमारा | जानिसार अख़्तर | १९७४ | हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट चर्चगेट, बम्बई |
| २०- | त्रयी - १ | जगदीश गुप्त | १९७४ | नई कविता प्रकाशन इलाहाबाद |
| २१- | त्रयी - २ | ,, | १९७७ | ,, |

## ४- पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी उर्दू

१- अल्फ़ाज
२- अथवा
३- आवेग
४- आलोचना
५- कल्पना
६- किताब
७- गंग-व-जमन
८- चानी
९- दिनमान
१०- धर्मयुग
११- नवनीत
१२- नईधारा
१३- नई दुनिया
१४- निरन्तर
१५- नया दौर
१६- पहचान
१७- भंगिमा
१८- विवेक - विकास
१९- शबखून
२०- शताब्दी
२१- साप्ताहिक हिन्दुस्तान